तो उवटन लगा दिया गया । तो क्या, दुल्हा नहीं आएगा ?

उन्होंने विपिन की ओर ताका ।

भीतर के एक कमरे में नयनतारा उस समय चुप बैठी थी । यह बात उसके कानों भी पहुंची । खवर कानों में पहुंचते ही सारा शरीर अवश-सा हो आया । दुल्हा नहीं आएगा ।

लेकिन नहीं, पंडित कालीकांत भट्टाचार्य के पूर्वजों का शायद बड़ा पुण्य-वल था, इसीलिए उनकी वेटी के व्याह में कोई वाधा नहीं पड़ी । या कि विपर्यय सामयिक भाव से नहीं घटा, शायद हो कि अदूर भविष्यत् के लिए मुलतवी रहा । जीवन में दुर्योग जव आता है, तो वहरहाल उसके आने के ढंग से वहुत वार लगता है कि वह शायद अचानक ही आया । लेकिन जव आंवी आती है, तो उसका लक्षण वहुत पहले से ही दिखाई पड़ता है । घर के छप्पर में जव आग लगती है, तो उस आग का उद्भव जो कितना पहले हुआ होता है किसीके तंवाखू पीने की वजह से—इसका पता हमें नहीं होता ।

कालीकांत जी चैन की सांस लेकर जी गए । एकवारगी आखिरी ट्रेन जो थी, उसीसे दुल्हा आया । विपिन दौड़कर पंडित जी को खवर दे गया । पंडितजी ने अंदर खवर भिजवाई । उत्सव के घर में उस समय दवी रुलाई-सी छूट रही थी ? खुश-खवरी जो मिली, तो वही मायूस खुशी से गम्-गमकर उठा । कौन तो वोल उठी, "शंख फूंक, अरे, शंख फूंक । उलूध्वनि कर !"

हां, कालीकांत जी के यहां दुल्हा आया, नयनतारा का दुल्हा आया ।

स्टेशन के प्लेटफार्म पर प्रकाश मामा सदानन्द को पहरा-सा देते हुए ला रहे थे । भानजा फिर कहीं भाग न जाए । वगल में हरनारायण चौधरी दुल्हे के पिता ।

प्रकाश मामा ने कहा, "आप कुछ फिक्र मत कीजिए जीजाजी, मैं सदा पर निगाह रखे हुए हूं..."

प्लेटफार्म पर कुछ लोगों ने दुल्हे को देखने के लिए भीड़ लगा रखी थी । प्रकाश मामा उन लोगों की ओर देखकर विगड़े । वोले, "आप लोग क्या देख रहे हैं साहव ? दुल्हा कभी देखा नहीं है क्या ? हमें जरा रास्ता दीजिए, जाने दीजिए, हटिए जरा..."

लेकिन सदानन्द को उस समय और ही चिन्ता थी । प्रकाश मामा ने उसकी ओर देखकर कहा, "अरे, तू कुछ सोच मत । व्याह करने में डर कैसा ? मैं तो हूं । देख भी तो, व्याह किसने नहीं किया है । व्याह मैंने किया है, तेरे वावूजी ने किया है, तेरे दादाजी ने किया है और कभी तेरे दादाजी के पिताजी ने भी व्याह किया था । व्याह करने में डरने की कोई वात ही नहीं । तू मेरी ही मिसाल ले न, मैंने तो व्याह किया है एक वार, मगर अगर जरूरत हो तो और भी दस वार व्याह करने की हिम्मत रखता हूं ।

मैं क्या किसीकी परवाह करता हूं ?"

उस दिन सदानन्द प्रकाश मामा की बात पर मन-ही-मन हंसा था। प्रकाश मामा भी तो आदमी ही है। आदमी छोड़कर कोई उसे जानवर नहीं कहेगा। आदमी जैसे दो हाथ, पांव, आंख, कान। आदमी जैसी ही मुंह की बोली। दुनिया में ऐसे को सब आदमी ही समझते हैं। परन्तु प्रकाश मामा क्या वास्तव में आदमी हैं। उसने जानें कितनी बार सदानन्द को सिगरेट पिलाई है, बीड़ी पिलाई है, तम्बाकू पिलाया है। यात्रा-थिएटर दिखाने के लिए कितनी दूर-दूर के गांवों में ले गया है। उसके बाद दूसरे गांव में रात बिताकर सवेरे घर ले आया है। घर लौटने से पहले भानजे को खबरदार कर दिया है। कहा, "खबरदार, किसीसे यह सब कहना नहीं…"

सदानन्द उस समय छोटा था। यह सब कुछ समझता नहीं था। पूछता, "क्या सब ?"

प्रकाश मामा कहता, "यही कि रात किसके यहां बिताई ?"

सदानन्द पूछता, "क्यों ? कहा ही तो क्या हुआ ?"

प्रकाश मामा डांटता। कहता, "धत्तेरे, बुद्धू। किसी औरत के यहां रात बिताने से किसीको कहना नहीं चाहिए।"

"क्यों ? औरत के यहां रात बिताने में दोष क्या है ? वह औरत कौन है ?"

प्रकाश मामा कहता, "दुर, तू सचमुच ही एक डपोरसंख है। देखा नहीं, वह एक बाजारू औरत है।"

"बाजारू औरत क्या होती है ?"

प्रकाश मामा ऊब उठता। कहता, "हुंह्, तुझको लेकर तो बड़ी मुश्किल में पड़ा मैं। इतने बड़े लड़के को यह भी समझाना पड़ेगा कि बाजारू औरत किसे कहते हैं ? देखा नहीं, उस दईमारी के क्या ठाट हैं ?"

"ठाट माने ?"

प्रकाश मामा झुंझला उठता, "नः। तुझे मैं आदमी नहीं बना पाया। तू बड़ा होने पर क्या जो करेगा; मैं समझ नहीं पाता! अन्त तक कोई करतूत न कर बैठ कहीं। बाबूजी के मरने के बाद जब तू लाखों रुपये का मालिक होगा, समझा है, उस समय लोग तुझे ठग लेंगे…"

बचपन में सदानन्द प्रकाश मामा की बातों से बहुत कुछ जान लेता था। वह यह जानता कि उसके बहुत रुपया है। उसके दादा और बाप के मरने पर वह लाखों लाख रुपये का मालिक होगा। और सिर्फ उसके बाप के बहुत रुपया है, इतना ही नहीं, उसके नाना जी के भी बहुत रुपया है। नानाजी के मरने पर यह सारा रुपया भी अकेले सदानन्द को ही मिलेगा। ये सारी बातें उसने तब सुनीं, जब उसकी उम्र पन्द्रह या सोलह वर्ष की थी। प्रकाश मामा उस समय उसे राणाघाट के एक घर में ले गया था। सारी रात मामा के साथ यात्रा देखी। यात्रा खत्म हुई तो आधी रात जा चुकी थी। घड़ी में

शायद दो वज रहे थे। सदानन्द को बेहद नींद आने लगी थी। प्रकाश मामा ने पूछा, "क्यों रे, वड़ी नींद आ रही है क्या ?"

सदानन्द ने कहा, "हां।"

"तो चल, तुझे बिस्तर पर सुला दूं। चल मेरे साथ..."

बाजार में एक मकान के सामने खड़े होकर उसने आवाज दी, "राधा ! अरी ओ राधा..."

बहुत-बहुत चिल्लाने के बाद एक औरत ने आंखें मलते हुए आकर दरवाजा खोला। पूछा, "अरे ! इतनी रात को ? यह कौन है ?"

प्रकाश मामा के हाव-भाव से लगा, जैसे वह औरत उसकी खूब जानी-चीन्ही है। बोलते-बोलते ही वह उसके बिस्तर पर जाकर बैठ गया। सदानन्द तब तक भी अवाक् होकर उस औरत की ओर देख रहा था। यात्रा देखते समय उसे जो उतनी नींद आ रही थी, उस औरत के यहां जाकर जानें वह कहां हवा हो गई !

"क्यों रे, राधा की ओर वैसे हा किए क्या ताक रहा है ?"

हंसते-हंसते सदानन्द से उसने जैसे ही यह कहा कि सदानन्द ने सिर झुका लिया। उस छोटी उम्र में ही उसे यह समझ में आया कि किसी अजानी औरत की तरफ इस तरह से नहीं ताकना चाहिए।

फिर मानो प्रकाश मामा की बात से ही वह आपे में आया। प्रकाश मामा उस समय उस औरत से सदानन्द के बारे में कह रहा था, "इसके पिता लाखों के ज़मींदार हैं। यह अपने बाप का इकलौता है। बाप के मरने पर यही लड़का उस उतनी बड़ी दौलत का अकेला मालिक होगा।"

"मगर इसे लेकर तुम मेरे यहां क्यों आए ? इसके मां-बाप जानेंगे, तो कुछ कहेंगे नहीं ?"

प्रकाश मामा हंस उठा। बोला, "क्यों, तुम लोगों के यहां आना क्या बुरा है ?"

राधा ने कहा, "नहीं ! तुम्हारे लिए नहीं कह रही हूं। तुम तो इस लाइन के घाघ हो चुके हो। आखिर भानजे को भी इसी लाइन में खींच लाए, यही कह रही हूं..."

प्रकाश मामा ने सदानन्द की ओर देखा। बोला, "इस लाइन में आने से हानि क्या है ? इसमें तुम्हें भी लाभ होगा, मुझे भी..."

"तुम्हें काहे का लाभ होगा ?"

"नहीं होगा ? इतना रुपया यह अकेले खा सकेगा ? इसके दादाजी ने दूसरों के गले में अंगोछा लगाकर रुपया जमा किया है। इसके दादाजी पहले कालीगंज में पन्द्रह रुपये माहवार के गुमाश्ता थे। सिर्फ पन्द्रह रुपया। गुमाश्ता कहना अच्छा नहीं लगता था, इसलिए सब लोग इसके दादाजी को नायब जी कहा करते थे। बस, उसी पन्द्रह रुपये की नौकरी से आज पन्द्रह लाख की ज़मींदारी के मालिक हैं वह ! और यह पोता ही उनकी उतनी बड़ी जायदाद का अकेला मालिक है।"

यह खबर राधा के लिए जैसी आश्चर्यजनक थी, उस छोटेपन में, खुद सदानन्द के लिए भी वैसी ही आश्चर्यजनक थी। प्रकाश मामा की उस दिन की उस बात से ही उसने जाना कि उन लोगों के कितना रुपया है। वह कितना बड़ा आदमी है।

राधा ने कहा, "लेकिन तुम इसे इसी उम्र में इस राह पर ले आए? उम्र होने पर तो यह सब फूंकेगा…"

"राम कहो! जानती हो, रुपयों के मामले में इसके खानदान में किसीकी मुट्ठी नहीं खुलती।"

"ऐसी बात है?"

"और क्या! जभी तो मैं जो भी बनता है, दीदी से हथिया लेता हूं। इसके पिता, मेरे जीजाजी, एक पैसे के फादर-मदर हैं। इसीलिए तो भानजे को इस लाइन में लाकर जरा आदमी बनाने की कोशिश कर रहा हूं। अब देखना हूं, मेरा हाथ-यश और इसका नसीब…"

सदानन्द राधा की ओर एकटक देख ही रहा था। उसे लगा, इस औरत में जैसे कोई अस्वाभाविकता है। यह मानो उसके खानदान की और-और स्त्रियों जैसी नहीं है। आखिरकार उस दिन सदानन्द का सोना ही नहीं हुआ। वैसी जगह में भी किसीको नींद आती है भला?

याद है, घर आते ही मां ने पूछा, "क्यों रे सदा, सारी रात कहां था? कहां सोया?"

प्रकाश मामा ने कहा, "सोएगा क्या खाक। साधुओं के आश्रम में किसीको नींद आ सकती है? सब लोग सिर्फ मृदंग-मजीरा बजा रहे थे…"

"साधुओं के आश्रम में? मतलब?"

प्रकाश मामा ने कहा, "यात्रा तो रात दो बजे टूट गई। इतनी रात को कहां जाएं? सदा ने कहा, उसे जोरों की नींद आ रही है। इसीलिए उसे लेकर राणाघाट के एक साधु के आश्रम में गया। लेकिन वहां फटे बांस जैसे गले से सब इस कदर 'राधाकृष्ण-राधाकृष्ण' करने लगे कि हम लोगों की नींद बाप-बाप करके भाग खड़ी हुई।"

दीदी हंसने लगीं। बोलीं, "मगर वहां अपने वकील साहब का घर रहते तू साधु के आश्रम में गया ही क्यों?"

प्रकाश मामा ने कहा, "गया मैं सदा को दिखाने के लिए। बड़े होने पर जब इसके हाथों बहुत रुपया आएगा, उस समय जिसमें यह ठगाए नहीं, इसीलिए अभी से चोर-छिछोरों की पहचान करा दी।"

इस बात पर दीदी भी हंसने लगीं और प्रकाश मामा भी हंसने लगा। लेकिन उस दिन प्रकाश मामा की बात पर सदानन्द नहीं हंस सका। उसे उस समय भी राणाघाट की उस औरत की याद आ रही थी।

एकाएक प्रकाश मामा पूछ बैठा, "तुमने जीजाजी से हमारे यात्रा देखने जाने की बात कह तो नहीं दी है?"

सच तो यह कि उस समय कोई भी नहीं जानता था कि सदानन्द प्रकाश

मामा के साथ घर से बाहर कहां-कहां जाता है। चौधरी वंश के कुल-तिलक के लिए जहां जाना मना है, उसी उम्र में वह वहां भी जाकर सारा विधि-निसेध तोड़कर काबिल हो चुका है, यह बात उसके किसी भी गुरुजन को नहीं मालूम थी। जीवन को देखना क्या इतना ही आसान है। प्रकाश मामा नहीं होता, तो क्या वह ज़िन्दगी की उल्टी पीठ को देख पाता? एक ओर नरनारायण चौधरी की अर्थलिप्सा और उसके पिता की वैषयिक कूट बुद्धि और दूसरी ओर प्रकाश मामा का वेपरवाह विलास। एक ओर कालीगंज की वहू आकर पालकी से उतरती और जाकर दादाजी से रुपये मांगती और दूसरी ओर वही रुपया प्रकाश मामा के हाथ के छेद से राणाघाट के बाज़ार के खपरैलों में जाकर खर्च होता। आदमी के जीवन का यह लेखा वह नहीं लगा सकता। कभी-कभी वह मां से पूछता, "मां, पालकी पर वह कौन वहू हमारे यहां आती है? वह दादाजी से सिर्फ रुपये ही क्यों मांगा करती है?"

मां कहती, "वह कालीगंज की वहू है।"

"कालीगंज की वहू कालीगंज में क्यों नहीं रहती? नवावगंज में हमें क्यों सताने आती है?"

मां झटपट लड़के को चुप करा देती। कहती, "चुप-चुप ऐसा नहीं कहना चाहिए। दादाजी तुम्हारे सुनेंगे, तो नाराज़ होंगे।"

सदानन्द कहता, "तो कालीगंज की वहू का जो पावना है, वह दे ही देना चाहिए। कालीगंज की वहू जब भी रुपये मांगती है, दादाजी कहते हैं, रुपया नहीं है। दादाजी झूठ क्यों बोलते हैं? दादाजी के तो बहुत रुपया है, मैंने देखा है।"

मां उसकी इन बातों का कोई जवाब नहीं दे सकी।

उसने प्रकाश मामा से भी बहुत बार पूछा, "तुम वहां क्यों जाते हो मामा?"

प्रकाश मामा उससे ऐसे प्रश्न की उम्मीद नहीं करता। कहता, "मरे, तू क्या समझेगा कि क्यों जाता हूं। बड़ा होगा तो तू भी समझेगा, जाएगा..."

उस लड़कपन में जब वह राधा के यहां गया था, उसने इसे उसी समय वह गीत सुनाया था—'काश, सखी मैं जान जो पाती।'

लौटते समय रास्ते में प्रकाश मामा ने पूछा, "क्यों रे सदा, कैसा गीत सुना?"

सदानन्द ने कहा था, "अच्छा..."

"अच्छा तो समझा, लेकिन कैसा अच्छा, यह बता।"

सदानन्द ने कहा था, "बहुत अच्छा।"

प्रकाश मामा ने कहा, "मगर सुन, दीदी अगर तुझसे पूछे कि रात कहां था, तो तू राधा के बारे में मत कहना, समझ गया? अपने पिताजी से भी न कहना, अपने दादाजी से भी नहीं।"

मु-5

सदानन्द ने फिर पूछा था, "तो फिर तुम वहां क्यों जाते हो मामा ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "जीवन का लुत्फ उठाने के लिए।"

"लुत्फ उठाने के लिए माने ?"

प्रकाश मामा ने कहा था, "तुममें यही तो बहुत बड़ा दोष है। कहा, तो कि तू जब बड़ा होगा, तो समझेगा। फिर भी बार-बार वही एक बात। मैं तेरे भले के लिए ही तुझे यह सब सिखा रहा हूं। नहीं तो, तेरे हाथ में जब रुपये आएंगे, तो तू खर्च कैसे करेगा ?"

सदानन्द ने पूछा, "क्यों, रुपये खर्च करना क्या कोई कठिन काम है ?"

"बेशक ! रुपया खर्च करना क्या आसान है रे ! तेरे दादाजी के पास तो उतने रुपये हैं, मगर कालीगंज की बहू का पावना वह दे क्यों नहीं देते ? बता ?"

सदानन्द ने कहा, "अच्छा कहो तो सही, कालीगंज की बहू को दादाजी रुपया क्यों नहीं देते हैं ?"

हंसी की एक आवाज से सदानन्द को हठात् जैसे होश आया। चारों ओर बहुत-से लोग, बड़ी रोशनी। बाजे-गाजे। ढोल-बाजे की आवाज से वह जगह गुलजार हो रही थी। साथ ही साथ शंख और स्त्रियों के गले की लु-लु-लु !

"समधी जी, मैं तो बेहद डर गया था···"

प्रकाश मामा कालीकांत जी की ओर बढ़ गया, "क्यों, डर क्यों गए थे ?"

कालीकांत जी ने कहा, "हमारा विपिन वहां गया था। उसीसे मैंने सुना, सुबह से ही दुल्हा बाबू का पता नहीं चल रहा था···"

प्रकाश मामा ने हो-हो हंस करके बात को उड़ा दिया। अपने जीजाजी की तरफ मुड़कर बोला, "सुनिए जीजाजी, समधीजी की बात सुन लीजिए। दुल्हे का पता ही नहीं था, तो दुल्हा आया कैसे ?"

कालीकांत जी ने कहा, "आपने कहा भी क्या। मैं बेटी का बाप ठहरा, मुझे आखिर दुश्चिन्ता तो है। खैर, उबटन की रस्म तो अदा हो गई थी न।"

दुल्हा के पिता हरनारायण चौधरी यों ज्यादा बोलते नहीं। उबटन वाली बात पर उन्होंने जबान खोली, "उबटन की रस्म हुए बगैर ब्याह कैसे होगा समधी जी ? शास्त्र के खिलाफ काम तो हमारे खानदान में नहीं हो सकता।"

निरंजन नाई दुल्हा के साथ गया था। लड़की की तरफ का नाई विपिन ने आकर उससे चुपचाप पूछा, "सुना कि आपके यहां क्या तो हो गया था ?"

"काहे का क्या ?"

"उबटन लेकर मैं ही तो नवाबगंज गया था। उस समय दुल्हा का कहीं पता नहीं था। फिर वह कब मिले ?"

निरंजन ने कहा, "अपने नन्हे बाबू तो ध्यानी किस्म के आदमी हैं। अचानक वह कालीगंज चले गए थे।"

"कालीगंज ? ब्याह के दिन दुल्हा बाबू अचानक कालीगंज क्यों चले गए ?"

कालीगंज क्यों चला गया था—यह बात खुद सदानन्द को ही मालूम थी क्या ? यह एक अजीब ख्याल है। पहले दिन तक उसे खाक भी पता नहीं था कि वह कालीगंज जाएगा। प्रकाश मामा उसे सभी जगह अपने साथ ले जाता रहा है। बचपन से वह मामा के साथ कितनी ही जगह तो गया। कालीगंज भी। रेल-बाज़ार से नवाबगंज आकर इच्छामती को पार करने के बाद जब थोड़ी दूर दक्षिण जाओ तब कालीगंज मिलेगा। कालीगंज में डाकघर है, थाना है, बाज़ार है। सच पूछिए तो कालीगंज नवाबगंज से और भी बढ़ता हुआ गांव है। सदानन्द को मालूम था कि कालीगंज की बहू यहीं से दादाजी के पास जाती थी। मालूम था कि कालीगंज की बहू दादाजी से रुपये मांगती थी और वह जब-जब रुपये मांगती, दादाजी कह देते—रुपया नहीं है। कालीगंज की बहू क्यों रुपये मांगती थी और किस बात के रुपये मांगती थी, सदानन्द को इसका पता नहीं था। पूछने पर भी कोई साफ बताता नहीं था।

ब्याह का घर, लोगों की काफी भीड़ हो गई। भागलपुर से नानाजी आए। उनके नाती का ब्याह ! बूढ़े आदमी, ज्यादा चल-फिर नहीं सकते। उन्होंने कहा, "कहां, मुन्ने को देख नहीं रहा हूं ?"

दीनू सदानन्द को बुला लाया। दादाजी सामने लेटे हुए थे। बोले, "नाना जी को प्रणाम करो।"

"हां-हां, रहने दो—" कहकर कीर्तिपद बाबू ने अपने पांव ज़रा आगे बढ़ा दिए। बोले, "जीते रहो भैया ! मैं आशीर्वाद करता हूं, सुखी होओ…"

सदानन्द सामने खड़ा ही था। कीर्तिपद बाबू ने फिर कहा, "जबसे आया, तुम्हें देख नहीं रहा हूं। खूब व्यस्त हो, क्यों ?"

नरनारायण चौधरी ने कहा, "नहीं। यह क्यों व्यस्त होगा। यह तो सदा से ऐसा ही है। मैं ही आजकल इसे देख नहीं पाता, जबकि इसी घर में रहता हूं। इसे कोई नहीं देख पाता है…"

कीर्तिपद बाबू ने कहा, "सो तो देख नहीं ही पाएगा। अब इन लोगों की उम्र हुई। बूढ़ों के साथ बैठना अब अच्छा भी क्यों लगेगा ? जाओ, जाओ भैया, अपने काम में जाओ। अब कहीं बाहर मत जाना…"

छुटकारा पाकर सदानन्द के जी में जी आया। उसके चले जाने के बाद कीर्तिपद बाबू ने कहा, "बहुत दिनों के बाद मुन्ने को देखा। काफी बड़ा हो गया। अब पहचान में नहीं आता।"

नरनारायण चौधरी ने कहा, "बड़ा होने से क्या हुआ, दुनियादारी की वह समझ अभी नहीं आई है…"

कीर्तिपद बाबू ने कहा, "अब ब्याह हो रहा है। कंधे पर जुआ चढ़ने से ही सब ठीक हो जाएगा। बचपन में सभी ज़रा वैसा होता ही है। बाद में देख लीजिएगा, वही आपको सिखलाएगा। मैं जब छोटा था, तो मैं ही क्या ज़मींदारी का कुछ समझता-बूझता था…"

दोनों समधियों की बहुत दिनों के बाद भेंट हुई। दोनों के ही अगाध

सम्पत्ति। और इन दोनों ही सम्पत्तियों का मालिक एक दिन सदानन्द होगा। सदानन्द की माँ कीर्तिपद बाबू की इकलौती बेटी है। और नरनारायण चौधरी का भी इकलौता बेटा सदानन्द का बाप। लिहाजा दोनों ही समधियों का एकमात्र भरोसा यह सदानन्द है। इसीलिए दोनों की एक ही कामना है कि सदानन्द दीर्घजीवी हो, सुखी हो, संसारी हो, दुनियादार हो।

लेकिन हाय रे, आदमी का जीवन और हाय रे आदमी के जीवन का इतिहास! नहीं तो उस दिन नवाबगंज और मामलपुर के दो दबंग जमींदार पुंगव क्या कल्पना भी कर सके थे कि उनके एकमात्र उत्तराधिकारी श्री सदानन्द चौधरी लाखों-लाख रुपये के मालिक होते हुए भी 'कौड़ी कफन को नहीं' वाली हालत में एक निहायत ही मामूली-से गांव चौबेड़िया में अपने जीवन के अंतिम दिन रसिक पाल की अतिथिशाला में उनके टुकड़ों पर बिताएंगे। नहीं तो क्या ब्याह के ठीक पहले दिन ही कोई घर छोड़कर भागता है या कि नरनारायण चौधरी के अंतिम दिनों की सबसे बड़ी दुश्मन कालीगंज की बहू के यहां आकर वह पनाह लेता!

कालीगंज की बहू की हालत भी उस समय बदतर थी। निःसंतान विधवा। पति के जीते जी कभी उन्होंने भी काफी सुख और ऐश्वर्य देखा। दो बच्चे भी हुए थे उनके। वे भी नहीं रहे। जिस बार हैजे ने कालीगंज में महामारी का रूप धारण किया था, उसी बार उनके दोनों बेटे उनकी नजरों के सामने ही चल बसे। पति की मौत, बच्चों की मौत—सब कुछ उन्होंने कलेजे पर पत्थर रखकर झेला। उस समय यह नरनारायण चौधरी ही कालीगंज के जमींदार का नायब थे। इन्हीं के हाथों सारा भार सौंपकर कालीगंज की बहू निश्चिन्त थीं। उस समय नरनारायण चौधरी को पन्द्रह रुपया महीना मिलता था। बड़े कष्ट से इनकी गृहस्थी चलती थी। लेकिन निःसन्तान विधवा के हाथों जमींदारी की बागडोर आने के बाद से ही उनकी हालत सुधरने लगी। वह नायबगिरी कालीगंज में करते थे, पर अपने गांव नवाबगंज में उन्होंने एक कोठा खड़ा किया। महज पंद्रह रुपया माहवार पानेवाला नायब की कोठापर खड़ा करने की जुर्रत कैसे हो सकती है, यह बात जमींदार की विधवा मालकिन के दिमाग में नहीं आई। आई होती, तो नरनारायण चौधरी आज इतने बड़े जमींदार नहीं हो सकते थे। और, दिमाग में यह बात आई होती, तो आज के इस आगामी सदानन्द चौधरी पर उपन्यास लिखना ऐसा अनिवार्य नहीं हो उठता।

सदानन्द चौधरी के ब्याह के ठीक पहले दिन सांझ को सदानन्द को एकाएक अपने यहां देखकर कालीगंज की बहू अवाक् रह गई थी। बूढ़ी ठहरी, आंखों से अच्छी तरह से दिखाई भी नहीं पड़ता था। विशाल मकान। मगर महज वह विशाल मकान-भर ही बच गया था उस समय। और कुछ भी नहीं था।

पूरे घर में ठीक से झाड़ू भी नहीं लग पाता। पहले का वह लोग-लस्कर भी नहीं रह गया था। सिर्फ एक दाई थी, जो इधर-उधर का काम कर दिया करती थी। पहले गुहाल भरी गाएं थीं, खेती के लिए बैल थे। लोग-बाग थे, जिन्होंने कभी मालिक का नमक खाया था। वे लोग एहसान के तकाज़े से उस घर के आस-पास किसी तरह से रह रहे थे। अभी भी ज़रूरत पड़ती, तो टूटी हुई पालकी से मालकिन को यहां-वहां ले जाते। पालकी का भी रंग उड़ चुका था, एक पांव टूट गया था। किसी प्रकार से मरम्मत करके अभी भी वह काम में आ रही थी।

"तुम कौन हो बेटे ?"

सदानन्द ने झुककर बुढ़िया के पांव छुए और हाथ को सिर से लगाया। "मैं सदानन्द हूं। नरनारारण चौधरी का पोता। हरनारायण चौधरी मेरे पिता हैं।"

कालीगंज की बहू तो मारे अचरज के काठ हो गई। मानो इस बात पर यकीन करने को जी नहीं चाह रहा था।

वह बोली, "लेकिन अचानक मेरे पास कैसे ? नायबजी ने क्या तुम्हारी मारफत मेरे रुपये भेजे हैं ?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं।"

"तो फिर तुम क्यों आए हो ?"

"मैं तुमसे मिलने के लिए आया हूं कालीगंज की बहू! अपने घर से मैं चला आया हूं। कल मेरा ब्याह है। अब मैं यहीं रहूंगा।"

बात सुनकर कालीगंज की बहू तो मानो आसमान से गिर पड़ी। वह करे क्या, समझ नहीं पाई। तब तक आह्निक नहीं कर पाई थी। अब तक वह खड़ी-खड़ी बात कर रही थी, अब बुढ़िया बैठ पड़ी। बोली, "तुम्हारा ब्याह है ? कल ?"

"हां !"

"तो, कल जब तुम्हारा ब्याह है, तो बेटे, तुम आज मेरे यहां क्यों आए ? कल सवेरे ही तो उबटन की रस्म होगी। तुम्हारी खोज होगी। फिर तो यह दोष मुझीपर लगेगा कि मैंने तुम्हें अपने यहां रोक रक्खा है। अच्छा, नायब जी को पता है कि तुम मेरे पास आए हो ?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं। मैंने यहां आने की बात किसीसे भी नहीं कही है। और किसीसे कहूंगा भी नहीं। मैं अब उस घर में जाऊंगा भी नहीं।"

कालीगंज की बहू ने कहा, "तुम्हें हुआ क्या है बेटे, तुमने क्या घर में लड़ाई-झगड़ा किया है ?"

"नहीं। मैं तुम्हारे यहां रहने के लिए ही आया हूं कालीगंज की बहू! अब से बराबर मैं यहीं रहूंगा। नवाबगंज अब नहीं जाऊंगा।"

कालीगंज की बहू ने कहा, "देखती हूं, तुम अभी निरे बच्चे हो। तुम जो मेरे यहां रहोगे, तो खाओगे क्या ? तुम बड़े घर के लड़के हो, मैं ठहरी गरीब, मुझसे क्या तुम्हें खिलाते बनेगा बेटे? बचपना मत करो, अपने

ट जाओ। एक तो तुम्हारे दादाजी यों ही मुझे फूटी आंखों नहीं देख निसपर यदि वह तुम्हें मेरे यहां देख लें, तो मुझे जिन्दा नहीं छोड़ेंगे, अपने दम भी नहीं रखने देंगे।"

सदानन्द ने पूछा, "मगर तुम दादाजी के पास जाती क्यों हो? क्यों तुम के आगे हाथ फैलाती हो? भीख मांगने में तुम्हें शर्म नहीं आती?"

कालीगंज की बहू ने कहा, "अपना पावना मांगना भी क्या भीख है? हारे दादाजी ने तो मेरा सर्वस्व हड़प लिया है। मेरी जगह-जायदाद कुछ नहीं रहने दी। इस मकान के सिवाय मेरे पास अपना कहने को और कुछ नहीं है। मेरी लाखों-लाख की जायदाद तुम्हारे दादाजी ने हजम कर ली। त में जब मैं बहुत रोई-पीटी, तो मुझे दस हजार रुपये देने का वायदा किया। उसी वायदे पर मैंने मुकदमा उठा लिया। मगर अब वह रकम मांगने जाना भी शायद मेरा अन्याय है। मैं तो कुछ दिनों में मर जाऊंगी, उसके बाद रुपया देने से मेरे किस काम आएगा, कहो? उन रुपयों से क्या मेरा श्राद्ध होगा?"

सदानन्द ने कहा, "कहने की जरूरत नहीं। मैं सब जानता हूं।"

"तुम सब जानते हो बेटे, सब जानते हो?" खुशी से मानो बुढ़िया का गला रुंध आया।

सदानन्द ने कहा, "मैं सब जानता हूं, इसीलिए तो आया हूं..."

"तुमने कैसे जाना बेटे? किसने कहा तुमसे? मेरा ऐसा हितू कौन है बेटा? मैं यह जानती थी कि मेरा कोई नहीं है। मालिक गए, अपने पेट के दो लड़के भी रहे होते तो मेरी यह दुर्दशा नहीं होती। इसीसे मैं यह सोचा करती हूं, आदमी इसी तरह से आदमी का सर्वनाश करता है? कहो, तुम्हारे दादाजी का तो कोई नुकसान नहीं हुआ? उनका लड़का तो जिन्दा ही है। तुम उनके पोते हो, कल तुम्हारी शादी होगी, फिर एक दिन तुम्हारे भी बाल-बच्चे होंगे, तुम लोगों का घर-संसार भर उठेगा। उस समय तो कोई भी यह नहीं सोचेगा कि किसके रुपये से यह सब हुआ, किसको सटियामेट करके तुम लोग इतना फले-फूले। मगर मेरा क्या हुआ? मैंने तुम्हारे दादाजी का क्या बिगाड़ा है कि उन्होंने इस बुरी तरह से मुझे बरबाद किया। सुनो बेटे, मैंने इसीलिए गुस्से में उन्हें शाप दे दिया है..."

"शाप दिया है? किसे?"

"तुम्हारे दादाजी को। गुस्से में मैंने नायब जी को शाप दिया था। शा देते हुए कहा था, आप निर्वंश तो होइएगा ही, ब्राह्मण का शाप कभी खा नहीं जा सकता। गुस्से में क्या आदमी को होशो-हवास रहता है बेटे? गुस्से हो। मैं ऐसा कह बैठी थी। इसीलिए मुझपर तुम्हारे दादाजी इतने नाराज अब कहते हैं कि रुपया नहीं दूंगा..."

सदानन्द ने कहा, "तुम्हारे सारे रुपये मैं चुका दूंगा। मैं तो तुमसे कहने के लिए आया हूं।"

"तुम मेरे रुपये चुका दोगे? मगर मेरे मरने के बाद रुपये चुकाने से

क्या फायदा होगा ? जीते-जी ही जब खाने के लाले रहे तो मेरे मरने के बाद वह रुपया कौन खाएगा ? भूत ?"

एकाएक किसीकी आवाज़ कानों में आते ही सदानन्द जैसे अपने आपे में आया। हठात् बाहर कौन तो बोल उठा, वाजा बजा रे, बाजा बजा···और कहना था कि बाहर ढोल बज उठा। संप्रदान हो रहा था। पुरोहित जी ने मंत्र पढ़ना शुरू किया था :

यदिदं हृदयं तव तदिदं हृदयं मम

सदानन्द नयनतारा की हथेली थामे हुए था और पुरोहित जी अपने मन से ही मंत्र पढ़ते चले जा रहे थे। लेकिन सदानन्द के कानों उस समय एक शब्द भी नहीं जा रहा था मानो। उसे उस समय राधा का गाया हुआ वह गीत याद आ रहा था। राणा घाट के बाज़ार की राधा—

"काश, सखी मैं जान जो पाती।
प्रेम श्याम का गरल मिला है
कानों में यह बात जो आती।
कुल की बाला, मन की सरला
तो क्या भूले वह विष खाती।"

सदानन्द को लगा, प्रकाश मामा की राधा ने उस दिन यह गीत सही नहीं गाया था। वह 'श्याम का प्रेम' नहीं, 'रुपये का प्रेम' होगा। 'रुपये का प्रेम गरल मिला है', कहती, तो ही शायद ठीक होता। रुपयों से ही तो आज उसके दादाजी बड़े आदमी हैं, रुपयों से ही तो वे लोग ज़मींदार हैं, रुपयों की वजह से ही तो आज इस रूपवती लड़की से उसकी शादी हो रही है। अथच यह रुपया उसका भी नहीं, उसके बाप का भी नहीं, उसके दादा का भी नहीं। यह जो भी सम्पत्ति है वह समस्त कालीगंज की बहू की है।

पुरोहित जी मंत्र पढ़ाते ही चले जा रहे थे, "यदिदं हृदयं तव तदिदं हृदयं मम, यदिदं हृदयं तव तदिदं हृदयं···"

उस दिन कहां से क्या हो गया, सदानन्द जान भी नहीं सका। शायद हो कि उसने जानना भी न चाहा। प्रकाश मामा उस वक्त पास खड़ा था। कान के पास मुंह लाकर कहने लगा, "क्यों रे, यों मुंह लटकाए क्या बैठा है ? हुआ क्या है तुझे ? देख न, चारों ओर कितनी लड़कियां हैं, ज़रा नज़र उठाकर देख।"

हरनारायण चौधरी सवेरे की गाड़ी से लौट आए। आने से पहले प्रकाश को बुलवाया। प्रकाश सारी रात जगता रहा। व्याह के संप्रदान से लेकर गलन्चारगी कोहबर तक। निरंजन नाई भी साथ था। निरंजन के सोने का काम कैसे चले। उसे तो कोहबर के दरवाज़े के पास ही कहीं रहना है ताकि उसपर नज़र रख सके। सदानन्द जिसमें कुछ पागलपन न करे।

काश ने कहा था, "मैं भी तो हूं जीजाजी ! मैं रात सोऊंगा नहीं।"
सो निरंजन और प्रकाश, इन्हीं दो के भरोसे चौधरी जी निश्चिंत रहे। ी जी ने चौधरी जी की खातिर-तवज्जो में कोई कोर-कसर नहीं रखी, ी व्यवस्था की थी। उन्हें अलग बिठाकर खुद से खिलाया। कालीकांत जी लिए यह कल्पना के बाहर की बात थी कि चौधरी जी स्वयं आएंगे। वैसे द रोब-वाले आदमी को बेकायदे पड़कर ही इतनी दूर आना पड़ा।

रात को सोने के लिए जाने लगे तो पूछा, "तो मैं सोने के लिए जाऊं काश ?"

प्रकाश ने कहा, "हां-हां, आप जाकर सोइए जीजाजी ! आप खामखा क्यों जगे रहेंगे ? मैं तो हूं। मैं हूं, निरंजन है..."

फिर भी जैसे चौधरी जी को भरोसा नहीं हो रहा था। कहा, "देखो प्रकाश, कोई ऐसी-वैसी बात न हो जाए। शिकायत न हो।"

प्रकाश ने कहा, "शिकायत। मेरे रहते वैसी कोई बात हो सकती है ?"

चौधरी जी ने कहा, "मतलब कि फिर सदा भाग जाए, यह कह रहा हूं..."

"अब नहीं भागेगा।"

चौधरी जी ने पूछा, "यह कैसे समझा ?"

प्रकाश जरा मतलब-भरी हंसी हंसा। कहा, "मैं समझता हूं जीजाजी, मैं समझता हूं..."

"खोलकर ही कहो न, कैसे समझा ?"

प्रकाश ने कहा, "सदा को बहू पसंद आई है..."

"सच ! मुन्ने ने तुमसे कहा ?"

विशेषज्ञ जैसी अदा करके प्रकाश ने कहा, "वह क्या कुछ मुंह से कहने की बात है जीजाजी ? समझ लेना पड़ता है।"

चौधरी जी ने कहा, "फिर तो चिंता की कोई बात ही नहीं..."

प्रकाश ने कहा, "नहीं। कोई चिंता नहीं। आप खुर्राटे भरकर सोइए।"

उसके बाद चौधरी जी को कोई चिंता नहीं रही। वह अपने लिए निर्दि बिछौने पर सोने चले गए। सवेरे जगे, तो लौटने की तैयारी में जुट पड़े जाने से पहले फिर प्रकाश को बुलाया। सिर्फ प्रकाश ही नहीं, उसके सा साथ निरंजन नाई भी आया।

चौधरी जी उन्हीं लोगों का बेसब्री से इंतजार कर रहे थे। पूछा, " खबर है प्रकाश ?"

प्रकाश ने कहा, "जो मैंने कहा था, वही।"

"यानी ?"

प्रकाश ने कहा, "यह यानी आप मुझसे नहीं, निरंजन से पूछिए इसे कोहबर के पास ही एक बरामदे में सोने के लिए कहा था। इसने सब सुना है..."

चौधरी जी ने निरंजन की तरफ ताका।

निरंजन ने कहा, "जी बड़ा बाबू ! साला बाबू जो कह रहे हैं, ठीक ही कह रहे हैं। नन्हे बाबू ने कल कोहबर में बात की है।"

"क्या बात की ?"

"जी, रात कोहबर में लड़कियां गाना गा रही थीं न, मैं बरामदे पर से सब सुन रहा था। गा लेने के बाद लड़कियों ने दूल्हे से पूछा—गाना कैसा लगा ?"

"तो मुन्ने ने क्या जवाब दिया ?"

"लगा कि नन्हे बाबू बहुत खुश हैं। मैंने उनका गला सुना। उन्होंने कहा, 'बहुत अच्छा।'"

खैर। सुनकर चौधरी जी प्रसन्न हुए। अब कोई खतरा नहीं।

प्रकाश ने कहा, "मैंने तो आपसे कहा ही था जीजाजी, इस लड़की की सूरत देख लेने पर सदा का पागलपन बाप-बाप करके भाग जाएगा। वैसी परकटी परी को देखकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनि का ध्यान टूट जाता है तो अपना सदा किस खेत की मूली है।"

तब तक ट्रेन का वक्त हो गया था। चौधरी जी रुक नहीं सके। गाड़ी पर चढ़ने से पहले प्रकाश चौधरी जी से सटकर खड़ा हो गया। बोला, "एक बात थी जीजाजी···"

"क्या ?"

"कुछ रुपयों की जरूरत थी। आज वर-वधू को लिवा भी तो जाना है। काफी खर्च होगा। लड़कियां जो फूलों की सेज उठाएंगी, उन्हें देना है। उधर के नाई को देना है। और···"

चौधरी जी ने कहा, "लेकिन कल तो तीन सौ रुपये तुम्हें दिए हैं···"

"जी, तीन सौ रुपयों से क्या होगा ? वे रुपये तो हैं। फिर भी टेंट में कुछ ज्यादा रहने से कलेजे में बल रहता है।"

हरनारायण चौधरी ने कुर्ते के अन्दर की जेब से कई नोट निकाले। निकालकर एक-एक करके गिनने लगे। बार-बार गिनकर बोले, "लो···"

रुपये लेकर प्रकाश ने पूछा, "कितना है ?"

"और एक सौ दिया।"

"सिर्फ एक सौ ? एक सौ में क्या होगा ?"

चौधरी जी ने कहा, "आखिर इतने रुपये किस चीज़ में लगेंगे ? रजब-अली तो स्टेशन पर हाज़िर ही रहेगा। पालकी का किराया घर पहुंचने पर चुका दूंगा।"

खैर, यही सही। प्रकाश ने गिनकर नोटों को जेब के हवाले किया प्रकाश जानता है कि रुपयों के लिए ज्यादा खींच-तान नहीं करनी चाहिए। उससे काम नहीं बनता है।

ट्रेन खुल गई।

ये घटनाएं कितने दिनों की हो गईं। आज, इतने दिनों के बाद बीते दिनों के सारे रास्तों की परिक्रमा करने में उन दिनों की छोटी-बड़ी सारी

टनाएं सदानन्द चौधरी को याद आने लगीं। कोशिश करने से उस दिन स लड़के को मानो आज भी पहचाना जा सकता है। पहचानी जा सकती उसकी छोटी-मोटी बातें और लोगों से उसके व्यवहार की घटनाएं। न फिर भी कोई भी उसे नहीं पहचान सका। उसके दादाजी, उसके बाप, की मां, प्रकाश मामा—सबने उसे प्रचलित नियमों के घेरे में घिरी पृथ्वी निर्वासित कर दिया था। निर्वासित करके उसके माथे पर दण्ड का बोझ दकर सारी जिम्मेदारियों से अपने विवेक को उन्होंने मुक्त कर लेने की टा की थी। उन लोगों ने सोचा था, सदानन्द को अपने सांचे में ढालकर न सिर्फ वंश बढ़ाने की जरूरत से ही जिलाए रखेंगे। उनका प्रतिनिधि कर सदानन्द सदा एक ही नियम की पुनरावृत्ति करता जाएगा—जिस नियम का प्रवर्तन समग्र मानव जाति के पूर्वपुरुष करते आए हैं। सदानन्द ने उसी दिन से सोच लिया था, वह साफ कहेगा—मैं तुम लोगों का कोई नहीं हूं। मैं, जैसे तुम लोगों के पाप का भागीदार नहीं, वैसे ही तुम्हारे पुण्य का भी भागीदार नहीं। अपने सारे पाप-पुण्यों की सुकृति और दुष्कृति लेकर तुम लोग सुख से रहो—सिर्फ मुझे तुम लोग छुटकारा दे दो। मैं तुम्हारी सहायता भी नहीं चाहता, तुम लोगों के उत्तराधिकार का अधिकार भी नहीं चाहता।

लेकिन सारे अपराधों के दाय से मुक्त होने के बावजूद आज वह एक आसामी है। भाग्य का यह भी मानो एक अजीब मखौल है!

वह भला आदमी पास ही पास चल रहा था। उसकी तमाम जिन्दगी आसामी और फरियादी को लेकर ही गुजरी। उसने बहुतेरे आसामी देखे, फरियादी भी बहुत देखे। लेकिन ऐसा आसामी उसने दूसरा नहीं देखा। बोला, "जरा कदम बढ़ाकर चलिए, कदम बढ़ाकर।"

सदानन्द बाबू हंसे, जैसे कदम बढ़ाकर चलने से ही ज्यादा आगे जाया जा सकता है। उसके नाना, बाप, मां, प्रकाश मामा, उसके दादाजी सबने तो दुनिया में जरा कदम बढ़ाकर ही चलना चाहा था। उन सबने ही सोचा था, कदम बढ़ाकर चलने से ही शायद कुछ और आगे बढ़ जाएंगे। सोचा था, और भी जरा कदम बढ़ाकर चलने से ही और भी रुपया, और भी क्षमता, और भी आयु पाएंगे। वे लोग कदम बढ़ाकर ही चले थे, लेकिन रुक-रुककर चलने की प्रज्ञा उन्हें नहीं हुई। उन्हें यह पता नहीं था कि जो लोग रुक-रुककर चलते हैं, वही चलते रहनेवाले लोगों को हराकर आगे बढ़ जाते हैं।

गजब है। अन्त तक वही हाल हुआ था उनका। उन सबों का। सदानन्द को याद है, रसिक पाल के यहां सम्मन लेकर जैसे आज कचहरी का प्यादा हाजिर हुआ है, ठीक ऐसे ही एक दिन प्रकाश मामा उसके पास हठात्

हाज़िर हुआ था। उस समय भी सदानन्द आज ही जैसा फटेहाल और बेसहारा था। उसकी ज़िन्दगी कलकत्ता की एक धर्मशाला के दानों पर कट रही थी।

उसे देखकर प्रकाश मामा अवाक् रह गया। बोला, "मैं तो तुझे ही ढूंढ़ने के लिए निकला हूं रे सदा ! तू यहां है ?"

सदानन्द ने कहा, "क्यों ? मुझसे क्या ज़रूरत पड़ गई तुम्हें ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "तेरे लिए कहां-कहां की खाक छानी है, पता है ?"

सदानन्द प्रकाश मामा पर झुंझला उठा। बोला, "वह सब रहने दो। तुम मुझे किसलिए खोज रहे हो, सो कहो।"

प्रकाश मामा ने कहा, "क्यों ? तुझे इतनी हड़बड़ी काहे की है ? मैं तो तेरे ही भले के लिए आया हूं, मेरी अपनी तो कोई गरज···"

सदानन्द ने कहा, "मेरा भला तुमने बहुत किया है मामा, मुझे अब भलाई की जरूरत नहीं है। मेरे भले के लिए ही तुमने मेरा ब्याह कराया था, मेरे भले के लिए ही तुम लोगों ने मुझे घर से भगा दिया था, तुम लोगों ने मेरे भले के लिए ही बेचारे कपिल पायरापोड़ा को कहीं का नहीं रखा था, मेरे भले के लिए ही तुम लोगों ने कालीगंज की बहू का सर्वनाश किया और फिर मेरे भले के लिए ही तुम लोगों ने बंशी ढाली से उसका खून भी कराया था। दया करके अब तुम लोग मेरी भलाई की न सोचो मामा ! मेरा काफी भला कर चुके, अब करने की जरूरत नहीं···"

प्रकाश मामा को उसकी बातें अच्छी नहीं लगीं। बोला, "वाह, तू बोलना तो खूब सीख गया है। अथच जीजाजी कहा करते थे, तेरा दिमाग खराब हो गया है। अब तो बड़ा सयाना जैसा बोल रहा है।"

सदानन्द को उस दिन ज्यादा बोलना अच्छा नहीं लगा। बोला, "तुम मेरे पास आए किसलिए हो, पहले यही कहो···"

प्रकाश मामा अचानक बोल उठा, "तेरे पिताजी चल बसे···"

यह खबर सुनकर सदानन्द को चौंक उठना चाहिए था। कम-से-कम कुछ अवाक्-सा हो जाना था। लेकिन उस रोज़ उसे ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। वह ज़रा देर तक प्रकाश मामा के मुंह की ओर सिर्फ 'हा' किए देखता रहा। मानो उसे उस समय और कुछ भी करने को नहीं था।

प्रकाश मामा ने कहा, "मैं अभी नवाबगंज से आ रहा हूं। वहां भी तुझे ढूंढ़ने के लिए गया था। आखिर कलकत्ता आया। सोचा, तुझे यहां कहीं पा जाऊंगा। यहां भी बहुत जगह भटकता फिरा। किस्मत अच्छी थी कहो, मानदा मौसी की तलाश में वह बाजार में पुलिस के उस बड़े बाबू के यहां गया था। वहीं उनके नौकर महेश से मुझे इस धर्मशाला का पता चला। खैर, तू मेरे साथ चल···"

"कहां ?"

"भागलपुर। अपनी ननिहाल।"

"क्या होगा वहां जाकर? मेरा कोई नहीं है, मैं कहीं नहीं जाऊंगा।"
प्रकाश मामा ने कहा, "कोई न हो चाहे, तेरे बाप की धन-सम्पत्ति तो है।
ने लाख रुपये की सम्पत्ति तू छोड़ देगा। वह सारी सम्पत्ति तेरी ही है रे,
ने बाप का तू अकेला बेटा है, एकमात्र उत्तराधिकारी···"

"मगर मैं रुपया लेकर करूंगा क्या? मुझे रुपये की जरूरत नहीं है।"

लेकिन प्रकाश छोड़ने वाला आदमी नहीं था। बोला, "तू नहीं लेगा, तो
ह रुपया कौन लेगा? इतनी बड़ी सम्पत्ति छोड़कर तू धर्मशाला के टुकड़ों पर
बसर करता रहेगा? और सम्पत्ति अगर तू नहीं ही लेगा, तो किसीके नाम लिख
दे। मैं गरीब आदमी हूं। तुझे रुपयों की जरूरत नहीं हो सकती है, पर मुझे तो
रुपयों की जरूरत है रे! आखिर मैं तो तेरी तरह संन्यासी नहीं हो गया हूं।
तेरे बीवी-बच्चे नहीं हैं, माना। मगर मेरे तो हैं।"

अब सदानन्द ने समझा, प्रकाश मामा किस गरज से भागलपुर से तमाम देश
का चक्कर काटता हुआ उसकी खोज में कलकत्ता आया है। और कलकत्ता कोई
छोटी-सी जगह है? कलकत्ता जैसे शहर में किसीको ढूंढ निकालना क्या आसान
बात है? जब तक उसकी मां जिन्दा थी, प्रकाश मामा को रुपये की कमी नहीं
हुई। दीदी के आगे हाथ फैलाया, रुपये लेकर जेब में डाले और राणाघाट
जाकर राधा के यहां मौज-मजे किए। प्रकाश मामा जीवन-भर चकल्लस ही
करता फिरा। अब, जबकि उसके जीजाजी चल बसे, तो वह भानजे की तलाश
में निकला है। इस समय भानजे के लिए उसमें दर्द छनक उठा है।

इसीलिए तो उसने बहुत दिनों से सोच रखा था कि वह अपने जीवन की
कहानी लिख जाएगा। लिख जाएगा कि वह पागल नहीं है। पागल तुम लोग
हो। जिस दुनिया में आदमी आदमी को पण्य समझता है, जो आदमी केवल
कपिल पायरापोड़ा को फांसी लगाने में मदद करता है, जो आदमी सिर्फ
कालीगंज की बहुओं को ठगकर अपना पूंजी-पट्टा बढ़ाता है—वह पागल नहीं,
पागल कौन, तो सदानन्द!

सदानन्द ने कहा था, "तो चलो···"

प्रकाश मामा बड़े आदर से उसे भागलपुर लिवा गया। लेकिन उस समय
क्या प्रकाश मामा को यह पता था कि उसके जीजाजी की सम्पत्ति किसी और
के हाथ लगेगी। जानता होता तो प्रकाश राय भानजे की खोज में नहीं आता।

लेकिन यह सब बात अभी छोड़िए। यह सब बहुत बाद की बातें हैं। उस
समय नयनतारा की भी उम्र काफी हो चुकी थी। उसकी भी उस समय नये
सिरे से गिरस्ती हुई थी। ये बातें बताने को काफी वक्त मिलेगा। अभी तो
आज की ही कहूं। नयनतारा के ब्याह की बात।

नयनतारा के ब्याह के दिन उन विपर्ययों की बात नहीं सोचनी चाहिए
ऐसे शुभ दिन में अमंगल की उन बातों को सोचना भी शायद अन्याय है। आज
तुम लोग सिर्फ खुशी मनाओ। शंख फूंको, उलू ध्वनि करो, आज कहो—यदि
हृदयं तव तदिदं हृदयं मम, यदिदं हृदयं तव तदिदं हृदयं मम···

आज कालीकांत भट्टाचार्य की इकलौती बेटी का ब्याह है। जिस नय

तारा का रूप देखकर लोगों की पलकें नहीं गिरना चाहतीं, जिस लड़की के भविष्य की चिंता से पंडित जी और उनकी स्त्री की नींद नहीं आती थी, उसी नयनतारा का आज विवाह है। उस विवाह में आज तुम लोग पधारो, पधारकर नयनतारा को आशीर्वाद दो कि तुम जन्म-जन्म स्वामी-सुहागिन होओ, सास-ससुर कि सेवा करके अक्षय पुण्य की भागी बनो बिटिया ! आशीर्वाद करो कि मेरी नयनतारा जिसमें सुखी हो, वह सदा-सुहागिन रहे। आशीर्वाद करो कि मेरी नयनतारा मांग में सिंदूर लिए सदा सधवा बनी रहे···

वेला बढ़ गई।

प्रकाश मामा समधी जी को खोजते-खोजते हैरान ! "कहां गए, समधी जी कहां ?"

कालीकांत जी कई दिनों से ही बहुत परेशान रहे। आराम नसीब नहीं, दुश्चिन्ताओं का अंत नहीं। समझ नहीं पा रहे हैं कि किधर देखें। प्रकाश मामा के पास आते ही उसने चोट-सी करते हुए कहा, "क्यों समधी जी, देख रहा हूं, जमाई को पा गए तो अब मुझे पहचान ही नहीं रहे हैं। मैंने खाया कि नहीं, कोई ख्याल ही नहीं कर रहे हैं।"

"नहीं-नहीं, ऐसी क्या बात समधी जी ! आप ही तो सब हैं। आप नहीं होते तो क्या यह विवाह होता ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "जमाई कैसा हुआ, सो तो कहिए ? पसंद आया ?"

"आप ही कहिए, आपकी बहूरानी कैसी हुई ?"

"आप तो समधी जी सिर्फ अपनी बेटी पर नाज़ कर रहे हैं। और, हम लोगों का लड़का क्या जो-सो है ?"

कालीकांत जी बोले, "नहीं-नहीं, ऐसा कैसे कह सकता हूं। मेरी नयनतारा का बड़ा पुण्यफल था कि उसे ऐसा पति मिला। अपने कृष्णनगर के सभी लोग दुल्हे की प्रशंसा कर गए हैं।"

प्रकाश मामा ने पूछा, "तो, विदाई का समय कब है ?"

कालीकांत जी बोले, "पुरोहित जी तो पत्रा देखकर समय बता गए हैं।"

"देखिएगा, जिसमें ज्यादा देर न हो। राणाघाट में ट्रेन भी बदलनी पड़ेगी। वह ट्रेन कहीं छूटी तो बड़ी परेशानी होगी···"

कालीकांत ने कहा, "आप उसकी चिंता न करिए, अपना आदमी भेजकर मैं वह ट्रेन पकड़वा दूंगा···"

उसके बाद अचानक उन्हें जाने क्या याद आ गया। पूछा, "आपको सिगरेट-विगरेट तो ठीक से मिल रही है न ?"

"काहे को मिलने लगी भला ! आपको तो अब जमाई मिल गया, अब मेरी कौन पूछता है, अब तो मैं बिराना हो गया !"

कालीकांत जी हड़बड़ा-से गए। आवाज़ दी, "अरे ऐ, कौन है ? अरे ओ निताई, कृष्णधन, विपिन कौन है रे उधर ? समधी जी को किसीने सिगरेट नहीं दी ? जिस तरफ मेरी निगाह नहीं गई, उसी तरफ गफलत ? रे कृष्णधन···"

कहते-कहते वह सिगरेट के लिए अंदर की ओर चले गए।

निरंजन करीब ही कहीं खड़ा था। अब वह प्रकाश के पास आया। बोला, "मामा बाबू, उधर तो एक गजब हो गया..."

"गजब ? कैसा गजब ?"

निरंजन ने कहा, "वैसा कुछ खास नहीं। नन्हे बाबू ने औरतों से सब कह दिया..."

"क्या कह दिया रे..."

"कह दिया कि परसों वह कालीगंज की बहू के पास गए थे, इसीलिए उबटन की रस्म के समय घर पर नहीं थे।"

सदानन्द की बेवकूफी को सुनकर प्रकाश मामा अवाक् रह गया। बोला, "हूं ! कह दिया ?"

"हां !"

"तूने कैसे जाना ?"

"मुझसे उन लोगों का नाई विपिन पूछ रहा था। नन्हे बाबू से कोहबर में शायद स्त्रियों ने पूछा था कि आप उबटन के समय कहां गए थे। इसी पर शायद नन्हे बाबू ने कहा, कालीगंज की बहू के यहां। इसी बात पर औरतों में कुछ कानाफूसी हुई। इसलिए विपिन ने मुझसे जानना चाहा कि यह कालीगंज की बहू कौन है ? उसकी उम्र क्या है, आदि-इत्यादि..."

"तो तूने क्या कहा ?"

निरंजन ने कहा, "मैं क्या कहता ? बोला कि वह तो एक थुलथुल बुढ़िया है।"

"इसपर उसने यह नहीं पूछा कि आखिर दुल्हा बाबू वहां गए क्यों थे ?"

"नहीं। यह नहीं पूछा। और, पूछता भी तो मैं तो कुछ कह नहीं सकता था। यही कहता कि मैं तो नाई हूं, दुल्हा बाबू वहां क्यों गए, यह मैं क्या जानूं ?"

यह बात सुनकर प्रकाश मामा निश्चिंत नहीं हो सका। निरंजन को वहीं छोड़कर वह अंदर गया। अंदर उस समय औरत-मर्दों की बड़ी भीड़ थी। प्रकाश मामा के उधर जाते ही स्त्रियों ने घूंघट काढ़ लिया।

कौन तो दौड़ आया। उसने प्रकाश मामा की ओर सिगरेट बढ़ाई। कहा, "लीजिए सिगरेट लीजिए..."

प्रकाश मामा ने कहा, "सिगरेट तो ले रहा हूं, मगर तुम्हारे जमाई बाबू कहां हैं ? क्या कर रहे हैं ? जरा उन्हें बुला तो दो..."

कहना था कि भीड़ में समधी जी के जाने के लिए रास्ता बन गया। समधी जी दुल्हे से मिलेंगे—जरा रास्ता छोड़ दो, रास्ता। ऐ रांगा दीदी, जरा खिसककर बैठो, बदन हिलाओ। समधी जी आ रहे हैं..."

चारों तरफ बासी पूरी और तरकारी की गंध। छोटे-से घर में ज्यादा आदमी के हो जाने से जो हालत होती है, वही। प्रकाश मामा कमरे में गया, तो देखा, एक तकिए से टिककर सदानन्द गंभीर होकर बैठा है। तमाम रात नहीं

। से जैसा होता है, वैसा ही चेहरा। बाल बिखरे-बिखरे। वह उदास-सा बैठा
, सामने बहुत-सी स्त्रियां थीं।

"सदा !"

प्रकाश मामा के गले की आवाज पाकर सदानन्द को जैसे डूबते को किनारा
ला। मुंह उठाकर देखा। बोला, "हां···"

प्रकाश मामा ने कहा, "जरा मेरे साथ इधर तो आ···"

सदानन्द ने रात-भर में जरा देर के लिए भी पलक नहीं गिराई थी। तमाम रात लड़कियां उसे तंग करती रहीं, बकवास करती रहीं। गीत गाने के लिए परेशान करती रहीं। कभी-कभी उसके जी में आया कि उठकर कहीं भाग जाए। लेकिन जाए कैसे। इतने-इतने अनजान लोगों के बीच रहकर वह बेबस-सा हो गया था। प्रकाश मामा को देखकर जान में जान आई।

प्रकाश मामा आगे-आगे चलने लगा। सदानन्द पीछे-पीछे।

चलते-चलते पीछे मुड़े बिना ही प्रकाश मामा ने पूछा, "रात तुझे नींद आई थी?"

"सदानन्द ने कहा, "नहीं।"

"नींद नहीं आई, अच्छा ही हुआ। मेरे ब्याह के समय कोहबर में मुझे भी नींद नहीं आई थी। तू इसके लिए सोच मत। बहू कैसी लगी? पसंद तो आई न?"

कोहबर में से कोई बोल उठी, "अरी ऐ, यह आदमी दुल्हे का कौन होता है री?"

लड़की की एक मौसी ने बताया, "अरे, वही तो सब है। अगुआ दुल्हे का मामा है। इसी मामा ने तो यह रिश्ता ठीक किया।"

प्रकाश मामा तब तक सदानन्द को लेकर बाहर के एक कमरे में जा खड़ा हुआ। आस-पास कहीं कोई नहीं था। देखकर बोला, "आ, बैठ। यहां जरा एकांत-सा है।"

कालीगंज के जमींदार हर्षनाथ चक्रवर्ती अक्सर अपनी स्त्री से कहा करते थे, तुम्हें चिंता किस बात की है, "दो लड़के हैं···वही तुम्हें देखेंगे।"

एक बार चक्रवर्ती बाबू की सेहत बहुत गिर गई थी। ऐसी कि जीने की ही कोई उम्मीद नहीं। उस समय उनकी स्त्री बहुत ही मायूस हो गई। उसी समय से उन्होंने यह समझा कि जमींदारी ही रहे, चाहे रुपया ही रहे—इन्सान की जिन्दगी अभी है, अभी नहीं है। समझा कि ऐसे हट्टे-कट्टे तंदुरुस्त आदमी अगर महज कई दिनों की बीमारी में ही ऐसे कातर हो पड़ें तो मतलब हुआ कि असली चीज है तंदुरुस्ती, असली चीज है परमायु। और सबसे सही सत्य है भगवान। इसीलिए उसी समय से चक्रवर्ती गृहिणी पूजा-पाठ में डूब गईं।

बीमारी इन्सान को होती है, मगर एक दिन वह अच्छी भी हो जाती है

स्त्री को वैसी कातर देखकर इसीलिए चक्रवर्ती जी दिलासा दिया करते, "अजी, तुम्हें चिंता किस बात की है, मैं नहीं रहा, तो क्या। दो लड़के हैं, वही तुम्हें देखेंगे···"

स्त्री कहती, "लड़के आखिर हैं ही कितने बड़े। वे समझते भी क्या हैं?"

चक्रवर्ती कहते, "जब तक वे बड़े नहीं हो जाते, नारायण है, मेरा नायब···" चक्रवर्ती बाबू नरनारायण को नारायण ही कहते थे। लेकिन अजीब है आदमी का जीवन, और अजीब है आदमी का विश्वास। मनुष्य के जीवन की भी जैसे स्थिरता नहीं, वैसे ही क्या आदमी के विश्वास की भी कोई स्थिरता नहीं रहनी चाहिए? सच तो, अपने नायब पर कितना विश्वास करते थे चक्रवर्ती बाबू! और अपने नायब पर ही यदि विश्वास न करें, तो काम कैसे चले!

और, नरनारायण भी वैसे ही विश्वासी नायब थे। उनके हिसाब में कभी पाई-पैसे का इधर-उधर नहीं हो सकता। अपने लड़के पर भी उतना विश्वास नहीं किया जा सकता, जितना विश्वास नरनारायण चौधरी पर था। पंद्रह रुपये माहवार के कर्मचारी नरनारायण चौधरी न सिर्फ विश्वासी ही थे, बल्कि चक्रवर्ती बाबू की पिता की तरह श्रद्धा भक्ति भी करते थे।

वही चक्रवर्ती जब एकाएक एक दिन चल बसे तो उनकी पत्नी के माथे पर एकबारगी आसमान से गाज गिर पड़ी। उस समय उनके पास दो नाबालिग लड़के। वे जगह-जायदाद के बारे में कुछ भी नहीं समझते थे। बस, एक नरनारायण ही भरोसा। नरनारायण ने ही जाकर चक्रवर्ती बाबू की गृहिणी को दिलासा दिया था, "मां जी, आप रोएं नहीं। मैं तो हूं। आपको चिंता किस बात की है। मैं आपके लड़के जैसा ही हूं···"

इसीलिए उस दिन रात को जब उसी नायब जी का पोता उनके पास जा पहुंचा, तो उन्हें वे पिछली बातें याद आने लगीं। हूबहू वे शब्द जैसे उनके कानों में गूंजने लगे, "मां, जी, आप रोएं नहीं। मैं तो हूं। आपको चिंता किस बात की है। मैं आपके लड़के जैसा ही हूं···"

उस दिन का वही नारायण आज नरनारायण होकर नवाबगंज का जमींदार बना बैठा है। उस समय नारायण रोज सवेरे आकर चक्रवर्ती बाबू को पांव छूकर प्रणाम करता था। वह इसपर आपत्ति करते तो कहता, "आप मुझे पांव छूकर प्रणाम करने देने में आपत्ति न करें; मेरे मां-बाप नहीं, आप लोग ही मेरे मां-बाप हैं, सब कुछ हैं।"

उस समय कितना विनयी था नारायण! बीच-बीच में [illegible] काम से हवेली में भी आया करता था। घर के लड़के जैसा व्यवहार करता था। चक्रवर्ती बाबू की स्त्री के पास जाकर लड़के की तरह खाना मांगता। कहता, "मां जी, कुछ खाने को दीजिए। बड़ी भूख लगी है···"

उस समय बहुत बार नारायण दिनों तक [illegible] रहा। जगह-जमीन, हिसाब-पत्तर या मामला-मुकदमा के सिलसिले में बहुत बार [illegible] भूलकर जी-जान से परिश्रम किया। तनखा बढ़ाने [illegible] कभी नहीं की चक्रवर्ती बाबू ने उसकी तनखा बढ़ाई भी नहीं। [illegible]

का दरकार ही क्या था। खाना-पीना, रहना-सोना से लेकर कपड़ा-लत्ता सब कुछ तो वही देते थे। पर्व-त्योहार में नारायण के लिए कपड़ा कुरता-अंगोछा बंधा हुआ था।

लेकिन वही नारायण चक्रवर्ती बाबू के मरने के बाद और ही किस्म का हो गया। बीच-बीच में मां जी के जी में आता था कि नायब पर इस तरह से विश्वास नहीं करने से ही शायद अच्छा होता। लेकिन मुसीबत के दिनों एक औरत होकर विश्वास नहीं करके भी क्या करतीं।

एक दिन वह नवाबगंज गई थीं। देखकर अचम्भे में आ गईं। नारायण ने इतना बड़ा मकान बनवाया है। इतने-इतने आदमी। अपने मालिक की विधवा पत्नी को देखकर नारायण अवाक् रह गया था। बोला, "आप फिर खामखा क्यों आईं मां जी ?"

मांजी ने कहा, "आए बिना चारा क्या है, बेटे! मैंने कितनी बार तुम्हारे पास आदमी भेजा, तुमने एक बार भेंट तक नहीं की। इसीलिए खुद ही आ गई—अपनी जगह-ज़मीन का हिसाब ज़रा देखती। मेरा क्या है, क्या नहीं है, मैं यह भी नहीं समझ पाती। बैंक में अगर मेरा रुपया-पैसा रहा होता, तो मैं तुम्हें इस तरह से तंग नहीं करती। निहायत मुश्किल में पड़कर ही तुम्हारे पास आई हूं।

नारायण ने कहा, "आज आप जाइए। जो समझाना-बुझाना है, मैं एक दिन कालीगंज जाकर आपको समझा आऊंगा। आपको तकलीफ उठाकर यहां आने की ज़रूरत नहीं···"

नारायण की इस बात पर यकीन करके चक्रवर्ती-गृहिणी उस दिन वापस चली गईं। लेकिन नारायण नहीं गया। उसने अपना वादा पूरा नहीं किया। इनके पति की उतनी बड़ी जायदाद कपूर की तरह कहां जो गायब हो गई, कैसे गायब हो गई, वह जान भी न सकीं। लोग कहने लगे, कालीगंज के नायब ने ज़मींदार को धोखा देकर नवाबगंज में अपनी ज़मींदारी कर ली है···"

जो लोग अच्छे थे, उन्होंने पूछा, "नायब ने कालीगंज की बहू को ठगा कैसे ? वह जान नहीं सकीं ?"

लोगों ने कहा, "अरे, वह तो बेचारी भली है। उसके लड़का-लड़की-दामाद कोई नहीं। वह कैसे जान पाती ?"

बात सही थी। कालीगंज की बहू क्या अदालत की शरण लेगी ? नायब के नाम से कचहरी में नालिश करेगी ?

परन्तु नारायण चौधरी को जितना बुरा आदमी समझा गया था, वह उतना बुरा नहीं। कालीगंज की बहू जब रुपये के तकाजे के लिए आती तो वह उसे बिलकुल खाली हाथ नहीं लौटा दिया करता। कभी दस, कभी बीस, कभी पचास रुपये भी उसने दिए। कहा, "अबसे आपको यहां नहीं आना पड़ेगा मां जी, मैं खुद ही जाकर कुल रुपये दे आऊंगा।"

सुनकर कालीगंज की बहू की आंखों में आंसू आ गया था। वह बोलीं, "तुम खुद जाकर दे आओ, तब तो कोई बात ही नहीं बेटे, मेरी भी यह हेठी

"जाऊंगा। ले चलो।"

"लेकिन कालीगंज जाने से तुम्हारे दादाजी डांटेंगे।"

"दादाजी को डांटने दो। वह तो बड़े शैतान हैं। रोज़ मुझे डांटते हैं। मैं तो भी नहीं डरता।"

"दादाजी क्यों डांटते हैं तुम्हें?"

सदानन्द कहता, "मैं शरारत करता हूं, इसलिए..."

"तो तुम शरारत क्यों करते हो?"

सदानन्द कहता, "करूंगा, ज़रूर करूंगा शरारत। दादाजी, तुम्हें रुपये क्यों नहीं देते?

सदानन्द की बात सुनकर कालीगंज की बहू दंग रह जाती।

सदानन्द कहता, "जानती हो, दादाजी किसीको रुपया नहीं देते। दादा-जी के पास बहुत रुपये हैं, फिर भी वह किसीको नहीं देते।"

बच्चे के मुंह की बात सुनकर कालीगंज की बहू अवाक् हो जाती। कहती, "तुमने कैसे जाना कि दादाजी मुझको रुपया नहीं देते?"

सदानन्द कहता, "गौरी बुआ ने कहा है।"

गौरी बुआ! कालीगंज की बहू इस घर की औरतों में से खास किसीको पहचानती नहीं थी। उसे अंदर महल में भी जाने का कभी कोई मौका नहीं मिला। यहां के सभी लोग उसे देखते ही जाने कैसा तो गंभीर हो जाते। वह पूछती, "गौरी बुआ कौन?"

सदानन्द कहता, "हाय राम, गौरी बुआ को तुम नहीं पहचानती हो? वही तो मुझे खिलाती है। भात खिलाती है, मछली खिलाती है, दूध पिलाती है। मैं अगर खाता नहीं हूं तो गौरी बुआ मुझे डराती है।"

"क्या डराती है?"

"कहती है कि डरावनी बुढ़िया को बुला दूंगी।"

छोटे-से बच्चे के मुंह से ऐसी पकी-पकी बातें सुनकर इतने दुःख के बावजूद कालीगंज की बहू के होंठों पर हंसी आ जाती।

कालीगंज की बहू की पालकी पर बैठकर सदानन्द के मुंह से मानो बातों का लावा फूटता। धड़ाधड़ बहुत सारी बातें बोलता जाता। कहता, "सुन लो, मैं जब बड़ा होऊंगा, तो तुमको रुपया दूंगा।"

"तुम मुझे रुपया दोगे?"

"हां तुमको रुपया दूंगा, माणिक घोष को दूंगा, दूले पाट को दूंगा, कपिल पायरापोड़ा को दूंगा—सबको रुपया दूंगा। तुम लोगों की ज़मीन को मैं ख़ास नहीं कर लूंगा। तुमको ज़मीन दूंगा, धान दूंगा, गुड़ दूंगा—सब कुछ दूंगा।"

अजीब होता है बचपन का मन और बचपन का संकल्प। कालीगंज की बहू को लगता, छुटपन में शायद सभी ऐसे ही होते हैं। छुटपन में सभी उदार हो सकते हैं, दानी हो सकते हैं। उसके बाद उम्र बढ़ने के साथ-ही-साथ शायद सब गड़बड़ हो जाता है और दुनिया की स्वार्थपरता और

जटिलता आ जाती है। उम्र जब कम थी, तो कालीगंज की बहू भी तो सबका विश्वास करती थीं। कम क्यों, काफी बड़ी उम्र होने तक भी उसने जिसने जो चाहा, सब दिया, सब पर विश्वास किया। नहीं तो क्या यह नायब बाबू ही इस तरह से उसका सर्वस्व हजम कर ले सकता था! दस-दस आम के बगीचे, तीन-तीन बड़े जलाशय, और जमीन जो कितने बीघे थी, उसका हिसाब ही रखने की जरूरत नहीं होती। और कालीगंज की बहू ने सपने में भी नहीं सोचा था कि उसका हिसाब भी कभी रखना होगा। सब कुछ की देखभाल नायब ही करता, सारी वसूली भी वही करता। लगान वसूल करता और सरकारी लगान चुकाया भी करता। खेत में कितना धान हो रहा है, कितना पटसन, कितना चना और कितना सरसों—कालीगंज की बहू को इसका हिसाब लेने की कभी आवश्यकता नहीं हुई।

आखिर तक कालीगंज की बहू की तंदुरुस्ती बहुत खराब हो गई। फिर भी वह उसी हालत में नवाबगंज आया करती।

एक बार लेकिन उसे बड़ा गुस्सा आ गया था। रहा नहीं गया। वह बोल ही बैठी, "तो क्या मेरे रुपये तुमने ठग ही लिए नायब जी? यही नीयत थी तुम्हारी? तो फिर तुमने पहले क्यों नहीं कहा?"

चौधरी ने कहा, "क्यों? पहले कहने से क्या करती?"

"पहले कहने से कम-से-कम मुझे यह हैरानी-परेशानी नहीं होती। पन्द्रह-बीस साल से तुम मुझे चकमा दे रहे हो, सोच रहे हो, माथे के ऊपर ईश्वर नहीं है!"

उस समय नरनारायण खाट पर ही पड़े रहते थे। कालीगंज की बहू की यह बात उन्हें अच्छी नहीं लगीं। बोले, "भगवान होते तो मेरा क्या करते?"

कालीगंज की बहू बोली, "तुम मानो या न मानो, भगवान को मैं मानती हूं। उसी भगवान के नाम पर मैं तुमसे कहे जाती हूं, तुमने एक ब्राह्मण की स्त्री को धोखा दिया है, तुम्हारा भला नहीं होगा नारायण, तुम्हारा सर्वनाश होगा…"

"मतलब?"

"मतलब तुमने मेरा जैसा सर्वनाश किया है, वैसा ही सर्वनाश तुम्हारा भी होगा।"

नरनारायण चौधरी की आंखें सुर्ख हो आईं। बोले, "तुम मेरे घर से निकल जाओ, निकल जाओ…"

उसके बाद उन्होंने आवाज दी, "दीनू? अरे दीनू…"

कालीगंज की बहू बैठी हुई थी। उठ खड़ी हुई। बोली, "दीनू को क्यों पुकार रहे हो? मुझे गरदन पर हाथ से धक्का देकर निकाल बाहर करने के लिए?"

"क्यों पुकार रहा हूं, यह दीनू के आने के बाद ही जान जाओगी। मुंह से मुझे कहना नहीं होगा। अरे ओ दीनू…दीनू…"

कालीगंज की वहू ने कहा, "उसकी जरूरत नहीं पड़ेगी। मेरे दस हज़ार रुपये के लिए तुम्हें महापातकी नहीं होना पड़ेगा। मैं उसके पहले ही चली जाती हूं। लेकिन···"

बोलते-बोलते कालीगंज की वहू ने मानो जरा-सा दम लिया। बोली, "मैं यदि ब्राह्मण के वंश में पैदा हुई हूं और अगर एक बाप की बेटी हूं तो मैं तुम्हें शाप दिए जाती हूं नारायण—तुम निर्वंश होगे, निर्वंश होगे। तुम जिनके लिए ये रुपये जोड़ रहे हो, ये रुपये किसीके काम नहीं आएंगे—इन्हें कोई नहीं भोग सकेगा···"

बोलकर कालीगंज की वहू उसी क्षण बाहर चली जा रही थी कि ठीक उसी समय दीनू के साथ सदानन्द वहां आ पहुंचा।

"कालीगंज की वहू, ऐ कालीगंज की वहू !"

चौधरी जी ने दीनू को फटकारा, "ऐ दीनू, मैंने तुझको बुलाया, तू मुन्ने को अपने साथ यहां क्यों ले आया ?"

सदानन्द ने कहा, "ठीक ही किया, मुझे ले आया है। आप बोलने वाले कौन होते हैं ? मैं कालीगंज की वहू को देखने के लिए आया हूं।"

सदानन्द ने कालीगंज की वहू की ओर देखकर कहा, "मुझे पालकी पर नहीं चढ़ाओगी कालीगंज की वहू ? पालकी पर नहीं चढ़ाओगी ?"

कालीगंज की वहू सदानन्द को देखकर जरा ठिठक गई। उसके बाद वह सीढ़ियों से जैसे उतरती जा रही थी, वैसे ही सीधे उतर गई। पीछे से उसे पुकारता हुआ सदानन्द भी चल पड़ा, "कालीगंज की वहू···"

नरनारायण चौधरी आपे से बाहर हो गए, "हा किए ताक क्या रहा है दीनू ? मुन्ने को पकड़, मुन्ना चला गया, मुन्ना जो कालीगंज की वहू के साथ चला गया—पकड़, पकड़ उसे। बुद्धू की तरह मुंह बाए खड़ा क्या है ? पकड़कर ले आ···"

किन्तु तब तक कालीगंज की वहू बाहर के अहाते में अपनी पालकी पर बैठ चुकी थी। चारों कहार पालकी को कंधे पर उठाने को थे···"

इतने में सदानन्द ने पीछे से पुकारा, "तुमने आज मुझे पालकी पर नहीं चढ़ाया कालीगंज की वहू ?"

कंधे पर पालकी को उठाते हुए कहार शायद जरा रुक गए थे। लेकिन अन्दर से कालीगंज की वहू ने रुखाई से कहा, "क्यों रे दुलाल, पालकी उठाता क्यों नहीं है ? उठा···"

"जी मां जी, मुन्ने बाबू जो चढ़ना चाह रहे हैं···"

कालीगंज की वहू डपट उठी, "जो कोई भी पालकी पर चढ़ना चाहेगा, उसीको चढ़ा लेगा ? नहीं, नहीं चढ़ाना है। मैं जो कह रही हूं, वही कर···"

दुलाल वगैरह ने और देर नहीं की। पालकी उठाकर चलने लगे।

सदानन्द रोता हुआ पीछे-पीछे दौड़ने लगा, "ओ कालीगंज की वहू, कालीगंज की वहू···"

सदानन्द दौड़ता हुआ शायद अहाते के बाहर चला जा रहा था। चंडी-

मंडप में बैठे हरनारायण चौधरी की नजर पड़ गई। चिल्लाकर बोल उठे, "अरे ऐ, मुन्ना बाहर चला जा रहा है, कोई उसे पकड़, अरे, कौन है? दीनू···"

अन्दर से गौरी दौड़ी आई, "मुन्ने! ओ मुन्ने! कहां जा रहे हो? उधर नहीं जाना चाहिए। तुम मेरे पास आओ, मैं तुम्हें पालकी पर चढ़ाऊंगी···"

कहते हुए उसने गप्प से उसे पकड़ लिया। पकड़ना था कि सदानन्द रो पड़ा, "कालीगंज की बहू चली गई, मुझे पालकी पर नहीं चढ़ाया···"

गौरी की गोदी पर चढ़कर भी वह रोता रहा। इतने में बूढ़े चौधरी के कमरे से निकलकर दीनू भी तब तक बाहर के अहाते में आ पहुंचा।

छोटे चौधरी ने चंडीमंडप से दीनू को देखकर कहा, "तू कहां रहता है रे दीनू, जरा देर होती कि मुन्ना बाहर रास्ते पर निकल जाता···"

लेकिन उनकी बात पूरी होने के पहले ही कैलाश गुमाश्ता दौड़ता हुआ आया, "छोटे बाबू, बड़े मालिक कैसा तो कर रहे हैं, आप चलिए···"

"पिताजी? पिताजी को क्या हुआ?"

कैलाश गुमाश्ता हांफ ही रहा था। बोला, "कालीगंज की बहू पर बिगड़कर बोलने में ही किस तरह से तो हांफने लगे हैं, मुझे अच्छा लक्षण नहीं लग रहा है···"

छोटे चौधरी ने जरा भी देर नहीं की। सीधे अन्दर से होते हुए पिता के कमरे में चले गए। देखा, वह बिलकुल चित पड़े हैं। आंखें बन्द हैं। छाती जोर-जोर से ऊपर-नीचे हो रही है। सांस लेने में कष्ट हो रहा हो जैसे। कैलाश गुमाश्ता भी आकर बगल में खड़ा हो गया। दीनू आया। गौरी बुआ आई। घर-भर में खबर दौड़ गई, बड़े मालिक की तबीयत खराब हो गई।

राणाघाट से डाक्टर आया, कविराज आया। दवा की बाढ़ बह गई। डाक्टर और कविराज, दोनों ही कह गए, "इन्हें पूरे विश्राम की जरूरत है!"

तब से यह नियम हो गया, कालीगंज की बहू अगर आए, तो उसे बड़े मालिक के पास नहीं जाने दिया जाएगा। यह आफत कालीगंज की बहू की वजह से ही आई।

लेकिन सदानन्द को तभी से इस बात का कौतूहल हुआ कि यह कालीगंज की बहू दादाजी के पास क्यों आती है? किस बात का रुपया मांगती है और दादाजी उसे रुपये देते ही क्यों नहीं हैं···

उसके ऐसे सवाल का कोई ठीक-ठीक जवाब नहीं देता था।

दीनू कहता, "कालीगंज की बहू बड़ी शैतान है···"

सदानन्द कहता, "क्यों, वह शैतानी क्यों करती है?"

दीनू कहता, "जो लोग शैतान होते हैं, वे तो शैतानी ही करते हैं, और कुछ नहीं करते।"

कालीगंज की वहू ने कहा, "उसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। मेरे दस हज़ार रुपये के लिए तुम्हें महापातकी नहीं होना पड़ेगा। मैं उसके पहले ही चली जाती हूं। लेकिन..."

बोलते-बोलते कालीगंज की वहू ने मानो ज़रा-सा दम लिया। बोली, "मैं यदि ब्राह्मण के वंश में पैदा हुई हूं और अगर एक बाप की बेटी हूं तो मैं तुम्हें शाप दिए जाती हूं नारायण—तुम निर्वंश होगे, निर्वंश होगे। तुम जिनके लिए ये रुपये जोड़ रहे हो, ये रुपये किसीके काम नहीं आएंगे—इन्हें कोई नहीं भोग सकेगा..."

बोलकर कालीगंज की वहू उसी क्षण बाहर चली जा रही थी कि ठीक उसी समय दीनू के साथ सदानन्द वहां आ पहुंचा।

"कालीगंज की वहू, ऐ कालीगंज की वहू!"

चौधरी जी ने दीनू को फटकारा, "ऐ दीनू, मैंने तुझको बुलाया, तू मुन्ने को अपने साथ यहां क्यों ले आया?"

सदानन्द ने कहा, "ठीक ही किया, मुझे ले आया है। आप बोलने वाले कौन होते हैं? मैं कालीगंज की वहू को देखने के लिए आया हूं।"

सदानन्द ने कालीगंज की वहू की ओर देखकर कहा, "मुझे पालकी पर नहीं चढ़ाओगी कालीगंज की वहू? पालकी पर नहीं चढ़ाओगी?"

कालीगंज की वहू सदानन्द को देखकर ज़रा ठिठक गई। उसके बाद वह सीढ़ियों से जैसे उतरती जा रही थी, वैसे ही सीधे उतर गई। पीछे से उसे पुकारता हुआ सदानन्द भी चल पड़ा, "कालीगंज की वहू..."

नरनारायण चौधरी आपे से बाहर हो गए, "हा किए ताक क्या रहा है दीनू? मुन्ने को पकड़, मुन्ना चला गया, मुन्ना जो कालीगंज की वहू के साथ चला गया—पकड़, पकड़ उसे। बुद्धू की तरह मुंह बाए खड़ा क्या है? पकड़कर ले आ..."

किन्तु तब तक कालीगंज की वहू बाहर के अहाते में अपनी पालकी पर बैठ चुकी थी। चारों कहार पालकी को कंधे पर उठाने को थे..."

इतने में सदानन्द ने पीछे से पुकारा, "तुमने आज मुझे पालकी पर नहीं चढ़ाया कालीगंज की वहू?"

कंधे पर पालकी को उठाते हुए कहार शायद ज़रा रुक गए थे। लेकिन अन्दर से कालीगंज की वहू ने रुखाई से कहा, "क्यों रे दुलाल, पालकी उठाता क्यों नहीं है? उठा..."

"जी मां जी, मुन्ने बाबू जो चढ़ना चाह रहे हैं..."

कालीगंज की वहू डपट उठी, "जो कोई भी पालकी पर चढ़ना चाहेगा, उसीको चढ़ा लेगा? नहीं, नहीं चढ़ाना है। मैं जो कह रही हूं, वही कर..."

दुलाल वगैरह ने और देर नहीं की। पालकी उठाकर चलने लगे।

सदानन्द रोता हुआ पीछे-पीछे दौड़ने लगा, "ओ कालीगंज की वहू, कालीगंज की वहू..."

सदानन्द दौड़ता हुआ शायद अहाते के बाहर चला जा रहा था। चंडी-

मंडप में बैठे हरनारायण चौधरी की नजर पड़ गई। चिल्लाकर बोल उठे, "अरे ऐ, मुन्ना बाहर चला जा रहा है, कोई उसे पकड़, अरे, कौन है? दीनू···"

अन्दर से गौरी दौड़ी आई, "मुन्ने! ओ मुन्ने! कहां जा रहे हो? उधर नहीं जाना चाहिए। तुम मेरे पास आओ, मैं तुम्हें पालकी पर चढ़ाऊंगी···"

कहते हुए उसने झप्प से उसे पकड़ लिया। पकड़ना था कि सदानन्द रो पड़ा, "कालीगंज की बहू चली गई, मुझे पालकी पर नहीं चढ़ाया···"

गौरी की गोदी पर चढ़कर भी वह रोता रहा। इतने में बूढ़े चौधरी के कमरे से निकलकर दीनू भी तब तक बाहर के अहाते में आ पहुंचा।

छोटे चौधरी ने चंडीमंडप से दीनू को देखकर कहा, "तू कहां रहता है रे दीनू, जरा देर होती कि मुन्ना बाहर रास्ते पर निकल जाता···"

लेकिन उनकी बात पूरी होने के पहले ही कैलाश गुमाश्ता दौड़ता हुआ आया, "छोटे बाबू, बड़े मालिक कैसा तो कर रहे हैं, आप चलिए···"

"पिताजी? पिताजी को क्या हुआ?"

कैलाश गुमाश्ता हांफ ही रहा था। बोला, "कालीगंज की बहू पर बिगड़कर बोलने में ही किस तरह से तो हांफने लगे हैं, मुझे अच्छा लक्षण नहीं लग रहा है···"

छोटे चौधरी ने जरा भी देर नहीं की। सीधे अन्दर से होते हुए पिता के कमरे में चले गए। देखा, वह बिलकुल चित पड़े हैं। आंखें बन्द हैं। छाती जोर-जोर से ऊपर-नीचे हो रही है। सांस लेने में कष्ट हो रहा हो जैसे। कैलाश गुमाश्ता भी आकर बगल में खड़ा हो गया। दीनू आया। गौरी बुआ आई। घर-भर में खबर दौड़ गई, बड़े मालिक की तबीयत खराब हो गई।

राणाघाट से डाक्टर आया, कविराज आया। दवा की बाढ़ बह गई। डाक्टर और कविराज, दोनों ही कह गए, "इन्हें पूरे विश्राम की जरूरत है!"

तब से यह नियम हो गया, कालीगंज की बहू अगर आए, तो उसे बड़े मालिक के पास नहीं जाने दिया जाएगा। यह आफत कालीगंज की बहू की वजह से ही आई।

लेकिन सदानन्द को तभी से इस बात का कौतूहल हुआ कि यह कालीगंज की बहू दादाजी के पास क्यों आती है? किस बात का रुपया मांगती है और दादाजी उसे रुपये देते ही क्यों नहीं हैं···

उसके ऐसे सवाल का कोई ठीक-ठीक जवाब नहीं देता था।

दीनू कहता, "कालीगंज की बहू बड़ी शैतान है···"

सदानन्द कहता, "क्यों, वह शैतानी क्यों करती है?"

दीनू कहता, "जो लोग शैतान होते हैं, वे तो शैतानी ही करते हैं, और कुछ नहीं करते।"

“लेकिन दादाजी उसके रुपये क्यों नहीं देते ? विना रुपया के कालीगंज की
वहू चावल कैसे खरीदेगी ? कपड़ा कैसे खरीदेगी ?”

दिन वीतते गए और उसके दिमाग में यही सव प्रश्न घुसने लगा।
...सके वाद उम्र होते-होते उसने वहुत कुछ जाना। उसने जाना कि दादाजी ने
सिर्फ कालीगंज की वहू को ही नहीं, कपिल पायरापोड़ा को भी ठगा है,
...ाणिक घोष को भी ठगा है, फटिक नाई को भी ठगा है। जाना कि राणा-घाट में उनके वकील का मकान है, वहां उनका वकील सिर्फ मामला-मुकदमा ही करता है। मुकदमा करके नवावगंज के लोगों की जर-ज़मीन नीलाम पर चढ़वाकर ले लेता है, वकाया लगान के लिए रैयतों की ज़मीन खास कर लेता है। वंशी ढाली से लाठी चलवाता है। चंडीमंडप के पास वाले कमरे में वहुतों को वन्द करके विना दाना-पानी के जान से मारता है। इन वातों की किसीको खाक भी खवर नहीं होती। सदानन्द ने वहुत वार उस तरफ जाना चाहा। लेकिन चूंकि वह जगह जंगल-झाड़ियों से घिरी है, इसलिए शाम को उधर जाने में उसे वड़ा डर लगता। और, जव वंशी ढाली को उधर से आते देखता, तो उसका भी वदन सिहर उठता।

वंशी ढाली से पूछता, “क्यों वंशी, उस घर में रहने में तुम्हें डर नहीं लगता ?”

वंशी ढाली उसकी वात सुनकर हंसता। कहता, “डर क्यों लगने लगा मुन्ने वावू, मैं तो रात को वहीं सोता हूं, वही तो मेरा कमरा है।”

सदानन्द ज़िद पकड़ता, “मैं तुम्हारे कमरे में जाऊंगा वंशी...”

“मेरे कमरे में आप क्यों जाएंगे वावू, मैं ग़रीव हूं, वहां आपको तकलीफ होगी।”

इस तरह से वंशी उस प्रसंग को टाल जाता। कहता, “अच्छा चलिए मुन्ने वावू, आपको मैं मछली मारना दिखाने ले चलता हूं...”

और वह उसे जाल लेकर जलाशय में मछली मारना दिखाने ले जाता।

इतने दिनों के वाद, कालीगंज की वहू से यह सव वातचीत करते हुए काफी रात हो गई। कालीगंज की वहू ने अपने हाथ से रसोई वनाकर खिलाया। खिलाकर वोली, “अव तुम नवावगंज लौट जाओ वेटे ! तुम्हारे दादाजी ने अव तुम्हारी खोज शुरु कर दी होगी।”

“नहीं, मैं अव वहां नहीं जाऊंगा।”

“लेकिन तुम अगर नहीं जाओगे वेटे, तो अन्त तक मेरे मत्थे ही यह दोष मढ़ा जाएगा। सव लोग कहेंगे, मैंने तुम्हें रोक रक्खा है। और फिर कल तुम्हारी शादी है। सवेरे उवटन की रस्म होगी, तुम्हारी ससुराल से अधिवास की चीजें आएंगी...”

“आने दो। मैं हरगिज नहीं जाता। यहीं सो जाता हूं।”

और, वह कालीगंज की वहू के विस्तर पर लेट गया। इस एकवग... पागल लड़के को लेकर वह तो वड़ी मुश्किल में पड़ गई। आखिर दुलाल व...

बुलाकर दूसरा बिस्तर लगवाना पड़ा उसके लिए।

किसी तरह से रात गुजरी। कालीगंज की बहू ने सोचा, न हो तो दुलाल की मारफत नवाबगंज कहला भेजेगी कि मुन्ना यहीं कालीगंज में है।

दुलाल भी तैयार ही था।

पर दुलाल को सवेरे से ही बहुत काम-काज रहता है। काम का आदमी ठहरा। निदान उस दिन वहां से तीन कोस पैदल जाकर कुछ बांस की गुटिया लाने की बात थी। रात काफी हो चुकी थी। दुलाल ने सोचा था, रात रहते ही जाकर सवेरा होने से पहले ही बांस काटकर लौट आएगा। मगर, बंसवारी का मालिक घर पर नहीं था। वह भी शायद रात रहते ही कहीं निकल गया था। उसके लिए बैठना पड़ा। बंसवारी का मालिक जब तक लौटा तो धूप निकल आई थी।

दुलाल ने बांस चुने। काटे। और जब घर लौटा तो यहां तब तक हलचल मच गई थी।

दुलाल पर नजर पड़ते ही कालीगंज की बहू ने कहा, "क्या रे दुलाल, तुझे मैंने इतनी तरह से कह रखा था कि नवाबगंज जाकर नायब जी के यहां खबर दे आना कि मुन्ने बाबू यहां आए हैं, और तू बांस लाने चला गया? बांस लाने की तुझे आज ही ऐसी सख्त जरूरत पड़ गई? अब मैं लोगों को क्या सफाई दूं? नवाबगंज से जो आदमी आया है, वह मुझीको दूस रहा है…"

दुलाल ने देखा, सचमुच ही एक भला आदमी आंगन में चौकी पर बैठा है।

कालीगंज की बहू बोली, "इसी दुलाल से मैंने कह रखा था बेटे कि अलस्सबाह ही नवाबगंज जाकर नायब जी को खबर कर दे कि मुन्ना बाबू यहीं हैं…और आदमी कहने को मेरे भरोसे का एक यही दुलाल ही है। और तो कोई है नहीं, जिससे कहला भेजती…"

इतने में सदानन्द जगा और सामने आकर खड़ा हो गया।

प्रकाश मामा तो मारे गुस्से के आग बबूला।

"क्यों रे, तू यहां आकर छिपा है। आज तेरा ब्याह है। अधिवास लेकर कृष्णनगर से आदमी आ गया, उबटन की रस्म की सारी तैयारी है और तू ऐसा पागलपन कर रहा है? चल-चल, मुझे ज्यादा बोलने का वक्त नहीं है। बेइज्जती की हद हो गई। कुटुम्ब-घर से जो लोग आए हैं, वे वहां जाकर क्या कहेंगे भला! क्या सोचेंगे वे लोग?"

सदानन्द बोला, "सोचने दो, मेरा क्या? मैं नहीं जाऊंगा, यहीं रहूंगा मैं।"

प्रकाश मामा ने कहा, "मजाक करने का और कोई मौका नहीं मिला…" कहकर वह सदानन्द का हाथ पकड़कर खींचते हुए रास्ते की ओर ले जाने की कोशिश करने लगा।

सदानन्द ने अपना हाथ छुड़ा लिया। बोला, "तुमने मुझे नन्हा-नादान समझ रखा है प्रकाश मामा? मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊंगा, क्या कर लोगे

मेरा ?"

कालीगंज की बहू बोल उठी, "मैं तो इसे कल से ही यही समझा रही हूं बेटे कि शादी-ब्याह की बात है, ऐसा नहीं करना चाहिए। सारी तैयारियां हो चुकी हैं। अब ऐसा करना ठीक नहीं, जिसमें लोग हंसी उड़ाएं। या..."

प्रकाश मामा डपट उठा, "तुम रुको भी। मैं तुम्हारी चाल की पोल खोल दूंगा। ठहरो, पहले ब्याह हो जाने दो, फिर जो करना होगा, मैं करूंगा—वह मेरे मन में ही है..."

कालीगंज की बहू ने कहा, "मगर मैंने क्या किया ? मेरा क्या दोष है ?"

"मैंने कहा न, तुम चुप रहो। तुम फिर भी बोलती ही जा रही हो ? सोचा था, इसको फुसला करके अपने यहां रखकर यह ब्याह तुम तोड़ दोगी ? इतनी शैतानी भरी है तुममें ?"

सदानन्द ने बीच ही में टोक कर कहा, "खबरदार प्रकाश मामा, कालीगंज की बहू को तुम इस तरह से जो-सो नहीं कह सकते, नहीं तो मैं भी सारा भंडा फोड़ दूंगा।"

प्रकाश मामा ने पूछा, "इसका मतलब ?"

"मतलब तुम नहीं जानते हो ? तुम्हें नहीं मालूम है कि इस बेचारी की कितनी जायदाद दादाजी ने हड़प ली है ? पता है तुम्हें, यह कालीगंज की बहू एक दिन कितनी बड़ी सम्पत्ति की मालकिन थी ? इसकी सम्पत्ति किसने हजम की ? किसने इसे दर-दर की भिखारिन बनाया ? तुम क्या समझते हो कि मैं यह सब नहीं जानता।"

यह सुनकर प्रकाश मामा पहले तो जरा अकचका गया। फिर जरा दम लेकर बोला, "बुढ़िया ने तुझे यह सब कहा है, क्यों ? तेरे दिमाग में इसने यही सब पट्टी पढ़ाई है।"

"मुझे पट्टी पढ़ाने की जरूरत नहीं है प्रकाश मामा ! यह सब समझने लायक उम्र हो चुकी है मेरी। बल्कि तुम कुछ समझो। जिसके पैसों से आज तक तुम गुलछर्रे उड़ाते रहे हो, जान लो, वह पैसा तुम्हारे जीजाजी का नहीं, सब इस कालीगंज की बहू का है।"

प्रकाश मामा ने कहा, "सुन, अभी इन बातों का जवाब देने की फुरसत नहीं है मुझे। उधर कुटम्ब के यहां के लोग आकर बैठे हैं, फिर तीसरे पहर की ट्रेन से ब्याह करने के लिए कृष्णनगर जाना है। उसके बाद हम लोग तुम्हारी इन बातों का जवाब देंगे।"

सदानन्द ने कहा, "नहीं। जवाब देना हो तो इसी समय देना होगा। पहले जवाब चाहिए, फिर मैं तुम्हारे साथ जाऊंगा।"

"मगर किस बात का जवाब चाहिए तुझे ? जाने कब के गड़े मुर्दे को उखाड़ने का क्या यही समय है ? इसे तो बाद में उखाड़ते, तो भी चलता।"

"नहीं, नहीं चलता। पहले मुझे इसका जवाब चाहिए। पहले तुम मुझसे वादा करो कि दादाजी कालीगंज की बहू के दस हजार रुपये चुका देंगे ?"

"दस हजार रुपये ?"

"हां। दादाजी ने आज से पंद्रह साल पहले कालीगंज की बहू को दस हजार रुपये देने का वादा किया था, मगर इस बेचारी को आज भी टरका रहे हैं। अब तो दादाजी इससे मुलाकात तक नहीं करते। पहले तुम मुझे वचन दो कि इसके वे रुपये चुका दोगे?"

प्रकाश मामा ने कहा, रुपये तेरे दादाजी चुकाएंगे या नहीं, इसका वादा मैं कैसे करूं? मैंने रुपये लिए हैं कि मैं चुकाने का वादा करूं?"

"तो फिर मैं भी ब्याह करने नहीं जाऊंगा···"

प्रकाश मामा ने कहा, "ठीक है। तू घर चल। घर चलकर अपने दादाजी से यह सब कह। दादाजी अगर रुपये देने को राजी न हों तो फिर चाहे तू ब्याह करने मत जाना। मगर इस संकट से तू मुझे तो बचा···"

इतनी देर के बाद कालीगंज की बहू ने सदानन्द से कहा, "यही ठीक है बेटे! तुम्हारे मामाजी तो ठीक ही कह रहे हैं। रही मेरे रुपये की बात। सो मेरे तो तीन काल कट गए, एक पर टिकी हूं। अब मुझे रुपया दें, न दें, एक ही हाल है। उन रुपयों के लिए अब मैं हाय-हाय भी नहीं करती। पर बेटे, तुम अब देर मत करो, उबटन की रस्म में देर हो जाएगी···"

सदानन्द आखिर राजी हुआ। बोला, "चलो···"

उसने कालीगंज की बहू के पैरों के पास माथा झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा, "तुम्हारे रुपये मैं अपने हाथों पहुंचा जाऊंगा कालीगंज की बहू, तुम चिन्ता न करो। रुपया नहीं देने से मैं ब्याह करने ही नहीं जाऊंगा।"

याद है, उसके सिर पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद देने लगी, तो कालीगंज की बहू की दोनों आंखें छलक पड़ीं। उसने सदानन्द की नजरों के सामने ही आंचल से आंख-मुंह ढंक लिया था।

·

ब्याह की रात के दूसरे दिन कृष्णनगर के एक एकान्त कमरे में प्रकाश मामा उससे यही बात पूछ बैठा, "क्यों रे सदा, तूने कोहबर में सबसे कालीगंज की बहू वाली सब बात बता तो नहीं दी? निरंजन कह रहा था···"

सदानन्द ने गम्भीर होकर कहा, "नहीं।"

प्रकाश मामा ने सावधान कर दिया, "न, मत कहना।"

सदानन्द ने कहा, "मगर कालीगंज की बहू के वे दस हजार रुपये? अभी तक दादाजी ने लेकिन वह रकम दी नहीं। तुमने मगर वचन दिया था मामा···"

प्रकाश मामा ने कहा, "तू खामखा इसके लिए इतना सोच क्यों रहा है? अरे, दस हजार रुपया तो तेरे दादाजी के लिए हाथ का मैल है। उन्होंने जब कहा है, तो जरूर दे देंगे। उसके दस हजार रुपये मारकर क्या तेरे दादाजी बड़े आदमी होंगे? जरूर देंगे—मैं तो गवाह हूं न···"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन मैं कहे देता हूं मामा, वहां कालीगंज की बहू

के रुपये दादाजी ने नहीं दिए तो बड़ा बुरा होगा, बहुत बुरा…"

उधर से लड़की के पिता का गला सुनाई पड़ा, "कहां हैं समधी जी ? सिगरेट तो मिल गई न ?"

बोलते-बोलते कालीकांत जी आ पहुंचे। बोले, "अरे, ओ, दुल्हा बाबू भी यहीं हैं। खैर, सिगरेट-विगरेट तो मिल रही है न समधी जी ?"

प्रकाश मामा के होठों पर सुलगी हुई सिगरेट थी। लिहाजा, उसे इसका जवाब नहीं देना पड़ा। वह सिर्फ बोला, "अब विदाई की सब व्यवस्था कीजिए समधी जी—दुल्हा-दुल्हिन को नवाबगंज पहुंचा देने के बाद ही मुझे रिहाई मिलेगी। उसके बाद आपका भाग्य और आपकी लड़की का हाथ-यश…"

सो प्रकाश मामा आदमी कर्मठ हैं। ये कर्मठ नहीं होते तो क्या यह ब्याह होता भला ? कल सवेरे तो ब्याह प्रायः रुक ही गया था। सारे घर में कुहराम-सा मच गया था। नवाबगंज की बात लगभग फैल ही चुकी थी। सबको पता चल गया था कि छोटे चौधरी का लड़का भाग गया है। ढूंढ़े नहीं मिल रहा है कहीं। एक तो गांव की बात; फिर नवाबगंज जैसा छोटा गांव। किसके यहां दामाद आया है, किस घर की थी, जिसके साथ घुलती-मिलती है—यह सब किसीसे भला छिपा रह सकता है। तिसपर लगभग सभी घर न्योते गए हैं। ये लोग कई दिनों तक भोज खाते रहेंगे। खाते ही नहीं रहेंगे, ठूंस-ठूंसकर खाएंगे। ऊपर से बांधकर ले भी जाएंगे। कई दिन पहले से ही उन लोगों ने अपने घर कम खाना शुरू कर दिया है ताकि पेट में जगह कुछ खाली रहे। लेकिन सदानन्द के भाग जाने की खबर से उनकी सारी उमंग पर पानी फिर गया। खुशी के ज्वार में भाटा पड़ गया तो ? भोजन क्या गया अब !

बरवारी-थान में निताई हालदार की दूकान के चौंतरे पर बाजाब्ता सभा बैठी।

अभी-अभी परमेश मौलिक यह खबर ले आया था। खबर सुनते ही सबका चेहरा फक पड़ गया। बोले, "तो चाचाजी, आज क्या खिलाना-पिलाना बंद ?"

परमेश मौलिक ने कहा, "क्या जाने भैया, नसीब में क्या है। मछली-दही-मिठाई सब कुछ का इन्तजाम हो चुका है।"

"कौन-कौन-सी मिठाई हुई थी। सुना, कृष्णनगर से मलाई-मिठाई मंगाई जा रही थी ?"

महज मलाई-मिठाई नहीं। कई दिनों से खान-पान की चीजों की चर्चा करते-करते सबको सब मुखस्थ हो गया था। मछली-मांस, मछली के सिर का घंट, घोंघे का कलिया, तला हुआ बैंगन, आमिष और निरामिष, दो तरह का चाप, दही, रसगुल्ला, कालाजामुन—और भी बहुत कुछ।

इतने में नजर पड़ी, परेशान हाल-सा साला बाबू आ रहा है। सब लोग हा किए उधर ताकने लगे। वह करीब आया, तो सब लोग उसकी ओर बढ़े।

"क्या खबर है साला बाबू ? सदा मिला ?

साला बाबू का चेहरा गम्भीर था। बोला, "नहीं जी, मिला कहां। जरा कालीगंज में देख आऊं…"

"कालीगंज ? सदा कालीगंज किस लिए जाएगा ?

माला बाबू ने कहा, "राणाघाट-फूलाघाट, रेल-बाजार, नवाबपुर सबको तो छान डाला। कालीगंज ही क्यों छूट जाए ?"

माला बाबू रुका नहीं। हनहनाता हुआ सामने की ओर चल पड़ा।

केदार को एकाएक एक बात याद आ गई। अब तक ख्याल में नहीं आई थी। असली बात पूछना भूल गया। बोला, "अरे जा, असली बात ही तो पूछने से रह गई।"

निताई ने पूछा, ' कौन-सी बात ?"

"अजी भोज-भात की।"

इतना कहा और दौड़ पड़ा। माला बाबू तब तक बहुत दूर निकल गया था। दौड़ते-दौड़ते केदार ने पुकारा, "माला बाबू, ऐ माला बाबू···"

माला बाबू पीछे पलटकर देखा। सोचा, शायद हो कि सदा मिल गया, केदार वही खबर देने आ रहा है। बोला, "क्या है रे, सदा को पाया ?"

केदार नजदीक पहुंचकर हांफ रहा था। एकाएक उसके मुंह से बात नहीं निकली। बाद में बोला, "जी नहीं, सदा की नहीं, न्योते की पूछ रहा हूं। हम लोगों के न्योते का क्या होगा ? वह भी खटाई में जाएगा क्या ?"

केदार की बात सुनकर माला बाबू के तलवे से सिर तक आग-सी लग गई। बोला, "चल रे की, दूर हो जा—यहां रात से सदा को ढूंढते-ढूंढते मेरा तलवा घिस गया और इन्हें न्योते की पड़ी है। दूर हो जा···"

गुस्से से माला बाबू जोरों से कदम बढ़ाता हुआ आगे निकल गया। सुनकर सभा के सब लोग बड़े मायूस हो गए। दूल्हा न मिले, लेकिन भोज बंद हो जाने की बात से सब लोग कैसे तो उदास हो गए। इधर कई दिनों तक काफी तंबाकू का श्राद्ध हुआ, खूब वाद-विवाद होता रहा। रेल-बाजार के मोड़ की दुकान का रसगुल्ला अच्छा है कि राणाघाट के हरिहर की दुकान का—इसपर जो तर्क छिड़ा तो दोपहर ढलकर शाम हो गई। कई दिन तो तर्क से हाथापाई तक की नौबत आ गई, फिर भी कोई फैसला नहीं हो सका। ब्याह की तारीख की ओर निगाह किए ही इतने दिन जिन्दगी बिताते आए—एकाएक वह परम लक्ष्य डूब गया, इससे लोग बड़े ही दुःखी हो रहे।

लेकिन शाम होते-होते सभी फिर से चंगे हो गए। खबर पहले केदार को ही मिली। उसने दौड़ते हुए आकर गोपाल घाट से कहा। गोपाल उस समय दुकान में पानी लगा रहा था। केदार का गला सुनते ही वह चिल्ला उठा, "क्यों रे, क्या खबर है ?"

केदार रास्ते पर से ही चिल्ला उठा, "अरे, सदा मिल गया, अब कोई बात नहीं···"

गोपाल घाट ने कहा, "मिल गया ? तो फिर भोज ?"

"भोज होगा।"

कहकर वह रुका नहीं। दूसरी तरफ चला गया। बोला, "जरा निताई से जाकर कह आऊं। वह बड़ा मुरझा गया है।"

यह सुनते ही गोपाल पाट के कलेजे पर से मानो एक वज़नी पत्थर उतर गया। उसने बैल का सानी लगाना छोड़ दिया और धोती की छोर को बदन पर डालकर झटपट निकल पड़ा। अब तक सबको ज़रूर ही मालूम हो चुका होगा। उसने सीधे बरवारी-थान की ओर कदम बढ़ाया। लेकिन वहां पहले से ही लोगों का जमघट जम चुका था। निताई, केदार, सब पहुंच चुके थे। सबके चेहरे पर एक उत्तेजना। भोज के बारे में निश्चिन्त होकर सब मानो आपे में आ गए थे। सब जान चुके थे कि सदा मिल गया। साला बाबू शायद कालीगंज से ही अपने भानजे को पकड़ लाए।

"लेकिन वह भागा क्यों था? सदा कुछ बता नहीं रहा है?"

इस बात ने सबको चिन्ता में डाल दिया। ब्याह की वजह से कोई भागता है भला? सदा को तो सभी छुटपन से ही देखते आए हैं; पर उससे कभी कोई घुल-मिल नहीं पाया। स्कूल से लौटते हुए वह इसी बरवारी-थान होकर ही घर जाता रहा है। हाट के दिन भी बहुत बार हाट में आया है। लेकिन सदा कैसा तो खोया-खोया-सा। और, ज्यादातर वह साला बाबू के ही साथ रहा करता। चौधरी जी ने बहुत बार ले जाकर उसे चंडीमंडप में बिठाया है। कहा है, "एक दिन तो यह सब काम-काज तुमको ही देखना पड़ेगा, अभी से थोड़ा जान-सुन लो!"

निहायत सुबोध बालक की नाईं सदानन्द चुपचाप बाप की बात सुनता था।

चौधरी जी कहते, "ये देखो इसका नाम है परचा, यह है दाखिला और यह है नक्शा। इस नक्शे पर नम्बर दिया हुआ है। यह सब दाग नम्बर है।"

चौधरी जी एक-एक करके उसे सरिश्ते का नत्थी-पत्तर समझाते। कौन-सा क्या है, किस चीज का ज्यादा महत्त्व है। कभी जब दादाजी नहीं रहेंगे, मां-बाप नहीं रहेंगे, तब उसे आप ही तो सारा कुछ देखना पड़ेगा। नायब-गुमाश्ते के भरोसे पर और चाहे जो भी किया जाए, ज़मींदारी सरिश्ते का काम नहीं चलता। "तुम्हारी अपनी चीज है, तुम्हें अपने ही हाथों सब कुछ करना पड़ेगा। वकील तुम्हें घपला भी देना चाहते तो तुम घपले में क्यों आने लगे? मामला-मुकदमा के समय तुम्हें खुद से कचहरी जाना पड़ेगा। कठघरे में गवाह बनकर खड़ा होना पड़ेगा। यों चुप रहने से नहीं चलने का। वकील की जिरह से घबराने से नहीं बनेगा। अपना स्वार्थ पाई-पाई समझना-सीखना होगा। और, रैयतों को पीटकर यदि ठीक न कर सको, तो ज़मींदारी मत करो। यह निरे गऊ-से आदमी का काम नहीं।"

इतना-इतना उपदेश, इतना तोता-सा पढ़ाना, सब लेकिन बेकार गया था। चौधरी जी पूछते, "कुछ समझा? जवाब क्यों नहीं देते—कुछ समझा?"

सदानन्द कहता, "नहीं।"

चौधरी जी उखड़ जाते। कहते, "क्यों? इसमें नहीं समझने की कौन-सी बात है? तुम लिखे-पढ़े हो, तुम्हारे लिए तो ये बातें सख्त नहीं होनी चाहिए। जरा कैलास गुमाश्ते को देखो, वह तो लिखने-पढ़ने का नाम भी नहीं जानता, लेकिन हमारे किस परचे में कितना बीघा, कितना धूर जमीन है, उसे सब

मुगरथ है। वह मैट्रिक पास भी नहीं, आई० ए० पास भी नहीं—तुम्हारे जैसा बी० ए० पास लड़का अगर यह सब नहीं समझ सके तो इतना पैसा पानी की तरह बहाकर क्या फायदा हुआ ?"

उसके बाद चौधरी जी को लगता, सदानन्द मानो कुछ सुन ही नहीं रहा है। वह और ही तरफ ताक रहा है। उसके बाद उसकी दृष्टि का अनुसरण करके उन्होंने देखा, चंडीमंडप के आंगन में रजबअली बैल को जोर-जोर से मार रहा है।

चौधरी जी डांट उठे, "उधर क्या देख रहे हो। मैं काम की बात कहे जा रहा हूं और तुम रजबअली को देख रहे हो। रजबअली को देखने से तुम्हें क्या हासिल होगा ?"

लेकिन नहीं, हासिल उसे था। रजबअली को देखकर भी उसे लाभ था। कुछ कहना नहीं, सुनना नहीं, सदानन्द उसी हालत में वहां से उठकर चला गया। जाकर लमहे में रजबअली के हाथ से लाठी को छीन लिया। बोला, "बैल को मार क्यों रहे थे ? क्या किया है इसने ?"

रजबअली का तो डर से बुरा हाल। उसने गाड़ी के बैल को मारा तो कौन-सा कसूर किया कि नन्हे बाबू ने उसकी लाठी छीन ली !

लेकिन मामले को भांपकर चौधरी जी वहां पहुंच गए। बोले, "यह क्या कर रहे हो ? यह क्या कर रहे हो ?"

सदानन्द ने कहा, "वह बैल को मार क्यों रहा है ? बैल ने उसका क्या बिगाड़ा ?"

चौधरी ने कहा, "जरूरत होगी, तो बैल को मारेगा नहीं ? बदमाशी की है, इसीलिए मारा है। इसके लिए तुम क्यों अपना दिमाग खराब कर रहे हो ?"

सदानन्द ने कहा, "तो फिर मैं भी रजब को मारूंगा। उसने भी तो बदमाशी की है।"

चौधरी जी तो लड़के की बदअक्ली देखकर दंग रह गए। उनका लड़का, उसके ऐसी बुद्धि कैसे हुई ? ऐसी बुद्धि होने से वह इतनी बड़ी सम्पत्ति कैसे रख सकेगा ? वह तो सदा रहेंगे नहीं। एक दिन तो आखिर इसी लड़के के हाथों सब कुछ सौंपकर उन्हें चल देना होगा। तब क्या होगा ?

उसी दिन से सदानन्द के पिता को एक और चिन्ता हो गई। उसी दिन से वह लड़के को अपने पास ही पास रखने की कोशिश करने लगे। चंडीमंडप में अपने पास बिठाकर उसे सब कुछ दिखाने-समझाने लगे। सदानन्द कुछ देर तक वहां बैठा जरूर रहता पर उसका मन वहां लगता, कौन जाने !

जरा ही देर में कहता, "मैं जाता हूं···"

चौधरी जी कहते, "कहां जाओगे ?"

सदानन्द कहता, "मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।"

"अच्छा नहीं लग रहा है, तो जाओगे कहां ?"

सदानन्द कहता, "बाहर···"

"वाहर कहां, यह तो वताओगे ?"

लेकिन वह वाहर कहां जाएगा, यह खुद को ही मालूम हो, तव तो वताए।

रात को चौधरी जी स्त्री से पूछते, "मुन्ना क्या अभी भी प्रकाश के साथ रहता है ?"

स्त्री अवाक् होकर कहती, "प्रकाश के साथ रहता है तो क्या हुआ ?"

चौधरी जी कहते, "न, मुन्ना जिसमें प्रकाश से ज्यादा न मिला-जुला करे। मैं तुम्हें सावधान किए देता हूं।"

प्रीतिलता भी ज़मींदार की लड़की ठहरी। मैके के लोगों की निन्दा सहने लायक स्त्री वह नहीं थी। कहती, "तुम तो प्रकाश को नहीं ही वरदाश्त करोगे। मगर मैं पूछती हूं, तुम्हारा उसने क्या विगाड़ा है ?"

चौधरी जी ज़रा नर्म पड़कर कहते, "नहीं, सो नहीं कह रहा हूं। सदा यों ही अड्डेवाज़ी करता रहेगा तो चलेगा ? सरिश्ते का काम भी तो थोड़ा-वहुत सीखने की ज़रूरत है। मैं अव कितने दिन हूं···

यह प्रसंग और ज्यादा देर तक नहीं चलता। परन्तु चौधरी जी मन-ही-मन सदानन्द के लिए परेशानी-सी महसूस करते। उन्होंने ठीक जैसा होने की कामना की थी, सदानन्द वैसा लड़का नहीं हुआ। उसे जैसे अपने पिता के पास आने की ही इच्छा नहीं होती। पिता की नजरों में पड़ जाने के डर से वह जैसे कहीं छिपा रहता है। उनकी नज़र वचाकर घूमने-फिरने से ही मानो वह जी जाए।

चौधरी जी अक्सर पत्नी से पूछा करते, "मुन्ना कहां गया ?"

प्रीतिकला कहती, "कहां गया सो मैं कैसे कहूं ? अव वह वड़ा हुआ, अव जहां उसका जी चाहेगा, घूमेगा। मुझे वताकर जाएगा क्या ?"

जवाव में चौधरी जी और क्या कहें ? अपनी अभिलाषा पूरी न होने के दुःख को अपने मन में ही पी जाने की चेष्टा करते। लेकिन इस तरह से ज्यादा दिन नहीं चल सका। अन्त में सभी रोगों का एकमात्र निदान जव—उसके व्याह की वात आई, तो चौधरी जी फौरन राज़ी हो गए। सोचा, शायद हो कि व्याह के वाद सव कुछ सहज-स्वाभाविक हो जाए। जैसा कि सवका होता है।

लेकिन व्याह के रोज ही जो सदानन्द ऐसी हरकत कर वैठेगा, इसकी कल्पना कौन कर सका था। व्याह का सम्वन्ध प्रकाश ने ही किया था, लिहाजा सारी ज़िम्मेदारी उसीकी। वही चारों ओर दौड़ा। तमाम लोगों को न्योता दिया जा चुका है, दही, मछली, मिठाई—सव कुछ तैयार है। अधिवास लेकर कुटुम्व के यहां से लोग आ पहुंचे और इधर दुल्हे का पता नहीं। चौधरी जी को अपने सिर का वाल नोच देने की इच्छा होने लगी। इन आए हुए लोगों को कौन-सा जवाव देंगे।

किन्तु नहीं, प्रकाश है वड़ा कर्मठ। दोपहरी वीत चली थी। एकाएक वह मुन्ने को लेकर हाज़िर हो गया।

खवर मिलते ही चौधरी जी दौड़ते हुए नीचे पहुंचे। वोले, "क्या वात है,

कहां मिला यह ?"

प्रकाश बोला, "यह सब बात अभी रहने दीजिए, जीजाजी ! महाभारत है।"

"महाभारत ! महाभारत क्या, खोलकर बताओ। तीन ही बजे बारात लेकर घर से निकलना है। समय भी ज्यादा नहीं रहा। इधर कुटुम्ब-घर से जो लोग आए थे, यह देख गए कि उबटन की रस्म नहीं अदा हुई।"

चौधरी जी बोले, "बताने की क्या बात थी ? उनके क्या आंखें नहीं थीं ? उन लोगों ने अपने आप ही तो सब देखा..."

प्रकाश इससे भी डर जानेवाला शख्स नहीं। सारी जिम्मेदारी जब उसीपर सौंपी गई है, तो यह दाय उसीका है। बोला, "ठीक है। कुछ परवाह नहीं, मैं दुल्हे को लेकर घड़ी की सुई की तरह ठीक समय पर पहुंच जाऊंगा। यह जिम्मा मेरा रहा, आप निश्चिन्त रहें।"

खबर पाकर दीदी भी वहां आ गई थी। बोली, "हां रे प्रकाश, आखिर मुन्ने को तूने कहां पाया ?"

प्रकाश ने कहा, "अभी तुम बातों में मन लगाओ दीदी, तुम उबटन का इन्तजाम करो। हम लोग तीन बजे दुल्हे को लेकर निकल पड़ेंगे। नहीं तो गाड़ी नहीं पकड़ सकूंगा। मुझे जीजाजी से एक जरूरी बात करनी है...तुम यहां से जाओ।"

प्रकाश चौधरी जी को एक किनारे ले गया। बोला, "एक बात है जीजा-जी, सदा को कहां पाया, मालूम है ? किसीसे कहिएगा नहीं, इसे कालीगंज में पाया।"

"कालीगंज में ?"

"जी हां ! यह कालीगंज की बहू के ही यहां चला गया था। पता नहीं, उस बुढ़िया ने इसे कौन-सी पट्टी पढ़ाई कि दस हजार रुपये दिए बिना सदा ब्याह करने के लिए नहीं जाएगा।"

"दस हजार रुपया ? कालीगंज की बहू को देना होगा ?"

"हां ! यह दिए बिना सदा ब्याह करने के लिए नहीं जाएगा। उनके दादाजी ने कालीगंज की बहू को वचन दिया था। वह वचन रखना होगा।"

चौधरी जी का अचम्भा का भाव अब भी गया नहीं था। बोला, "यह तो बहुत दिन पहले की बात है। इसी कालीगंज की बहू ने ही तो हम लोगों पर मुकदमा दायर किया था। उस समय पिताजी ने यह वादा किया था कि दस हजार रुपया देकर गम पूरा करूंगा—लेकिन मुन्ने ने यह सब कैसे जाना ?"

प्रकाश ने कहा, "क्या पता, कैसे जाना ! वहां से तो यह किसी भी कीमत पर आना ही नहीं चाह रहा था—आखिर जब मैंने यह कहा कि ब्याहगज में तुम्हें रुपया दे दिया जाएगा, तब यह आया है। अब रुपये का कोई इन्तजाम कीजिए..."

चौधरी जी ने पूछा, "रुपया इसी वक्त देना होगा ?"

प्रकाश ने कहा, "हां।"

"और, रुपया नहीं दिया तो ?"

"रुपया नहीं देने से वह ब्याह करने नहीं जाएगा।"

"क्या रुपया बाद में देने से नहीं चलेगा ? पहले शादी-ब्याह हो जाए, उसके बाद सोच-विचार कर रुपया दिया जाएगा।"

"इस बात पर सदा तैयार न हो, जैसा अड़ियल है वह लड़का आपका। जब उसने ठान ली है, तो बगैर रुपया लिए नहीं मानेगा।"

चौधरी जी तो खासी चिन्ता में पड़ गए। और इधर ज्यादा सोचने-समझने का समय भी नहीं है। तीन बजे ट्रेन है। उस ट्रेन से राणाघाट जाना होगा। राणाघाट से कृष्णनगर।

अन्त तक जब कोई उपाय नहीं सूझा तो बोले, "एक बार पिताजी से कहकर देखूं तो..."

चौधरी जी ऊपर चले गए।

प्रकाश मामा सदानन्द के पास गया। सदानन्द ने पूछा, "क्या हुआ ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "हो रहा है, रुपये का बन्दोबस्त हो रहा है। जीजाजी रुपये के लिए तेरे दादाजी के पास गए हैं। तू कुछ सोच ही मत, तुझे रुपया मिलने से काम है न। तेरे दादाजी को रुपये की कमी है क्या ? दस हजार रुपया तो उनके हाथ की मैल है..."

सदानन्द ने कहा, "ठीक है। दादाजी रुपया दें तो ठीक ही है, मगर मैं यह कहे देता हूं, रुपया नहीं देने से मैं ब्याह करने नहीं जाऊंगा।"

तब तक ऊपर से बुलाहट आई। दोनों को ऊपर जाना होगा।

आगे-आगे सदानन्द, पीछे-पीछे प्रकाश मामा। दादाजी के कमरे में, उस समय कैलास गुमाश्ता और चौधरी जी थे। दादाजी बिस्तर पर अधलेटे पड़े थे।

सदानन्द को देखते ही दादाजी बोले, "यह सब क्या पागलपन सवार है तुम्हें ? तुम अब बड़े हुए हो न ? इस उम्र में बचपना सोहता है ?"

सदानन्द ने कोई जवाब नहीं दिया। चुप खड़ा रहा।

"बोल नहीं रहे हो ? जाओ, ब्याह करने जाओ। आखिर ट्रेन छुड़ाओगे क्या ?"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन रुपया ?"

नरनारायण चौधरी भी वैसे ही आदमी। बोले, "रुपया क्या 'दो' कहते ही आ जाता है ? तुमने कहा रुपये दो और मैंने तुरन्त निकालकर रुपये दे दिए, ऐसा भी होता है या हुआ है कभी ? रुपया फिर दिया जाएगा। तुम अभी जो करने को जा रहे हो, वही करने के लिए जाओ। आखिर क्या हंसी उड़वाओगे ?"

सदानन्द का वही एक जवाब, "रुपया नहीं देने से मैं ब्याह करने नहीं जाऊंगा..."

नरनारायण चौधरी का जमींदार वाला मिजाज तेज हो उठा, "कहा

तो, रुपया मैं दूंगा। मेरी बात का कोई दाम नहीं है? तुम्हारी ही जि... रहेगी?"

"लेकिन कब दीजिएगा?"

नरनारायण चौधरी ने कहा, "तुम ब्याह करके लौट आओ, दे दूंगा।"

"अगर न दें?"

अब हरनारायण चौधरी बोल उठे, "अब तुम बात को बढ़ाओ मत मुन्ना! दादाजी जब कह रहे हैं कि रुपया दे देंगे, तो अब बोलने की कोई जरूरत नहीं। और इसपर ज्यादा बतंगड़ करने से उबटन की रस्म में देर हो जाएगी, तुम लोगों की गाड़ी भी छूट जाएगी।"

सदानन्द अब जैसे कुछ नर्म पड़ा। बोला, "तो आप सब लोग वचन दे रहे हैं? मैं जा रहा हूं, मगर आप सब लोग इसके गवाह रहें। रुपया नहीं देने से लेकिन बहुत ही बुरा होगा, यह मैं कहे देता हूं—चलिए।"

चौधरी जी ने इतनी देर के बाद मानो राहत की सांस ली। सब निबट-निबटा गया। बूढ़े चौधरी ने बेटे को बुलाकर कहा, "तुम साथ जा रहे हो न, जरा नजर रखना, वहां कोई बेजा हरकत न कर बैठे। तुम रात को वहीं रह जाना…"

चौधरी जी ने कहा, "जी। मैं तो साथ जा ही रहा हूं, रात को वहीं रहूंगा, कन्या-प्रदान तक देख लूंगा, उसके बाद निरंजन रहेगा, प्रकाश रहेगा, उनसे भी कह दूंगा, वे लोग पहरा देते रहें।"

नरनारायण चौधरी ने कहा, "लड़के का मन है। हो सकता है किसीने तरह-तरह से कान फूंककर उसके दिमाग को गर्म कर दिया है। इसके लिए तुम कोई चिन्ता न करो। कम उम्र में, ब्याह के पहले सबका ही दिमाग ऐसा गर्म होता है। ब्याह हो जाने दो, फिर जैसे का तैसा। यह सब मेरा देखा हुआ है।"

उसके बाद फिर कोई गोलमाल नहीं हुआ। जल्दी-जल्दी उबटन की रस्म हो गई, कपड़े-लत्ते, बदलकर सिद्धिदाता गणेश का नाम लेकर सब निकल पड़े। उसके बाद ब्याह भी हो गया, कोहबर भी हुआ। सदानन्द ने कोई नालायकी नहीं की।

उसने रास्ते में सिर्फ एक बार पूछा, "दादाजी आखिर रुपया तो देंगे, प्रकाश मामा?"

प्रकाश मामा ने कहा, "अरे बाबा, तू इतना बेताब क्यों हो रहा है? तुझे रुपया मिलने से ही काम है न?"

नई बहू के साथ सभी गाड़ी पर सवार हुए। प्रकाश मामा साथ ही थे। वही दुल्हा के अभिभावक। निरंजन था। आते वक्त समधी जी की भी आंखें आंसुओं से भर आई थीं। इकलौती बेटी। नयनतारा ही उनके लिए सब कुछ थी। लड़की जितना रो रही थी, उतना ही रो रहे थे उसके मां-बाप। गाड़ी पर चढ़ने के समय कालीकान्त जी से रहा नहीं गया। उन्होंने झपटकर प्रकाश के दोनों हाथ पकड़ लिए। बोले, "मेरी बिटिया का जरा ध्यान

अभी तुम घर छोड़कर जा कैसे सकते हो ? और तुम्हारे सिवा क्या दे आने वाला दूसरा आदमी नहीं है ? मैं क्या और किसीकी मारफत रुपया नहीं भेज सकता हूं ?"

सदानन्द ने कहा, "भेज क्यों नहीं सकते, मगर मैं जानता हूं कि आप नहीं भेजेंगे। भेजना होता, तो वहुत पहले ही भेज दिया होता।"

पोते की बात सुनकर बूढ़े चौधरी को तो काठ मार गया। ऐसे सुर में तो सदानन्द कभी बात नहीं करता। इसे बातों का ऐसा पैनापन कहां से आ गया ? बेबस पांवों को सामने की ओर खींचने की नाकामयाब कोशिश करते हुए वह मन-ही-मन छटपट करने लगे। बोले, "तुम एकाएक ऐसी सख्त-सख्त बातें करने लगे ? किसने तुमको यह सब सिखाया है ?"

सदानन्द ने कहा, "सिखाएगा कौन ? आपने रुपया देने को कहा था, मैं इसीलिए आपकी बात आपको याद दिलाने के लिए आया हूं।"

बूढ़े चौधरी बोले, "तुम्हें याद दिलाने की जरूरत नहीं। तुम अपना काम देखो। अभी घर में सगे-सम्बन्धी, मेहमान आए हुए हैं, उन सबकी देखभाल करो, उनका आदर-सत्कार करो, बस बहुत हो गया। अभी जाओ..."

सदानन्द फिर भी नहीं हिला। बोला, "मगर आपने अपना वादा तो नहीं रक्खा दादाजी ! आपके कहने पर ही मैं व्याह करने के लिए गया, अब आप अपना वादा रखिए। रुपया दीजिए..."

"अरे वाह, यह तो अजीब मुसीबत है। घर में नई बहू आई है। सब लोग कहां तो उस धंधे में हैं और यह क्या तो कह रहा है, रुपया दो। यों ही रुपया दे दिया ?"

उसके बाद क्या करें, यह समझ नहीं पाकर बोले, "अभी मैं व्यस्त हूं, तुमसे इसपर फिर किसी समय बात करूंगा, अभी तुम अन्दर जाओ..."

"नहीं, मैं नहीं जाता। पहले मुझे रुपया चाहिए।"

बूढ़े चौधरी ने कहा, "क्या कहा ?"

सदानन्द ने कहा, "आप रुपया देंगे, तभी मैं यहां से हिलूंगा।"

बूढ़े चौधरी ने कैलास की तरफ देखकर कहा, "कैलास, जरा छोटे बाबू को बुलाना तो..."

कैलास गुमाश्ता उठकर नीचे चला गया। सदानन्द भी मूर्तिवत् कमरे में चुपचाप खड़ा रहा। उसने यह तै कर लिया था कि बिना रुपया लिए वह कमरे से बाहर नहीं जाएगा। सारा घर उस समय उत्सव-अनुष्ठान की तैयारी में मुखर था। चौधरी परिवार में नई बहू आई है। औरतों ने उलूध्वनि की, शंख फूंके। घर के सब लोगों ने नये-नये कपड़े पहने। कैलास गुमाश्ता से लेकर रजबअली तक—कोई नहीं छूटा। ऐसी घटना कुछ रोज-रोज तो घटती नहीं। कौन कह सकता है फिर कितने दिनों के बाद इस घर में आनन्द का यह दिन आएगा। बहू के आते ही टोले की बहू-बेटियों की भीड़ लग गई। केदार, गोपाल पाट, सबने अपनी-अपनी स्त्री को पहले ही भेज दिया है। बहूभात के दिन तो सभी बहू को देखेंगे ही। लेकिन उसके तो अभी काफी

देर है। चौबीस घंटे गुजरे बिना तो बहूभात[1] होगा नहीं। और सिर्फ बहूभात ही नहीं, फूलशय्या[2] भी होगी। घर के अहाते में जो आंगन है, उसमें पूरे में शामियाना लगाया गया है। पोखरे का घाट जिस तरफ को है, चूल्हा-चक्की का इन्तजाम उधर ही किया गया है। वहां बहुत बड़े बड़े दस चूल्हे बनवाए गए हैं। दो दिन पहले से ही वहां मिठाई बनने लगी है। रसगुल्ले तैयार हो जाएं तो उन्हें बड़े बर्तन में उठाकर रखना होगा। वैसे बर्तन भी आ गए हैं। पोखरे के किनारे यह सब कतार से सजाकर रखे गए हैं। लेकिन जो असली बड़ा शामियाना है, वह घर के सामने टांगा गया है। वहां विशिष्ट अतिथि लोग बैठेंगे।

आने के बाद से ही प्रकाश मामा को सांस लेने की फुरसत नहीं है। परसों से नहाने-धोने का समय नहीं। लगातार दो-दो रात जागना पड़ा। उसके बाद वर-वधू को लेकर कृष्णनगर से लौटा, तो देखा, यहां तो कोई भी इन्तजाम हुआ-हुआया नहीं है। जो कि रात बीती नहीं कि लोग-बाग आना शुरू कर देंगे। ऊपर से सदानन्द की चिन्ता अलग। वह कब क्या कर बैठे, कहा नहीं जा सकता। रास्ते में आते-आते सदानन्द ने बहुत बार पूछा, "रुपया तो सचमुच ही मिलेगा न प्रकाश मामा?"

प्रकाश मामा ने कहा, "तू नाहक इतना सोचता क्यों है? तेरे दादाजी ने तो खुद ही तुझसे रुपया देने की कही है, फिर इतनी चिन्ता काहे की?"

सदानन्द ने कहा, "यदि उन्होंने अपनी बात नहीं रखी तो मैं देख लूंगा, बताए देता हूं..."

प्रकाश मामा ने पूछा, "रुपया नहीं देने से तू क्या करेगा?"

सदानन्द ने कहा, "जो करूंगा, वह मैं ही जानता हूं।"

"करेगा क्या, सो तो बता। अब तेरा ब्याह तो हो ही चुका। अब अपनी बहू को तो तू छोड़ नहीं सकता।"

"वह मैं जो करूंगा, तुम देख ही पाओगे।"

भांजे की बात सुनकर प्रकाश मामा हंसा। बोला, "अरे, पहले सभी ऐसा ही कहते हैं। उसके बाद स्त्री का मुखड़ा देखकर सभी भूल जाते हैं। और फिर, तेरी बहू कुछ ऐसी-वैसी तो नहीं है। इस बहू को तू छोड़ सकेगा? इतनी खूबसूरत बहू को?"

जवाब में सदानन्द ने कुछ नहीं कहा। लेकिन प्रकाश मामा ने समझा, स्त्री का सुन्दर मुखड़ा देखकर सदानन्द गल गया है। एक ही रात में सदानन्द का चेहरा बदल गया है। सुहागरात निकल जाए, सदानन्द कतई दूसरा आदमी हो जाएगा। फिर तो घर छोड़कर कहीं जाना ही नहीं चाहेगा। प्रकाश मामा बड़ा पक्का आदमी है। उसने बहुतेरी स्त्रियों, बहुतेरे मर्दों को नचाया है। सो प्रकाश मामा को इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं था कि सदानन्द यह ना

1. नई बहू के आने पर जो दावत दी जाती है।
2. सुहागरात के रोज जब सेज फूलों से सजाई जाती है।

रुपये की रट लगाए हुए है, यह एक रात बीतते ही भुला जाएगा।

गाड़ी के डिब्बे में प्रकाश मामा भांजे के कान के पास मुंह ले गया। बोला, "क्यों रे सदा, क्या सोच रहा है?"

सदानन्द ने कहा, "सोच रहा हूं, दादाजी रुपया ठीक देंगे तो?"

प्रकाश मामा ने कहा, "देख रहा हूं, तू सचमुच ही पागल है। कालीगंज की बहू तेरी कौन होती है कि उसके रुपये के लिए तू इस कदर परेशान है? और, वह बुढ़िया जिएगी ही कै दिन? उसे रुपया मिला तो क्या, और न मिला तो क्या! अभी तेरा व्याह हुआ है, तू व्याह के बारे में ही सोच, तू अभी यह सोच कि सुहागरात में स्त्री से पहले क्या कहेगा···"

सदानन्द ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया।

प्रकाश मामा ने कहा, "देख तू तो एक निरा अनाड़ी का अण्डा है। लाख कोशिश करके भी मैं तुझे आदमी नहीं बना सका। यह बात मैंने तुझे राधा के यहां ले जाकर ही समझी। औरत को देखकर तू इतना घबरा क्यों जाता है? कल सुहागरात में मत घबरा जाना, हां?"

सदानन्द ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया।

प्रकाश मामा ने कहा, "क्यों बे, कुछ बोलता क्यों नहीं है? सुहागरात में स्त्री से पहले क्या बोलेगा, यह सोच रखा है न···"

सदानन्द के मुंह से तो भी कोई जवाब नहीं।

प्रकाश मामा ने फिर भी नहीं छोड़ा। बोला, "क्यों रे सदा, खाक कुछ आया समझ में? मैं क्या कह रहा हूं, समझा?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं।"

"अरे, यह सीधी-सी बात भी नहीं समझ सका। एक अजानी लड़की से जीवन में पहली बार बोलने से पहले कुछ सोच-विचार लेना चाहिए—समझा? तू ने कुछ सोचा है?"

सदानन्द ने कहा, "सोचना क्या है?"

प्रकाश मामा ने कहा, "हुआ सब गुड़ गोबर। देखता हूं, तू अभी भी अनाड़ी ही है। सुन, मैं तुझे बताए देता हूं। पहले तो कमरे में दाखिल होगा, उसके बाद दरवाजे को अन्दर से बन्द कर लेगा। तेरी स्त्री यदि उस समय खाट का बाजू पकड़े चुपचाप खड़ी हो, तो तू धीरे-धीरे उसके पास जाकर···"

सदानन्द अचानक बोल उठा, "लेकिन एक बात है प्रकाश मामा, मैंने तुम्हारे कहने पर ही व्याह किया है, यह बात जिसमें याद रहे···"

दूसरा प्रसंग आ जाने से प्रकाश मामा खीज उठा, "मतलब?"

सदानन्द ने कहा, "मतलब तुम भली-भांति ही जानते हो। दुबारा मत सुनना चाहो। मुझे वे दस हजार रुपये लेकिन चाहिए।"

प्रकाश मामा ने कहा, "दस हजार रुपये मैं कहां से लाऊंगा? वे रुपये तेरे दादाजी देंगे।"

"हां। मैं घर लौटते ही रुपया मांगूंगा। मांगने पर दादाजी अगर रुपये

न दें, तो तुम्हें दिलवा देना होगा। यह जिम्मेदारी तुम्हारी है। अन्त में यहीं यह मत कह देना कि यह जिम्मेदारी तुम्हारी नहीं है।"

"यह तो वही हुआ, जिसे कहते हैं न, माल में भूल, ताल में ठीक।"

सदानन्द ने कहा, "सो तुम जो कहो, मैं लेकिन वैसे में तुम्हें छोड़ूंगा नहीं। फिर यह मत कहना कि मैं कुछ नहीं जानता।"

प्रकाश मामा ने कहा, "देख तो भला, यह समय क्या यह सब सोचने का है? यहां तू बहू के घूंघट में झांककर देखने की कोशिश करेगा, कहां सुहागरात में क्या बात करेगा सो सोचेगा, वह नहीं, बिलकुल…"

ट्रेन के डिब्बे में नये वर-वधू। दूसरे मुसाफिर घूंघट की फांक से नई दुल्हिन का मुखड़ा देखने की ताक में थे। ट्रेन बड़ी तेज रफ्तार से भाग रही थी। एक समय ट्रेन रेल-बाजार में आ खड़ी हुई। रजबअली गाड़ी लिए खड़ा था। पालकी भी थी। उसके बाद से कोई झमेला नहीं हुआ। नवाबगंज पहुंचकर दुल्हा-दुल्हिन को दीदी के जिम्मे देकर प्रकाश मामा चूल्हे और शामियाने की ओर जुट पड़ा। जिधर ही प्रकाश मामा की निगरानी नहीं, उधर ही डांवाडोल।

इतने में कैलाश गुमाश्ता ने आकर कहा, "साला बाबू, आपको जरा छोटे बाबू याद कर रहे हैं।"

"छोटे बाबू? क्यों? कहां हैं?"

"ऊपर।"

"खैर, आ रहा हूं, तुम जाओ।"

प्रकाश फिर रुका नहीं। काम-काज छोड़कर दुतल्ले की सीढ़ी की ओर चल पड़ा।

ऊपर एक-दूसरे ही नाटक का अभिनय चल रहा था। चौधरी जी वहां जा पहुंचे थे। सदानन्द भी था। प्रकाश जब वहां पहुंचा, तो बूढ़े, मालिक मारे रंज हो उठे थे। कह रहे थे, "तो तुम्हारी ही बात रहेगी। मैं कोई नहीं हूं? मेरे कहने की कोई कीमत नहीं? मैं तो कह रहा हूं कि यह सुहागरात आदि हो जाने दो, फिर मैं रुपये का बन्दोबस्त करूंगा। जुबान खोलते ही क्या रुपया आ जाता है? इतना-इतना रुपया कोई घर में रखता है भला? बैंक से निकालने में भी तो समय लगेगा?"

सदानन्द ने कहा, "तो आपने उस समय क्यों कहा कि ब्याह करके लौटते ही रुपया दीजिएगा? आप चाहते तो आज किसीको भेजकर बैंक से रुपया मंगवाकर रख सकते थे।"

बूढ़े चौधरी ने कहा, "इसकी कैफियत क्या मुझे तुम्हें देनी होगी?"

सदानन्द ने कहा, "आप तो जानते थे कि मैं ब्याह करके लौटते ही रुपया मांगूंगा।"

बूढ़े चौधरी बोले, "देखता हूं, तुमने यह तमीज भी नहीं सीखी कि बड़ों से बात कैसे करनी चाहिए…"

सदानन्द ने कहा, "आप गुरुजन हैं, तो क्या आपके सात खून माफ हैं,

मैं उसका प्रतिवाद भी नहीं कर सकता !"

छोटे चौधरी ने अब अपने बेटे की ओर देखा। बोले, "तुम चुप रहो। तुम यह भी नहीं जानते कि किससे कैसे बोलना चाहिए। जाओ, नीचे जाओ। पहले यह सब चुक-चुका जाए, उसके बाद रुपया देने से चलेगा। अभी जाओ। हम लोगों के बहुत काम अभी पड़े हैं। कल सगे-सम्बन्धी-कुटुम्ब-जन आएंगे, उनकी सारी व्यवस्था करनी है और ऐसे में तुम क्या तो दादाजी को तंग करने आए, दो दिन सब्र करते नहीं बना ! अभी जाओ, यह सब इसके बाद···"

सदानन्द ने कहा, "आप यह क्या कह रहे हैं पिताजी ! दादाजी ने जब वचन दिया था, तब आप भी तो थे। यदि यह जानता कि यह ऐसा करेंगे तो मैं व्याह करने के लिए ही नहीं जाता।"

"रुको।"

बूढ़े चौधरी बिस्तर पर पड़े-पड़े ही चीख उठे, "रुको, रुको। बेअदबी की भी कोई हद होती है।"

"बेअदबी मैं कर रहा हूं कि आप ! आपने एक बेचारी विधवा का इस तरह से सर्वनाश क्यों किया ? उसका सर्वस्व क्यों हड़प बैठे ! उसे वचन देकर आपने रखा क्यों नहीं !"

घर के लोग-बाग सब सहसा चौकन्ने हो उठे। बड़े मालिक के कमरे में कुछ झमेला चल रहा है, आवाज़ सुनाई पड़ते ही सबने उधर कान लगाया। गौरी बुआ सीढ़ी के पास से जा रही थी, ठिठक गई चौंककर। यह कहा-सुनी क्या है ! अन्दर महल में उस समय नई बहू के पास अभ्यागतों की खासी भीड़ थी। उसने वहां जाकर आवाज़ दी, "भाभी, भाभी···"

सदानन्द की मां व्यस्त थी। बोली, "क्या है ? क्या कर रही है ?"

गौरी ने कहा, "बूढ़े मालिक के कमरे में इतना हो-हल्ला काहे का हो रहा है ?"

"हो-हल्ला काहे का हो रहा है, वह मैं क्या जानूं ?"

गौरी ने कहा, "मुझे तो मुन्ने की आवाज़ लगी। मुन्ने से बड़े मालिक की कहा-सुनी हो रही है···"

"कहा-सुनी !"

अभी घंटा-भर पहले तो वह व्याह करके नई बहू को ले आया है, वह दादाजी से कहा-सुनी क्यों करेगा भला ! यों तो सदानन्द किसीसे ज़ोर से बात नहीं करता। वह तो सदा चुपचाप ही रहता है। साधारणतया तो लोग उसकी शक्ल ही नहीं देख पाते। वह कब कहां रहता है, क्या करता है, कोई भी नहीं जान पाता। खाना पड़ता है, इसीलिए खाता है। फिर भी झटपट खाकर कहां जो चला जाता है, कोई नहीं जानता। वह घर में बखेड़ा क्यों करेगा !

लेकिन घर की मालकिन को उस समय यह सब सोचने का वक्त नहीं था। प्रीति घर की गृहिणी है। घर में आए सभी लोगों की जिम्मेदारी उसी

है। कौन खा रहा है, किसे खाना नहीं मिल रहा है, यह सोचना भी
का भार है। इतने दिनों के बाद भागलपुर से उनके पिता आए हैं।
आदमी। उनके एकमात्र नाती का ब्याह है। यही पहला ब्याह और
शायद अन्तिम। कीर्तिपद बाबू सुलतानपुर में अकेले पड़े रहते हैं।
पत्ति की देख-भाल में ही उनका समय कट जाता है। लेकिन उनके चले
ने के बाद वह सम्पत्ति उनके लड़की-दामाद-नाती ही पाएँगे। उस समय
के नाती को जैसे नवाबगंज की जायदाद की देखभाल करनी होगी, वैसे
देखभाल करनी होगी सुलतानपुर की जायदाद की भी। उन्होंने जो कुछ
किया है, सब इन्हीं लोगों के लिए किया है—लड़की-दामाद और नाती
लिए। इसीलिए नाती के ब्याह में नवाबगंज आए बिना नहीं रह सके।

आते ही लड़की से भेंट की। बहुत दिनों के बाद भेंट हुई। कीर्तिपद
बाबू ने पूछा, "कैसी है रे प्रीति ! सब ठीक तो है?"

पिता का चरण स्पर्श कर प्रीति ने प्रणाम किया। बोली, "आप कितने
े हो गए हैं बाबूजी !"

कीर्तिपद बाबू ने कहा, "अरे, दुबला तो होना ही है, बूढ़ा नहीं हो रहा
? अब तो तुम लोगों को रखकर चल दूं, बस···"

प्रीति ने पूछा, "आने में आपको कोई तकलीफ तो नहीं हुई !"

कीर्तिपद बाबू ने कहा, "मेरी तकलीफ की बात रहने दे। कुटुम्ब कैसे
ए सो बता। देखने-सुनने में लड़की तो अच्छी है न?"

प्रीति ने कहा, "सुना तो है कि देखने में लड़की अच्छी है। मैंने तो
रुपया-पैसा नहीं मांगा। फूटी पाई भी नहीं ली है। सिर्फ इतना ही चाहा
था कि लड़की सुन्दर और स्वभाव-चरित्र की अच्छी हो। अब कल बहू
आएगी, तो समझूंगी।"

"मुन्ना कहां है? उसे नहीं देख रहा हूं?"

प्रीति ने कहा, "उसकी तो मत पूछिए।"

कीर्तिपद बाबू ने पूछा, "सो क्या? उसे क्या हुआ?"

प्रीति ने कहा, "उसे तो मैं नजरों से देख ही नहीं पाती। कब रहता है,
कब नहीं रहता, कहां जाता है, क्या करता है, कोई नहीं जानता।"

"कालेज में पढ़ तो रहा था। बी० ए०—बी० ए० पास किया !"

"पास करने से क्या हुआ ! बुद्धि ठीक नहीं हुई। घर का काम-काज
अभी से समझ लेना चाहिए, मगर उधर भी ध्यान नहीं है। रुपये-पैसे का
भी कोई चाव नहीं।"

बेटी की बात सुनकर कीर्तिपद बाबू निश्चिन्त हुए। बोले, "यह कोई
बात नहीं। उसके लिए तू कोई चिन्ता मत कर। उसकी उमर में सब वैसे
ही रहते हैं। अब शादी हो रही है न, देख लेना, कंधे पर जुआ पड़ने से ही
सब ठीक हो जाएगा। बचपन में मैं भी तेरे मुन्ना जैसा ही था।"

कहकर वह हंसने लगे। लेकिन बेटी को उस समय बाप से भी बात
करने की फुरसत नहीं थी। भंडार की कुंजी जिसके आंचरे में बंधी होती

मैं उसका प्रतिवाद भी नहीं कर सकता !"

छोटे चौधरी ने अब अपने बेटे की ओर देखा । बोले, "तुम चुप रहो । तुम यह भी नहीं जानते कि किससे कैसे बोलना चाहिए । जाओ, नीचे जाओ । पहले यह सब चुक-चुका जाए, उसके बाद रुपया देने से चलेगा । अभी जाओ । हम लोगों के बहुत काम अभी पड़े हैं । कल सगे-सम्बन्धी-कुटुम्ब-जन आएंगे, उनकी सारी व्यवस्था करनी है और ऐसे में तुम क्या तो दादाजी को तंग करने आए, दो दिन सब्र करते नहीं बना ! अभी जाओ, यह सब इसके बाद..."

सदानन्द ने कहा, "आप यह क्या कह रहे हैं पिताजी ! दादाजी ने जब वचन दिया था, तब आप भी तो थे । यदि यह जानता कि यह ऐसा करेंगे तो मैं ब्याह करने के लिए ही नहीं जाता ।"

"रुको ।"

बूढ़े चौधरी बिस्तर पर पड़े-पड़े ही चीख उठे, "रुको, रुको । बेअदबी की भी कोई हद होती है ।"

"बेअदबी मैं कर रहा हूं कि आप ! आपने एक बेचारी विधवा का इस तरह से सर्वनाश क्यों किया ? उसका सर्वस्व क्यों हड़प बैठे ! उसे वचन देकर आपने रक्खा क्यों नहीं !"

घर के लोग-बाग सब सहसा चौकन्ने हो उठे । बड़े मालिक के कमरे में कुछ झमेला चल रहा है, आवाज़ सुनाई पडते ही सबने उधर कान लगाया । गौरी बुआ सीढ़ी के पास से जा रही थी, ठिठक गई चौंककर । यह कहा-सुनी क्या है ! अन्दर महल में उस समय नई बहू के पास अभ्यागतों की खासी भीड़ थी । उसने वहां जाकर आवाज़ दी, "भाभी, भाभी..."

सदानन्द की मां व्यस्त थी । बोली, "क्या है ? क्या कर रही है ?"

गौरी ने कहा, "बूढ़े मालिक के कमरे में इतना हो-हल्ला काहे का हो रहा है ?"

"हो-हल्ला काहे का हो रहा है, वह मैं क्या जानूं ?"

गौरी ने कहा, "मुझे तो मुन्ने की आवाज़ लगी । मुन्ने से बडे मालिक की कहा-सुनी हो रही है..."

"कहा-सुनी !"

अभी घंटा-भर पहले तो वह ब्याह करके नई बहू को ले आया है, वह दादाजी से कहा-सुनी क्यों करेगा भला ! यों तो सदानन्द किसीसे जोर से बात नहीं करता । वह तो सदा चुपचाप ही रहता है । साधारणतया तो लो उसकी शक्ल ही नहीं देख पाते । वह कब कहां रहता है, क्या करता है कोई भी नहीं जान पाता । खाना पड़ता है, इसीलिए खाता है । फिर झटपट खाकर कहां जो चला जाता है, कोई नहीं जानता । वह घर में बखे क्यों करेगा !

लेकिन घर की मालकिन को उस समय यह सब सोचने का वक्त था । प्रीति घर की गृहिणी है । घर में आए सभी लोगों की ज़िम्मेदारी उ

पर है। कौन सा रहा है, किसे खाना नहीं मिल रहा है, यह सोचना भी उन्हीं का भार है। इतने दिनों के बाद भागलपुर से उनके पिता आए हैं। बूढ़े आदमी। उनके एकमात्र नाती का ब्याह है। यही पहला ब्याह और यही शायद अन्तिम। कीर्तिपद बाबू सुलतानपुर में अकेले पड़े रहते हैं। सम्पत्ति की देख-भाल में ही उनका समय कट जाता है। लेकिन उनके चले जाने के बाद वह सम्पत्ति उनके लड़की-दामाद-नाती ही पाएंगे। उस समय उनके नाती को जैसे नवाबगंज की जायदाद की देखभाल करनी होगी, वैसी ही देखभाल करनी होगी सुलतानपुर की जायदाद की भी। उन्होंने जो कुछ भी किया है, सब इन्हीं लोगों के लिए किया है—लड़की-दामाद और नाती के लिए। इसीलिए नाती के ब्याह में नवाबगंज आए बिना नहीं रह सके।

आते ही लड़की से भेंट की। बहुत दिनों के बाद भेंट हुई। कीर्तिपद बाबू ने पूछा, "कैसी है रे प्रीति ! सब ठीक तो है ?"

पिता का चरण स्पर्श कर प्रीति ने प्रणाम किया। बोली, "आप कितने दुबले हो गए हैं बाबूजी !"

कीर्तिपद बाबू ने कहा, "अरे, दुबला तो होना ही है, बूढ़ा नहीं हो रहा हूं ? अब तो तुम लोगों को रखकर चल दूं, बस···"

प्रीति ने पूछा, "आने में आपको कोई तकलीफ तो नहीं हुई !"

कीर्तिपद बाबू ने कहा, "मेरी तकलीफ की बात रहने दे। कुटुम्ब कैसे हुए सो बता। देखने-सुनने में लड़की तो अच्छी है न ?"

प्रीति ने कहा, "सुना तो है कि देखने में लड़की अच्छी है। मैंने तो रुपया-पैसा नहीं मांगा। फूटी पाई भी नहीं ली है। सिर्फ इतना ही चाहा था कि लड़की सुन्दर और स्वभाव-चरित्र की अच्छी हो। अब कल बहू आएगी, तो समझूंगी।"

"मुन्ना कहां है ? उसे नहीं देख रहा हूं ?"

प्रीति ने कहा, "उसकी तो मत पूछिए।"

कीर्तिपद बाबू ने पूछा, "सो क्या ? उसे क्या हुआ ?"

प्रीति ने कहा, "उसे तो मैं नजरों से देख ही नहीं पाती। कब रहता है, कब नहीं रहता, कहां जाता है, क्या करता है, कोई नहीं जानता।"

"कालेज में पढ़ तो रहा था। बी० ए०—बी० ए० पास किया !"

"पास करने से क्या हुआ ! बुद्धि ठीक नहीं हुई। घर का काम-काज अभी से समझ लेना चाहिए, मगर उधर भी ध्यान नहीं है। रुपये-पैसे का भी कोई चाव नहीं।"

बेटी की बात सुनकर कीर्तिपद बाबू निश्चिन्त हुए। बोले, "यह कोई बात नहीं। उसके लिए तू कोई चिन्ता मत कर। उसकी उमर से सब वैसे ही रहते हैं। अब शादी हो रही है न, देख लेना, कंधे पर जुआ पड़ने से ही सब ठीक हो जाएगा। बचपन में मैं भी तेरे मुन्ना जैसा ही था।"

कहकर वह हंसने लगे। लेकिन बेटी को उस समय बाप से भी बात करने की फुरसत नहीं थी। भंडार की कुंजी जिसके अंचरे में बंधी होती

है, उसे हर ओर नजर रखनी पड़ती है। जाने से पहले पिताजी के रहने का इन्तजाम करके उसे दूसरे काम में ध्यान देना पड़ा। मुन्ना जिस दिन व्याह करने गया, उस दिन भी झमेला हुआ। कीर्तिपद बाबू ने प्रकाश को बुलाया। पूछा, "यह हंगामा किस बात का था प्रकाश ? मुन्ना कहां था ?"

प्रकाश भी उस समय कामों में व्यस्त था। किसी तरह से भुला-फुसलाकर मुन्ने को कालीगंज से ले आया। उसके बाद उबटन की रस्म में देर हो गई, जाने की तैयारी हो रही थी। बोला, "वह सब आपको फिर बताऊंगा फूफाजी ! वह बहुत-बहुत बात है। अभी सब सुनाने का समय नहीं है।"

"बहुत-बहुत बात। मतलब ?"

प्रकाश ने कहा, "सदानन्द ने अभी जिद पकड़ी है, रुपया चाहिए। दस हजार रुपया दीजिए, तब वह व्याह करने के लिए जाएगा !"

"दस हजार ? दस हजार रुपया किसे देगा ? वह खुद लेगा ?"

"नहीं।"

"तो किसको देगा ?"

"कालीगंज की बहू को।"

कीर्तिपद बाबू कुछ भी नहीं समझ सके। यह कालीगंज की बहू कौन है ? मुन्ने की शादी से कालीगंज की बहू का क्या वास्ता ?

प्रकाश ने कहा, "आपको बाद में सब समझाकर कहूंगा, अभी मुझे समय नहीं है। देरी हो चुकी है, और देरी होने से गाड़ी छूट जाएगी।"

प्रकाश चला गया। उसके बाद शंख की ध्वनि सुनाई पड़ी। स्त्रियों की 'उलूध्वनि' भी सुनाई पड़ी। दुल्हा रवाना हो गया। कीर्तिपद बाबू ने सब देखा, सब सुना।

यह सब पिछले दिन की घटना है। आज नई बहू आई। जाकर नरनारायण चौधरी को प्रणाम कर आई। कीर्तिपद बाबू को भी प्रणाम किया। घर में लोगों की काफी भीड़। बाहर शामियाना लगाया जा रहा था। प्रीति के व्याह के समय भागलपुर में भी ऐसा ही हुआ था। इसी तरह से शायद एक से दूसरे पुश्त में वंश की धारा बढ़ती जाती है।

समधी जी के कमरे में अचानक शोरगुल सुनकर वह चौंक उठे। बाहर निकल आए। कहीं किसी पर नजर नहीं पड़ी। समझ नहीं सके कि किससे पूछें। सांझ हो चली थी। सभी नई बहू को देखने में ही मशगूल थे। पर ऊपर तब भी हो-हल्ला हो रहा था।

बूढ़े चौधरी ने कहा, "मैं वचन देता हूं, सुहागरात बीत जाने दो, कालीगंज की बहू का रुपया दे दिया जाएगा। मैं खुद तुमको वचन दे रहा हूं···"

प्रकाश मामा ने कहा, "अब तो हो गया न ? अब तुझे कुछ कहने की गुंजाइश नहीं रही—तू अब झमेला मत कर···"

बहुत बोलने से नरनारायण चौधरी थक गए थे। बोले, "तुम सब लोग

अब यहां से जाओ। मेरी तबीयत खराब लग रही है।"

प्रकाश ने सदा की ओर देखकर कहा, "चल-चल यहां से, दादाजी को अब तंग मत कर। अब तेरी जिद रह गई न।"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन दादाजी ने तो पहले भी कहा था कि रुपया दूंगा। उसका पालन उन्होंने किया क्या?"

"अबकी ठीक देंगे। एक बार और देख ले। अबकी नहीं देने से तेरे जी में जो आए, वही करना।"

सदानन्द की आंखों से उस समय रुलाई छूट रही थी। कमरे से बाहर जाते-जाते कहने लगा, "जानते हो प्रकाश मामा, वह रुपया नहीं देने से मैं कालीगंज की बहू को यह मुंह नहीं दिखा सकूंगा।"

प्रकाश मामा ने कहा, "मगर कालीगंज की बहू को मुंह दिखाने के लिए तुझे कौन कहता है? और वह बुढ़िया भी अब कै दिन जिएगी? उसके भी तो अब ज्यादा दिन नहीं हैं।"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन मैं? मैं अपने-आपको क्या समझाऊंगा? अपना भी तो मेरा एक दाय-दायित्व है।"

"तेरा अपना कैसा दाय-दायित्व है? कहता क्या है तू? अब तूने ब्याह किया, अब जब तक जिन्दा रहे, मौज-मजा कर ले। जब तक रुपये हैं, जी भरकर मौज उड़ा ले। तेरी तरह अगर मेरे पास रुपया होता, तो देखता मैं मौज की घुड़दौड़ कर देता···"

"ना प्रकाश मामा, तुम्हें मालूम नहीं है, मेरे दादाजी के पास जितना रुपया है, सब पाप का रुपया है।"

"पाप का रुपया। क्या फिजूल की बकता है तू!"

सदानन्द ने कहा, "हां। मुझसे कोई बात अब छिपी नहीं है। कपिल पायरापोड़ा जो गले में फंदा लगाकर झूल गया, वह पाप दादाजी का है। कालीगंज की बहू को तबाह किया है दादा जी ने। माणिक घोष, फटिक नाई का भी खून दादाजी ने किया है। इन पापों का प्रायश्चित किए बिना मुझे भी सुख भोगने का कोई अधिकार नहीं।"

सीढ़ी से उतरते-उतरते प्रकाश मामा ने कहा, "मैं देख रहा हूं, पढ़-लिखकर तेरे दिमाग का बिलकुल बारह बज गया है। हम सब तेरी चिन्ता के मारे मरे जा रहे हैं, कल लोगों का आदर-सत्कार किस प्रकार से किया जाएगा, इस चिन्ता से हम परेशान हैं और तू क्या तो अलाप-शलाप सोचकर दिमाग खराब कर रहा है।"

सदानन्द ने कहा, "नहीं प्रकाश मामा, इसे तुम सब कोई नहीं समझोगे—मैं जो कह रहा हूं, सबके भले के लिए ही कह रहा हूं, इससे तुम सबका भला होगा। कालीगंज की बहू का रुपया नहीं देने से बल्कि हमारा ही नुकसान होगा।"

"क्या नुकसान होगा, जरा सुनूं? कौन-सा नुकसान होगा?"

सदानन्द ने कहा, "उसका रुपया नहीं देने से हमारा सब कुछ बरबाद हो

जाएगा। हम सबके सब मारे जाएंगे। तुम, हम, पिताजी, दादाजी, मां—किसीको भी बचाया नहीं जा सकेगा।"

प्रकाश मामा से और रहा नहीं गया। बोला, "तू रुक भी तो। खामखा की बातें। सचमुच ही पढ़-लिखकर तेरा दिमाग खराब हो गया है। अगर ऐसा ही होता तो यह दुनिया इतने दिनों तक टिकी नहीं रहती। भला ज़मींदारी चलाने में लाठीबाज़ी, खून-खराबी किए बिना भी चल सकता है? चल-चल, दिमाग में यह सब भूसा मत भर। यह सब जितना ही सोचेगा, उतना ही दिमाग खराब होगा। उससे अच्छा है कि सब लोग सदा से जो करते आए हैं, वही करता चला जा। देखना, उसमें बड़ा आराम है। एक बात गांठ बांध ले, मौज़ करने से बढ़कर दुनिया में और कोई दूसरी चीज़ नहीं !"

उस समय प्रकाश मामा को खड़े होने का भी समय नहीं था। जैसे ही सदानन्द गया कि चौधरी जी आए।

चौधरी जी बोले, "क्यों प्रकाश, सदा को समझाया ?"

प्रकाश ने कहा, "हां।"

"सदा ने क्या कहा ? समझ गया ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "समझेगा नहीं भला ? मैंने सब समझाकर कहा। समझाया कि ज़मींदारी रखना हो तो लाठीबाज़ी, जाल-फरेब करना ही पड़ता है। और ज़मींदारी की बात छोड़ ही दो, सरकार चलती है ? सरकार क्या मार-पीट नहीं करती ? सरकार भी तो गोलियां चलाती है। यह सब कौन नहीं करता ? अपना हक-ताकत बरकरार रखने के लिए यह सब जाल-फरेब करना ही पड़ेगा। अकबर बादशाह से लेकर ब्रिटिश सरकार तक सभी लाठी-बन्दूक का सहारा लेते आ रहे हैं। तेरे परदादा ने जो किया है, तेरे दादाजी ने भी वही किया है। ऐसा नहीं करने से इतनी जायदाद, इतनी ज़मीन का मालिक बना जा सकता है ?"

"तो, सुनकर मुन्ना क्या बोला ?"

प्रकाश ने कहा, "बोलेगा क्या ? बोलने का मुंह ही नहीं रहा। गूंगे की तरह सिर्फ सुनता रहा।"

"फिर ?"

प्रकाश ने कहा, "जब समझा, तो उसका दिमाग ठंडा हो गया। बात हकीकत में यह है जीजाजी, इतना पढ़-लिखकर ही सब गड़बड़ हो गया है। उससे तो हम लोग ही अच्छे हैं। पेट भरकर खाया और खर्राटे लेकर सोए। मैं देखता हूं, पेट में थोड़ी-सी विद्या घुस जाने से ही सब बंटाढार हो जाता है..."

प्रकाश अब वहां खड़ा नहीं रहा। शामियाना अभी तक टंग नहीं पाया था। उधर पोखरे के पास चूल्हे जल चुके थे। उधर भी निगरानी करनी थी। ज़रा भी गफलत हुई कि वे कम्बख्त टपाटप रसगुल्ले-कालाजामुन मुंह में डाल लेंगे।

धीरे-धीरे शाम होती आ रही थी। अगहन के दिन। बेला छोटी होने लगी थी। शाम होते ही आंगन में बत्तियां जल उठेंगी। मकान के बाहर-भीतर रोशनी ही रोशनी हो उठेगी।

सारी आफत प्रकाश मामा पर ही। ब्याह करेगा मदा और सारा झमेला झेलना पड़ेगा प्रकाश को। क्यों बाबा? मैं कौन होता हूं? मैं ठहरा गरीब। मेरे ब्याह में न इतनी ठाट हुई, न बाट। फिर भी दीदी ने रुपये दिए। दोनों हाथों वही रुपये खर्च करके जो मजा आया। जेब में हाथ डाला कि बस। नये-नये नोट निकल आए। उन्हीं रुपयों के लोभ से ही लोग साला बाबू की खातिर कर रहे हैं। साला बाबू कहने में ही विभोर। कई दिनों से सभी एक बार आकर प्रणाम कर जाते हैं। पांव छूकर कहते हैं, "दंडौत साला बाबू…"

प्रकाश मामा की नजर अचानक सदर की ओर जो गई, चौंक उठा—कौन?

बाहर के अहाते में एक पालकी आई। पालकी की शक्ल देखते ही प्रकाश मामा की आंखें खुली की खुली रह गईं। कालीगंज की बहू?

फिर कोई बातचीत नहीं। प्रकाश मामा वहां खड़ा नहीं रहा। सीधे अन्दर गया। आवाज़ दी, "दीनू, कहां है दीनू? दीनू…"

कामकाज की व्यस्तता। सब जी-जान से जुटे हुए थे। बड़ी चीख-पुकार के बाद दीनू अपना काम छोड़कर आया। प्रकाश मामा ने कहा, "दीनू, जल्दी से जाकर बूढ़े मालिक को कहो, कालीगंज की बहू आई है—कालीगंज की बहू!"

नाम सुनकर दीनू को भी कुछ अच्छा नहीं लगा। फिर आई दईमारी?

"जाओ-जाओ। जल्दी से खबर कर दो। इसे झटपट विदा कर देना ही ठीक है।"

दीनू ने ऊपर जाकर जैसे ही कहा, बूढ़े चौधरी उठ बैठे। बोले, "कौन? कौन आई है?"

उन्हें जैसे दीनू की बात पर यकीन करने का जी नहीं हुआ।

दीनू ने फिर कहा, "कालीगंज की बहू।"

नाम सुनकर नरनारायण चौधरी के मुंह से देर तक कोई बात नहीं फूटी। वह स्तंभित रह गए। आज उनके पोते का ब्याह है और आज ही कालीगंज की बहू को नवाबगंज आना चाहिए।

दीनू खड़ा ही था। बूढ़े मालिक ने उसकी ओर देखकर कहा, "तू खड़ा देख क्या रहा है?"

दीनू ने कहा, "तो उनसे जाकर क्या कहूं?"

उसकी बात का जवाब देकर बूढ़े चौधरी ने कैलास गुमाश्ता की ओर देखा। पूछा, "तुमने कालीगंज की बहू को न्योता भेजा था कैलास?"

कैलास ने कहा, "जी नहीं तो। मैं क्यों न्योता भेजने लगा?"

और तुरन्त बूढ़े चौधरी ने दीनू की तरफ नजर फेरी। बोले, "दीनू जरा बंशी ढाली को तो बुला ला। वह है?"

"जी हां, है। मैं बुला लाता हूं।"

दीनू तुरन्त वहां से चला गया और उसके बाद ही बंशी ढाली कमरे में आया। सिर पर लाल पगड़ी। बदन का रंग और कुचकुच काला। पहनावे के कपड़ों को बसंती रंग से रंगा लिया था।

बंशी ढाली बोला, "हुक्म मालिक ?"

मालिक ने कैलास गुमाश्ता की तरफ ताका। बोले, "कैलास जरा तुम बाहर जाओ। बंशी से मुझे जरा काम की बात करनी है। हां देखना, इस समय मेरे कमरे में कोई न आए…"

कैलास गुमाश्ता चला गया। बंशी की ओर मुखातिब होकर बूढ़े मालिक ने कहा, "मेरे करीब आ जा, मेरे मुंह के पास…"

बंशी अपना मुंह मालिक के मुंह के पास ले गया।

"एक काम करेगा बंशी, मोटा इनाम मिलेगा। कालीगंज की बहू आई है, देखा ? उसे एकबारगी खिसका देना है। बनेगा तुमसे ?"

"बनेगा हुजूर"

"मगर होशियार ! किसीको भी पता न चले। कर सकेगा तो ? "

बंशी ढाली से यह पूछना ही बेकार था। फिर भी घटना की गुरुता को समझाने की गर्ज से ही शायद उन्होंने पूछा।

बंशी ढाली इन्हींका नहीं, कभी कालीगंज के जमींदार का भी नौकर था। बूढ़े चौधरी जब नवाबगंज आए, तो यह भी उनके साथ चला आया। यही उसका पेशा है, यही धंधा है उसका। इसीलिए इस तरह के किसी भी काम में 'ना' करने की आदत नहीं है उसकी। बल्कि काम नहीं मिलने से ही वह नाखुश रहता है। ऐसे में उसका मिजाज ठीक नहीं रहता, हजम नहीं होता, नींद नहीं आती, बदन मसमसाता रहता है।

इतने दिनों के बाद मालिक के मुंह से ऐसे काम का हुक्म सुनकर बंशी में फुर्ती-सी आ गई। बोला, "काम तो बताइए हुजूर, जान देकर उसे बजा लाऊंगा।"

बूढ़े चौधरी बोले, "बड़ी सावधानी से करना होगा लेकिन। कोई गन्ध भी न पा सके…"

यह सुनकर बंशी को जैसे अपमान-सा लगा। बोला, "पहले कभी असावधानी हुई है कि आप ऐसा कह रहे हैं ?"

बूढ़े मालिक ने अपने को सुधार लिया। सच तो, बंशी ढाली पर विश्वास नहीं करने का मतलब अपने आप पर ही अविश्वास करना है। बोले, "अरे, सो नहीं कह रहा हूं। कह रहा हूं कि फिर एक झमेला हुआ है, उस झमेले को तुम्हें खत्म करना है।"

"आप कहिए कि किसका काम तमाम करना है ?"

बूढ़े चौधरी ने कहा, "अभी-अभी पता चला, कालीगंज की बहू आई है…"

"तो मैं जा रहा हूं, अभी ही उसे खत्म किए देता हूं।"

"खत्म कैसे करेगा ? सब लोग जान जो जाएंगे। आज तो घर में बहुत

सारे मेहमान आए हुए हैं।"

बंशी ढाली का चेहरा एक पैशाचिक उल्लास से दमक उठा। सिर की लाल पगड़ी खोलकर फिर से अच्छी तरह से बांध लिया और एक ही डेग में कमरे से बाहर चला गया।

नवाबगंज के इतिहास की यह एक मर्मांतक कहानी है। भारत से जमींदारी उठ गई। सन् 1958 के कानून के मुताबिक जमींदारी रखना अब गैर-कानूनी हो गया है। लेकिन नवाबगंज से वह अभी भी नहीं गई—नहीं गया है वह जमींदारी रौब-दाब। जमीन अब जमींदार की नहीं रही, सरकार की हो गई। सरकार की इजाजत के बिना कोई ज्यादा जमा रख नहीं सकता। लेकिन कानून है, तो कानून में फांक भी तो है। कानून की उसी फांक के कारण किसी भी जमींदार की जमीन बेहाथ नहीं हुई। सिर्फ जमीन के मालिक का नाम बदला है। पहले जहां नरनारायण चौधरी का नाम था, अब वहां कुल-देवता का नाम हो गया है। और घर में कुल-देवता भी एक नहीं। सौ हैं? मालिकाना खतियान एक सौ कुल-देवता का नाम चढ़ गया। हर कुल-देवता के हिस्से पड़ा पचहत्तर बीघा। अर्थात् जमीन का मालिक जो था वही है, सिर्फ रसीद बेनामी कटती है। कुल-देवता पत्थर की मूरत हैं। मूरत को न तो पेट है, न भूख। यहां तक कि किसी देवता को अन्न हजम करने की भी जुर्रत नहीं। लेकिन जो बेनामी करनेवाले हैं, उनका पेट मोटा है, भूख भी बाघ जैसी। और पचाने की भी अमानुषिक क्षमता है।

तीन पुश्त पहले, नरनारायण चौधरी ने जब इस सम्पत्ति की स्थापना की थी, तो उन्हें ख्याल नहीं था कि कभी जायदाद खत्म करने का कानून भी बनेगा। कानून जब बना, तो शुरू में कुछ डर गए थे वह। तो क्या सरकार सारी जमीन हड़प कर जाएगी?

मगर वकील साहब ने भरोसा दिया। वकील साहब हंसे, "सरकार ने कानून बनाया तो क्या, आखिर हम लोग किस मर्ज की दवा हैं! कानून बनाना जैसे सरकार का काम है, वैसे ही कानून तोड़ने का रास्ता बताना हमारा काम है।"

बूढ़े चौधरी ने कहा, "तो वह रास्ता बताइए।"

वकील साहब ने हंसते हुए कहा, "मुझे कितना दीजिएगा, कहिए? मेरा पावना?"

"जो कहिएगा, वही देना होगा। सैकड़े पांच···"

वैसा ही हुआ। वकील साहब ने सलाह दी, "झटपट कुछ मन्दिर और देवता बना डालिए। माटी का देवता बनाने में ज्यादा खर्च नहीं पड़ेगा। घर में रोज देव-सेवा करना शुरू कर दीजिए। पुरोहित अलग रखिए। और हर देवता के नाम पचहत्तर बीघा करके जमीन लिख दीजिए। फिर तो मैं

ही।"

चौधरी परिवार में कुल-देवता पहले से ही था। बाद में उनकी संख्या बढ़कर एक सौ हो गई। कानून जब बना तो पाया गया कि नरनारायण चौधरी महज पचहत्तर बीघे के मालिक हैं—बाकी सब कुछ बेटा, पतोहू और देवताओं के नाम है। जमीन का बंटवारा कुछ इस हिसाब से किया गया कि तिल-भर भी जमीन सरकार को हाथ न लगे।

सुनरा कागज-कलम से तो जमींदारी प्रथा उठ गई, मगर वास्तव में जमींदार जैसे थे, वैसे ही रह गए। रह गई पहले की वही आय-वसूली और रह गया उनका वही रौब-दाब। और इन सबके साथ ये वंशी ढाली जैसे लोग रह गए।

वंशी ढाली जैसों को काम रहे चाहे नहीं, उनके अन्न-वस्त्र की व्यवस्था करनी पड़ती है, माह-माह तनखा देनी पड़ती है।

वंशी ढाली पर ऐसा बहुत बार बहुत-से कामों का भार पड़ा है। वंशी ढाली जैसे कर्मचारी बड़े विश्वासी हैं।

सुख-शांति के दिनों इन्हें रोटी-कपड़ा नसीब हो रहा है या नहीं, यह देखने की चिन्ता मालिकों को नहीं रहती। किन्तु विपत्ति के दिनों में भरोसा यही हैं। वही अपनी छाती अड़ाकर इन लोगों को बचाते हैं।

इतने दिनों के बाद आज फिर वंशी ढाली की बुलाहट हुई।

ब्याह की धूमधाम में जब हर आदमी काम में व्यस्त था, एक इसीको कोई काम नहीं था। खैर, उसे भी एक काम मिल गया। अब तक घर की शोभा-सा वह डोलता फिर रहा था। काम का आदमी चुप भी कैसे बैठा रहे।

बड़े मालिक के कमरे से निकलकर वह नीचे आया। चारों ओर चहल-पहल। लोगों के आने-जाने से सारा घर गुलजार। लेकिन उससे उसका कुछ नहीं आता-जाता। उसका काम तो सबकी नजरों की ओट में था। वह काम कोई नहीं देख पाएगा। उसकी इस बहादुरी को कोई जान नहीं सकेगा। जानेगा सिर्फ वह और उसके चेले-चामुंडे। और जानेंगे उसके अन्नदाता मालिक। जिसके जानने से उसे रोटी-कपड़ा मयस्सर होगा, उसकी नौकरी बरकरार रहेगी।

नीचे उतरकर वंशी ढाली रुका नहीं। वह सीधे बाहर निकल गया। वहां कालीगंज की बहू पालकी से उस समय उतरी। उतरकर उसने अच्छी तरह से घूंघट काढ़ लिया।

प्रकाश मामा ने जाकर सादर अगवानी की, "आइए, आइए मां जी!"

कालीगंज की बहू बिना कोर वाली तसर की साड़ी पहने हुई थी। आज चूंकि एक खास दिन है, इसलिए वह जरा विशेष रूप से ही संवरकर आई थी। आने की वैसी इच्छा नहीं थी उसे। मगर आए बिना रहा नहीं गया। एक बार तो जी में आया कि बिना न्योते के जाना ठीक नहीं। परन्तु उसे न्योता कौन देगा। यह तो आशा ही नहीं की जा सकती कि नरनारायण अपने पोते के ब्याह में

मु-

में धूप नहीं लगे। नहाने के बाद पहनने के लिए साथ में चूनटदार धोती जाती थी। कांसे के कटोरे में आधा सेर तेल जाता था।

पत्नी ने यह देखकर एक दिन पूछा था, "इतना तेल तुम अकेले लगाते हो ?"

चक्रवर्ती सिर्फ हंसते। कहते, "नहीं जी, घाट में जो लोग आते हैं, बड़े गरीब हैं बेचारे। उनको तेल खरीदने के पैसे नसीब नहीं। तेल मैं भी लगाता हूं, ये लोग भी लगाते हैं।"

तेल की ही बात नहीं। पत्नी एक बार कोई व्रत-उद्यापन कर रही थी। इस सिलसिले में गांव के सभी लोगों को खाने के लिए कहा गया था। खाने जाने से पहले चक्रवर्ती जी की नजर रसगुल्ले भरे गमले में पड़ी। बोले, "देखूं तो खाकर ज़रा, कैसा बना है ?"

उन्होंने एक रसगुल्ला खाया।

लेकिन मुंह में डालते ही थू-थू करके थूक दिया। बोले, "न-न, ये रसगुल्ले किसीको खाने के लिए नहीं दिए जा सकते। ये बासी हैं। खट्टे हो गए हैं। फेंक दो—"

और फेंकना क्या ? गढ़ा खोदकर ढाई मन छेने के रसगुल्ले गाड़ दिए गए, ताकि कोई पशु-पंछी भी न खाए। उसके बाद रातों-रात फिर से रसगुल्ले बने और वे रसगुल्ले लोगों को परोसे गए।

ये घटनाएं कालीगंज के लोगों की तरह नरनारायण चौधरी भी जानते थे, फिर भी उन्हीं चक्रवर्ती जी की पत्नी का एक-सा सर्वनाश करने में उन्हें भी हिचक नहीं हुई।

अपने अन्तिम समय में उन्होंने उस दिन नरनारायण को ही बुलाया था। बोले, "अब मेरे जाने का इन्तजाम करो नारायण···"

जाने की बात सुनकर नरनारायण अचम्भे में आ गए थे। बोले, "कहां जाइएगा हुज़ूर ?"

हर्षनाथ ने कहा, "नवद्वीप··"

नवद्वीप की सुनकर हर्षनाथ की बात से नरनारायण को आश्चर्य ही हुआ था। बोले, "नवद्वीप किसलिए जाएंगे हुज़ूर ?"

हर्षनाथ ने कहा, "जो कह रहा हूं, वही करो। गाड़ी जोतने के लि कहो।"

वैसा ही किया गया। हुक्म हुआ है कि मालिक नवद्वीप जाएंगे। उन हुक्म में इधर-उधर नहीं हो सकता। गाड़ी चल पड़ी। दिन-भर चलते र के बाद गाड़ी शाम को एक नदी किनारे पहुंची। उन्होंने पूछा, "कहां अ हम !"

नरनारायण ने कहा, "जी, कृष्णगंज।"

मालिक बोले, "मैं तम्बाकू पिऊंगा। मेरा हुक्का-चिलम ले आओ।"

साथ का आदमी फिर कालीगंज दौड़ा। मालिक को तम्बाकू पीने खाहिश हुई है। उनका अपना हुक्का, नल—सब कुछ आना चाहिए। उ

कृष्णगंज में 'हीं नदी किनारे डेरा डाल दिया। दूसरे दिन सारी चीजें आ पहुँचीं। जिस हुक्के में वह तम्बाखू पिया करते थे, उसीपर चिलम चढ़ाकर उन्होंने पिया। दो-चार दम लगाया। धुआं निकला। उसके बाद हुक्का नरनारायण को थमा दिया। बोले, "बस। इतनी ही आसक्ति थी, अब वह भी गई—अब चलो।"

गाड़ी फिर नवद्वीप की ओर चली।

परन्तु ये बातें आज कौन सुनेगा? कालीगंज की बहू किसे सुनाए? इन घटनाओं का एक जो साक्षी था, वह भी आज सब भुला बैठा है। उस दिन के उस नायब ने अपने उस मालिक को याद नहीं रखना चाहा। याद रखने, तो नवाबगंज की यह सारी सम्पत्ति उसे कालीगंज की बहू को ही वापस देनी पड़े। लेकिन यह तो सम्भव नहीं। इसीलिए कालीगंज की बहू को देखते ही उनका पारा गरम हो जाता। कहते, "जा दीनू, जाकर कह दे, मेरी तबीयत खराब है, भेंट नहीं होगी···"

और फिर अपने सौभाग्य के दिनों में अतीत की उस दासता के अंधेरे दिनों की बात कौन याद रखता है! कालीगंज की बहू का नाम सुनते ही उन्हें पन्द्रह रुपये माहवार की नौकरी की बात याद आ जाती। कौन तो जैसे आंखों में उंगली गड़ाकर उन्हें उनकी पुरानी शक्ल दिखा देना चाहता! कहता, 'वह देख, पहचानता है उसे?'

नरनारायण चौधरी चौंक उठते, "कैलास, कैलास···"

कैलास गुमाश्ता कहता, "जी, मैं तो आपके पास ही हूं।"

"औ!" कहकर मानो शान्त हो जाते। मानो फिर वास्तव जगत् में लौट आते। कहते, "कैलास आजकल ऐसा ही होता है मुझे। लगता है, जैसे मेरे पास कोई नहीं है। तुम सदा मेरे पास ही रहा करना—"

पर, उस दिन जब बंसी दासी कमरे से बाहर चला गया, तो बूढ़े चौधरी ने फिर आवाज दी, "कैलास···"

कैलास बाहर ही खड़ा था। पुकार सुनते ही अन्दर आया। पूछा, "जी, मुझे पुकार रहे थे?"

"हां, कहां चले जाते हो तुम। मैंने तुमसे कहा था न, सब समय मेरे पास ही रहना?"

कैलास ने कहा, "जी, अभी तो आपने मुझे बाहर जाने को कहा!"

बड़े मालिक ने कहा, "देखो कैलास, तुम तर्क मत करो। तुम्हारी यह बड़ी बुरी आदत है। तर्क बहुत करते हो। मैंने बार-बार तुमसे कहा है, तुम मेरे पास ही पास रहना। देखते हो न, मेरे पास मेरा सन्दूक है, इसमें रुपये-पैसे हैं, कब कौन आ पड़े, क्या ठिकाना! तुम···"

एकाएक रुककर कान लगाकर क्या तो सुनने लगे मानो। बोले, "कोई आवाज हुई न कैलास?"

कैलास ने भी आवाज को सुनने की चेष्टा की। बोला, "जी हां, औरतें नीचे शंख फूंक रही हैं।"

नहीं लगे। नहाने के वाद पहनने के लिए साथ में चूनटदार धोती
थी। कांसे के कटोरे में आधा सेर तेल जाता था।
त्नी ने यह देखकर एक दिन पूछा था, "इतना तेल तुम अकेले लगाते

चक्रवर्ती सिर्फ हंसते। कहते, "नहीं जी, घाट में जो लोग आते हैं, वड़े
व हैं वेचारे। उनको तेल खरीदने के पैसे नसीव नहीं। तेल मैं भी लगाता
वे लोग भी लगाते हैं।"

तेल की ही वात नहीं। पत्नी एक वार कोई व्रत-उद्यापन कर रही थी।
सिलसिले में गांव के सभी लोगों को खाने के लिए कहा गया था। खाने
ाने से पहले चक्रवर्ती जी की नजर रसगुल्ले भरे गमले में पड़ी। वोले, "देखूं
ी खाकर जरा, कैसा वना है?"

उन्होंने एक रसगुल्ला खाया।

लेकिन मुंह में डालते ही थू-थू करके थूक दिया। वोले, "न-न, ये रसगुल्ले
किसीको खाने के लिए नहीं दिए जा सकते। ये वासी हैं। खट्टे हो गए हैं।
फेंक दो—"

और फेंकना क्या? गढ़ा खोदकर ढाई मन छेने के रसगुल्ले गाड़ दिए
गए, ताकि कोई पशु-पंछी भी न खाए। उसके वाद रातों-रात फिर से रसगुल्ले
वने और वे रसगुल्ले लोगों को परोसे गए।

ये घटनाएं कालीगंज के लोगों की तरह नरनारायण चौधरी भी जानते
थे, फिर भी उन्हीं चक्रवर्ती जी की पत्नी का एक-सा सर्वनाश करने में उन्हें
भी हिचक नहीं हुई।

अपने अन्तिम समय में उन्होंने उस दिन नरनारायण को ही वुलाया था।
वोले, "अव मेरे जाने का इन्तजाम करो नारायण..."

जाने की वात सुनकर नरनारायण अचम्भे में आ गए थे। वोले, "कहां
जाइएगा हुजूर?"

हर्षनाथ ने कहा, "नवद्वीप.."

नवद्वीप की सुनकर हर्षनाथ की वात से नरनारायण को आश्चर्य ही हुआ
था। वोले, "नवद्वीप किसलिए जाएंगे हुजूर?"

हर्षनाथ ने कहा, "जो कह रहा हूं, वही करो। गाड़ी जोतने के लिए
कहो।"

वैसा ही किया गया। हुक्म हुआ है कि मालिक नवद्वीप जाएंगे। उनके
हुक्म में इधर-उधर नहीं हो सकता। गाड़ी चल पड़ी। दिन-भर चलते रहने
के वाद गाड़ी शाम को एक नदी किनारे पहुंची। उन्होंने पूछा, "कहां आए
हम!"

नरनारायण ने कहा, "जी, कृष्णगंज।"

मालिक वोले, "मैं तम्वाखू पिऊंगा। मेरा हुक्का-चिलम ले आओ।"

साथ का आदमी फिर कालीगंज दौड़ा। मालिक को तम्वाखू पीने की
ख्वाहिश हुई है। उनका अपना हुक्का, नल—सव कुछ आना चाहिए। उन्होंने

कृष्णगंज में ही नदी किनारे डेरा डाल दिया। दूसरे दिन सारी चीजें आ पहुंचीं। जिस हुक्के में वह तम्बाकू पिया करते थे, उसीपर चिलम चढ़ाकर उन्होंने पिया। दो-चार दम लगाया। धुआं निकला। उसके बाद हुक्का नरनारायण को थमा दिया। बोले, "बस। इतनी ही आसक्ति थी, अब वह भी गई—अब चलो।"

गाड़ी फिर नवद्वीप की ओर चली।

परन्तु ये बातें आज कौन सुनेगा? कालीगंज की बहू किसे सुनाए? इन घटनाओं का एक जो साक्षी था, वह भी आज सब भुला बैठा है। उस दिन के उस नायब ने अपने उस मालिक को याद नहीं रखना चाहा। याद रखने, तो नवाबगंज की यह सारी सम्पत्ति उसे कालीगंज की बहू को ही वापस देनी पड़े। लेकिन यह तो सम्भव नहीं। इसीलिए कालीगंज की बहू को देखते ही उनका पारा गरम हो जाता। कहते, "जा दीनू, जाकर कह दे, मेरी तबीयत खराब है, भेंट नहीं होगी···"

और फिर अपने सौभाग्य के दिनों में अतीत की उस दासता के अंधेरे दिनों की बात कौन याद रखता है! कालीगंज की बहू का नाम सुनते ही उन्हें पन्द्रह रुपये माहवार की नौकरी की बात याद आ जाती। कोई तो जैसे आंखों में उंगली गड़ाकर उन्हें उनकी पुरानी हालत दिखा देना चाहता! कहता, 'वह देख, पहचानता है उसे?'

नरनारायण चौधरी चौंक उठते, "कैलास, कैलास···"

कैलास गुमाश्ता कहता, "जी, मैं तो आपके पास ही हूं।"

"औ!" कहकर मानो शांत हो जाते। मानो फिर वास्तव जगत् में लौट आते। कहते, "कैलास आजकल ऐसा ही होता है मुझे। लगता है, जैसे मेरे पास कोई नहीं है। तुम सदा मेरे पास ही रहा करना—"

पर, उस दिन जब बंशी ढाली कमरे से बाहर चला गया, तो बूढ़े चौधरी ने फिर आवाज दी, "कैलास···"

कैलास बाहर ही खड़ा था। पुकार सुनते ही अन्दर आया। पूछा, "जी, मुझे पुकार रहे थे?"

"हां, कहां चले जाते हो तुम। मैंने तुमसे कहा था न, सब समय मेरे पास ही रहना?"

कैलास ने कहा, "जी, अभी तो आपने मुझे बाहर जाने को कहा!"

बड़े मालिक ने कहा, "देखो कैलास, तुम तर्क मत करो। तुम्हारी यह बड़ी बुरी आदत है। तर्क बहुत करते हो। मैंने बार-बार तुमसे कहा है, तुम मेरे पास ही पास रहना। देखते हो न, मेरे पास मेरा सन्दूक है, इसमें रुपये-पैसे हैं, कब कौन आ पड़े, क्या ठिकाना! तुम···"

एकाएक रुककर कान लगाकर क्या तो सुनने लगे मानो। बोले, "कोई आवाज हुई न कैलास?"

कैलास ने भी आवाज को सुनने की चेष्टा की। बोला, "जी हां, औरतें नीचे शंख फूंक रही हैं।"

बड़े मालिक बिगड़ उठे, "औरतें शंख फूंक रही हैं, वह तो मैं भी सुन रहा हूं। वह नहीं, एक दूसरी आवाज़। नहीं सुनी !"

कैलास ने कहा, "जी नहीं।"

बूढ़े चौधरी बोले, "देखता हूं, दिन-दिन तुम बहरे होते जा रहे हो। जाओ, सुन आओ, वहां काहे की आवाज़ हुई।"

कैलास गुमाश्ता जल्दी-जल्दी नीचे जाने लगा। मालिक ने लेकिन डांट बताई, "कहां जा रहे हो तुम ?"

"जी नीचे।"

"जी नीचे। तुमसे मैंने कहा है न, हर समय मेरे-पास ही पास रहना ! कहा है न तुमसे कि मेरे पास सन्दूक में रुपया है।"

यह सुनकर कैलास गुमाश्ता फिर अपनी जगह पर आ बैठा।

लेकिन उधर हर्षनाथ चक्रवर्ती उस समय नवद्वीप जा रहे थे। उनके जीवन का काम खत्म हो चुका था। अब उन्हें कोई आसक्ति नहीं रही। दो नाबालिग लड़के रहे, पत्नी रही। और रहा नायब नरनारायण। जगह-ज़मीन भी काफी रही। काफी कुछ रख गए वह। लेकिन जाते समय अपने साथ कुछ नहीं लिया। जाने के समय किसीके पास कुछ रहता भी नहीं। दुनिया में अकेले ही आए थे और दुनिया से अब अकेले ही चले जा रहे हैं। आसक्ति नहीं है, कोई कामना नहीं, कोई आकांक्षा भी नहीं। आसक्ति महज तम्बाकू पर थी। वह भी जाती रही। उसे भी छोड़ दिया उन्होंने। अब मुक्ति ! अब कोई भी चीज़ उन्हें अपनी ओर खींच नहीं सकेगी।

नायब नरनारायण साथ चल रहे थे। चलते-चलते एक दिन नवद्वीप जा पहुंचे।

मालिक ने कहा, "मुझे राधा माधव के आश्रम में ले चलो।"

उनके कहे मुताबिक उन्हें उसी आश्रम में ही ले जाया गया। परन्तु उन्हें वहां भी ज्यादा दिन नहीं रहना पड़ा। दो दिन के बाद उन्होंने कहा, "अब मेरा समय हो गया नारायण, मुझे गंगा ले चलो।"

नायब नरनारायण उन्हें गंगा किनारे ले गए। सीढ़ियों से हर्षनाथ गंगा में उतरे। पहले घुटने पानी तक। उसके बाद कमर-पानी उसके बाद छाती तक। छाती भर पानी में ही वह खड़े हुए।

वास्तव में, ब्याह के उत्सव वाले घर में वह सब बातें सोचना गलत है। ऊपर के कमरे में वह जो लांगड आदमी सन्दूक को जकड़े दिन काट रहे हैं, उन्हें भी यह सब नहीं सोचना चाहिए। सोचने से उनके पोते के ब्याह में अड़चन आएगी। अतिथि-अभ्यागतों से भरे ऐश्वर्य पर काली छाया पड़ेगी। जीवन का सार सत्य मोक्ष नहीं है, सत्य नहीं हैं, त्याग भी नहीं। असल चीज़ है यह ऐश्वर्य, यह धूमधाम और यह सन्दूक। कालीगंज के हर्षनाथ चक्रवर्ती निर्बोध थे, इसीलिए उन्होंने आसक्ति को त्याग दिया था। उन्होंने नवद्वीप के गंगाघाट में अपनी मुक्ति चाही थी। मगर मैं त्याग में विश्वास नहीं करता, मुक्ति में विश्वास नहीं करता, अनासक्ति में भी विश्वास नहीं करता। मैं

जीना चाहता हूं। मैं जीना चाहता हूं अपने 'मैं' में। यह जगह-जायदाद, ठाट-बाट, ऐश्वर्य-विलास सब कुछ से लिपटकर जीना चाहता हूं। अपनी सन्तानों में जीना चाहता हूं। मैं जीना चाहता हूं अपनी वंश-परम्परा के उत्तराधिकार में। मेरे उस बचने में जो रोड़ा बनेगा, मैं उसको खत्म कर दूंगा, उसका खात्मा कर दूंगा। काम तमाम करने में यह वंशी ढाली मेरी मदद करेगा। इसीलिए तो मैंने उसे तनखा देकर रक्खा है।

वंशी ढाली जब बाहरी घर के आंगन में पहुंचा, तो कालीगंज की बहू वहां नहीं थी। यहां तक कि उसकी पालकी का भी कहीं पता नहीं था।

प्रकाश मामा ने तब तक उसे ले जाकर बिलकुल भीतर पहुंचा दिया था। कालीगंज की बहू के लिए उस घर में अश्रद्धा चाहे जितनी हो, मगर इस घर के ऐश्वर्य से उसका जो क्षीण सूत्र है, यह किसीका अजाना नहीं था। और कोई न जाने चाहे, कम-से-कम चौधरी-घर की घरनी जानती थी।

"कहां, बहूरानी कहां?"

रुपये के तकाजे में कालीगंज की बहू यहां बहुत बार आई है, मगर अन्दर महल की चौहद्दी में इस तरह से कभी नहीं आई।

उतनी व्यस्तता में भी बहूरानी ने पहचाना। बोली, "आइए मां जी—"

कालीगंज की बहू बोली, "मुझे तुम पहचान नहीं सकोगी बहूरानी! मेरे पोते की बहू आई है, इसीलिए मैं आशीर्वाद देने आई हूं। मुझे तुम दुत्कार तो नहीं दोगी बहूरानी?"

"हाय राम, आपको दुत्कार क्यों दूंगी?"

कालीगंज की बहू ने कहा, "नहीं, असल में मुझे किसीने न्योता तो नहीं दिया है न, मैं यों ही आ गई हूं। तुम मेरी इतनी खातिर न करो। मैं सिर्फ नई बहू को आशीर्वाद देकर ही चली जाऊंगी। है कहां बहू?"

नयनतारा उस समय एक कमरे में घूंघट काढ़े चुपचाप बैठी थी। अगल-बगल पुरा-पड़ोस की कुछ बहू-बेटियां बैठी थीं।

गौरी बुआ उसे साथ ले गई। बोली, "बहूरानी, इनको प्रणाम करो, यह कालीगंज के जमींदार की स्त्री हैं, गुरुजन हैं।"

कालीगंज की बहू ने मुड़ी हुई साड़ी बढ़ाई। हाथ बढ़ाकर नयनतारा ने उसे ले लिया। उसके बाद पांव छूकर प्रणाम किया।

"हां-हां, रहने दो। आशीर्वाद करती हूं, सुखी होओ। सास-ससुर, पति-पूत के साथ सुख से घर-गिरस्ती करो।"

वह और खड़ी नहीं रही, मानो वहां से चले आने से ही जी जाए। सबकी आंखों की ओट में चले जाने से ही जैसे तृप्ति हो। वह जिस तरह सिर झुकाए आई थी, उसी तरह बाहर की ओर चली गई।

गौरी बुआ आई तो प्रीति ने पूछा, "क्यों रे, गई मुंहजली?"

गौरी बुआ ने कहा, "हां, आफत विदा हुई।"

"क्या देकर बहू का मुंह देखा ?"

"वह न पूछो भाभी। नौड़ी-चांदी का एक अंगोछा..."

"सो क्या रे। अंगोछा ? अंगोछा देकर मेरी बहू का मुंह देखा ?"

गौरी बुआ ने कहा, "हां अंगोछा ही कह लो। हमारे बीबीगंज की हाट में जुलाहों के हाथ की बुनी जैसी साड़ी मिलती है, वैसी ही।"

"क्या कीमत होगी ?"

"कीमत तीन रुपये भी हो सकती है, पांच रुपये भी हो सकती है।"

प्रीति ने कहा, "इसके ढंग से तो मर गई मैं। फिर भी कहीं न्योता देकर बुलाया गया होता, तो भी जानती।"

गौरी बुआ ने कहा, "मगर गरूर तो देखो, उस बार बड़े मालिक को कितना गाली-गलौज कर गई। अब अपनापा दिखाने आई है। शरम भी नहीं आती। छि: !"

प्रीति को वह सब याद नहीं था। बोली, "गाली-गलौज किया था ? बड़े मालिक को ? क्या गाली दी थी रे ?"

"हाय राम, याद नहीं है ? बाहर के अहाते में गला फाड़कर चिल्लाती हुई उस बार कहा नहीं था, "तुम निर्वंश होगे, ब्राह्मण की बेटी हूं मैं, तुम्हें शाप दिए जाती हूं, तुम्हारा वंश नहीं रहेगा, 'कितना क्या कह नहीं गई थी ?"

"छि-छि, फिर भी तूने मुझे पहले याद नहीं दिला दिया ? मैं कलमुंही के मुंह में झाड़ू मारती।"

वही चाहिए था। गौरी ने भी यही कहा, "कालीगंज की बहू के मुंह में झाड़ू ही मारना ठीक था। सदानन्द के ब्याह में ही क्या उसने कुछ कम रोड़ा अटकाया ? ब्याह जिसमें टूट जाए, उसके लिए उसने मुन्ना को ही रात में अपने यहां रोक रखा था। हया-शरम नहीं है, जभी वह एक तीन रुपये की साड़ी लेकर बहू का मुंह देखने आई।"

अन्दर जब यह सब बातें हो रही थीं, कालीगंज की बहू बाहर दुलाल को खोज रही थी, "कहां गया दुलाल, दुलाल कहां गया ? पालकी ही कहां है ?"

प्रकाश मामा बाहर शामियाना टंगवाने में जुटा हुआ था। पालकी पर जो नजर पड़ी, तो बोला, "तुम लोग यहां क्यों हो जी ? पालकी रखकर जगह छेंक रखी है। बाहर जाओ, बाहर—"

दुलाल वगैरह पालकी लेकर बिलकुल बाहर रास्ते पर खड़ा इन्तजार कर रहा था। और, अन्दर की ओर निगाह किए हुए था। मां जी अभी तक आ क्यों नहीं रही हैं ? कालीगंज जाने में जो रात बीत जाएगी।

सदानन्द सामने से निकला। पालकी पर नजर पड़ी। अरे, यह तो चीन्ही हुई पालकी है। बोला, "क्यों जी, यह पालकी किसकी है ? कालीगंज की बहू आई है क्या ?"

दुलाल ने कहा, "जी हां। मां जी आई हैं ?"

"तो वह हैं कहां ?"

"अन्दर गई हैं।"

सदानन्द वहां न रुककर एक ही दौड़ में ऊपर दादाजी के कमरे में गया। पूछा, "यहां कालीगंज की बहू आई है क्या कैलास काका ?"

कैलाश क्या जवाब दे, सोच नहीं पाया। बोला, "मैं तो ठीक नहीं बता सकूंगा नन्हे बाबू..."

बात बूढ़े चौधरी के कानों में भी गई थी। बोले, "कौन ? किसने बात की कैलाश ? मुन्ना था न ?"

लेकिन सदानन्द वहां रुका नहीं। सोचा, तब वह जरूर अन्दर गई है।

"मां !"

"क्या है मुन्ने ?"

"कालीगंज की बहू आई है मां ? कहां है ?"

"अभी, अभी तो बहू को देखकर चली गई।"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन यहीं कहीं होगी। पालकी तो खड़ी है..." और वह तेजी से फिर बाहर निकल गया। कीर्तिपद बाबू अपने कमरे में बैठकर तम्बाकू पी रहे थे। नाती को देखकर बोले, "अरे, मुन्ने ? कहां गया था ?"

लेकिन सदानन्द को तब फिजूल की बातों का समय नहीं था। वह वहां से एकबारगी बाहर गया और प्रकाश मामा के आमने-सामने खड़ा हुआ, "मामा, कालीगंज की बहू आई है, न !"

"हां, देखा तो था।"

"लेकिन गई कहां ! कहीं देख तो नहीं पा रहा हूं। पिताजी के पास चंडीमंडप में है क्या !"

वह चंडीमंडप गया। सदानन्द के मन में ऐसा लगा कि पल-भर की भी देर होगी, तो वह कालीगंज की बहू को फिर देख नहीं सकेगा। पर, ब्याह में तो आने की बात नहीं थी उसकी। तो क्या दादाजी के पास रुपया मांगने आई है ! दादाजी ने क्या रुपया दे दिया ! उन्होंने अपनी बात रखी ! वही दस हजार रुपया।

सोचते-सोचते सारे घर की खाक छानने लगा सदानन्द। चारों ओर इतनी भीड़। सबका मुंह देखते हुए वह अपनी लक्ष्य-वस्तु को खोजने लगा। मगर कहां, कहां गई कालीगंज की बहू ! पालकी रहते आखिर वह पैदल तो नहीं जाएगी।

आखिर वह फिर सदर में आया। तब तक भी दुलाल वगैरह मुंह बाए अन्दर महल की ओर ताक रहे थे।

"क्यों जी, तुम लोगों की मां जी आई हैं !"

"जी हां। हम लोग तो उन्हींके लिए बेसब्र खड़े है। सांझ से पहले ही यहां से चल देने की बात थी..."

"खैर, देखता हूं, कहां गईं।"

सदानन्द फिर अन्दर गया। फाटक पर बत्ती लगाई जा रही थी। कमर

में तौलिया बांधकर प्रकाश मामा उसीको निगरानी कर रहा था। इतना काम कि समय नष्ट नहीं कर सकता। चारों ओर चौकस निगाह। सदानन्द को देखकर भी मानो उसने नहीं देखा।

लेकिन वंशी ढाली ने अपने काम में जिन्दगी में कभी ढिलाई नहीं की। उसने कब जो सबकी नजर बचाकर अपनी ड्यूटी बजा ली, इसकी किसीको भी खाक खबर नहीं। यह भी तो लेकिन बड़ा आसान काम नहीं। जब वह कालीगंज के जमींदार का नौकर था, तो इसी कालीगंज की बहू को वह मां जी कहा करता था। कभी उसीका नमक खाया था। लेकिन ये वंशी ढाली जैसे लोग रुपये के लिए सब कुछ कर सकते हैं। रुपये के लिए नमकहरामी में भी झिझक नहीं होती।

"कौन? कौन है वहां?"

वंशी ढाली वगैरह तब तक चुपचाप अपना काम कर चुका था।

"कौन? कौन है वहां?"

सदानन्द को लगा, चंडीमंडप के पीछे शरीफे के पेड़ नीचे अन्धेरे में कौन लोग तो फुसफुसा कर बात कर रहे हैं।

सदानन्द के समीप जाते ही वंशी ढाली अन्धेरे से बाहर निकल आया।

सदानन्द ने पूछा, "वंशी ढाली, अन्धेरे में यहां कुछ आवाज़ हुई न! मुझे किसी औरत के गले-सा लगा···"

वंशी अवाक् हो गया, "औरत का गला। यहां औरत का गला कहां से आएगा नन्हे बाबू?"

"लेकिन तुम अभी यहां क्या कर रहे थे? सब लोग काम कर रहे हैं, तुम यहां अन्धेरे में खड़े क्या देख रहे हो?"

वंशी ने कहा, "मैं अपने कमरे में गया था। वहीं से निकल रहा हूं।"

इतना कहकर टाल जाने की नीयत से वह बाहर की तरफ लोगों की भीड़ में चला गया। लेकिन सदानन्द को कैसा तो सन्देह-सा हुआ। घुप्प अन्धेरा था वहां। वंशी के चले जाने के बाद सदानन्द भी चला आ रहा था। लेकिन फिर वह उसी अन्धेरे की ओर ही चला गया। वंशी को देखकर उसे कैसा तो डर लगता था। ऐसे समय तो वह यहां रहनेवाला आदमी नहीं है। और आवाज़ भी तो इसी तरफ से आई थी। औरत के गले की-सी आवाज़।

उसने वंशी के कमरे के दरवाज़े को ठेलकर खोलना चाहा। लेकिन लगा कि ताला लटक रहा है। अन्धेरे में ताले पर हाथ रखा। हिलाया। शायद हड़बड़ी में ताले में ठीक से कुंजी लगाई नहीं गई थी। हिलाते ही वह खुल गया। सदानन्द ने अन्दर देखने की कोशिश की। लगा, अन्दर उस समय भी किसीके गले की आवाज आ रही थी।

लेकिन वंशी तब तक वहां फिर आ धमका।

"यहां क्या कर रहे हैं नन्हे बाबू?"

"अन्दर क्या है वंशी? कुछ कराह-सा रहा है।"

वंशी ने उस बात का जवाब नहीं दिया। बोला, "बूढ़े मालिक आपको

बुला रहे हैं। जल्दी। कौन लोग तो आए हुए हैं।"

"मुझे? मुझे बुलाया है?"

बंशी ढाली ने कहा, "हां। तुरन्त जाइए।"

"लेकिन तुम्हारे इस कमरे में कौन है?

बंशी ढाली ने कहा, "कमरे में कौन होगा? मैंने ताला कुंजी लगा रखा था। खोला किसने?" कहकर उसने टेंट के बहुए से एक कुंजी निकालकर ताला को फिर से लगाने की चेष्टा की।

"लेकिन मुझे कमरे में किसके गले की आवाज मिली, वहां कौन है, कहो तो? कहो, वहा क्या हुआ है? कौन है वहां?"

लेकिन बंशी ढाली इस आसानी से टूट पड़ने वाला शख्स नहीं। बोला, "आपने भूत देखा है नन्हे बाबू, आपको बेशक भूत का डर लगा है।"

सदानन्द ने कहा, "फिजूल की बात रहने दो, मुझे बताओ की भीतर क्या हुआ है? बोलो, कौन है अन्दर? तुमने जरूर कालीगंज की बहू को भीतर बन्द कर रखा है। अभी भी बता दो कि वहां कौन है?"

बंशी तब तक अच्छी तरह से ताला बन्द करके चला आ रहा था। सदानन्द ने पीछा नहीं छोड़ा, कहा, "बोलो, वहां कौन है? किसे तुमने बन्द किया है?"

कहते-कहते वह बंशी के पीछे-पीछे एकबारगी सदर तक आ गया था। प्रकाश मामा ने देख लिया। बोला, "यह क्या रे सदा, तेरी गंजी में इतना खून कैसे लगा?"

बहुत दिन पहले की घटनाएं हैं ये। फिर भी इतने दिनों के बाद चौबेड़िया से निकलकर नवाबगंज जाते हुए रास्ते में सदानन्द मानो उन सबका नया मतलब निकालने की चेष्टा करने लगा। इतने दिनों के बाद नवाबगंज पहुंचकर पता नहीं क्या देखेगा। वह नवाबगंज क्या अब वैसा ही होगा। इतिहास की कसौटी जब हर चीज के असल-नकल की परखकर लेती है, तो हो न हो, नवाबगंज की भी जरूर ही परख हो चुकी होगी। सुहागरात की पिछली रात की वह दुर्घटना आज क्या उसके सिवाय और किसीको याद होगी! और, याद भी हो, तो उस घटना का जो असर उसके जीवन पर पड़ा, वैसा और किसीके जीवन पर पड़ा होगा? नवाबगंज में ही क्यों, दुनिया में कोई भी दुर्घटना किसीको आजीवन इस कदर अभिभूत नहीं किए रहती। इसलिए दुनिया में वह अकेला ही इसका व्यतिक्रम है। औरों की तरह वह भी तो पत्नी-बाल-बच्चों के साथ बड़े सुख, बड़ी स्वच्छंदता के साथ निबाह कर चल सकता था। तो फिर वह सब कुछ के होते हुए भी इस चौबेड़िया की अतिथिशाला में अज्ञातवास का दुःख क्यों भोग रहा है?

कृष्णनगर से पुलिस ने आकर दूसरे दिन यही पूछा था।

पूछा था, "आपने कैसे समझा कि यहां पर खून हुआ था। खून हुआ होता तो लोहू का निशान तो रहा होता।"

सदानन्द ने कहा था, "लेकिन मेरी गंजी में लोहू का दाग है, मेरे कपड़े में लोहू लगा हुआ है, उस समय मेरे हाथ में भी लोहू लगा हुआ था। वह दाग सबने देखा था…"

पुलिस के दरोगा जी इसके पहले ही किवाड़ बन्द करके बड़े मालिक के साथ आध घंटे से भी ज्यादा देर तक बात कर चुके थे। सदानन्द को यह नहीं मालूम था कि फैसला जो होना था, वहीं हो चुका है। ऐसे मामलों के फैसले के लिए बड़े मालिक के संदूक में हर वक्त मसाला मौजूद रहता है। उसी मसाले के बल पर नरनारायण चौधरी इतने दिनों तक राज करते आए हैं। इज्जत, रौब-दाब सब कुछ बरकरार रखते हुए सबके सिर के ऊपर बैठे हुए हैं। पुलिस का दरोगा ही केवल क्यों, उस मसाले के ज़ोर पर अदालत के जज से लेकर प्यादा तक ने उनके आगे सिर झुकाया है।

इसीलिए कृष्णगंज के दरोगा को सदानन्द की बातें अच्छी नहीं लगीं।

दरोगा जी ने पूछा था, "लेकिन किसका खून किया गया है?"

सदानन्द ने कहा था, "कालीगंज की वहू का। कालीगंज के जमींदार की विधवा पत्नी का।"

"उन्हें तो किन्तु न्योता नहीं भेजा गया था। उन्हें क्या पड़ी थी बिना न्योता के सुहागरात के पहले दिन आएं?"

सदानन्द ने कहा, "यदि आपकी ही बात मान लूं, तो वह गई कहां? कालीगंज में भी तो नहीं हैं। वहां भी तो लौटकर नहीं गई वह। उनकी पालकी और कहारों को भी तो खोजकर नहीं पाया जा रहा है। यहां तक पालकी भी कहीं नहीं है।"

सचमुच ही अजीब बात है। कल जिसे सबने देखा था, एक साड़ी देकर वह नई वहू को आशीर्वाद कर गई, वह स्त्री यों गायब ही कैसे हो गई। रातोंरात उसकी पालकी तक कैसे लापता हो गई। लेकिन गवाह देते वक्त सबने कहा, "कहां, हमने तो पालकी नहीं देखी।"

दरोगा जी ने बार-बार सबसे पूछा, "आप में से किसीने कालीगंज की वहू को नहीं देखा?"

सबने एक ही बात कही, "जी, हम सब काम-काज में लगे थे, किसी तरफ देखने की हमें फुरसत नहीं थी।"

"और आप? आपने देखा था? सबने कहा कि आप तो सामने शामियाना टंगवा रहे थे?"

प्रकाश मामा का काम खत्म नहीं हुआ था। पुलिस को देखकर उ जी जल उठा था। बोला, "मैंने? मुझसे पूछ रहे हैं दरोगा जी! मुझे मरने का भी अवकाश है? जब तक सुहागरात नहीं निकल जाती, मरने का भी अवकाश नहीं है।"

सदानन्द बीच में ही बोल उठा, "लेकिन मामा, तुमने तो कालीगंज की बहू को पालकी से उतरते देखा था, तुमने ही तो कहारों से पालकी बाहर ले जाने को कहा था। इस समय तुम सब कुछ भूल गए?"

दरोगा जी ने कहा, "आप चुप रहिए, मैं जिनसे पूछता हूं, वही जवाब देंगे।"

दरोगा जी ने फिर प्रकाश मामा की ओर देखकर पूछा, "हां, तो आपका शामियाना टंगवाना कब खत्म हुआ।"

प्रकाश मामा ने कहा, "करीब आधी रात समझिए···"

"आपको उस समय ऐसा कुछ सन्देह हुआ था कि यहां किसीका खून हुआ है।"

प्रकाश मामा ने कहा, "राम कहिए, ऐसा सन्देह क्यों होने लगा! बस अकेला मेरा यह भांजा ही तमाम पूछता चलने लगा, 'कालीगंज की बहू कहां गई, कालीगंज की बहू कहां गई।' मैंने कहा, 'अरे, कालीगंज की बहू कहां जाएगी—कालीगंज में ही होगी।' मगर वह हरगिज़ सुननेवाला न था। वह उसी रात कालीगंज गया। वहां से जब वह लौटा तो मेरी घड़ी में रात का एक बज रहा था। वह वहां भी नहीं मिली। तब यह छटपट करने लगा। इसपर मैंने कहा, 'तुझे अगर इतना ही सन्देह है, तो पुलिस में खबर कर दे।' मेरे कहने पर ही वह आपके यहां गया···"

"तो आप यही कहना चाहते हैं कि यहां किसीका खून नहीं हुआ है?"

प्रकाश मामा ने कहा, "होता, तब तो पहले मैं ही जानता। फिर तो सबसे पहले मैं ही आकर आपको आगाह करता।"

पुलिस का काम बड़ा पक्का, खास करके कृष्णगंज की पुलिस का। उन्हें नवाबगंज के नरनारायण चौधरी के किसी भी काम में कभी भी कोई खोट नहीं मिली। इसके पहले नवाबगंज में जितनी भी बार लाठियां चलीं, जमीन दखल की गई, खास करके उस बार, जब कपिल पायरापोड़ा ने बरगद के पेड़ में फांसी लगाकर जान दी थी—किसी भी मरतबे कृष्णगंज के दरोगा को कहीं कोई गड़बड़ नहीं मिली। हर बार दरोगा जी आए, आकर बड़े मालिक के ऊपर वाले कमरे में बैठे, वहीं सब मामले का फैसला हो गया। कोर्ट तक जाने की नौबत नहीं आई।

और गज़ब की है यह बंसी ढाली की जमात। उन्हें जैसे किसी-किसी भी जमाने में सज़ा नहीं होने की। ये इतिहास के आदियुग में जैसे थे, आज भी वैसे ही हैं, और सुदूर भविष्य में भी रहेंगे। उनके लिए पेनल कोड बना; थाना-पुलिस, कोर्ट-कचहरी कायम की गई; जज-मजिस्ट्रेटों को मोटी तनखा देकर पाला जा रहा है। यह सब होते हुए भी जो यह कैसे सम्भव होता है, यह शायद सिर्फ नरनारायण चौधरी ही बता सकते हैं और बता सकता है उनके सन्दूक का रुपया। मगर रुपया आदमी तो नहीं, उसके मुंह भी नहीं होता, इसीलिए शायद उसके भाषा भी नहीं होती। यदि उसके जुबान होती.

वह कहता, 'मैं ही सब कुछ हूं। सृष्टि मैं ही हूं, स्थिति मैं ही हूं और ...स भी मैं ही हूं। ग्राम से मैं ही नरनारायण चौधरी हूं, मैं ही वंशी ढाली हूं ...र फिर पुलिस भी मैं ही हूं। वकील, जज, आसामी सब कुछ मैं ही हूं। ...सारा मन-प्राण से तुम लोग मुझे ही भजा करो।'

इसीलिए वंशी ढाली को उस रोज कोई परवाह नहीं थी। सदानन्द ...न कालीगंज की बहू की खोज में सारे घर की खाक छानता फिर रहा था, ...उधर वंशी ढाली वगैरह ने चुपचाप शरीफा पेड़ के नीचे अन्धेरे में चंडी-मंडप का ताला खोला। उन लोगों का काम बड़ा दुरुस्त होता है। पहली बार हड़बड़ी में अधूरा रह गया था। इसीलिए सदानन्द की गंजी और धोती में खून लग गया था। इस बार अब वह नहीं होने का। अबकी कमरे का फर्श, दीवार, खिड़की-दरवाजा सबको पानी से बिलकुल धो-पोंछ दिया उसके बाद चंडीमंडप पिछले दरवाजे से कुछ लोग लाश को लेकर चुपके से चंपत हो गए। पालकी के कहारों को भी गायब करने की तरकीब की गई। वे लोग मां जी के इन्तजार में खड़े ही थे।

एक ने जाकर पूछा, "हां जी, यहां कालीगंज के कौन लोग हैं?"

दुलाल ने कहा, "हम सब हैं बाबू, हम सब।"

उसने कहा, "अरे बाबा, तुम्हीं लोगों की तो खोज हो रही है। खोजते-खोजते हैरान हो गए। तुम लोग तो अहाते के अन्दर थे, यहां बाहर आने को किसने कहा?"

"जी, एक बाबू साहब ने तो हमें यहीं रहने को कहा। उन्हें हमारे वहां रहने से असुविधा हो रही थी।"

"क्या मुसीबत है। और उधर मां जी तुम लोगों को ढूंढ़ थकीं। खूब हो तुम लोग।"

"मगर मां जी हैं कहां?"

"अरे बाबा, वही तुम लोगों को बुला रही हैं। पालकी उठाकर मेरे साथ चलो···"

"लेकिन मां जी कहां हैं? किधर?"

चौधरी भवन में उस समय बत्तियां जल चुकीं थी। पोखरे के किनारे मिठाइयां बन रही थीं। वहां भी रोशनी जलाई गई थी। मछली और मांस कटा जा रहा था। एक तरफ लोहे के कड़ाह में गरम घी पर मैदे की पूरियां फफोले-सी फूल-फूल उठती थीं। घर के लोग-बाग खाएंगे, मालिक-मालकिन, कुटुम्ब-परिवार खाएंगे।

नयनतारा तीसरे ही पहर से कमरे में एक जगह बैठी हुई थी। पिछली रात कोठर में वह सो नहीं सकी थी। उसके बाद दिन में रोते-रोते ट्रेन पर सवार हुई। सबसे वह तमाम रास्ता घूंघट ही काढ़े आई। यहां जिसने उसका ज्यादा जतन किया है, वह है गोरी बुआ!

गोरी बुआ पर ही मानो सब भार हो। बोली, "अरी ओ, तुम लोग जरा हट जाओ बहनो, बहूरानी को जरा सांस लेने दो। अभी सब अपने-अपने घर

जाओ, बहू को देखने के लिए फिर कल आना।"

इसके बाद उसने नयनतारा का हाथ पकड़ा। बोली, "चलो बहूरानी, कुएं पर चलकर मुंह-हाथ धो लो।"

इन्तजाम अच्छा ही कर रखा था। कुएं के पास नई बहू के लिए एक ओर थोड़ी-सी जगह चटाई से घेर दी गई थी। आड़ करने के लिए। नई बहू तो औरों की तरह बदन खोलकर नहा नहीं पाएगी। उसके लिए कुछ आड़-ओट चाहिए। नहाएगी, साबुन लगाएगी, बदन धोएगी—गौरी बुआ ने कहा, "तुम शरमाओ मत बहूरानी! भूख-वूख लगे, तो कहना। अबसे इसे अपना घर ही समझो। पहले-पहल मां-बाप के लिए जी जरा कैसा तो करेगा, पर पति से मन लगते ही देख लेना, कृष्णनगर जाने को ही जी नहीं चाहेगा। पति ऐसी ही चीज होता है।"

सब बिलकुल ही नया-अजाना परिवेश। नयनतारा को हर कुछ बुरा ही लग रहा था। सिर्फ गौरी बुआ की बातें ही अच्छी लग रही थीं।

गौरी बुआ बोली, "मैं तुम्हारी सगी फूफी-सास नहीं हूं, तुम शायद सोच रही हो, सगी फूफी-सास हूं।"

नयनतारा क्या बोले। उसके मुंह से 'हां' 'ना' कुछ नहीं निकला।

गौरी बुआ ने कहा, "मुझसे शरम मत करो बहूरानी! बदन का ब्लाउज खोलो। मैं पीछे में साबुन लगा दूं···"

नयनतारा को फिर भी शरम आने लगी।

गौरी बुआ ने कहा, "उतारो-उतारो। पशु-पक्षी भी नहीं देख पाएगी तुम्हें। यह जगह तुम्हारे ही नहाने के लिए तो बनाई गई है।"

इस बार नयनतारा बोली, "आप लोग कहां नहाती हैं?"

"हम लोग? हम सब तो पोखरे में नहाते हैं। वहां बंधा हुआ घाट है। तुम्हारी सास भी वहीं नहाती हैं। अभी तुम यहीं नहाओ। आखिर जब कुछ पुरानी होगी, तो तुम भी हम लोगों की तरह पोखरे की सीढ़ी पर नहाओगी।"

तब तक गौरी बुआ नयनतारा की पीठ पर घस-घस करके साबुन मलने लगी थीं।

साबुन मलते-मलते ही गौरी बुआ ने कहा, "हम लोगों को इतनी छोटी-सी जगह में नहाकर सन्तोष नहीं होता। तुम्हारी सास और मैं तो पहले कितना तैरती थीं···तुम तैरना तो जानती हो बहूरानी?"

"तैरना? नहीं, मैं तो तैरना नहीं जानती।"

"तैरना नहीं जानती; तुम्हारे कृष्णनगर में पोखर-तालाब नहीं है, क्यों?"

नयनतारा ने कहा, "नहीं। हमारे यहां ट्यूबवेल है···"

गौरी ने कहा, "हां, मैंने देखा है। सदा की ननिहाल में ट्यूबवेल है। ढेंकी की तरह कूदना पड़ता है, समझ गई। मगर तुम सोचो मत, तैरना मैं तुम्हें सिखा दूंगी। दो-एक दिन हाथ-पांव पटकने से ही आ जाएगा। फिर देखना, पानी से बाहर निकलने को जी नहीं चाहेगा।"

उसके बाद बदन धुलाना, गीले कपड़े उतारकर दूसरे ... पाउडर लगाना, बाल काढ़कर जूड़ा बांधना—सब गौरी बुआ ने करा दिया।

नयनतारा के लिए नया कमरा। कमरे में नई खाट, नई अलमारी, नया बिस्तर।

गौरी बुआ नयनतारा को उसी कमरे में ले गई। बोली, यह रहा तुम्हारा सोने का कमरा। कल यहीं तुम्हारी सुहागरात होगी— ।"

नयनतारा ने देखा।

गौरी बुआ बोली, "नाक-कान बन्द करके किसी तरह आज की रात गुजारो—कल रात से तुम दोनों यहां सोओगे।"

नयनतारा इसके जवाब में कुछ नहीं बोली। सिर्फ कान से सुना। लेकिन कमरे में ज्यादा देर तक रहना नसीब नहीं हुआ। पीछे से सास का गला सुनाई पड़ा, "अरी ए गौरी, बहूरानी को खाने के लिए दिया ?"

गौरी को वास्तव में खाने वाली बात याद नहीं थी। बोली, "चलो बहूरानी ! तुम्हारी सास बिगड़ेगी, चलो। अभी यह सब देखकर क्या होगा। कल से तो तुम्हें आजीवन यहीं बिताना होगा। उस समय तो तुम लोग अन्दर से हुड़का लगाए रहोगी, किसीको अन्दर नहीं जाने दोगी। चलो।"

अन्दर जलपान का बन्दोबस्त था। सास ने कहा, "अभी ये मिठाइयां खा लो बहू ! रात का भोजन बाद में करना। उस समय भरपेट पूरी-तरकारी, मछली-मांस। गौरी, बहूरानी को ठण्डा पानी दे।"

मिठाइयों की ओर देखकर नयनतारा सोच रही थी, इतनी-इतनी मिठाइयां वह खाएगी कैसे ? कि बाहर किसी चीज की आवाज हुई। कैसी आवाज ? मुंह उठाते ही हठात् नजर पड़ गई, इसलिए उसने घूंघट काढ़ लिया। सदानन्द !

सदानन्द अन्दर आया, तो नयनतारा को देखकर वह ठिठक-सा पड़ा। उसके बाद बोला, "मां, मां कहां है ?"

मां के आने से पहले ही उसने गौरी बुआ को देखकर कहा, "बुआ, कालीगंज की बहू यहां आई है ?"

गौरी बुआ हैरान-सी हुई। बोली, "आई तो थी, पर चली गई—"

"कहां चली गई ? किधर ?"

इतने में भण्डार-घर की ओर से मां आ गई। बोली, "क्यों मुन्ने, क्या चाहिए ?"

सदानन्द ने पूछा, "कालीगंज की बहू अन्दर आई थी ?"

"क्यों, उससे तुझे क्या दरकार ?"

सदानन्द ने कहा, "दरकार है। तुम कहो तो, वह किधर गई ?"

"दरकार क्या है, सो तो बता। उसे तो न्योता नहीं दिया गया था, कुछ भी नहीं, फिर भी वह यहां क्यों आई ? फिर शायद तुझे अपने यहां ... जाकर रोक रखेगी। हुंह, वही तो आई, तीन रुपये का एक गमछा दे... वह नखरा। जैसे कि हम गमछा नहीं खरीद सकते, गमछा खरीदने का पै...

हमारे पास नहीं है। नखरा दिखाने आई दईमारी…"

सदानन्द नाराज हो गया। बोला, "मैं तुम्हारी बातें नहीं सुनना चाहता, मैं जो पूछ रहा हूं, वही बताओ। बताओ कि कालीगंज की वहू अन्दर आई थी या नहीं?"

मां ने कहा, "आई ही थी तो तेरा क्या? तुझसे उसका सम्पर्क ही क्या?"

सदानन्द ने कहा, "अपने सम्पर्क की बात मैं आप समझूंगा। मैं जो पूछ रहा हूं, पहले उस बात का जवाब दो तुम।"

नयनतारा चुपचाप सब सुन रही थी। इसी आदमी के साथ कल उसका ब्याह हुआ है। उसे आदमी यह बड़ा गुस्सैल लगा। मगर यह कालीगंज की बहू कौन है? ओ, याद आया, कोहबर में इसकी चर्चा आई थी। मगर गजब, आदमी यह इतना गुस्सैल है, यह चेहरे से तो नहीं लगता।

तब तक सदानन्द वहां से चल दिया था। रात और ज्यादा हुई। औरतों की भीड़ में बैठकर और भी बहुत-सी औरताती बातें सुनने में आईं। सभी उसके रूप की प्रशंसा कर रही थीं। सब कह रही थीं, "ऐसी रूपवती बहू विरले ही होती है!" सुनने में नयनतारा को अच्छा लगा। अपने रूप की तारीफ उसने पहले भी सुनी है। बहुत। मैके के लोग कहा करते थे, "यह छोरी जिसके घर जाएगी, उसका घर उजाला हो जाएगा।" कहते थे, "जिसके साथ इसका ब्याह होगा, वह लड़का बड़ा भाग्यवान होगा।" तो? उसके सामने उसने ऐसी रुखाई कैसे की? महज चौबीस घण्टे के बाद ही तो उस आदमी के साथ उसे एक कमरे, एक बिस्तर में रहना होगा। फिर? उसीके सामने उसने मां से ऐसी बकझक क्यों की। उसका रूप देखकर उसे ठक रह जाना चाहिए था। वह एक दिन के लिए भी अपना गुस्सा नहीं संभाल सका? तो कैसे चरित्र का आदमी है वह?

उसके बाद सब खाने बैठी। उन्हीं सबके साथ नयनतारा भी बैठी। खाते-खाते जाने कितनों की कितनी बातें उसके कानों में गईं। कितना हंसी-ठट्ठा, कितने किस्से। सबकी नजर गई बहू पर। सास ने उसकी पत्तल पर अच्छी-अच्छी चीजें रख दीं। नयनतारा को लगा, सास भली है।

एक बार सास ने कहा, "कहां बहूरानी, तुम तो कुछ खा नहीं रही हो? खाओ, नहीं खाने से कैसे काम चलेगा? मछली नहीं खा रही हो, मिर्च पड़ गई है। मिर्च नहीं खाती हो शायद।"

नयनतारा ने गरदन हिलाकर इशारे से बताया, "मिर्च वह खाती है।" फिर बात यह थी कि मिर्च वह खाती हो चाहे नहीं, मां से उसे सबमें हां कहने की ही शिक्षा मिली है।

मां कहती थी, "सुसराल में सास जो कहे, वही सुनना बिटिया! ना नहीं कहना।"

"मिर्च खाती हो? तो एक टुकड़ी मछली और दूं?"

गौरी बुआ ने कहा, "पूछती क्या हो भाभी, दो न एक टुकड़ी।"

खाते-खाते नयनतारा को केवल मां की ही बात याद आने लगी। मां भी

से इसी तरह खिलाती और झिड़कती थी—जाने किस घर में जाओगी, तब
ायद पेट भी नहीं भरेगा। अभी दे रही हूं, सो खालो। जब लड़की होकर पैदा हुई
ो, तो हर हालत के लिए तुझे तैयार ही रहना पड़ेगा बिटिया! ब्याह से पहले
मुझे कितनी ज़िद थी, अब वह कहां चली गई, याद भी नहीं आता।

अनचीन्हे मुखड़े, अजानी जगह, अदेखा परिवेश। इसलिए नयनतारा को
बार-बार मां की बात याद आने लगी।

जब वह सोच रही थी, गौरी बुआ एकाएक बोल उठी, "चलो बहूरानी,
अब सोने चलो..."

बड़ी-सी खाट। ससुर के सोने का कमरा। आज नयनतारा के सोने की
व्यवस्था वहीं की गई थी। एक तरफ सास, दूसरी तरफ बहू। मैके में भी उम्र
होने के साथ ही मां उसे बगल में लेकर सोती थी। आज ही पहली बार दूसरे
बिछौने पर दूसरे के साथ सो रही थी। कल से फिर एक-दूसरे आदमी के साथ
सोना होगा उसे।

धीरे-धीरे चारों तरफ की सारी आवाज़ें थम गई। रात हो चुकी। हल्की-
सी तन्द्रा में उसे लगा, कृष्णनगर में मां भी मानो उसके बारे में सोच रही है।
अकेली लेटी-लेटी मां को भी उसीकी तरह नींद नहीं आ रही है। उसे भी अपनी
मुन्नी की याद आ रही है। सोचती है, वहां मुन्नी भी सास के साथ लेटी-लेटी
मां के बारे में सोच रही है। विचित्र है। औरतों के जीवन को ही भगवान ने
एक विचित्र धातु से बनाया है। छुटपन से खिला-पिलाकर, पाल-पोसकर
दूसरे के हाथों सौंप देना पड़ता है। उसके बाद फिर वह वहीं रहेगी। सदा के
लिए वहीं रहेगी। मां-बाप की नहीं सोचेगी। अपनी नई दुनिया में डूबी रहेगी
वह। उसी दुनिया को अपनी समझकर वह जी-जान से जकड़े रहेगी। यही
नियम है। आदमी के जीवन में संसार के आदि काल से शायद यही नियम ही
चला आ रहा है।

"क्यों बहूरानी, नींद नहीं आ रही है, क्यों?"

नयनतारा के ज़रा-सा हिलते ही सास शायद ताड़ गई।

सास ने कहा, "नई जगह है, इसलिए असुविधा हो रही है। दो दिन
के बाद आदत पड़ जाएगी। सो जाओ, सो जाने की कोशिश करो। कल बहू-
भात है, सवेरे से ही चहल-पहल शुरू हो जाएगी। फिर पल के लिए भी आंखें
बन्द नहीं कर पाओगी। जितना बन सके, सो लेने की चेष्टा करो।"

दोनों आंखें बन्द करके नयनतारा फिर मां की बात ही सोचने लगी। म
की बात सोचते ही मन कैसा तो खुशी से भर जाता। उस अन्धेरे में उस सम
उसे मां के बारे में सोचना ही अच्छा लगता। और, पता नहीं कब नींद
उसकी आंखें बन्द हो आईं।

वह सपना देखने लगी। सपना ठीक नहीं, मगर जैसे सपना हो ही।
उदास देखकर बाबूजी मानो दिलासा दे रहे हैं, "मुन्नी के लिए तुम सोचो म
वह बहुत अच्छे घर में गई है। कितना बड़ा घर, कितनी जगह-जायदा
उन्हें। वहां उसे कोई तकलीफ नहीं है, वह बहुत ही आराम से है। उसकी सो

अपना जी छोटा न करो तुम…"

आते समय नयनतारा से लिपटकर मां ने उसके कपाल को चूमा था। कहा था, "आजीवन सुहागिन बनी रहो, पति का मन रखकर चलना, आशीर्वाद करती हूं, हाथ की चूड़ियां और मांग का सिन्दूर अक्षय हो।"

मां बोल तो रही थी, पर जितना ही लड़की रो रही थी, उतना ही मां भी रो रही थी। उन्हें देखकर आसपास के लोगों की आंखें भी सूखी नहीं रही थीं। ट्रेन का समय होता जा रहा था। प्रकाश मामा बार-बार तकाजा कर रहे थे, "क्यों समधी जी, इतनी देर क्यों हो रही है, उधर ट्रेन खुल रही होगी—जरा जल्दी करने को कहिए।"

हठात् तन्द्रा टूट गई। तन्द्रा टूटते ही नयनतारा हड़बड़ा कर चारों ओर देखने लगी। बिलकुल नया परिवेश। यहां कृष्णनगर की तरह देर से जगने से काम नहीं चलेगा। बगल की ओर देखा, जगह खाली पड़ी थी। सास जाने कब उठकर चली गई थीं, उसे पता नहीं। उसने भी अब देर नहीं की। उठ बैठी। एकाएक याद आ गया, घूंघट काढ़ना होगा। पहले की तरह नंगे सिर रहना, नहीं चलेगा।

"हाय राम, तुम जग गईं?"

गौरी बुआ चुपचाप झांककर देखने आई थी, वहू जग गई या नहीं। उसे जगी पाकर पूछा, "नींद तो आई थी बहूरानी? चाय पिओगी? चाय पीने की आदत है?"

नयनतारा ने कहा, "नहीं।"

"नहीं है आदत? आदत हो तो बताओ। कहने में शरमाना मत। यहां चाय बनती है। चाय पीने वाले यहां हैं। अपने मामा-ससुर को देखा है न, जो तुम्हें कृष्णनगर से यहां ले आए, वह चाय पीते हैं। चाय के बिना उनका एक घड़ी भी नहीं चलता।"

घर में लोगों का शोरगुल फिर शुरू हो गया था। आज बहूभात है। तीसरी पहर के बाद से लोगों के आने का तांता बंध जाएगा। चारों ओर मेहराब बांधे गए हैं। कृष्णनगर से पिताजी फूलशय्या के सामान भेजेंगे। विपिन आएगा। मां और बाबूजी का समाचार मालूम होगा। शायद मां-बाप भी आएं। अभी से दिन-भर किसीको दम मारने की छुट्टी नहीं।

"लो-लो बहू, कुएं पर पानी रख दिया गया है, कपड़े लत्ते ले लो, नहा लो जाकर। चलो, मैं बता देती हूं, कौन-सी साड़ी पहनोगी।"

सवेरे इस घर का फिर जुदा ही चेहरा हो गया। कल रात उसने और ही चेहरा देखा था यहां का। चारों तरफ जंगल-झाड़ी, पेड़-पौधा, बाग-पोखर देखकर कैसा जगल-जंगल-सा लगा था। मगर अभी धूप निकलने के बाद सब साफ-सुथरा हो गया है।

तब तक गांव से कुछ और बहू-बेटियां उसे देखने आ पहुंचीं। जो कल शाम को नहीं आ सकी थीं, वह सब आज दिन की रोशनी में नई बहू को देखेंगी। गरीब गांव की बहू-बेटियां। खाली बदन, नंगे पैर। जमीं

हू को दूर से सिर्फ एक नजर देखेंगी। शाम को आकर भर पेट खाएंगी, बांधकर ले जाएंगी।

हठात् कौन तो अचानक दौड़ता हुआ अन्दर आया।

"चाची जी, वाहर पुलिस आई है…"

"पुलिस ? पुलिस वालों को किसने न्योता किया है रे ? पुलिस किस ए आई ? वहू को देखने के लिए क्या ?"

वात तब तक चारों ओर फैल गई। पुलिस-दरोगा यहां किसलिए आते ! कोई चोरी-डकैती हुई है ! या कि खून-खरावी ?

खवर आई, दरोगा जी ऊपर बूढ़े मालिक के कमरे में वात कर रहे हैं…

"तो वह कहां हैं ? तुम लोगों के छोटे मालिक ?"

"छोटे वावू भी तो वहीं हैं।"

"और प्रकाश ? वह कहां गया ? उसे एक वार वुला तो दे वेटे…"

तुरन्त गाला वावू को वुलाने के लिए आदमी दौड़ पड़ा। नयनतारा के कानों सारी वातें पहुंच रही थीं। उसे भी कैसा तो अजीव-सा लगा। चोरी ! डकैती ! खून ! किसने क्या चुराया ? और अगर खून ही हुआ हो तो किसने किसका खून किया ?

वह लड़का फिर दौड़ता हुआ अन्दर आया। सास ने पूछा, "क्यों रे, गाला वावू ने क्या कहा ? आ रहा है ?"

"जी चाची जी ! मैंने सुना, जाने किसने तो यहां किसका खून किया है। पुलिस आई है।"

"खून।"

नयनतारा का दिमाग क्षण ही भर में चों-चों करके घूमने लगा। खून ! खून यहां कव हुआ ! कौन मारा गया ! किसने खून किया ! किसका खून किया !

नई जगह, नये परिवेश में नयनतारा को डर-सा लगने लगा। यह कैसे घर में उसका व्याह हुआ। व्याह के दूसरे ही दिन खून। गौरी वुआ सामने से जा रही थीं। नयनतारा ने उसे वुलाया, "वुआ जी, मैंने सुना, पुलिस आई है, किसीका खून हुआ है सुना।"

गौरी वुआ ने हंसकर वात को उड़ा दिया। वोली, "क्या पता वहूरानी, किसका खून हुआ, किस अभागे का नसीव फूटा…"

नयनतारा ने फिर भी नहीं छुटकारा दिया। वोली, "अभी-अभी कौन तो आकर कह गया, तुमने सुना नहीं ?"

गौरी वुआ ने कहा, "मुझे क्या कुछ सुनने का समय है वहूरानी ! सारा झमेला सवने मेरे मत्थे मढ़ दिया है। तुम खामखा इन वातों से परेशान न हो, यह सव सोचने के लिए इस घर में वहुत सारे लोग हैं। कुछ ही देर में सुहागरात का सामान आएगा, खाने वाले लोगों के खाने-पीने का वन्दोवस्त करना होगा। इसके सिवाय पूरे गांव को न्योता दिया गया है, यह सारी ही झंझटें मेरे

सिर है…"

कहते-कहते गौरी बुआ किधर तो चली गई।

घर में उस समय काम की बेहद भीड़। किसीको भी समय नहीं है मानो। गांव की कुछ बहू-बेटियां, सिर्फ मुंह बाए उसकी ओर ताक रही थीं। जैसे उन लोगों को नयनतारा के चेहरे में एक अनोखी ही चीज की खोज मिली है। जैसे नयनतारा उन सब जैसी स्त्री नहीं है। वह जैसे किसी और ही जगत की जीव हो। वह सब गौर से उसकी साड़ी देख रही थीं, गहने देख रही थीं, उसका रंग देख रही थीं। माथे का जूड़ा देख रही थीं। आंखों पर आंखें रोपकर सब जैसे उसे निगल जाना चाहती हों।

फिर एकाएक उस आदमी का गला सुनाई पड़ा, "मां-मां, कहां हो?"

नयनतारा ने अपना घूंघट और बड़ा खींच लिया।

जीवन में मृत्यु का एक सहज सम्बन्ध रहना ही है। हम चाहे इसे मानें या न मानें। एक दिन सदानन्द का जन्म हुआ था इस घर में। उस दिन यहां बड़ी धूमधाम हुई थी। इन्हीं दादाजी ने उस दिन सोने का हार देकर इसका मुंह देखा था। मुकदमे की सुनवाई छोड़कर राणाघाट से चले आए थे। सोचा था, यह जन्म, यह आविर्भाव एक शुभ सूचना है। अपने वंश की बुनियाद सदा के लिए प्रतिष्ठित करने को ही यह जन्म है। लेकिन उस दिन की उस शुभ सूचना को इतने दिनों के बाद इस हत्या से, इस मृत्यु से क्यों अभिषिक्त करना पड़ा? सदानन्द के जीवन के क्रम-विकास के लिए यह भी क्या इतना ही अनिवार्य था। क्या जाने! नहीं तो शायद सदानन्द का जीवन ऐसा नहीं होता। शायद हो कि सदानन्द भी दूसरे दस लोगों की तरह इसी नवाबगंज का बाशिन्दा होकर अपने दादा और बाप की तरह प्रजा, मालगुज़ारी और मरिचने के कागज़-पत्तर में ही अपना जीवन बिता देता।

लेकिन नहीं, जब चौधरी परिवार के सब लोग बहूभात की तैयारी में बेहद व्यस्त थे, तो सदानन्द एक बार कालीगंज और एक बार थाना पुलिस में परेशान-सा आकाश-पाताल एक करता फिर रहा था।

लेकिन दरोगा जी को कहीं भी कोई गड़बड़ी नहीं मिली। शरीफे के पेड़ के नीचे, जहां बंशी ढाली का बसेरा था, सरेज़मीन तहक़ीक़ात की गई। वहां किन्तु सब कुछ सहज-स्वाभाविक था। कहीं-कोई शक-शुबहा की गुंजाइश नहीं थी। अथच सदानन्द के कल यहीं किसी औरत की चीख सुनी थी। अन्धेरे में साफ-साफ कुछ दिखाई जरूर नहीं पड़ा था। परन्तु उसे लगा था, यहां कोई किसीको मारकर टाल गया है। उस समय तक भी मानो लाश बिलकुल ठंडी नहीं पड़ी थी। कोशिश करने से मानो उस समय भी उसे बचाया जा सकता था। और, वहीं पर उसके हाथ और कपड़ों में खून लगा था।

दरोगा जी ने कहा, "मुझे तो यहां कुछ भी अस्वाभाविक नहीं दीखता…"

दरोगा जी ने वंशी ढाली से पूछताछ की। वंशी ढाली ने कहा, "हुजूर, मैं तो रात को यहीं सोया था, मेरे वदन में, कपड़ों में तो खून नहीं लगा।"

"तो फिर सदानन्द वाबू की गंजी में लहू कहां से लगा ?"

"वह मैं कैसे जानूं हुजूर।"

"अच्छा, घर में कहीं मांस-मछली काटी जा रही थी क्या ?"

"जी हुजूर। घर में आज वहुतेरे लोगों का न्योता है। नन्हे वावू उधर गए थे। हो सकता है, खून वहीं लगा हो···"

वंशी ढाली ने ही नहीं, प्रकाश मामा ने भी यही कहा।

सदानन्द ने कहा, "अगर यही मान लूं दरोगा जी, तो कालीगंज की वहू आखिर कहां चली गई ? मैं कल रात ही कालीगंज गया था। वह तो लौटकर वहां नहीं गई। उनकी पालकी और पालकी के कहार भी नहीं पहुंचे। आखिर ये सारे के सारे लोग कहां गए ?"

दरोगा जी ने कहा, "इसकी पड़ताल कालीगंज के दरोगा करेंगे। कालीगंज का इलाका मेरे अख्तियार से वाहर है।"

"तो ? एक आदमी का खून हो गया और आप लोग कोई भी उसका कोई प्रतिकार ही नहीं करेंगे ? एक निर्दोष महिला बिना किसी कारण के अपनी जान से हाथ धो बैठी ? न हो तो आप एक वार स्वयं कालीगंज चलिए। खुद चलकर वहां पड़ताल कीजिए···"

सदानन्द को उस समय तक इस बात का पता नहीं था कि पाप के भी जड़ होती है। पेड़ की जड़ों की तरह पाप की जड़ भी पूरे देश में, सारे संसार में अपनी शाखा-प्रशाखा फैलाकर अस्तित्व को कायम रखती है। यह भी नहीं जानता था कि जो दरोगा नवावगंज में खून की तहकीकात करने में कोई गड़वड़ी नहीं पाता, उसी दरोगा के पाप का लहू अपनी जड़ की शाखा कालीगंज के दरोगा तक फैलाए हुए है। वंशी ढाली जैसों के पाप का पता लगाने की मजाल सिर्फ नवावगंज के ही क्या, दुनिया के किसी गंज के दरोगा में शायद नहीं है।

सदानन्द लेकिन हथियार डाल देने वाला नहीं था। उसने फिर भी कहा, "तो मैं कालीगंज थाना जाता हूं···"

प्रकाश मामा ने कहा, "तू क्या सचमुच पागल हो गया रे सदा ?"

सदानन्द ने कहा, "पागल मैं हूं कि तुम लोग हो ? तुम सभी पागल हो। और सिर्फ पागल ही नहीं, शैतान···"

वोलकर सदानन्द वाहर चला जा रहा था। प्रकाश मामा ने उसे पकड़ लिया। वोला, "कहां जा रहा है तू ?"

सदानन्द ने कहा, "कालीगंज···"

प्रकाश मामा ने कहा, "तू कालीगंज जाएगा, ? आज यहां 'वहूभात' है, तेरी सुहागरात है···"

"वहूभात और सुहागरात है तो मेरा क्या ?"

"मतलब ? तेरे व्याह का वहूभात है, तू सुहागरात मनाएगा, तेरे ही लिए

तो यह सारा कुछ है। मैं जो जान देकर इतनी मेहनत कर रहा हूं किसके लिए? तेरे ही लिए न? यह जो हजारों-हजार रुपये पानी की तरह बहाए जा रहे हैं, तेरे और तेरी बहू के लिए ही न? मजा तो तू ही लूटेगा, हम लोग तो सिर्फ अंगूठा चूसेंगे।"

"लेकिन यह इतना कुछ अगर मेरे लिए है, तो तुम लोगों ने मेरा रुपया क्यों नहीं दिया?"

"रुपया?"

"हां। कालीगंज की बहू को जो दस हजार रुपये देने की बात थी, दादाजी ने वह दिया क्यों नहीं? रुपया दे देने से तो कोई झमेला ही नहीं होता। मैं भी कुछ नहीं बोलता। रुपया तो खैर नहीं ही दिया, ऊपर से, रुपया देना पड़ जाए कहीं, इसलिए बंशी ढाली से कालीगंज की बहू को मरवा तक डाला।"

प्रकाश मामा ने कहा, "मरवा डाला? तू क्या समझता है, मरवा डाला होता तो पुलिस-दरोगा को पता नहीं चलता? खून कहने से ही क्या खून किया जा सकता है? क्या बकवास कर रहा है तू?"

सदानन्द की आंखों से तब तक आंसू बहने लगे थे।

उसकी आंखों में आंसू देखकर प्रकाश मामा चौंक गया। बोला, "अरे, तू रो रहा है? आज एक इतना बड़ा शुभ दिन है और तू आंसू बहा रहा है? छिः···"

सदानन्द को मानो बोलने की ताकत नहीं रह गई थी। वह बोला, "मुझे तुम छोड़ दो मामा, मुझे छोड़ दो।"

प्रकाश मामा ने सदानन्द को और भी जोर से जकड़ लिया। बोला, "देख, पागलपन मत कर सदा, बचपना करने की अब उमर नहीं रही तेरी। यह सब दस साल पहले करता, तो सोहता भी। अब लोग तुम्हारी शिकायत करेंगे। इसके सिवाय कृष्णनगर से अभी ही सुहागरात का सामान आएगा, तेरे सास-ससुर आएंगे और फिर गांव-भर के लोगों को न्योता दिया गया है—ये सब लोग सुनेंगे, तो क्या कहेंगे भला!"

उसी समय कीर्तिपद बाबू उधर होकर आ रहे थे। उन्होंने यह देखा तो अवाक् रह गए। प्रकाश उनके नाती को इस तरह कसकर पकड़े हुए क्यों है? वह करीब आ गए। पूछा, "क्यों रे प्रकाश, मुन्ने को उस तरह से पकड़े हुए क्यों है तू? क्या किया है इसने?"

प्रकाश सदानन्द को उसी तरह से पकड़े ही रहा। बोला, "जरा अपने नाती की करतूत तो देखिए फूफा जी! घर से भागा जा रहा है···"

"भागा जा रहा है? मतलब? क्यों भागा जा रहा है? कहां भागा जा रहा है?"

प्रकाश मामा ने कहा, "कालीगंज।"

"कालीगंज? कालीगज में किसके पास? मुझे जरा खोलकर तो बता प्रकाश! कल से ही कालीगज की बहू के बारे में सुनता आ रहा हूं। कौन

है वह ? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

प्रकाश मामा ने कहा, "वह मैं आपको बाद में समझाकर कहूंगा, अभी इसे नहीं पकड़ने से बड़ी बदनामी हो जाएगी।"

कीर्तिपद बाबू ने कहा, "बाद में तो समय मिला तुझे। पुलिस का दरोगा क्यों आया था, तुम लोगों ने मुझे यह भी तो नहीं बताया। सब एक ही बात कह रहा है, फिर बताएंगे, अभी समय नहीं है। फिर कब समय होगा? मैं मर जाऊंगा तो कौन सुनने आएगा?"

प्रकाश मामा ने उनकी बात पर कान नहीं दिया। वह आवाज़ देने लगा, "दीनू...ऐ दीनू..."

दीनू के आने से पहले छोटे चौधरी के कानों में प्रकाश की आवाज़ पहुंची। बरामदे में से उझककर ही वह चले आए। अकेले वही नहीं, यह हाल देखकर बहुतेरे आ जुटे।

दीनू दौड़ता हुआ आया, "मुझे पुकार रहे थे साला बाबू?"

तब तक वहां खचाखच भीड़ हो गई। जो साधारण लोग काम कर रहे थे, काम छोड़कर वह सब भी आ पड़े। उधर, जहां मिठाई बन रही थी, बड़े ज़ोर-शोर से काम चल रहा था। बड़े-बड़े बर्तनों में भर-भरकर मिठाइयों को भंडार में रखते जा रहे थे। पोखरे के किनारे आटा गूंधा जा रहा था। शाम के बाद से ही पूरियां निकाली जाएंगी। उससे पहले, दाल, मछली का कलिया, मांस पका कर भंडार में रक्खा जा रहा था।

छोटे चौधरी विचक्षण आदमी हैं। वह कभी भी ज्यादा नहीं बोलते। उन्होंने ज़रा-सा सुना और बोले, "प्रकाश, यहां से हट जाओ। बड़ी भीड़ हो गई। मुन्ने को चंडीमंडप ले चलो, वहीं पूरी बात सुनूंगा।"

कीर्तिपद बाबू ने एक बार सिर्फ इतना ही कहा, "अजी बात क्या है, खोलकर ही कहो न। मैं तो कुछ समझ नहीं पा रहा हूं।"

चौधरी जी ने ससुर की ओर मुखातिब होकर कहा, "बात कुछ भी नहीं है। इसके लिए आप चिन्ता न करें।"

इतना ही कहकर वह सदानन्द को प्रकाश के साथ चंडीमंडप की ओर ले चले। कीर्तिपद बाबू लेकिन जमाई की बात से संतुष्ट नहीं हुए। वह भी उन लोगों के पीछे-पीछे चले। बोले, "चिन्ता कैसे नहीं करूं? हर बात में तुम लोग मुझे सोचने को मना ही करते हो। आखिर मैं भी तो एक आदमी ही हूं न। मैं चूंकि बूढ़ा हो गया हूं, इसलिए मुझे कुछ भी जानना नहीं चाहिए?"

मगर उन जैसे बूढ़े आदमी की बात कौन तो सुनता है! उन्होंने जो इतनी दौलत इकट्ठी की है, वह जो इतने-इतने रुपये के मालिक हैं, इसके लिए भी कोई उन्हें नहीं गिनता। पीछे-पीछे जाकर सबके सामने वह भी चंडीमंडप में जा खड़े हुए। बोले, "तुम लोग मुझे कुछ बता क्यों नहीं रहे हो? मैं बूढ़ा हो गया हूं तो क्या तुम्हारी कोई मदद भी नहीं कर सकूंगा?"

छोटे चौधरी अपने ससुर के इस बेकार-के कौतूहल को बरदाश्त नहीं कर पा रहे थे। बोले, "आप बूढ़े हो गए हैं। हम लोग आपको इन मामलों में तकलीफ

देना नहीं चाहते। आप अपने कमरे में बैठकर तंबाखू पीजिए न। दीनू आपको चिलम चढ़ाकर दे आता है…"

"रुको भी। हर बात में मेरी उम्र का हवाला क्यों ?" कीर्तिपद बाबू इस बार उखड़ गए। कहने लगे, "बात क्या है, यह कहो।"

उसके बाद किसीका ख्याल न करके उन्होंने सीधे सदानन्द से पूछा, "क्या हुआ है, यह तो बताओ भैया ! तुम्हें हुआ क्या है ? तुम रो क्यों रहे हो ? जब से मैं आया हूं, देख रहा हूं, तुम कैसे तो हो गए हो। उबटन की रस्म के दिन तुम कहां जाकर छिप गए। उसके बाद आज सवेरे सिपाही-दरोगा आकर क्या-क्या जांच-पड़ताल कर गया। और अब यह किस्सा। कहो तो, दरअसल बात क्या है ? मुझसे छिपाना मत…"

तब तक कैलास गुमाश्ता आ पहुंचा। बोला, "समधी जी, बूढ़े मालिक आपको जरा याद कर रहे हैं।"

कीर्तिपद बाबू ने कहा, "रुको भी भैया, पहले इसका कोई निबटारा हो ले…"

भीड़ में से धीरे-धीरे लोग आ-आकर चंडीमंडप के सामने जमा हो गए थे। अब इसपर प्रकाश मामा की नजर पड़ी। वह झिड़कता हुआ उनकी ओर गया, "ऐ, सब यहां क्या करने के लिए आ गया, काम-धंधा नहीं है ? जा, भाग यहां से…"

होते-हवाते बात अन्दर महल तक भी पहुंच गई कि मुन्ना घर से भागा जा रहा था, साला बाबू ने उसे पकड़कर रक्खा है। छोटे बाबू सबको चंडीमंडप में बुला ले गए।

प्रीति भंडार-घर में व्यस्त थी। सुनते ही बोली, "क्यों, मुन्ना चला क्यों जा रहा था ? जा कहां रहा था ?"

गौरी बुआ ने कहा, "चुप भी रहो भाभी, इतना चिल्लाओ मत। आखिर बात नई बहू के कानों तक पहुंच जाएगी, जरा आहिस्ता से ही बोलो।"

बूढ़े चौधरी अपने कमरे में छटपट कर रहे थे। कैलास गुमाश्ता लौट आया। उन्होंने पूछा, "क्या हुआ कैलास, समधी जी नहीं आए ?"

"जी हां, आ रहे हैं।"

"मुन्ने को रोक रखने के लिए तो कह दिया है न ? परसों की तरह फिर कहीं निकल न भागे।"

"जी हां, कह दिया है। छोटे बाबू ने पकड़कर रक्खा है।"

"किसी तरह अगर खिसक पड़े ? ऐसा न हो कि सुहागरात के दिन एक बखेड़ा खड़ा कर दे।"

कैलास गुमाश्ता ने कहा, "नहीं-नहीं। उसके लिए काफी चौकसी कर दी गई है। नन्हे बाबू को अब अकेला छोड़ा ही नहीं जाएगा। छोटे बाबू ने बंशी को भी ताकीद कर दी है कि उनपर नजर रक्खे।"

इतने में कीर्तिपद बाबू आ पहुंचे। बोले, "मैं तो बड़ी चिन्ता में पड़ गया हूं समधी जी, पहले मुन्ना ऐसा नहीं था। बचपन में कैसी मजे-मजे की बातें करता

था। अब विलकुल वदल गया है।"

बूढ़े चौधरी ने कहा, "हां, बड़ा ढीठ हो गया है। किसीकी नहीं सुनता।"

कीर्तिपद वावू ने कहा, "यह अच्छा ही किया कि उसकी शादी कर दी। शादी कम ही उमर में कर देना अच्छा होता है।"

बूढ़े चौधरी ने कहा, "शादी तो और भी पहले कर देता, तो अच्छा होता। लेकिन मन लायक लड़की नहीं मिल रही थी। इसीलिए..."

कीर्तिपद वावू प्रवीण विचक्षण व्यक्ति हैं। बोले, "देखिए समधी जी, चूंकि उम्र हो गई, इसलिए अव हम लोगों को कोई सुनना नहीं चाहता। जैसे हम लोग कभी कम उम्र के नहीं थे। ऐसा ही होता है समधी जी, ऐसा ही होता है..."

बूढ़े चौधरी वोले, "यह सव तो अव सोचिए ही मत समधी जी, हम लोगों का जमाना लद गया, हम लोग अव रद्द हो गए..."

कीर्तिपद वावू ने पूछा, "मगर वात क्या है, कहिए तो, मुन्ना ऐसा ढीठ कैसे हो गया? कालीगंज की वह कौन है? उसे हुआ क्या है?"

बूढ़े चौधरी ने कहा, "अजी साहव, सिरफिरे की वात का भी कोई मतलव होता है? कहावत है न, पागल क्या नहीं कहता और वकरी क्या नहीं खाती। आप तंवाखू पीजिए। कैलास, कह दो—समधी जी को चिलम चढ़ाकर दे जाए।"

लेकिन यह प्रसंग ज्यादा देर तक नहीं चला। बीच में ही वाधा पड़ गई। अचानक नीचे से शंख फूंकने की आवाज़ आई।

"लगता है, कृष्णनगर से सुहागरात का सामान आ गया। कैलास, जाकर देख आओ तो।"

उस समय नीचे सचमुच ही हलचल-सी मच गई थी। सुहागरात के लिए सारे सामान लेकर जमात का अगुआ होकर विपिन ही आया था। वड़ी दूर से नेग के सामान आए। शंख की आवाज़ सूनते ही वस्ती के वड़े-बूढ़े, वच्चे दौड़े-दौड़े आए। वाहर एक आदमी होंगे कम-से-कम। सवके साथ सामान। रेल-वाजार से चार वैलगाड़ियों में भरकर सामान ले आए थे वे लोग। वड़ी-वड़ी परातें, हांडी, थाली, फुलभरी टोकरियां, मिठाइयां, दही की हंड़िया, चून की हुई साड़ियां, जमाई के लिए कुरता-धोती।

"महाराज जी, पूरियां निकाल लो, वारह आदमी के लिए। सव ए[...] साथ खाने के लिए वैठेंगे..."

जनानखाने में भी तैयारी की धूम मच गई। चौड़ी ज़री कोर की सा[...] पहनकर घर की मालकिन सव ओर निगरानी रख रही थीं। आस-पास घरों में वड़ी-बूढ़ियां आकर राय-सलाह दे रही थीं। कोई पान लगा रही [...] कोई तरकारी काट रही थी।

विहारी पाल की वहू लगातार कई दिनों से आ रही थी। काम-काज [...] घर के वहुत रात गए घर लौट जाती।

उस दिन वह वोली, "हां वहू, सुना, सदा को क्या तो हो गया है?"

प्रीति ने कहा, "होगा क्या मौसी जी, कुछ भी तो नहीं हुआ है।'

"मैंने सुना, सदा कह रहा, वह घर से भाग जाएगा। मेरे वो बरवारी-थान गए थे, वहां से क्या-क्या तो सुन आए हैं···"

प्रीति ने कहा, "क्या पता मौसी जी ! आप तो कई दिनों से आ रही हैं। अपने कानों सुना है आपने कुछ ?"

बिहारी पाल की बहू ने भी वही कहा। बोली, "मैंने तो अपने उनसे वही कहा। कहा, सदा को अगर बहू पसंद नहीं आती, तो इसकी भनक मुझे तो जरूर मिलती।'"

प्रीति ने कहा, "टोले-मुहल्ले की बात तो छोड़ ही दीजिए मौसी जी ! टोले के लोग तो बहुत कुछ कहते हैं। आपने तो अपनी आंखों बहू को देखा। आप ही कहिए, ऐसी बहू आपने कितनों के यहां देखी है ? हम क्या ऐसी बहू लाए है कि लड़के को नापसन्द हो ? कोई कहे तो भला।

परन्तु उस समय इतनी बात करने का वक्त नही था किसीको। फिर भी बिहारी पाल की बहू ने कहा, "तुम्हारा लड़का गुणवान है बहू, उसने पास किया है। तुम अगर ऐसी बहू नहीं लाओगी, तो कौन लाएगा ? इतनी सामर्थ्य किसे है ?"

बातों के बीच में ही गौरी बुआ टपक पड़ी। बोली, "सुना भाभी, कृष्णनगर से तुम्हारी समधी-समधिन नही आ रही है।"

"क्यों ?"

"सुना तो यही। जो लोग वहां से आए हैं उन्होंने बताया। कहा, पंडित जी तो यहां कुछ खाएंगे-पिएंगे नही। इसीलिए नही आ रहे हैं। रास्ता भी बड़ा लम्बा है जो लोग आए हैं, बहू से मिलना चाह रहे हैं।"

"तो उन्हें बहू के पास ले जा न।"

नयनतारा उसी तरह से चुपचाप बैठी थी। उसे सजाया-संवारा पहले ही गया था। नई बनारसी साड़ी पहने थी। पूरे बदन पर गहने। विपिन के आते ही नयनतारा ने नजर उठाकर देखा। पूछा, "बाबूजी नहीं आएंगे विपिन ?"

विपिन ने कहा, "नही दीदी जी ! मगर तुम मजे में तो हो न ! कोई असुविधा तो नही हो रही है न ?"

इस बात का जवाब न देकर नयनतारा ने पूछा, "और मां ? मां कैसी है ?"

"मां थोड़ी रो-धो रही थीं। अब चुप हैं। कहती है, 'जब लड़की है, तो उसे तो पराये घर जाना ही है।'"

नयनतारा ने कहा, "तुम जाकर मां से कहना, मैं यहां बड़े आराम से हूं—कोई असुविधा नहीं हो रही है। खा-पी चुके तुम लोग ?"

"हां दीदी जी ! खूब छटकर खाया। मछली, मांस, मिठाई, दही। खूब खाया। तुम्हारी सास बड़ी भली हैं। खुद सामने खड़ी होकर खिलाया। यहां के सब लोग बड़े अच्छे हैं। साथ तो जाने के लिए भी चार हांड़ी मिठाई दी···"

ज्यादा बात करने का अवसर नहीं मिला। बाहर तब तक फिर शहनाई

बज उठी। नयनतारा के कमरे में एक-एक करके फिर स्त्रियां आने लगीं। आज पूरी बस्ती उमड़कर आ जाएगी, यह उसीकी सूचना है। सभी अन-चीन्हें मुखड़े। सब आकर घेरकर बैठ गईं। सबकी नज़र नयनतारा के चेहरे पर। नयनतारा समझ गई, सब उसीको 'हा' किए देख रही हैं। आज शायद सारी सांझ इसी तरह से बीतेगी। आज नयनतारा ही इस घर का सबसे बड़ा आकर्षण है।

बूढ़े चौधरी ने एक समय अपने लड़के को बुलवा पठाया। वह आए तो पूछा, "उधर की क्या खबर है?"

हरनारायण ने कहा, "सब कुछ तो ठीक ही है। कृष्णनगर से लोग आए थे, खिला-पिलाकर सबको रवाना कर दिया। उन्हें ट्रेन पकड़नी है न..."

बूढ़े चौधरी ने कहा, "नहीं। मैं वह नहीं पूछ रहा हूं। पूछ रहा हूं, मुन्ना कहां है?"

हरनारायण ने कहा, "अभी तो वह कोई झमेला नहीं कर रहा है।"

"बस, यही तो अक्ल है तुम लोगों की। अरे झमेला न भी करे तो कब क्या कर बैठेगा, इसका ठिकाना है कुछ? मैंने उसे सदा निगरानी में रखने को कहा था, रख रहे हो न?"

छोटे चौधरी ने कहा, "जी हां, इसके लिए प्रकाश को तैनात कर दिया है।"

"प्रकाश कौन?"

"जी, मेरा साला। वह पक्का आदमी है। मुन्ना उसे चकमा नहीं दे सकता।"

बूढ़े चौधरी ने कहा, "बस हो गया। मैंने तो तुमको खुद खास नजर रखने को कहा था। उसे अकेला हरगिज मत छोड़ना। वंशी वगैरह को कह रखा है न?"

"जी हां।"

"वंशी वगैरह हर वक्त उसके आस-पास ही रहें। नजर से बाहर न जाने दें।"

छोटे चौधरी ने कहा, "यह ताकीद कर दी है।"

"ठीक है। तुम उधर का काम देखो। यहां ज्यादा आने की जरूर नहीं।"

छोटे चौधरी चले गए। नीचे बहुत लोगों का गला सुनाई पड़ा। स लोग खाने के लिए बैठे थे। सारे घर में अतिथि-अभ्यागतों की भीड़। बा शहनाई बजने लगी। बूढ़े चौधरी कुछ निश्चिन्त-से हुए। यह सुहाग भले-भले गुजर जाए, तो सोलहो आने निश्चिन्त हो जाएंगे। उसके बाद रात बीते कि फिर कोई खतरा नहीं। यह पागलपन जाता रहेगा। पर जूआ पड़ जाने से ही आदमी को ज़िम्मेदारी आ जाती है। धीरे-मुन्ना संसारी बन जाएगा। समधी जी ने जो कहा, वही होगा।

धीरे-धीरे भीड़ और बढ़ी। शोरगुल और भी बढ़ गया। नवाबगंज के आसमान में अगहन की रात और भी गहरी हुई। उन्हें नवद्वीप के घाट में गले-भर पानी में खड़े हर्षनाथ चक्रवर्ती की कही हुई अन्तिम बातें याद आने लगीं। आश्चर्य है। पहले घुटना-भर पानी, फिर कमर-भर। उसके बाद छाती-भर पानी, फिर गले तक। तब तक सूरज उग चुका था। घाट पर और भी कुछ नहाने वाले आ गए थे। वे लोग भी गौर कर रहे थे।

"नारायण!"

नायब चौधरी ने कहा, "कहिए हुजूर···"

हर्षनाथ चक्रवर्ती ने कहा, "मैं चला नारायण! उन सबका भार, तुम पर ही सौंप कर जा रहा हूं। उन सबका ख्याल रखना—समझ गए?"

बूढ़े चौधरी ने कहा था, "आप जरा भी चिन्ता न करें हुजूर, बिलकुल निश्चिन्त रहें।"

हर्षनाथ चक्रवर्ती ने कहा, "तुम अगर ख्याल न भी रखो, तो मुझे कुछ कहना नहीं है नारायण, मेरे लिए कुछ करने को नहीं है। मेरी सारी आसक्ति आज जाती रही। भय था, तम्बाकू की आसक्ति ही मुझसे नहीं छूटेगी। मगर मैंने उसे भी छोड़ दिया। अब मैं चलता हूं—और, उन्होंने संस्कृत का श्लोक पढ़ना शुरू किया:

"जवाकुसुम संकाशं
काश्यपेयं महाद्युतिम्···"

देर तक हर्षनाथ चक्रवर्ती सूर्य-स्तव का पाठ करते रहे। बूढ़े चौधरी को संस्कृत समझ में नहीं आती थी। वह हुजूर को पकड़े हुए पानी में खड़े थे। एकाएक चक्रवर्ती जी चुप हो गए। दोनों आंखें उलट गईं। और देखते-ही-देखते सब समाप्त।

कहां चल दिए वह, और कहां रह गए नरनारायण चौधरी। चक्रवर्ती जी आसक्ति को छोड़ सके थे। मगर बूढ़े चौधरी किस दुःख से आसक्ति को छोड़ने लगे? उनके तो अभी बहुत सारी कामना-वासना बाकी थी। बहुतेरी आकांक्षाएं थीं। आज मुन्ने का 'बहूभात' है। आज ही मुन्ना संसारी बना। एक दिन उसके बाल-बच्चे होंगे। उन बाल-बच्चों के भी बाल-बच्चे होंगे। अपनी वंशधारा की परिक्रमा में वह इसी तरह से अनन्तकाल तक जीवित रहेंगे। अपने वंश की शाखा-प्रशाखा में वह अजर-अमर होकर श्वास लेंगे, निश्वास छोड़ेंगे। तभी शायद उनकी सदा आशा-आकांक्षा पूरी होगी। इससे पहले कतई नहीं।

काफी रात हो चुकने पर शोरगुल शान्त हुआ। बिहारी पाल की बहू ने नयनतारा को फूलों की सेज पर बिठा दिया। बोली, "ज्यादा रात न करो बिटिया, सो जाओ। नहीं तो तुम्हारी भी तबीयत खराब होगी, सदा की भी। कब से ही तो शरीर पर इतना जुल्म चल रहा है···"

नयनतारा की नाक में फूलों की खुशबू लग रही थी। चारों तरफ फूल। फूलों का पहाड़। बहुत फूल इकट्ठा किया गया था। कमल के फूल

रियों के जलाशय से आए थे। नयनतारा को जाने कैसा तो डर-सा लगन
। मां-बाबूजी कोई नहीं आए। इस घर में सबके सब बिराने। कोई भी
ना नहीं। लेकिन हां, सास-ससुर कल से ही बहुत अच्छा व्यवहार करते
रहे हैं।

सास बार-बार कहती रही, "शरम मत करना बहूरानी ! भरपेट खाओ।
ह मत सोचो कि यहां तुम्हारा कोई नहीं है। तुम्हारे ससुर मुझसे बार-बार
म्हारे बारे में पूछते रहते हैं। एक सन्देश और दूं ?"

उसके बाद जब रात और भी ज्यादा हुई तो कमरे का दरवाजा फि
ुल गया। नयनतारा ने भांप लिया कि कमरे में कौन आ रहा है। लेकि
हिम्मत करके नजर उठाकर देख नहीं सकी। छाती धड़कने लगी। लग
बेहोश हो जाएगी।

सदानन्द कमरे में आया।

पीछे से प्रकाश मामा ने कहा, "दरवाजे की छिटकिनी लगा ले स…
छिटकिनी।"

सदानन्द का हाथ मानो तो भी उठना नहीं चाह रहा था। प्रकाश मामा
ने फिर तकाजा किया, "कहां रे, छिटकिनी नहीं लगाई ? सदा…"

खाने-पीने के बाद से ही प्रकाश मामा उसके कानों में कह रहा था,
"मैंने जो कहा है, सब याद है न ? भूल तो नहीं गया ?"

सदानन्द ने कहा, "क्या ?"

"भूल गया ? तोते की तरह तुझे इतना रटाया और तो भी पूछ रहा
है 'क्या' ? मैं तो तुझसे आजिज आ गया।"

सदानन्द ने कुछ नहीं कहा।

प्रकाश मामा ने कहा, "अरे बेवकूफ, आदमी के जीवन में सुहागरात तो
एक ही बार आती है, देखता हूं, तू सब गुड़ गोबर कर दिया। मेरा इज्जत-
आबरू सब डुबो देगा। तेरी बहू आखिर मुझे ही दूसेगी। कहेगी, एक ऐसे
दुल्हे से मेरा ब्याह कर दिया है, जो पूरा बछिया का ताऊ है…"

लेकिन कमरे में दाखिल होते ही सदानन्द के माथे पर मानो विकट
गरज के साथ गाज गिर पड़ी। सामने की ओर देखते ही लगा, छत की
लकड़ी से कौन तो झूल रहा है। चीन्हा-चीन्हा-सा चेहरा। ठीक जैसे कपिल
पायरापोड़ा हो—पहनावे की धोती गले में फन्दा बनी थी, झूल रहा था—

प्रकाश मामा ने बाहर से फिर ताकीद की, "क्यों रे सदा, दरवाजा
लगाया नहीं ? लगा।"

छोटे चौधरी पिताजी को रिपोर्ट पहुंचाने गए, "सब ठीक से हो-हवा
गया बाबूजी।"

बूढ़े चौधरी यही सुनने के लिए जगे बैठे थे। बोले, "और मुन्ना ?"

प्रकाश मामा भी पीछे-पीछे आया। उसने बहादुरी लूटने की कोशिश
की। कहा, "मैं उसे ढकेलते हुए कमरे में दाखिल करके तब आया हूं। जाना
नहीं चाह रहा था, जबरदस्ती भेजा।"

"अन्दर से छिटकिनी तो लगाई ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "छिटकिनी लगाना क्या चाह रहा था ? मैंने बार-बार पीछे से ताकीद की। आखिर छिटकिनी बन्द कराके ही वहां से हटा।"

बूढ़े चौधरी निश्चिन्त हुए। उनके कलेजे के भीतर से आत्मतृप्ति एक निःश्वास निकल आया। आदत के मुताबिक उन्होंने बेवस पैरों को फैलाने की चेष्टा की। लेकिन सारा करके भी कामयाब न हुए। बोले, "खैर, ठीक है। अब तुम लोग जाकर आराम करो।"

इससे न केवल बूढ़े चौधरी ही निश्चिन्त हुए, बल्कि नवाबगंज के चौधरी परिवार के सभी निश्चिन्त हुए। छोटे चौधरी भी। खैर, अब कोई चिन्ता नहीं रही। ईश्वर की इच्छा पूरी हुई। अब तक नई दुल्हिन के रूप के आकर्षण में सदानन्द भूत, वर्तमान, भविष्य—सब भूल चुका होगा। अब किसीको कोई दुर्भावना नहीं, कोई आशंका ही नहीं रही। जिस बात का सबको डर था, वह नहीं हुई। सारी समस्याएं निर्विघ्न हल हो गई। तीन दिन पहले भी जो समस्या सबको बेचैन किए हुई थी, उसको समाधि हो गई। पुराने इतिहास की कुटिल स्मृति कहां तो नाग बनकर फन खोले खड़ी थी। ऐसा लगा था कि वह इस परिवार की सुख-शांति, ऐश्वर्य-वैभव के सिर पर डसकर सब कुछ का अन्त कर देगी। लेकिन उसकी अब सम्भावना न रही। अब नयनतारा आ गई है। फूलों की सेज पर सोहता हुआ नयनतारा का नयन को अपलक कर देने वाला रूप और मन को छीन लेने वाला प्रेम—इसने सभी सन्देहों के कांटे को उखाड़ फेंका है। अब कोई खौफ-खतरा नहीं। सो जाओ। घोड़ा बेचकर सो जाओ सब। इन कई दिनों से बड़ी झंझटें झेली हैं तुम लोगों ने। उबटन की रस्म के पहले ही दिन से, जिस रात सदानन्द भाग गया था, उसी दिन से तुम लोगों को बहुत झेलना पड़ा। उसके बाद बहुत आंधी-तूफान झेलकर वंशी ढाली ने पत रख ली। और, जो वंशी ढाली से नहीं हो पाया है, वह नई बहू नयनतारा करेगी। सुहाग-रात में वही सदानन्द को जीवन का असली अर्थ समझा देगी। नयनतारा ही यह समझा देगी कि महापुरुष लोग जो कह गए हैं, वह किताबों में छापने के लिए, स्कूल-कालेज में पढ़ाने के लिए, पढ़कर इम्तहान पास करने के लिए। लेकिन जीवन और ही कुछ है। इस जीवन का एकमात्र सत्य है भोग। विलास से, अर्थ-उपार्जन से भोग। उस भोग में जितनी भी अड़चनें आती हैं, उन्हें चाहे जिस उपाय से भी हो, दूर करने से ! इसीका नाम है जीवन।

बूढ़े चौधरी भी सो गए थे। तन्द्रा लेकिन झट ही से जैसे टूट गई। लगा, कोई जैसे रो रहा है। जैसे आस-पास ही से किसीके रोने की आवाज आ रही है।

ऐसी खुशी के दिन इतनी रात गए कौन रो रहा है। जैसे उनकी आदत थी, उन्होंने आवाज दी, "दीनू !"

और समय होता तो आवाज के साथ ही दीनू आकर हाजिर हो जाता। हुक्म बजाने में दीनू जैसा वफादार आदमी उन्होंने दूसरा नहीं देखा। जब वह कालीगंज के जमींदार के यहां काम करते थे, तो हुक्म की तामीली में खुद भी ऐसे चौकस नहीं थे।

बूढ़े चौधरी के पुकारने से किसीने जवाब नहीं दिया। खैर, न दे जवाब। दिन-भर की मशक्कत के बाद थका-मांदा दीनू शायद सो गया है। सोए। सोए वह। लेकिन जानने की ललक हो रही थी कि यह रो कौन रहा है। अथच किसीके रोने की तो कोई वजह नहीं है। आज तो आनन्द का दिन है। उनके पोते का आज ब्याह हुआ है। उंहू, ब्याह नहीं, सुहागरात। आज तो सारे रैयत के लोग आकर उनके पोते की बहू को आशीर्वाद दे गए हैं। आज सभी उनके यहां पत्तल बिछाकर भरपेट खा गए हैं। बहुतेरे बांधकर भी ले गए हैं। गांव में आज तो कोई भूखा नहीं है। सभी परितृप्त हैं, सभी थके हुए हैं। सब अपने-अपने घर खुर्राटे भरकर सो रहे हैं। उन्हें अभी रोने की क्या पड़ी है! दुःख ही उन्हें किस बात का है।

जबरदस्ती आंखें बन्द करके बूढ़े चौधरी ने सोने की कोशिश की। लेकिन बूढ़े चौधरी को तब भी यह मालूम नहीं था कि वह चाहे सोने की कोशिश करें, इतिहास लेकिन कभी नहीं सोता। इतिहास चूंकि नहीं सोता, इसीलिए कालीगंज की बहू को आज बेमौत मरना पड़ा। इतिहास नहीं सोता, इसीलिए इतनी रात को उनके कानों दबा हुआ आर्तनाद सुनाई पड़ा। इतिहास नहीं सोता, इसीलिए उनका पोता ब्याह के मण्डप पर से भागकर कालीगंज की बहू के यहां चला गया। और इतिहास नहीं सोता, इसीलिए उनका पोता दुल्हन को विदा कराके लाते ही रुपया मांगता है।

लेकिन ये सब बातें अभी रहने दीजिए। अभी सब खुश हैं। सबको शांति है। अभी सब सोओ। मैं बीमार हूं, जईफ़ हूं, मैं चाहे जगा रहूं, तुम लोग सोओ।

"मां !"

घर में जिसे जहां जगह मिली, वहीं सो गए थे। बहुतों को कोई चटाई और एक तकिया तक नहीं नसीब हुआ। धोती का पल्ला बिछाकर छत के किसी कोने लेट गए। काम-काज चुकाने में कोई एक बज गया था। मछली के कांटे और मांस की हड्डियों के लोभ से कुछ लावारिस कुत्ते अब तक पोखर के किनारे छीना-झपटी कर रहे थे। पेट भर जाने से सब सो गए। सच पूछिए तो कोई नहीं जग रहा था। छोटे चौधरी भी सो गए थे। बहुत परिश्रम करना पड़ा था उन्हें। सदानन्द जब अपने कमरे में सोने के लिए

चला गया, तभी उन्होंने राहत की सांस ली। खैर चिन्ता मिटी। चौधरी परिवार की वंश धारा बरकरार रही। अब कभी कोई भी काली-गंज की बहू आकर उसका कोई नुकसान नहीं कर सकती। शाखा-प्रशाखाएं फैलाकर यह वंश तब तक बढ़ता रहेगा, जब तक आकाश में चांद-सूरज हैं। इस सदा के भी सन्तान होगी। उसके भी किसी दिन उबटन लगेगा, किसी दिन ब्याह होगा और किसी दिन सुहागरात मनाई जाएगी।

और फिर? इस फिर की सोचने में ही छोटे चौधरी की आंखें कब जाने नींद से मुंद गईं।

"मां!"

छोटे चौधरी चौंके। कौन तो पुकार रही है। हां, स्त्री का ही गला है। वह झटपट बिस्तर से उठ खड़े हुए। पास ही बिस्तर पर स्त्री सो रही थी। बेखबर। अहा, सोए बेचारी। बहुत दिनों से कामों की भीड़ रही, आज ही ज़रा आराम करने का मौका मिला है। मगर पुकार कौन रही है? और इतनी रात गए पुकार भी क्यों रही है।

उन्होंने पत्नी को हिलाकर कहा, "अरी ओ, सुनती हो।"

प्रीति हड़बड़ाकर उठ बैठी। पूछा, "क्या हुआ?"

हरनारायण ने कहा, "देखो तो, कोई तुम्हें पुकार रही है।"

"मुझे पुकार रही है? कौन पुकार रही है।"

"क्या पता, किसी औरत का-सा गला लगा।"

औरत का गला! इतनी रात को कौन उसे पुकारेगी! अभी-अभी तो सब को खिला-पिलाकर भंडार की कुंजी आंचल में बांधकर वह सोई हैं आकर। पूछा, "क्या बजा?"

घड़ी की ओर ताककर छोटे चौधरी ने कहा, "तीन···"

तीन के माने भोर हो आई। इतनी देर तक सोई। तब तो काफी सो लिया। कुछ पता ही नहीं चला।

बाहर से आवाज फिर आई, "मां!"

उठकर कपड़ा संभालते हुए ही प्रीति दरवाजा खोलकर बाहर निकली। चारों तरफ अंधेरा। सामने के बरामदे पर जिससे भी जहां और जैसे बन पड़ा था, सो गया था। लगा, उनमें से कोई अंधेरे में इसकी ओर मुंह किए खड़ी है।

प्रीति झटपट आगे बढ़ गयी। पूछा, "कौन? वहां कौन खड़ी हो?"

उस मूर्ति ने कहा, "मैं।"

"मैं? मैं कौन?"

प्रीति एकबारगी उस मूर्ति के पास जा खड़ी हुई। उसके मुंह के पास मुंह ले जाते ही चौंक पड़ी, "बहूरानी? तुम? इतनी रात को एकाएक तुम कमरे से क्यों निकल आई? क्या हुआ तुम्हें?"

नयनतारा थर-थर कांप रही थी,। बोली, "मुझे डर लग रहा है।"

"क्यों? डर क्यों लग रहा है? मुन्ना कहां है?"

नयनतारा ने इसका कोई जवाब नहीं दिया।

सास ने कहा, "क्यों, जवाब क्यों नहीं दे रही हो ? मुन्ना कहां गया ? ...ां नहीं है ?"

इस बार भी नयनतारा ने जवाब नहीं दिया।

सास के मन में कैसा तो एक सन्देह हुआ। बोली, "चलो-चलो अपने ...मरे में चलो। डरने की कोई बात नहीं।"

नयनतारा का हाथ पकड़कर प्रीति उसे उसके सोने के कमरे में ले गई। कमरे का दरवाजा हा किए खुला पड़ा था। अन्दर ढेरों फूलों की महक। दीवाल पर दीवालगीर टिमटिम जल रही थी। बिछौना जैसे का तैसा पड़ा था। चादर-तकिए में कहीं कोई सलवट नहीं। जैसे बिस्तर का व्यवहार ही नहीं हुआ।

चारों ओर देखकर प्रीति जरा देर बुत बनी खड़ी रही। जैसे उसने हालात को भांपने की कोशिश की। उसके बाद नयनतारा की ओर ताककर पूछा, "मुन्ना कहां गया ?"

बोलना चाहते हुए भी नयनतारा बोल नहीं सकी। सास की निगाह बचाने के ख्याल से उसने सिर झुका लिया।

"बोलो, मुन्ना कहां गया ? कहो ?"

नयनतारा चुप। उसकी आंखों से टपटप आंसू चू रहा था।

"मुन्ना कमरे में सोया नहीं था ?"

प्रीति से और नहीं रहा गया। नयनतारा की ठोड़ी पकड़कर उसने उसके मुंह को आमने-सामने किया। सास की वह नजर बरदाश्त न कर सकने के कारण नयनतारा ने आंखें बन्द कर लीं। मुंदी आंखों से आंसू की धारा बांध नहीं मान रही थी। सास की हथेली पर झरझर करके आंसू टपकने लगा।

"मैं तुम्हारी सास होती हूं बहू, मुझसे लजाओ मत। कहो, मुन्ना तुम्हारे बिस्तर पर सोया नहीं था ?"

नयनतारा में मानो जवाब देने की कोई ताकत ही नहीं रह गई थी।

"बोलो, जवाब दो, मुन्ना सोया नहीं ?"

अब नयनतारा के मुंह से एक छोटा-सा शब्द निकला, "नहीं।"

"नहीं सोया ? तो फिर वह गया कहां ?"

नयनतारा ने कहा, "वह मैं नहीं जानती।"

"मगर उसे तो हम लोगों ने तुम्हारे कमरे में पहुंचा दिया था। उसने दरवाजे की छिटकनी लगाई, यह भी मालूम है। उसके बाद क्या हुआ ? वह कब यहां से निकल गया ?"

नयनतारा फफक उठी।

प्रीति ने कहा, "मुझे बताओ, जवाब दो—उसके बाद वह कब निकल गया ? तुमसे क्या बातें हुईं ? तुमने उससे कुछ कहा था ? क्या कहा था ?"

नयनतारा ने रोते-रोते ही कहा, "कुछ भी नहीं कहा···"

"कुछ भी नहीं कहा ?"

मु-1

"नहीं।"

"उसने तुमसे कुछ कहा था ?"

"नहीं।"

प्रीति ने कुछ सोचा। फिर बोली, "तुम दोनों में कोई बात नहीं हुई।"

नयनतारा ने कहा, "नहीं।"

"उसने तुम्हारा बदन छुआ था ?"

नयनतारा से एकाएक इस बात का जवाब देते नहीं बना।

प्रीति ने कहा, "कहो। मैं तुमसे पूछ रही हूं। मैं तुम्हारी सास हूं। तुम्हारी मां के समान हूं। यहां तुम्हारी मां होती, तो उससे जैसे कहती, वैसे ही मुझसे भी तुम कहो। समझ लो कि यहां मैं ही तुम्हारी मां हूं। मुझसे कुछ बताने में तुम लजाओ मत। कहो, उसने तुम्हारा बदन छुआ था ?"

नयनतारा इस बार सास की छाती पर ढल पड़ी। सास ने उसे दोनों हाथों से सम्भाल लिया और उसकी पीठ सहलाने लगी। बोली, "रोओ मत बेटी, मत रोओ। मुझे तुम सब खोलकर बताओ। तुम्हें कोई डर नहीं। मैं तो हूं, तुम्हें डर कैसा ? मां से क्या कोई कुछ कहने में लजाती है ? रानी बिटिया, बोलो तो ? सदा ने शायद तुम्हारा बदन छुआ था और तुमने आपत्ति की थी ?"

नयनतारा ने सास की छाती में सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

"तो फिर मुन्ना क्यों चला गया ?"

इसका जवाब नयनतारा क्या दे ? वह क्या स्वयं ही इसका जवाब जानती थी ? वह क्या सोच भी सकी थी कि सुहागरात का उसका सपना इस तरह से चूर-चूर हो जाएगा ? जाने कितनी ही लड़कियों से उसने सुहागरात की रोचक कहानियां सुनी थीं। वह सब भी उसके साथ एक स्कूल में, एक ही दरजे में पढ़ती थीं। ब्याह हो जाने के बाद उन्होंने ही अपनी-अपनी कहानियां कही थीं। ब्याह से पहले नयनतारा ने भी अपने मन में तिल-तिल करके सुहागरात के सपने संजोए थे। सोच रखा था, वह भी अपनी सुहागरात की कहानियां उन्हें सुनाएगी। कम-से-कम कहने लायक कोई घटना घटेगी। लेकिन यह क्या हो गया ? सुहागरात के दिन क्या किसीके यहां पुलिस आती है ? ऐसी घटना तो उसकी किसी भी सहेली के ब्याह में नहीं घटी। पुलिस ही एकाएक क्यों आ पहुंची और खून ही किसका हुआ ? कुल मिलाकर उसके जीवन में एक रहस्यजनक विपर्यय घट गया। आंसू क्या किसीकी आंख में सहज ही आते हैं। आज अगर मां यहां रही होती, तो नयनतारा उससे पूछती, मां, 'तुमने मेरा ब्याह ऐसी जगह में क्यों कर दिया ? जरा ढंग से खोज-खबर भी नहीं ले सकीं ?'

प्रीति क्या करे, समझ नहीं पा रही थी। बोली, "तुम रोओ मत बहूरानी, मैं जो पूछती हूं, उसका जवाब दो।"

उसने अपनी छाती से हटाकर नयनतारा को अपने आमने-सामने खड़ा किया। अपनी साड़ी के पल्ले से बहू की आंखें पोंछकर पूछा, "अब तुम मुझसे

हो तो कि वास्तव में हुआ क्या था? सच-सच बताना, कुछ छिपाना नहीं।"

नयनतारा ने कहा, "कुछ भी नहीं हुआ था मां!"

सास ने कहा, "कुछ भी नहीं हुआ तो मुन्ना यों ही कमरे से चला गया? सुहागरात में पति नाहक़ही पत्नी को छोड़कर घर से चला जाता है कहां? ऐसी बात किसीने कभी सुनी है? तुम मुझसे छिपा रही हो। सच कहो कि क्या हुआ था?"

नयनतारा ने कहा, "सच ही कह रही हूं मां, कुछ भी नहीं हुआ था।"

"कुछ हुआ नहीं तो मुन्ना ख़ामख़ा ही निकलकर चला गया? आख़िर मेरा लड़का पागल तो नहीं है। पागल होता तो भी समझती, तो भी कोई मतलब होता। अकारण ही वह चला क्यों गया? तुमने ज़रूर उससे कुछ कहा था।"

"आप विश्वास करें मां, मैंने कुछ भी नहीं कहा।"

"तुम कहोगी और मैं मान लूंगी? तुमने जब देखा कि वह चला जा रहा है, तो तुमने पूछा क्यों नहीं कि क्यों चला जा रहा है, कहां जा रहा है?"

नयनतारा ने अपराधी की नाईं कहा, "जी, मैंने नहीं पूछा!"

"क्यों नहीं पूछा?"

"मुझे डर लग रहा था।"

"डर? कैसा डर?"

कैसा डर, यह तो नयनतारा अपने भी नहीं जानती थी, तो सास को कैसे समझाती? बोली, "मैं नहीं जानती, कैसा डर?"

प्रीति अब मानो कुछ असंतुष्ट-सी हुई। बोल उठी, "मेरी बिट्टो, जब तुमने देखा कि वह चला जा रहा है, तो तुमने उसे पकड़कर क्यों नहीं रोका? आख़िर ईश्वर ने तुम्हें इतना रूप किसलिए दिया था? तो फिर इतनी लड़कियों के रहते, तुम्हें ही अपनी बहू बनाकर क्यों लाया? और तुमसे अगर इतना भी करते नहीं बनेगा, तो इतना रूप लेकर मैं क्या धोकर पिऊंगी? मैंने ख़ूबसूरत बहू क्या अपने लिए चाहा था?"

लेकिन कहते ही प्रीति को मानो यह महसूस हुआ कि इस समय ऐसा कहना उसका उचित नहीं हुआ।

नयनतारा सास की छाती में मुंह छिपाकर रो ही रही थी। प्रीति बोली, "रोओ मत बहूरानी, मैं समझ गई, इसमें तुम्हारा कोई कसूर न है। और सच भी तो, तुम्हीं क्या करोगी? तुम तो इस घर में नई-नई अ हो। तो एक काम करती हूं, अभी भी रात कुछ बाकी है। मैं आकर तुम्ह पास सोती हूं। सारी रात जगने से तुम्हारी तबीयत ख़राब होगी। तुम अ देर यहीं ठहरो, मैं अभी आई—"

नयनतारा को उसके बिछावन पर बैठाकर वह अपने कमरे में आई। छोटे चौधरी अपने कमरे में बेचैनी से चहलकदमी कर रहे थे। ठीक समझ नहीं पा रहे थे कि कहां क्या गड़बड़ी हुई है। अब अग

बात सारे घर में फैल जाए, तो बेहद बुरा होगा। सारे नवाबगंज के लोग जान जाएंगे कि उनका लड़का सुहागरात को घर से भाग गया। अंत तक बात कृष्णनगर में समधी जी तक भी पहुंच जाएगी। तब ?

इतने में उनकी स्त्री कमरे में आई। .

चौधरी जी तुरन्त पत्नी की ओर बढ़े, "क्या हुआ ? बहू ने क्या कहा ?"

"जिस बात की आशंका थी, वही हुई—मुन्ना घर में नहीं है।"

"घर में नहीं है ?"

गृहिणी ने कहा, "हां। बहू को अकेले डर लग रहा था, इसीलिए मुझे बुलाने आई थी। मैं उसके पास जाती हूं—यही कहने आई थी।"

"मगर मुन्ना कहां गया ?"

गृहिणी ने कहा, "उसे यह क्या मालूम ? बहू से कोई बात भी नहीं हुई, कमरे में गया और पीछे के दरवाजे से निकल गया।"

"मुन्ना चला गया और बहू उसे रोक नहीं सकी ?"

गृहिणी ने कहा, "तुम भी अजीब बात करते हो। नई बहू को इतना साहस होता है ? अनजानी जगह, अनचीन्हा आदमी, और पहली रात, इससे पहले कभी कोई बात नहीं हुई, ऐसे को वह कैसे रोके ? इतनी उम्र हुई तुम्हारी और तुम ऐसी बात करते हो। मेरी सुहागरात में अगर तुम ऐसा करते तो मैं तुमको रोक सकती ? कोई लड़की ऐसा कर सकती है ? बलिहारी तुम्हारी बुद्धि की···"

चौधरी जी ने पूछा, "तो ? क्या होगा ?"

गृहिणी बोली, "यही तो सोच रही हूं, क्या होगा ! बहू बेचारी एकबारगी टूट पड़ी है। रात के तीन बजे तक वह कुछ सोच न पाकर डर से कांपती रही। आखिर जब कोई उपाय न सूझा तो लाज-शरम छोड़कर मुझको बुलाने के लिए आई।"

"तो तुम बहू को क्या कह आई ?"

"कहूं भी क्या। और, अभी क्या मेरा ही दिमाग ठिकाने पर है। पहले तो उसे खूब झिड़का, फिर सोचा, इसी बेचारी का क्या दोष है ? बहुत रो रही थी। मैंने माथे पर, पीठ पर हाथ फेरा, समझा-बुझाकर उसे बिठा आई हूं। अब बाकी रात जाकर उसीके पास सो रहूं, देखूं, यदि किसी उपाय से उसे जरा सुला सकूं। सवेरा होने पर जो होगा, देखा जाएगा।"

चौधरी जी ने कहा, "देखा क्या जाएगा। मुन्ना क्या अब लौटेगा ?"

"अभी अब वह सब मैं सोच नहीं सकती हूं। मेरा भी दिमाग गड़बड़ा गया है। मुझसे भी अब खड़ा नहीं रहा जाता···"

प्रीति चली जाने लगी।

चौधरी जी ने पीछे से पुकारा, "एक बात तो सुनो···"

पलटकर गृहिणी ने कहा, "क्या ?"

"बहू से कह देना, यह सब बात किसीसे न कहे। बाहर के लोग सुनेंगे

कहो तो कि वास्तव में हुआ क्या था ? सच-सच बताना, कुछ छिपाना नहीं ...

नयनतारा ने कहा, "कुछ भी नहीं हुआ था मां !"

सास ने कहा, "कुछ भी नहीं हुआ तो मुन्ना यों ही कमरे से चला गया ? सुहागरात में पति नाहकही पत्नी को छोड़कर घर से चला जाता है कहां ? ऐसी बात किसीने कभी सुनी है ? तुम मुझसे छिपा रही हो । सच कहो कि क्या हुआ था ?"

नयनतारा ने कहा, "सच ही कह रही हूं मां, कुछ भी नहीं हुआ था ।"

"कुछ हुआ नहीं तो मुन्ना खामख़ा ही निकलकर चला गया ? आखिर मेरा लड़का पागल तो नहीं है । पागल होता तो भी समझती, तो भी कोई मतलब होता । अकारण ही वह चला क्यों गया ? तुमने ज़रूर उससे कुछ कहा था ।"

"आप विश्वास करें मां, मैंने कुछ भी नहीं कहा ।"

"तुम कहोगी और मैं मान लूंगी ? तुमने जब देखा कि वह चला जा रहा है, तो तुमने पूछा क्यों नहीं कि क्यों चला जा रहा है, कहां जा रहा है ?"

नयनतारा ने अपराधी की नाईं कहा, "जी, मैंने नहीं पूछा !"

"क्यों नहीं पूछा ?"

"मुझे डर लग रहा था ।"

"डर ? कैसा डर ?"

कैसा डर, यह तो नयनतारा अपने भी नहीं जानती थी, तो सास को कैसे समझाती ? बोली, "मैं नहीं जानती, कैसा डर ?"

प्रीति अब मानो कुछ असंतुष्ट-सी हुई । बोल उठी, "मेरी बिट्टो, जब तुमने देखा कि वह चला जा रहा है, तो तुमने उसे पकड़कर क्यों नहीं रोका ? आखिर ईश्वर ने तुम्हें इतना रूप किसलिए दिया था ? तो फिर इतनी लड़कियों के रहते, तुम्हें ही अपनी बहू बनाकर क्यों लाया ? और तुमसे अगर इतना भी करते नहीं बनेगा, तो इतना रूप लेकर मैं क्या धोकर पिऊंगी ? मैंने खूबसूरत बहू क्या अपने लिए चाहा था ?"

लेकिन कहते ही प्रीति को मानो यह महसूस हुआ कि इस समय ऐसा कहना उसका उचित नहीं हुआ ।

नयनतारा सास की छाती में मुंह छिपाकर रो ही रही थी । प्रीति बोली, "रोओ मत बहूरानी, मैं समझ गई, इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं है । और सच भी तो, तुम्हीं क्या करोगी ? तुम तो इस घर में नई-नई आई हो । तो एक काम करती हूं, अभी भी रात कुछ बाकी है । मैं आकर तुम्हारे पास सोती हूं । सारी रात जगने से तुम्हारी तबीयत खराब होगी । तुम ज़रा देर यहीं ठहरो, मैं अभी आई—"

नयनतारा को ... बिछावन पर बैठाकर वह अपने कमरे में आई । छोटे चौधरी ... में बेचैनी से चहलकदमी कर रहे थे । ... ठीक समझ नहीं ... कहां क्या गड़बड़ी हुई है । अब ...

...म हाजिर

यहां न्योते में गया, तो हम लोगों का पेट ही नहीं भरा।

न, अब देर नहीं करनी चाहिए। अब अगर आंख लग जाए, तो बेला हो जाएगी। फिर तो बात फैल जाएगी कि चौधरी बाबू के लड़के की सुहाग-रात नहीं हुई। लड़के के बदले रात भर ही आकर बहू के पास सोई थी। धीरे-धीरे प्रीति उठी। झुककर उसने एक बार देखा कि बहू सो गई है या नहीं। समझ में नहीं आया। बहू तकिये में मुंह गाड़े उसी तरह से स्थिर लेटी हुई थी।

प्रीति दबे पांवों धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गई। कोई आवाज नहीं होने दी। कमरे के किवाड़ भिड़ाकर वह अपने कमरे की ओर चली। बरामदे पर लोग-बाग सोए ही हुए थे। उनके लिए अभी भी जैसे गहरी रात ही थी।

सबसे पहले लेकिन प्रकाश मामा जग गया था। जगते ही उसे चाय पीने का रोग है। जगने के बाद वही सबसे मुख्य काम। झड़ी हो चाहे आंधी, बाढ़ हो या अकालग्रस्त या भूकम्प, जो कुछ भी हो, चाय उसे तुरन्त चाहिए।

पिछली रात अन्तिम आमंत्रित व्यक्ति के चले नहीं जाने तक प्रकाश मामा को चैन नहीं थी। उसने खुद खड़े होकर सबको खिलाया। बार-बार पूछकर, जोर-जबरदस्ती करके खिलाया। जो दस से ज्यादा पूरियां नहीं खा सकता, उसे हिदायत देकर, जबरन तीस-चालीस पूरियां खिलाईं। सबने मन-ही-मन साला बाबू के लिए वाह-वाह किया। हां, यह कोई नहीं कह सकता कि सदानन्द के ब्याह में आदर-खातिर नहीं हुई, पेट-भर खाने को नहीं मिला। गांव-गंज में ऐसा ही होता है। इस तरह का भोज कभी-कभार ही होता है। मेतिहर किसानों के यहां दही-चूड़ा ही नसीब होता है।

प्रकाश मामा कहां सोया था, पता नहीं। आंख खोलते ही चिल्ला उठा, "क्यों रे, चाय बन गई?"

लेकिन बोलने के बाद ही वह समझ गया कि आज उसके हुक्म को तामील करने वाला आस-पास कोई नहीं है। आज सब नींद में विभोर हैं। कल की उस करारी मेहनत के बाद सबके बदन-हाथ में दर्द है। सब बिस्तर पर पड़े हैं। लेकिन जो हो, नशा तो नहीं मानता। नशे की खुराक जुटानी ही पड़ती है।

अंगड़ाई लेकर प्रकाश मामा उठा। उठकर रसोई की तरफ गया। लेकिन वहां तो सब सौं-सौं। किसीकी चुटिया नहीं दिखाई दी। वह पोखरे की तरफ गया। कल वहीं पर मिठाइयों का कड़ाह चढ़ा था। मोटी-मोटी लकड़ियां जलकर कोयला हो गई थीं। लेकिन न तो रसोइए का पता था, न नौकर-चाकरों का। कल रात सोते-सोते एक बज गया था।

इतने में एक पहचानी शक्ल पर नजर पड़ी। खुशी से वह उछल पड़ा। वह आदमी खेतों की ओर से आ रहा था।

प्रकाश मामा ने उसीको पकड़ा, "अरे वाह, उठ गए हो? क्या तो नाम है तुम्हारा?"

तरह-तरह की अफवाहें उड़ेंगी। यह खबर कृष्णनगर तक न पहुंचे।"

गृहिणी ने कहा, "बहू को तो कह दूंगी, माना। मगर तुम्हारा लड़का ? अगर दस जने से कहता फिरे। मान लिया, न भी कहे, तो यह सब बात कितने दिनों तक छिपाए रख सकोगे ?"

चौधरी जी ने कहा, "बाद की बात में देखी जाएगी। लेकिन आज की यह घटना दूसरे कान तक न पहुंचे। तुम्हारे पिताजी यहीं हैं, सगे-सम्बन्धी लोग आए हैं, ऐसी हालत में यह किसीको मालूम न हो, अच्छा नहीं होगा। बाबूजी के कानों तक भी न पहुंचे। तुम बहू को ज़रा अच्छी तरह से समझा देना।"

गृहिणी ने समझा कि नहीं, समझ में नहीं आया। वह जल्दी-जल्दी वहां से बाहर चली गई। चौधरी जी छटपट करते हुए पायचारी करने लगे।

नयनतारा पत्थर की तरह ठंडा शरीर लिए काठ हुई-सी बिस्तर पर बैठी थी। सास ने अन्दर जाते ही कहा, "हाय राम, तुम अभी तक सोई नहीं हो ? आओ-आओ, सो जाओ।"

नयनतारा को प्रीति ने अपने पास लिटा लिया। पायताने में तह की हुई चादर रखी थी। खोलकर उसे उढ़ा दी और आप भी उसके बगल में लेट गई।

प्रीति बोली, "डरने की कोई बात नहीं है बहू ! मुन्ने को तुम गलत मत समझना। वह कुछ ऐसा ही है। ख्याली है थोड़ा। आज उसने ऐसा व्यवहार की, मगर दो-एक दिन में सब ठीक हो जाएगा। तब तुम्हें पता चलेगा, वैसा पति मुश्किल से मिलता है। मैं उसकी मां हूं, मगर मुझसे भी ऐसा ही करता है। रानी चिड़िया, तुम चिंता न करो।" नयनतारा के सिर पर हाथ फेरने लगी वह।

उसके बाद आहिस्ते-आहिस्ते कहा, "लेकिन हां, तुम इस बात की हरगिज किसीसे चर्चा न करना, मैं सब संभाल दूंगी। अभी तो आपस में तुम लोगों की ठीक से जान-पहचान भी नहीं हुई है, मुन्ने को इसीलिए शरम आई। मेरा गदा बड़ा शरमीला है न—कुछ दिन साथ रहने से ही समझ जाओगी। अपनी मां, अपने बाबूजी से यह सब मत कहना, हां ?"

समझ में नहीं आया कि नयनतारा ने समझा भी या नहीं। वह तकिये में मुंह गाड़े पड़ी रही। सास उसका सिर सहलाती रही। रात खत्म होती आ रही थी। ब्याह के गुलजार घर में एकबारगी सन्नाटा। शाम से रात बारह बजे तक जो चहल-पहल थी, उसकी ज़रा भी झलक नहीं रह गई थी कहीं। सब थक-थकाकर चूर थे। दूर पर किस टोले में किसका मुर्गा बां- दे उठा। भोर होगी अब। एक-एक कर सभी जग जाएंगे। प्रीति की पि- से पुकार होगी। बड़े भंडार-घर की कुंजी उसीके आंचल में बंधी है। इत- इतने लोगों का जलपान। किसीके लिए दूध, किसीके लिए पूरियां, च- किसी-किसीके लिए चूड़ा-मूढ़ी। अकेले उसीको हर की हर फरमाइश करनी होगी। कोई जिसमें यह शिकायत न कर पाए कि चौधरी ज-

यहां न्योते में गया, तो हम लोगों का पेट ही नहीं भरा।

न, अब देर नहीं करनी चाहिए। अब अगर आंख लग जाए, तो बेला हो जाएगी। फिर तो बात फैल जाएगी कि चौधरी बाबू के लड़के की सुहाग-रात नहीं हुई। लड़के के बदले रात सास ही आकर बहू के पास सोई थी। धीरे-धीरे प्रीति उठी। झुककर उसने एक बार देखा कि बहू सो गई है या नहीं। समझ में नहीं आया। बहू तकिये में मुंह गाड़े उसी तरह से स्थिर लेटी हुई थी।

प्रीति दबे पांवों धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गई। कोई आवाज नहीं होने दी। कमरे के किवाड़ भिड़ाकर वह अपने कमरे की ओर चली। बरामदे पर लोग-बाग सोए ही हुए थे। उनके लिए अभी भी जैसे गहरी रात ही थी।

सबसे पहले लेकिन प्रकाश मामा जग गया था। जगते ही उसे चाय पीने का रोग है। जगने के बाद वही सबसे मुख्य काम। झड़ी हो चाहे आंधी, बाढ़ हो या अगलगी या भूकम्प, जो कुछ भी हो, चाय उसे तुरन्त चाहिए।

पिछली रात अन्तिम आमंत्रित व्यक्ति के चले नहीं जाने तक प्रकाश मामा को चैन नहीं थी। उसने खुद खड़े होकर सबको खिलाया। बार-बार पूछकर, जोर-जबरदस्ती करके खिलाया। जो दस से ज्यादा पूरियां नहीं खा सकता, उसे हिदायत देकर, जबरन तीस-चालीस पूरियां खिलाईं। सबने मन-ही-मन साला बाबू के लिए वाह-वाह किया। हां, यह कोई नहीं कह सकता कि सदानन्द के ब्याह में आदर-खातिर नहीं हुई, पेट-भर खाने को नहीं मिला। गांव-गंज में ऐसा ही होता है। इस तरह का भोज कभी-कभार ही होता है। खेतिहर किसानों के यहां दही-चूड़ा ही नसीब होता है।

प्रकाश मामा कहां सोया था, पता नहीं। आंख खोलते ही चिल्ला उठा, "क्यों रे, चाय बन गई?"

लेकिन बोलने के बाद ही वह समझ गया कि आज उसके हुक्म को तामील करने वाला आस-पास कोई नहीं है। आज सब नींद में विभोर हैं। कल की उस करारी मेहनत के बाद सबके बदन-हाथ में दर्द है। सब बिस्तर पर पड़े हैं। लेकिन जो हो, नशा तो नहीं मानता। नशे की खुराक जुटानी ही पड़ती है।

अंगड़ाई लेकर प्रकाश मामा उठा। उठकर रसोई की तरफ गया। लेकिन वहां तो सब भां-भां। किसीकी चुटिया नहीं दिखाई दी। वह पोखरे की तरफ गया। कल वहीं पर मिठाइयों का कड़ाह चढ़ा था। मोटी-मोटी लकड़ियां जलकर कोयला हो गई थीं। लेकिन न तो रसोइए का पता था, न नौकर-चाकरों का। कल रात सोते-सोते एक बज गया था।

इतने में एक पहचानी शक्ल पर नजर पड़ी। खुशी से वह उछल पड़ा। वह आदमी खेतों की ओर से आ रहा था।

प्रकाश मामा ने उसीको पकड़ा, "अरे वाह, जग गए हो? क्या तो नाम है तुम्हारा?"

"जी विन्दावन।"

"वृन्दावन! वाह! नाम तो बहुत अच्छा है। चाय पी तुमने?"

"जी, मैं तो चाय नहीं पीता।"

सुनकर प्रकाश मामा कुछ हताश-सा हुआ। बोला, "नहीं पीते हो, न सही। बना तो सकते हो न?"

"जी हां, बना सकता हूं।"

"वेरी गुड। तो बनाओ तो थोड़ी सी चाय।"

उस आदमी को पता था, साला बाबू के हाथों ही सब कुछ है। मजदूरी के लिए इन्हींकी शरण गहनी पड़ेगी। उस समय इस चाय बनाने की याद रहेगी।

प्रकाश मामा ने कहा, "कड़ी-सी बनाना, समझे? दूध-वूध न भी मिले तो कोई हर्ज नहीं, रंग जिससे मिर्च जैसा लाल हो। चाय के लिए ही मैदान नहीं जा पा रहा हूं, सब ठप पड़ गया है, पेट-वेट कम हो रहा है।"

आदमी वह कमाल का निकला। कहां से किसको तो पकड़ा। चाय, चीनी, दूध—सब कुछ ले आया। कोयला सुलगाकर पानी चढ़ा दिया।

प्रकाश मामा ने कहा, "दो प्याला चाय बनने लायक पानी चढ़ाना। मैं पीऊंगा, फूफाजी पिएंगे। फूफाजी को पहचानते हो न? अरे, दुल्हा बाबू के नानाजी। मेहमान ठहरे, जबान खोलकर चाय के लिए किसीसे कह नहीं सकते। मगर मुझे कोई लाज-शरम नहीं। मैं खुले दिल का आदमी हूं। खाने-पीने के मामले में मैं लाज-वाज नहीं करता। जानते हो वृन्दावन, पेट सबसे बड़ी चीज है। पेट के लिए ही दुनिया चलती है। एक और भी बड़ी चीज है जरूर, पर पेट उससे भी बड़ा है। उसके न होने से भी चल सकता है, मगर पेट के बिना नहीं..."

वृन्दावन पानी उबाल रहा था और प्रकाश मामा सामने वही देख रहा था कि उसकी नजर सदा की ओर गई। सदानन्द है न। इतना सवेरे कहां गया था?

प्रकाश मामा फौरन उठ खड़ा हुआ। सदानन्द अन्दर ही की ओर जा रहा था। प्रकाश मामा भी उसी तरफ जाने लगा।

बिलकुल नजदीक जाकर पूछा, "क्यों रे, आज इतना सवेरे जग गया?"

सदानन्द का गम्भीर भाव देखकर उसे कुछ सन्देह हुआ। बोला, "तेरा चेहरा ऐसा क्यों है? क्या हुआ, बता तो?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं, कुछ नहीं हुआ है।"

प्रकाश मामा ने कहा, "कुछ न हो, वही ठीक है। उफ! कल तूने जिस कदर सबको फिक्र में डाल दिया था। मैं तो सोच रहा था, तू गजब कर बैठेगा। घर में नई बहू आई है। इस समय वैसा कुछ करने से मुंह दिखाना मुश्किल हो जाता, कसम। जानता है, तुझे कमरे में दाखिल कर लेने के बाद मैंने भोजन किया है। तेरे दादाजी भी बड़े बेचैन थे। मैंने जब उनसे जाकर कहा कि वह कमरे में चला गया, तब बूढ़े ने चैन की सांस ली।"

उसके बाद जरा रुककर बोला, "खैर, रहने दे ये फिजूल की बातें। रा

कैसे गुज़ारी, सो बता। बात पहले किसने की ? तूने या तेरी बहू ने ?"

सदानन्द ने कोई जवाब नहीं दिया।

प्रकाश मामा तंग करने लगा, "क्यों, जवाब नहीं देता ? बता, मुझे बताने में क्या लाज ? कसम, मैं किसीसे नहीं कहूंगा। मुझे बताने में दोष भी क्या ? मैं ही शादी करा लाया न ? और मुझीसे बेईमानी।"

सदानन्द ने कहा, "कहा तो, कहने लायक कुछ नहीं है ···"

"नहीं है, माने ? तू क्या रात-भर खर्राटा मारकर सोता रहा ? एं ! छि:, अजीब डपोरसंख है तू। वह लड़की क्या सोच रही होगी, सो बता। बेचारी कब से जाने इसी रात के आसरे थी और तू बेखबर सोता रहा।"

सदानन्द ने कहा, "मुझे अभी ये बातें अच्छी नहीं लग रही हैं प्रकाश मामा, फिर सब बता दूंगा···"

कहकर वह चला जा रहा था। प्रकाश मामा ने नहीं छोड़ा। बोला, "अबे शैतान, आज मैं पराया हो गया, है न ? अबच इतनी-इतनी परेशानी उठाकर मैं ही शादी करा लाया। आज मैं ही कोई नहीं। बेईमान है तू···"

बीच में बाधा पड़ी। चौधरी जी जा रहे थे। सदानन्द पर एकाएक नज़र पड़ते ही आगे बढ़ आए। बोले, "मुन्ने, अन्दर जरा मुझसे मिल तो लेना···"

हरनारायण चौधरी रुके नहीं। जिधर जा रहे थे, जाने लगे। सदानन्द भी उनके पीछे हो लिया।

याद है, पिता के सामने खड़े होकर सदानन्द उस दिन ज़रा थम गया था। चौधरी जी सीधे चंडीमंडप में गए। असल में जिस दिन से बूढ़े चौधरी पंगु हो गए थे, उसी दिन से उन्होंने चंडीमंडप में बैठना शुरू कर दिया था। वहीं बैठकर काम-काज की देखभाल किया करते। सुबह जाकर जो वहां बैठते, तो दिन के एक-दो बजे तक उनका वहीं कटता। एक-एक करके काम के सिलसिले में बहुतेरे लोग आते। उनकी इच्छा थी, मुन्ना भी उनके साथ वहां बैठा करे, काम-काज धीरे-धीरे देख-सुन ले, समझ ले। उनके रहते-रहते वह सारी जानकारी हासिल कर ले।

लेकिन, लेकिन लड़के का रवैया उन्हें कभी भी अच्छा नहीं लगता। बाप की बात वह टालता तो नहीं था, पर वैसा मानता भी नहीं था मानो। ऐसा साज कि काम न करना पड़े तो जी जाए।

कीर्तिपद बाबू अपने जामाता से पूछते, "अभी से बेटे को सब सिखा-विखा तो रहे हैं न ?"

हरनारायण कहते, "सिखा देना चाहता तो हूं, पर उसका इधर कतई ध्यान नहीं है।"

ससुर कहते, "इस उमर में तो ध्यान नहीं ही रहेगा। मेरे भी नहीं था। मेरे पिताजी मुझे कितना समझाया करते। उस समय लेकिन वह सब

अच्छा नहीं लगता था। लेकिन आखिर तो उसीमें डूब गया। अब तो उसके सिवा और कुछ भी नहीं समझता।"

लेकिन आज लगा, अब विलम्ब नहीं है। जो लड़का ठीक ब्याह के दिन ऐसा कांड कर सकता है, वह बहुत मामूली लड़का नहीं है। उसे यह समझा देना निहायत जरूरी है कि जिन्दगी बच्चों का खिलवाड़ नहीं है। सिर्फ पढ़ना और अड्डेबाजी के पीछे पड़े रहने से और चाहे जो चले, दुनिया नहीं चलती। घर-गिरस्ती का मतलब है, कन्धे पर जिम्मेदारी उठाना।

चंडीमंडप में एक चौकी बिछी थी। उसपर एक चटाई। चटाई पर सामने की तरफ लकड़ी का एक कैशबक्स। हरनारायण चौधरी उसी बक्स के पीछे जाकर बैठे। लड़के से कहा, "बैठो।"

सदानन्द बैठा नहीं। वैसा ही ठिठका-सा खड़ा रहा।

"बैठे नहीं? बैठो। सुन नहीं रहे हो?"

सदानन्द चौकी पर ही पांव लटकाकर बैठ गया।

चौधरी जी ने कल रात ही सोच रखा था। वही रात के तीन बजे। प्रीति जब बहू के पास चली गई थी। बहुत सोच-विचार करके उन्होंने बेटे का ब्याह किया था। ब्याह अवश्य एक दिन उन्होंने भी किया था। जीवन में ब्याह का क्या मतलब है, वह जानते हैं। मतलब जानने के साथ-साथ उसके दायित्व को भी उन्होंने कभी हलका नहीं समझा। बूढ़े चौधरी की तरह एक दिन वह भी बूढ़े हो जाएंगे। सम्भव है, कि उन्हींकी तरह पंगु होकर पड़े रहें। बेटे में यह मुन्ना ही चंडीमंडप में बैठकर रोजमर्रे का काम-काज देखेगा। लेकिन जो सुहागरात में ऐसा कांड कर सकता है, उसपर भरोसा कितना किया जा सकता है।

एकाएक उनके मुंह से असली सवाल निकला, "सारी रात कहां थे?"

सदानन्द ने जवाब देने में देरी नहीं की। बोला, "बाहर…"

चौधरी जी ठगे रह गए। पूछा, "बाहर! मतलब?"

सदानन्द ने कहा, "बाहर मतलब बाहर। मैं रात घर में नहीं था…"

चौधरी जी और भी अवाक् हो गए। मुन्ने ने उनके मुंह पर तो इस तरह कभी भी बात नहीं की। उसे अचानक इतनी हिम्मत कहां से आई? बोले, "तुम्हें पता है घर से बाहर रहना इस घर का नियम नहीं। सिर्फ इसी घर का क्यों, किसी भी घर का यह तौर नहीं कि घर के लड़के बाहर रात बिताएं। ऐसा करने से निन्दा होती है, लोग तरह-तरह की अफवाहें उड़ाते हैं।"

सदानन्द उठ खड़ा हुआ। बोला, "आप मुझे यही कहने के लिए यहां ले आए थे?"

लड़के का हाव-भाव देखकर वह हैरान-से देखते रह गए उसे। जरा देर के बाद बोले, "क्यों, यहां बुलाकर यह कहना क्या अन्याय हो गया?"

सदानन्द ने कहा, "न्याय-अन्याय की बात आप न करें। किसको न्याय और किसको अन्याय कहते हैं, मैं अच्छी तरह जानता हूं। अब मैं जा सकता

हूं ?"

चौधरी जी बोले, "तुम खड़े क्यों हो गए? बैठो।"

सदानन्द ने कहा, "नहीं। मैं यहां नहीं बैठूंगा। खड़े-खड़े ही सुनूंगा।"

चौधरी जी ने कहा, "तो फिर यह बताओ, तुमने ऐसा क्यों किया? बहू ने कौन-सा अपराध किया है? और मैं तथा तुम्हारी मां—हम लोगों ने ही ऐसा क्या अपराध किया है कि तुम लोगों के सामने हमें बेइज्जत करना चाहते हो? हमारी वंश-मर्यादा, बहू की वंश-मर्यादा, तुम क्या किसीके बारे में नहीं सोचोगे?"

सदानन्द चुपचाप रहा।

"बोल नहीं रहे हो? कोई जवाब तो दो।"

सदानन्द ने फिर भी कुछ नहीं कहा। चुप ही खड़ा रहा।

चौधरी जी अब खड़े हो गए। वह सदानन्द के निकट गए। बोले, "चलो अन्दर अपनी मां के पास चलो। तुमसे बात करनी है।"

हाथ पकड़कर सदानन्द को वह चंडीमंडप के बाहर ले आए। तब तक काफी सवेरा हो चुका था। लोग-बाग एक-एक करके जग गए। उन सबकी नजरों के सामने से ही वह सदानन्द को अन्दर लिवा आए। औरतें आ-जा रही थीं। वह सब भी जग चुकी थीं। चारों तरफ बेतरतीबी-सी थी। सदानन्द उनके पीछे-पीछे चल रहा था। बहुतेरी स्त्रियों ने छोटे बाबू को जो देखा, घूंघट काढ़कर सामने से हट गईं।

रात ठीक से सो नहीं सकी। प्रीति इसीलिए सवेरे ही तैयार हो चुकी थी। रात के तीन बजे तो आंख ही लगी थी, और उसी समय यह आफत आई। तब से मन भी खिजलाया हुआ था। नई बहू को मुंह दिखाने में भी शरम आ रही थी। सुहागरात में बेटा बहू के कमरे में नहीं सोया, यह लानत मानो बेटे की नहीं, बहू की भी नहीं, सास की ही हो। अथच यह एक ऐसी बात है, जो दूसरे किसीसे कही भी नहीं जा सकती। बोलकर किसीसे सहानुभूति नहीं मिलने की। मन-ही-मन इसे छिपाए भूसे की आग-सा घुलता रहना पड़ेगा।

इतने में पति को आते देख प्रीति अवाक् हो गई। पूछा, "मुन्ने का पता चला?"

कहते-कहते नजर पड़ गई, पीछे-पीछे मुन्ना भी है।

सदानन्द को कमरे में अन्दर लेकर चौधरी जी ने किवाड़ के पल्ले भिड़का दिए। बोले, "मुन्ने को तुम्हारे पास ले तो आया हूं।"

सदानन्द अपराधी की नाईं मां के पास खड़ा था।

चौधरी जी बोले, "मैंने इससे बहुतरा पूछा, मगर किसी बात का जवाब ही नहीं देता। तुम देखो, अगर कुछ जान सको।"

सीधे बेटे से आंखें मिलाकर प्रीति ने पूछा, "सारी रात कहां रहा रे मुन्ने?"

चौधरी जी बोले, "मैंने भी इससे यही पूछा। इसने सारी रात इधर-उधर

गंवाई। बेचारी नई बहू, नई जगह में डर के मारे कांपती रही। उसने क्या
दोष किया है ?"

बेटे के कन्धे पर हाथ रखकर प्रीति ने दिलासा देना चाहा। बोली, "तुझे हुआ क्या था, यह तो बता बेटे ? बहू पसन्द नहीं आई ? मुझसे खोलकर बता, क्या हुआ था तुझे ? मैं किसीसे कुछ नहीं कहूंगी। हम लोगों से कहने में तुझे क्या संकोच है। पहले तो तू मुझे सब बताया करता था, अब क्या हो गया कि तूने मुझसे कुछ कहा ही नहीं। मैं पराई हो गई ? तू क्या हमें पराया सोचने लगा ?"

सदानन्द फिर भी चुप ही रहा।

चौधरी जी कहने लगे, "उबटन की रस्म के समय तू घर छोड़कर भाग गया। सोचा, खैर, आगे चलकर सब ठीक हो जाएगा। उसके बाद थाना-पुलिस की नौबत आई। वह भी खैर चुक गई। अब यह बेचारी लड़की दूसरे घर से आई है, यह क्या सोच रही है, यह तो बता।"

मां ने बेटे की ओर देखकर कहा, "कुछ बोलता क्यों नहीं है ? घर में इतने-इतने लोग आए हैं, वे सुनेंगे तो क्या कहेंगे।"

अब सदानन्द की जबान खुली।

वह बोला, "मां..."

लेकिन कहते-कहते भी सारी बातें जैसे उसके मुंह में ही अटक गईं।

मां ने कहा, "रुक क्यों गया ? क्या कह रहा था, बोल।"

सदानन्द सिर झुकाकर खड़ा हो गया।

बाहर कैलास गुमाश्ते का गला सुनाई पड़ा, "छोटे बाबू..."

प्रीति ने पति से कहा, "कैलास गुमाश्ता तुम्हें बुला रहा है जाओ।"

लेकिन चौधरी जी की ऐसी स्थिति में वहां से जाने की इच्छा नहीं थी।
चौधरी जी दरवाजा खोलकर जैसे ही बाहर निकले, गुमाश्ता ने कहा, "जी, रेल-बाजार से प्राणकृष्ण साहजी आए हैं..."

प्राणकृष्ण साह। प्राणकृष्ण साह रेल-बाजार के आढ़तिए हैं। महाजन भी। रुपयों की जरूरत आ पड़ने पर चौधरी जी को इन्हींके आगे हाथ फैलाना पड़ता है। पूछा, "मगर ऐसे असमय में ?"

कैलास ने कहा, "कल शाम बहूभात में शामिल नहीं हो सके। बहू क
देखने के लिए आए हैं..."

चौधरी जी मन-ही-मन खीजे। कमरे में जाकर पत्नी से कहा, "ज
अक्ल की बलिहारी देखो। इस समय प्राणकृष्ण साह आ धमके हैं, बहू
मुंह देखेंगे। मुंह देखने का इन्हें और समय नहीं मिला। अब किया क्या ज
यह बताओ ?"

गृहिणी बोली, "अब जब आ पहुंचे हैं, तो लौटाया तो नहीं ही जा सक
लेकिन उन्हें जरा बैठने को कहो। बहू सो रही है। जगेगी, मुंह-हाथ धो
सजा-संवारकर दिखाऊंगी। अभी नहीं..."

हरनारायण चौधरी झुंझलाए। बोले, "आखिर आढ़तियां हैं न, अब

सिर खाए बैठे है। भला इतना सवेरे बहू को दिखाया जा सकता है। किसी-ने भी अभी तक बासी कपड़े भी नहीं बदले···"

बाहर निकलकर कैलास से पूछा, "उनको बिठा आए हो न ?"

"जी वे तो बूढ़े मालिक के पास बैठे हैं। बूढ़े मालिक ने ही आपको बुला लाने को कहा।"

चौधरी जी बोले, "ठीक है, मैं आ रहा हूं। तुम जाओ···"

यह कहकर वह खुद खड़े नहीं रहे, चंडीमंडप की ओर चले गए। वहां भी कुछ लोग बैठे थे। ये लोग रोजमर्रे के काम से आते हैं। छोटे बाबू से आदेश लेते हैं कि कहां, किस खेत में हल चलाना है, किस खेत से सरसों काटना है, कहां घेरा देना है। छोटे बाबू सवेरे ही सब निदेश दे देते हैं। निदेश देने के बाद मजदूरी देना। छोटे बाबू मजदूरी बाकी नहीं रखते, रोज की रोज देते है। इनके सिवाय वकील, मुख्तार, मुहर्रिरों से निबटना।

ऊपर, बूढ़े चौधरी के कमरे में प्राणकृष्ण साहु ने तब तक गपशप जमा रखी थी। पोते के ब्याह के लिए बधाई और वाहवाही दे रहे थे। कह रहे थे, "आपने बड़ा अच्छा काम किया चौधरी जी, काम जैसा काम—"

बूढ़े चौधरी बोले, "मेरा तो बस यही एक काम बाकी था, अब लाइन क्लीयर हो गया, अब चल देने से ही हुआ।"

साहु ने कहा, "ऐसा न कहें आप। अभी तो पोते का ब्याह ही हुआ है, उसके लड़का हो, लड़के का अन्नप्राशन हो, हम फिर छूटकर दावत खा लें—उसके बाद···"

प्राणकृष्ण साहु से बूढ़े चौधरी का सम्बन्ध पुराना है। सम्बन्ध अवश्य लेन-देन का ही रहा, लेकिन होते-होते वह मिताई में बदल गया। चौधरी परिवार इसे आसानी से इनकार नहीं कर सकता। इसीलिए उनका अत्याचार भी मुंह सीकर सहना पड़ता है।

इतने में छोटे चौधरी आ पहुंचे।

साहु बोले, "तो शुभकार्य सानन्द संपन्न हो गया न, और क्या चाहिए···"

बूढ़े चौधरी ने भी यही कहा, "आ। मुझे तो बड़ी घबराहट थी। मेरे पोता कुछ ऐसे जिद्दी हैं कि चिन्ता थी, कुछ कर न बैठे। आज के छोरे-छोकरे तो हम लोगों जैसे नहीं है, ये कुछ और ही तरह के हैं।"

छोटे चौधरी बीच में बोल उठे, "आपको जरा इन्तज़ार करना पड़ेगा साहु जी! बहूरानी अभी-अभी जगी, जरा हाथ-मुंह धोकर तैयार हो लें।"

साहु ने कहा, "नहीं-नहीं, मुझे ऐसी कोई जल्दी नहीं है। मैं तब तक गप-शप कर रहा हूं···"

उधर लेकिन सदानन्द मां के सामने बुत-सा खड़ा था।

मां ने कहा, "बता, तुझे हुआ क्या है ?"

सदानन्द बोल उठा, "बार-बार तुम एक ही बात क्यों पूछ रही हो ?"

मां ने कहा, "आखिर तू बताएगा तो कि बहू के पास तू सोएगा क्यों नहीं ?"

सदानन्द ने कहा, "मैंने तो कहा है···"

"क्या कहा है ?"

"मैंने तो कहा, तुम बार-बार मुझसे यह न पूछो। मैं नहीं बताऊंगा।"

मां ने कहा, "खैर, मुझे मत बता, तू बहू से कह। एक बार जाकर तू बहू से बात कर। कल रात तीन बजे बेचारी डरकर मुझे आकर पुकारने लगी। मैं जाकर वहां सोई, तब वह ज़रा सो सकी। पता है तुझे, मुझसे लिपटकर वह किस कदर रोई ? उसे मैं क्या दिलासा दूं ? क्या कहकर समझाऊं ?"

"तुम क्या समझाओगी, यह मैं क्या जानूं ?"

"तू नहीं जानेगा तो तू घर से भाग क्यों गया ? उस बेचारी ने क्या बिगाड़ा ?"

सदानन्द ने कहा, "मैंने तो पहले ही कहा था, मैं ब्याह नहीं करूंगा।"

मां बोल उठी, "क्यों नहीं करता। ब्याह कौन नहीं करता है, सुनूं ज़रा ?"

सदानन्द ने कहा, "तुम सब जानती नहीं हो मां ! जब जानती नहीं तो फिर बोलो मत।"

इस बार मां देर तक लड़के के मुंह की ओर ताकती रही। मन में जैसे कोई आतंक हो आया। बोली, "तो क्या तू कभी भी बहू के साथ नहीं सोएगा ?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं।"

"एक पराई लड़की को लाकर इतनी कष्ट देगा तू ?"

"इसका ज़िम्मेदार मैं नहीं हूं।"

"तो फिर वह बेचारी यहां क्या करेगी ? उसने ऐसा कौन-सा पाप किया कि तू उसे ऐसी दण्ड देगा ? तेरे क्या कोई धर्म भी नहीं है ? दया, माया, ईश्वर —तू कुछ भी नहीं मानेगा ? उसके बारे में सोचेगा भी नहीं ज़रा ? उसकी न सही, हम लोगों की भी नहीं सोचेगा ? और, हम लोग सगे-सम्बन्धियों के आगे, लोगों के सामने कौन-सा मुंह दिखाएंगे ? आखिर सब दिन तो यह बात छिपी रहेगी नहीं, एक न एक दिन सबको मालूम हो ही जाएगी। फिर ?"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन तुम लोगों ने यह सब पहले क्यों नहीं सोचा ? जब दादाजी ने कालीगंज की बहू को रुपया नहीं दिया, तब क्यों नहीं सोचा दादाजी ने जब उसका खून कराया, तब भी तो तुम लोगों ने एक शब्द भ न कहा।"

मां ने बेटे को चुप करा दिया। बोली, "तू धीरे से बोल बेटे, ज धीरे। बाहर के सब लोग सुन लेंगे।"

सदानन्द और भी ज़ोर से बोल उठा, "चुप रहने से ही क्या सब यह बात छिपी रहेगी, सोचती हो ?"

मां ने कहा, "लगता है, तेरा दिमाग खराब हो गया है। चल, मेरे चल। बहू के पास चलकर तू इससे यह सब कहना, चल।"

सदानन्द बोला, "बहू के पास मैं क्यों जाऊं ? तुम लोग घर बनाकर उसे ले आई हो, तुम्हीं लोग उसे लेकर घर-गिरस्ती करो, मुझे दो। इस झमेले में मुझे मत खींचो।"

"पागलपन मत कर, चल मेरे साथ…"

प्रीति हाथ पकड़कर लड़के को खींचने लगी।

सदानन्द ने अपना हाथ जबरदस्ती छुड़ा लिया। बोला, "इतने दिनों में भी तुम मुझे नहीं पहचान सकी मां? हाथ पकड़कर खींचने से ही मैं चला जाऊंगा? मैं कोई बच्चा हूं?"

"खैर तू मत जा। मैं बहू को ही बुला लाती हूं। उसीके सामने साफ-साफ सब बात हो जाए।"

सदानन्द कमरे से बाहर जाने लगा। मां ने झट उसका हाथ पकड़ लिया। बोली, "कहां जा रहा है?"

सदानन्द ने कहा, "कहां जा रहा हूं, मैं तुम्हें इसकी कैफियत देने के लिए मजबूर नहीं हूं···"

मां ने कहा, "खैर, मुझे न सही, बहू को बता जा। बहू को बता दे कि तू उसके कमरे में क्यों नहीं रहेगा। कम-से-कम मेरी जिम्मेदारी तो छूट जाए। कम-से-कम मुझे तो छुटकारा मिले। जो अच्छा समझो, तुम लोग आपस में समझौता कर लो। बीच में मैं क्यों पाप का भागी बनूं?"

सदानन्द ने इसका कुछ भी जवाब नहीं दिया।

मां बेटे के और भी नजदीक आ गई। बोली, "दोष किसने और क्या किया, उसके लिए छीछालेदर मेरी और उस छोटी-सी दूध-पीती बच्ची की होगी? यही तेरा न्याय है?"

सदानन्द ने कहा, "तुम बड़ी-बड़ी बातें न करो मां, मैं इन बड़ी बातों से भूलने वाला नहीं—यह जान लो। मुझे जो करना है, मैंने तय कर लिया है।"

"क्या तय कर लिया है?"

"क्या तय किया है, यह देख ही लोगी। मुझसे पूछो मत।"

मां ने कहा, "यानी तू कभी बहू के कमरे में नहीं सोएगा?"

सदानन्द चुप रहा।

मां ने फिर जोर देकर पूछा, "क्यों, जवाब क्यों नहीं देता? जवाब दे—"

सदानन्द की आंखों से आंसू ढलक रहे थे। उसे वह जल्दी-जल्दी दाएं हाथ से पोंछने जा रहा था। मां ने उसका हाथ पकड़ लिया। बोली, "मुझसे छिपा रहा है तू? मुझसे मन की बात छिपाकर पार पाने की सोच रहा है? फिर मैं तेरी मां क्यों हुई? तुझे दस महीने दस दिन अपने पेट में क्यों रखा? तेरी ही जिद बड़ी होगी, मैं कोई नहीं? तेरे लिए मेरे कहने की कोई कीमत नहीं? यही विचार है तेरा?"

मां की बात सुनते-सुनते सदानन्द से रहा नहीं गया। उसने देखा, मां की भी आंखों से आंसू जारी है। मां की ओर देखकर बोला, "मां···"

मां बोल उठी, "नहीं, मैं तेरी मां नहीं हूं। आज से मैं तेरी कोई नहीं। अब से तू मुझे मां कहकर मत पुकारना। जा।"

यह कहकर प्रीति एक डेग पीछे हट गई। सदानन्द मां की ओर बढ़ गया। बोला, "मां···"

प्रीति ने कहा, "नहीं। तू मुझे मां कहकर मत पुकार। मेरे कमरे से तू निकल जा। मैं अब तेरी शक्ल नहीं देखना चाहती। जा, निकल जा···"

सदानन्द तो भी मां के और नजदीक गया। बोला, "तुम मुझसे नाराज़ मत होओ मां, मेरी बात सुनो···"

"मैं तेरी कोई बात नहीं सुनना चाहती। तू मेरे कमरे से चला जा।"

सदानन्द ने सामने जाकर मां को दोनों हाथों से जकड़ लिया। बोला, "तुम मेरी सुन तो लो मां, मेरी बात सुन लो···"

मां उसके हाथ पकड़कर अपने को छुड़ाने की कोशिश करने लगी। कहा, "नहीं। तू मेरे सामने से चला जा। मैं तेरा मुंह नहीं देखना चाहती।"

सदानन्द ने कहा, "तुम मुझपर नाराज न हो मां! तुम मेरी बिलकुल नहीं सोच रही हो, सिर्फ अपनी ही सोच रही हो। मगर मैं क्या करूं कहो तो! बताओ, मैं क्या करूं? मुझसे तो अब सहा नहीं जाता···"

मां ने कहा, "क्यों? हुआ क्या है तुझे?"

सदानन्द बोला, "क्या नहीं हुआ है, मुझसे तुम यह पूछो। तुम्हारे इस पाप-भरे घर में मैं कैसे रहूं! मैं सिर्फ यही सोचता हूं, तुम लोगों से तालमेल मिलाकर मैं कैसे चल सकूंगा? मेरा तो कलेजा दो टूक हुआ जा रहा है मां, तुम उसे देख नहीं पा रही हो।"

"क्यों, कलेजा किसलिए फटा जा रहा है?"

सदानन्द बोला, "तुम तो घर के अन्दर रहती हो, वह सब तुम कैसे जानोगी? कपिल पायरापोड़ा को जानती हो? माणिक घोष को जानती हो? फटिक नाई को? कितनों का नाम जानती हो तुम? फिर कालीगंज की बहू? तुम सिर्फ मुझीको दोष दे सकती हो मां, मगर इतने दिनों से इस घर में इतना जो अन्याय होता आ रहा है, उसके विरुद्ध तो कभी कुछ नहीं कहा?"

मां ने कहा, "इन बातों के लिए तू अपना दिमाग इतना क्यों खपाता है? यह सब सोचने की तुझे पड़ी ही क्या है? इन बातों के लिए तू अपने कान में रुई डाल सकता है···"

सदानन्द ने कहा, "मैं दिमाग न खपाऊं तो वे बेचारे क्या यों ही मर जाएं? कोई उनका ख्याल नहीं करेगा?"

बाहर से पुकार आई, "भाभी, भाभी···"

मां ने कहा, "तेरी गौरी बुआ बुला रही है। मैं चलती हूं। काम-काज का घर, तुझसे इतनी देर तक बात करने का क्या समय है! मैं जाती हूं···"

जरा देर रुक गई। बेटे की ओर देखकर बोली, "तो? अबसे मेरी बात सुनेगा तो?"

परन्तु बाहर से फिर दरवाजे पर दस्तक, "भाभी, ओ भाभी···"

प्रीति ने दरवाजा खोल दिया। गौरी बुआ बोली, "अन्दर क्या कर रही थी भाभी?" तब तक सदानन्द पर नजर पड़ गई। वह फिर कुछ न बोली।

सदानन्द चुले, दरवाजे से बाहर निकल गया। सदानन्द के चले जाते ही गौरी ने कहा, "खबर सुनी ?"

"कौन-सी खबर ?"

गला नीचा करके गौरी बोली, "बहू के मायके से आदमी आया है—"

"क्यों ? कल ही तो सुहागरात के लिए सामान लेकर आदमी आए थे। आज फिर इतना सवेरे आने की क्या जरूरत पड़ गई ?"

गौरी ने कहा, "गजब हो गया है भाभी ! वह आदमी बड़ी बुरी खबर लेकर आया है।"

"क्या, खराब खबर ?"

"बहू की मां बहुत बीमार हो गई है।"

"बीमार ? बहू को लेने के लिए आया है ? जरा देख लो रवैया। तू उस कमरे में गई थी ? बहू क्या कर रही है ?"

गौरी ने कहा, "मैं बहू को यह खबर नहीं सुना सकूंगी, हां। तुम्हीं जाओ।"

प्रीति ने कहा, "छोटे बाबू कहा हैं ? उन्हें मालूम है ?"

"बहू के मायके के आदमी ने उन्हींको तो चिट्ठी दी है। बहू के बाप ने उस चिट्ठी में सब लिखा है—"

प्रीति के माथे पर मानो गाज गिरी। एक तो सारी रात वह झमेला गया और सवेरे साहजी बहू देखने के लिए आए हैं। अब तक उनको बिठला कर रखा गया है। अब बहू को सजा-गुजाकर दिखाना होगा। अब ऊपर से यह समधिन की बीमारी की खबर। कम्बख्त बीमारी के लिए क्या समय असमय नहीं ? और बीमारी हो ही गई तो इसी वक्त क्या खबर भेजनी थी। एक दिन के बाद खबर भेजते तो कौन-सा महाभारत अशुद्ध हो जाता ? सुहागरात का अभी-अभी सवेरा हुआ, बासी मुंह में पानी तक नहीं पड़ा है, ऐसे में बहू को यह खबर सुनाई भी जाए तो कैसे ? रो-पीट कर जमीन-आसमान एक करेगी।

"अच्छा, तू जा। मैं देखती हूं।"

प्रीति सीधे बहू के कमरे में गई। बाहर से वह किवाड़ भिड़ाकर गई थी। किवाड़ ज्यों का त्यों भिड़ा हुआ था।

प्रीति ने चुपके-चुपके किवाड़ की फांक से भीतर झांका। देखा, बहू तकिए में मुंह गाड़कर बिस्तर पर पड़ी है। लगा, जाग रही है।

प्रीति धीरे-धीरे अन्दर गई। बिस्तर के पास जाकर उसने भांपने की कोशिश की कि वह सोई है या जाग रही है।

शायद नयनतारा को पैरों की आहट सुनाई पड़ी थी। उसने सिर उठाकर देखा। प्रीति ने कहा, "तुम जाग ही रही हो बहूरानी ?"

सास की बात के जवाब में नयनतारा हड़बड़ाकर उठ बैठी, "जी···"

"जरा भी नींद नहीं आई ? सुलाकर ही तो गई थी मैं। सोने की कोशिश क्यों नहीं की ?"

प्रीति ने कहा, "नहीं। तू मुझे मां कहकर मत पुकार। मेरे कमरे से तू निकल जा। मैं अब तेरी शक्ल नहीं देखना चाहती। जा, निकल जा···"

सदानन्द तो भी मां के और नजदीक गया। बोला, "तुम मुझसे नाराज मत होओ मां, मेरी बात सुनो···"

"मैं तेरी कोई बात नहीं सुनना चाहती। तू मेरे कमरे से चला जा।"

सदानन्द ने सामने जाकर मां को दोनों हाथों से जकड़ लिया। बोला, "तुम मेरी सुन तो लो मां, मेरी बात सुन लो···"

मां उसके हाथ पकड़कर अपने को छुड़ाने की कोशिश करने लगी। कहा, "नहीं। तू मेरे सामने से चला जा। मैं तेरा मुंह नहीं देखना चाहती।"

सदानन्द ने कहा, "तुम मुझपर नाराज न हो मां! तुम मेरी बिलकुल नहीं सोच रही हो, सिर्फ अपनी ही सोच रही हो। मगर मैं क्या करूं कहो तो! बताओ, मैं क्या करूं? मुझसे तो अब सहा नहीं जाता···"

मां ने कहा, "क्यों? हुआ क्या है तुझे?"

सदानन्द बोला, "क्या नहीं हुआ है, मुझसे तुम यह पूछो। तुम्हारे इस पाप-भरे घर में मैं कैसे रहूं! मैं सिर्फ यही सोचता हूं, तुम लोगों से तालमेल मिलाकर मैं कैसे चल सकूंगा? मेरा तो कलेजा दो टूक हुआ जा रहा है मां, तुम उसे देख नहीं पा रही हो।"

"क्यों, कलेजा किसलिए फटा जा रहा है?"

सदानन्द बोला, "तुम तो घर के अन्दर रहती हो, वह सब तुम कैसे जानोगी? कपिल पायरापोड़ा को जानती हो? माणिक घोष को जानती हो? फटिक नाई को? कितनों का नाम जानती हो तुम? फिर कालीगंज की बहू? तुम सिर्फ मुझीको दोष दे सकती हो मां, मगर इतने दिनों से इस घर में इतना जो अन्याय होता आ रहा है, उसके विरुद्ध तो कभी कुछ नहीं कहा?"

मां ने कहा, "इन बातों के लिए तू अपना दिमाग इतना क्यों खपाता है? यह सब सोचने की तुझे पड़ी ही क्या है? इन बातों के लिए तू अपने कान में रुई डाल सकता है···"

सदानन्द ने कहा, "मैं दिमाग न खपाऊं तो वे बेचारे क्या यों ही मर जाएं? कोई उनका ख्याल नहीं करेगा?"

बाहर से पुकार आई, "भाभी, भाभी···"

मां ने कहा, "तेरी गौरी बुआ बुला रही है। मैं चलती हूं। काम-काज का घर, तुझसे इतनी देर तक बात करने का क्या समय है! मैं जाती हूं···"

जरा देर रुक गई। बेटे की ओर देखकर बोली, "तो? अबसे मेरी बात सुनेगा तो?"

परन्तु बाहर से फिर दरवाजे पर दस्तक, "भाभी, ओ भाभी···"

प्रीति ने दरवाजा खोल दिया। गौरी बुआ बोली, "अन्दर क्या कर रही थी भाभी?" तब तक सदानन्द पर नजर पड़ गई। वह फिर कुछ न बोली।

"समधी जी के यहां का आदमी क्या कह रहा है ?"

"वह क्या कहेगा ? वह तो खबर देने आया है। समधी जी खुद भी कुछ सोच नहीं सके है। उधर लोग लाश को लेकर श्मशान गए और उन्होंने आदमी को इधर भेज दिया। यहां जो करना है, हमें ही करना है।"

कोई हल नहीं निकाल पाकर चौधरी जी दोनों हाथों से सिर के बाल मरोड़ने लगे। जैसे ये बाल ही समस्या के समाधान की बाधा हों।

लेकिन इतना सुनने या सोचने का भी समय किसीको नहीं था। न तो प्रीति को, न ही चौधरी जी को। चौधरी जी ने कहा, "और उधर साहजी बैठे हैं। बहूरानी तैयार हो गई है तो ?"

प्रीति उखड़ गई, "कैसे तैयार होगी ? जब-तब बहू देखने आ गए और उसे देख लिया। आखिर आदमी का मौका-बेमौका भी तो एक चीज़ है ?"

चौधरी जी ने कहा, "नहीं-नहीं, मैं सो नहीं कह रहा हूं। उनको तो मैंने बिठा ही रक्खा है।"

प्रीति ने कहा, "हां, वह बैठे रहें। बहू तैयार हो जाएगी, तो दिखाऊंगी। उससे पहले नहीं। मेरे भी तो मौका-बेमौका है। मैं भी तो सारी रात सो नहीं पाई हूं। मेरा सिर घूम रहा है, मैं भी कुछ सोच नहीं पा रही हूं।

प्रीति अपने काम में चली गई।

चौधरी जी कुछ देर तक वहां चुपचाप खड़े रहे। फिर वह भी धीरे-धीरे बाहर की ओर जाने लगे।

उस दिन घर में यह एक विचित्र परिस्थिति खड़ी हो गई। किसीको भी पता नहीं चला कि इस घर में कहां, किस कोने में एक दरार पड़ी है। सभी उत्सव के आनन्द में मस्त थे। जो न्योता खाकर गए, वे सब खान-पान की प्रशंसा में पंचमुख। जो बहू को देख गए, वे बहू की रूप की प्रशंसा में मुखर। उन लोगों ने ऐश्वर्य, प्राचुर्य और विलास की चमक-दमक ही देखी। उन सबके अन्दर दुर्योग की जो दुर्दशा थी, उसके चेहरे को वे नहीं देख सके। वह दबी रहे, उसपर पुलटिस चढ़ा दो। उनके लिए तुम्हारी बाहरी ऐश्वर्य ही सत्य हो, कोई जिसमें उसकी दरिद्रता को न देख पाए। उसे देख लेंगे, तो तुम्हारे सम्मान, समृद्धि और सम्पद का महल टूटकर चूर-चूर हो जाएगा। फिर कोई तुम्हें सलाम भी नहीं करेगा, कोई तुमसे ईर्ष्या भी नहीं करेगा। जैसे संसार में कोई तुमसे ईर्ष्या न करे तो तुम्हारा सिर ही कैसा ऊंचा रहेगा ? फिर तो तुम साधारण हो जाओगे। बिलकुल साधारण। और साधारण बनकर जीने का मतलब ही तो नीचे गिर जाना है। यानी और सबके समान होना, सबसे एकाकार हो जाना।

उत्सव वाले घर में कल के बहूभात का सूत्र पकड़कर जब सबने सवेरे से ही खुशी की हवा में हिलोरें लेनी शुरू की, बासी पूरी और तले हुए बैंगन के

नयनतारा ने कोई जवाब नहीं दिया।

प्रीति ने कहा, "अच्छा, तुम जरा बैठो बहू ! कोई चिन्ता न करो। मैं आती हूं। चाय पीने की आदत है न ? पीती हो चाय ?"

नयनतारा ने कहा, "हां..."

"तो मैं चाय बना लाती हूं। एक सज्जन आए हैं। कल शाम किसी वजह से नहीं आ सके थे। आज सुबह से ही बैठे हुए हैं। तुम्हें आशीर्वाद करके चले जाएंगे। उससे पहले तुम्हें तैयार हो लेना पड़ेगा।"

ज़रा रुककर फिर बोली, "तुम जरा देर इन्तज़ार करो बहू, मैं तुरन्त आती हूं। जाऊंगी और आ जाऊंगी।"

प्रीति बाहर चली गई। जाते समय किवाड़ के पल्ले भिड़ाती गई।

अपने कमरे की ओर जा रही थी कि बीच में पति से भेंट हो गई। चौधरी जी तेज़ी से चले आ रहे थे। गृहिणी को देखते ही बोले, "सुनती हो, कहां थीं तुम ?"

गृहिणी ने कहा, "बहू के पास थी, क्यों ?"

"बहू अभी कैसी है ?"

"कैसी है क्या। रातभर नहीं सोई। नहीं सोने से आंखें जवा के फूल जैसी सुर्ख हो गई हैं। बहू के लिए चाय बनाने जा रही थी। हां, सुना, बहू की मां की तबीयत बहुत खराब है ? समधी जी की चिट्ठी लेकर, वहां से कोई आया है न क्या ?"

"तुमसे किसने कहा ?"

"गौरी ने। लेकिन बीमारी की खबर आज भेजे बिना क्या नहीं चलता ?"

चौधरी जी एकाएक गम्भीर हो गए। आवाज़ धीमी करके बोले, "तुमसे चुपचाप कह दूं। अभी किसीसे कहना मत। यह देखो, समधी जी ने यह पत्र भेजा है। समाचार बड़े ही दुःख का है। बहू की मां बीमार नहीं हैं, वह तो मैंने गौरी को छिपाकर कहा है। असल में उनकी मां कल गुज़र गईं।"

"हैं ?"

प्रीति के माथे पर जैसे आसमान टूट पड़ा। बोली, "कह क्या रहे हो तुम ? कब गुज़र गईं ? क्या हुआ था उन्हें ? वहां के आदमी ने कल तो कुछ भी नहीं कहा।"

इस घर की जो घरनी हैं, जिम्मेदारी जैसे सब उन्हींकी है। नई बहू आई, भार कुछ कम होगा, सो नहीं। और बढ़ ही गया मानो। एक तो यों ही कई दिनों से झंझट चल रही है, तिसपर लड़के की सख्ती। अब बहू को सम्भाले कि लड़के को, इसी सोच से परेशान। ऊपर से यह झंझट आन पड़ी। प्रीति को तो दिमाग सही रखना ही दूभर हो गया।

वह बोली, "तो मैं अब करूं क्या ? बहू से यह बात कहूं कैसे ? सुनते ही वह तो रोते-रोते बेहाल हो जाएगी। सम्भालूंगी कैसे ?"

चौधरी जी ने कहा, "मैं तो वही सोच रहा हूं। क्या करूं, किससे राय करूं, यह भी समझ में नहीं आता।"

समधी जी के यहां का आदमी क्या कह रहा है?"
वह क्या कहेगा? वह तो खबर देने आया है। समधी जी खुद भी कुछ नहीं सके हैं। उधर लोग लाश को लेकर श्मशान गए और उन्होंने आदमी इधर भेज दिया। यहां जो करना है, हमें ही करना है।"
कोई हल नहीं निकाल पाकर चौधरी जी दोनों हाथों से सिर के बाल नोचने लगे। जैसे ये बाल ही समस्या के समाधान की बाधा हों।
लेकिन इतना सुनने या सोचने का भी समय किसीको नहीं था। न तो प्रीति को, न ही चौधरी जी को। चौधरी जी ने कहा, "और उधर साहजी बैठे हैं, बहूरानी तैयार हो गई हैं तो?"
प्रीति उखड़ गई, "कैसे तैयार होगी? अब-तब वह देखने आ गए और देख लिया। आखिर आदमी का मौका-बेमौका भी तो एक चीज है?"
चौधरी जी ने कहा, "नहीं-नहीं, मैं यों नहीं कह रहा हूं। उनको तो मैंने रोक ही रखा है।"
प्रीति ने कहा, "हां, वह बैठे रहें। वह तैयार हो जाएगी, तो दिखाऊंगी। उससे पहले नहीं। मेरे भी तो मौका-बेमौका है। मैं भी तो सारी रात सो नहीं पाई हूं। मेरा सिर घूम रहा है, मैं भी कुछ सोच नहीं पा रही हूं।
प्रीति अपने काम में चली गई।
चौधरी जी कुछ देर तक वहां चुपचाप खड़े रहे। फिर वह भी धीरे-धीरे बाहर की ओर जाने लगे।

उस दिन घर में यह एक विचित्र परिस्थिति खड़ी हो गई। किसीको भी पता नहीं चला कि इस घर में कहां, किस कोने में एक दरार पड़ी है। सभी उत्सव के आनन्द में मस्त थे। जो न्योता खाकर गए, वे सब खान-पान की प्रशंसा में पंचमुख। जो बहू को देख गए, वे बहू की रूप की प्रशंसा में मुखर। उन लोगों ने ऐश्वर्य, प्राचुर्य और विलास की चमक-दमक ही देखी। उन सबके अन्दर दुर्योग की जो दुर्दशा थी, उसके चेहरे को वे नहीं देख सके। वह दबी रहे, उसपर पुलटिस चढ़ा दो। उनके लिए तुम्हारी बाहरी ऐश्वर्य ही सत्य हो, कोई जिसमें उसकी दरिद्रता को न देख पाए। उसे देख लेंगे, तो तुम्हारे सम्मान, समृद्धि और सम्पद का महल टूटकर चूर-चूर हो जाएगा। फिर कोई तुम्हें सलाम भी नहीं करेगा, कोई तुमसे ईर्ष्या भी नहीं करेगा। जैसे संसार में कोई तुमसे ईर्ष्या न करे तो तुम्हारा सिर ही कैसा ऊंचा रहेगा? फिर तो तुम साधारण हो जाओगे। बिलकुल साधारण। और साधारण बनकर जीने का मतलब ही तो नीचे गिर जाना है। यानी और सबके समान होना, सबसे एकाकार हो जाना।
उत्सव वाले घर में कल के बहूभात का सूत्र पकड़कर जब सबने सवेरे से ही खुशी की हवा में हिलोरें लेनी शुरू कीं, बासी पूरी और तले हुए बैंगन के

में विभोर हो पड़े, तो घर की मालकिन का मिज़ाज सातवें आसमान चढ़ गया। अथच कल रात में भी ऐसा न था। कल मालकिन चौड़ी कोर शांतिपुरी साड़ी पहनकर सबका स्वागत कर रही थी। उसीका आज दूसरा रूप, दूसरा मिज़ाज था। गौरी बुआ क्या कुछ तो कहने आई थी, टकार खाकर लौट गई।

प्रीति बोल उठी, "एक ही तो माथा है अपना। किस-किस तरफ सम्भालूं, सो तो कहो। नहीं खाया तो मेरी बला से। खाने की जरूरत भी क्या! अभी तक मेरी नई बहू ने पानी नहीं पिया। मैं उसकी सोचूं कि तुम लोगों की।"

गौरी बुआ ने कहा, "मैंने वह तो नहीं कहा भाभी! कह रही हूं, रसोइए पूछ रहे हैं, कितना आटा गूंदें..."

प्रीति झूंझला उठी, "कितना आटा गूंदेंगे, यह मैं अभी से कैसे कहूं? मैं क्या गिनना जानती हूं कि गिनकर बताऊं कि इतने लोग खाएंगे।"

इसपर कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन इतना ही नहीं सिर्फ, मामूली बातों पर मालकिन का चिड़चिड़ा मिज़ाज सवेरे से ही लोगों की नज़र में आया।

सबसे ज्यादा गरम तो हुआ प्रकाश मामा की बात सुनकर।

प्रकाश मामा ने आते ही कहा, "दीदी, मैं सुना बहू को उसके मैके भेजा जा रहा है?"

दीदी ने कहा, "किसने कहा तुमसे?"

"बात सच है या नहीं, यह कहो न। बात नहीं, चीत नहीं, यों ही भेज दिया और हो गया? आठ दिन तो नहीं बीते हैं अभी।"

प्रीति ने कहा, "लेकिन यह सब तुमसे कहा किसने?"

"और कौन कहेगा, जीजाजी ने कहा।"

"तो जिसने कहा है, उसीसे पूछो, बहू को क्यों भेजा जा रहा है।"

प्रकाश मामा ने कहा, "तब तो मैंने जो सुना, वह सच है।"

प्रीति ने कहा, "सच-झूठ को नहीं जानती। मुझे उतना जानने का समय नहीं।"

कहकर वह फिर अपने काम में चली गई। लेकिन प्रकाश मामा इस विषय पर चुप नहीं बैठा रह सका। असल में चुप बैठा रहना उसका स्वभाव ही नहीं। वह फिर दौड़कर चौधरी जी के पास गया। बोला, "जीजाजी कहां, दीदी ने तो कुछ नहीं कहा।"

चौधरी जी अपनी ही झंझट में व्यस्त थे। प्रकाश की बात समझ नहीं पाए। बोले, "किस बारे में?"

"यही, आपने जो कहा कि बहूरानी को मैके भेज दिया जाएगा।"

चौधरी जी बिगड़ उठे। बोले, "तो क्या वह एक बार अपने मायके नहीं जाएगी? शादी हुई है, तो क्या सदा ससुराल में ही कैद रहेगी? बाप-मां के लिए जी जरा कैसा नहीं करता? बच्ची है, ज्यादा उम्र तो है..."

"लेकिन कुछ दिन तो यहां रहेगी। एक हफ्ता तो रहे। आप इतनी जल्दी यों विदा किए दे रहे हैं?"

चौधरी जी को सन्देह हुआ। बोले, "आखिर बहू के लिए तुम्हें इतना दरदर्द क्यों? बहूरानी ने तुमसे कुछ कहा है?"

"बहू? बहू क्यों कहने लगी? आपकी बात।"

"तो? तो किसने तुम्हें उसकी ओर से वकालत करने को कहा है? बोल, किसने कहा?"

प्रकाश मामा अब क्या कहे? सहसा बोल उठा, "सदा। सदा कह रहा था।"

चौधरी जी तो अवाक्। बोले, "सदा? सदा ने तुमसे कहा है?"

प्रकाश ने कहा, "हां।"

"क्या कहा सदा ने?"

"पूछ रहा था, 'बाबूजी इतनी जल्दी बहू को मैके क्यों भेजे दे रहे हैं।'"

"सदा ने तुमसे यह पूछा?"

प्रकाश मामा ने कहा, "पूछेगा नहीं भला? महज कल तो सुहागरात थी। दोनों में अभी ठीक से भाव-चाव भी नहीं हो पाया और आप बहू को कृष्णनगर भेजे दे रहे हैं।"

"सदा कहां है? उसे जरा मेरे पास तो बुला लाओ।"

प्रकाश मामा सदा को बुलाने के लिए चला गया। बात हकीकत में यह थी कि यह खबर प्रकाश मामा को किसीने भी नहीं कही। जगते ही उसने सौंदर्य में चाय बनवाकर पी। अपने फूफाजी को भी एक प्याला पिला आया। विशाल मकान। बाहर, अंदर महल। बाहर घर का आंगन, अन्दर महल का आंगन। कल 'बहूभात' था। पूरा मकान लोगों से खचाखच भर गया था। उसने हर वक्त मुस्तैदी रखी कि किसने कब खाया, किसने नहीं खाया। साथ-ही-साथ उसने सदानन्द पर निगरानी रखी। ताकि वह कहीं भाग न जाए। जब सब चुक-चुका गया, तो सदानन्द को उसके कमरे में पहुंचाकर ही वह निश्चिन्त हो सका। उस समय तक वह थककर चूर हो चुका था। सभी थक गए थे। अंत में एक जगह ढूंढ़कर लेटते ही वह बेखबर हो गया। सवेरे उसकी दीनू से भेंट हुई। काफी दिन निकल आया था। चाय पीकर हरारत बहुत कुछ मिट चुकी थी।

प्रकाश मामा ने दीनू से पूछा, "क्या खबर है दीनू? कल का खाना कैसा रहा?"

दीनू को बात करने का वक्त नहीं था। बोला, "जी, अच्छा।"

मुख्तसर में इतना ही कहकर वह चला जा रहा था। लेकिन प्रकाश मामा ने कहा, "क्यों दीनू, इतनी जल्दी चले क्यों जा रहे हो? बूढ़े मालिक जग गए क्या?"

दीनू ने जाते-जाते कहा, "नहीं। कृष्णनगर से लोग आए हैं। उन्हें खिलाने का इंतजाम करना है।"

"कृष्णनगर के लोग ! कृष्णनगर से लोग आए हैं ? कल ही तो वहां के सामान लेकर आए थे और खा-पीकर गए। फिर आज सवेरे आ पहुंचे? ...नक ?"

दीनू ने कहा, "बहू को ले जाने के लिए।"

"अरे ! बहू को ले जाएंगे ? मतलब ?"

दरअसल दीनू भी ठीक-ठीक जानता नहीं था। सदानन्द की ससुराल ... लोग जब आए हैं, तो बहू को ले जाने के लिए ही आए होंगे। इसके सिवाय उनके आने की और क्या वजह हो सकती है।

"कहां हैं वे लोग ?"

दीनू ने कहा, "चंडीमंडप में बैठे हुए हैं।"

लेकिन प्रकाश मामा जब तक चंडीमंडप में पहुंचा, वे जा चुके थे।

चौधरी जी ने प्रकाश को देखकर पूछा, "क्या देख रहे हो ?"

"जी सुना कि बहू को ले जाने के लिए कृष्णनगर से लोग आए हैं। दीनू कह रहा था। तो, कहां गए वे लोग ?"

चौधरी जी ने कहा, "वे लोग चले गए। क्यों, तुम्हें क्या दरकार है ?"

"सुना कि बहू को विदा कराके ले जाने की बात है ?"

चौधरी जी अपने मन में सोच ही रहे थे। कुछ तय नहीं कर पाए थे। इतनी बड़ी विपत्ति, वह समझ नहीं पा रहे थे कि सब तरफ कैसे संभालेंगे। सारी बातें जैसे उलझती ही जा रही थीं। और बात भी ऐसी कि किसी-से कही भी नहीं जा सकती। सुहागरात में लड़का अपनी बहू के कमरे में सोया नहीं, यह बात भी जैसे किसीसे नहीं कही जा सकती, वैसे ही बहू की मां के मरने की बात भी किसीको नहीं बताई जा सकती। किसी भी तरह से बहू कहीं सुन ले तो गजब ही हो जाएगा।

प्रकाश मामा ने फिर पूछा, "आप क्या सचमुच बहू को भेज देंगे ?"

चौधरी जी अनमने से ही बोल गए, "हां ! तुम अभी जाओ, मुझे काम है।"

प्रकाश मामा उसी समय से छटपट करने लगा। सदा को ढूंढ़ने लगा। वह कहीं नहीं था। अंदर दीदी के पास गया। वहां भी निराशा ही हाथ लगी। जो मिल जाता, उससे पूछता, "क्यों रे, सदा को देखा है ? सदा कहां गया ?"

सदा को किसीने भी नहीं देखा। जिसके लिए इतना कुछ हो-हवा रहा है, वही उस समय कहां चल दिया। फूफाजी के कमरे में गया। देखा, वह तंबाकू पी रहे हैं। प्रकाश मामा ने उनसे भी पूछा, "सदा को देखा है फूफाजी ?"

कीर्तिपद बाबू ताज्जुब से बोले, "सदा ? मुन्ने की कह रहे हो ? वह कहां जाएगा ? फिर भाग गया क्या ?"

"नहीं। उससे काम था।"

कीर्तिपद बाबू ने कहा, "तो देखो जाकर, वह शायद अपनी नई बहू

आस-पास चक्कर काट रहा होगा। आज क्या वह बूढ़ों के पास आएगा।"

ठीक तो। प्रकाश मामा फिर अन्दर गया। दीदी भंडार-घर में थी। प्रकाश ने सीधे सदानन्द के सोने के कमरे के पास जाकर भीतर झांककर देखा। बहू चुपचाप बैठी थी। गौरी बुआ एक पत्थर के कटोरे में मिठाई लिए उसे खिला रही थी।

"गौरी, सदा कहां गया? यहां है?"

मामा-ससुर को देखकर नयनतारा ने घूंघट को ज़रा खींच लिया। गौरी बुआ बोली, "बाहर कहीं देखो, यहां कहां होगा। दिन में कोई दुल्हा-दुल्हिन के कमरे में रहता है।"

लिहाजा प्रकाश मामा दूसरी ओर चला गया।

बूढ़े चौधरी के पास खबर गई, प्राणकृष्ण साह अब बहू को देखने के लिए आ सकते हैं। आढ़त वाले हैं। बहुत रुपयों के कारबारी। उन्होंने रुपये की तरह आदमी भी बहुत देखे हैं। नई बहू खाट पर बैठी थी। फिर से उसे बनारसी साड़ी पहनाई गई थी। फिर से सारे गहने पहनाए गए थे।

गौरी बुआ ने कहा, "बहू, उस कालीन पर बैठ जाओ। साहजी आएं, तो उन्हें प्रणाम करना।"

साहजी को साथ लेकर चौधरी जी अन्दर आ गए। उन लोगों की बात-चीत सुनाई पड़ रही थी। गण्यमान्य व्यक्ति हैं। उनके लिए लापरवाही करने से इस परिवार का नुकसान हो सकता है। आदर-जतन में कहीं कोई कोर-कसर न रहे।

कमरे के बाहर से चौधरी जी ने गला बढ़ाकर पूछा, "गौरी, बहूरानी तैयार हैं? हम लोग आएं?"

नयनतारा को आसन पर बिठाते हुए गौरी ने कहा, "हां, आइए···"

लेकिन नयनतारा बैठने जो लगी, तो एक घटना घट गई। पत्थर का गिलास रखा था पानी भरा। नयनतारा के पांव की ठोकर से गिरकर वह टूट गया। उसके टुकड़े कमरे में चारों ओर बिखर गए। उसमें जो पानी था, वह भी फैल गया। तमाम पानी ही पानी हो गया।

चौधरी जी के साथ साहजी कमरे में पहुंचे और यह दृश्य देखकर हतबुद्धि हो गए।

किसीके मुंह से बोली नहीं निकली, न नयनतारा के, न गौरी बुआ के। दोनों को ही लगा, उनकी आंखों के सामने ही चरम सर्वनाश हो गया। जैसे—आज के सारे अनुष्ठान की केन्द्र नयनतारा के भी भूत, वर्तमान, भविष्य—सब कुछ टूटकर चूर-चूर हो गए।

प्रीति के कानों यह आवाज पहुंची। उसने समझा, कमरे में हाथ से कोई भारी चीज छूटकर टूट गई।

"कुछ टूटा न?"

बिहारी पाल की बहू सवेरे ही आई थी। वह भी बोली, "हाय राम, कमरे में कौन-सी चीज टूट गई!"

प्राणकृष्ण साहू उस हालत में वहां खड़े नहीं रह पा रहे थे। खड़े हुए भेंट बहू को देकर वह तुरन्त निकल पड़ें तो जैसे जान में जान आए। मानो यह दुर्घटना उन्हींकी वजह से हुई हो।

बिखरे हुए पत्थर के टुकड़े और फैला हुआ पानी। उसके एक ओर गई बहू खड़ी, दूसरी ओर प्राणकृष्ण साहू। दोनों हाथों से भेंट लेकर बहू साहजी को प्रणाम करने जा रही थी। पर साहजी ने कहा, "हां-हां, हो गया, मैं चलता हूं।"

बस, उनके अपराध-बोध ने उन्हें पल-भर भी खड़ा नहीं रहने दिया। पीछे चौधरी जी खड़े थे। वह भी घटना की इस आकस्मिकता से ठगे रह गए थे।

"चलो बेटे, चलो—"

दोनों वहां से निकलकर बाहर के बैठक की ओर चले। उनके वहां से निकलते ही प्रीति कमरे में आई। जो दृश्य आंखों के सामने था कि उसके मुंह से उस समय कोई बात ही नहीं फूटी।

वह कालीन के आसन पर खड़ी थी। सारा शरीर थर-थर कांप रहा था।

गिलास के टूटे टुकड़े मानो उसके कलेजे में गड़ रहे थे। उसीकी पीड़ा से वह मानो छटपट कर रही थी।

बिहारी पाल की बहू भी आकर पीछे खड़ी थी। बोली, "हाय राम, यह क्या! पत्थर का गिलास टूट गया?"

मगर उसकी बात का उस समय जवाब कौन दे! सभी तो इस घटना की आकस्मिकता से काठ हो गए थे।

प्रीति ने गौरी की ओर देखा। बोली, "हां री, गिलास तोड़ डाला?"

गौरी ने कहा, "बहू के पैर से लगकर टूट गया भाभी!"

प्रीति झुंझला उठी। बोली, "बहू के पांव से लगकर टूट गया, और तु
कहां थी? तूने नहीं देखा? क्या तुम्हारी आंखें बैठ गई थीं? गिलास को
उठाकर नहीं रख सकी?"

गौरी ने कहा, "साहजी आ रहे थे। मैं जल्दी से बहू को आसन प
बिठाने लगी।"

"ठीक है। पर जब देखा कि पांव के पास गिलास पड़ा है, तो हटा
देती? यह दिन-दिन तुझे क्या हो रहा है? आज जैसे दिन में पत्थर
बर्तन का टूटना क्या अच्छा हुआ?"

बिहारी पाल की बहू पीछे खड़ी सब सुन रही थी। बोली, "आज बृहस्
वार को इस घड़ी में गिलास का टूटना ठीक नहीं हुआ बहू!"

बात सबके जी में लगी। एक तो पत्थर का बर्तन। फिर बृहस्पति व
एक अजाने आतंक से सबका कलेजा धड़क उठा। मानो यह बात कि
से छिपी नहीं रही कि यह कितना बड़ा अशुभ हुआ। सबको लगा
दुर्घटना किसी भावी अमंगल की सूचना है। मगर इसका प्रतिकार क

सकता है, उस घड़ी यह भी मानो किसीके दिमाग में नहीं आया।

बाहर जाकर विहारी पाल की बहू ने कहा, "नई बहू ने आते ही पांव से पत्थर का बर्तन तोड़ दिया, यह लेकिन अच्छा नहीं हुआ बहू..."

प्रीति की आंखें तब तक छलछला उठी थीं। बोली, "मैं किस-किस तरफ सम्भालूं मौसी? मेरे ऊपर क्या एक ही भार है? और, लोगों की भी बुद्धि देखो, 'बहूभात' कल था। कल नहीं आ सके तो आज आने का यही समय था? आने का और समय नहीं मिला। बहू कहीं भागी तो नहीं जा रही है। जरा और बेला करके आने से क्या बिगड़ जाता?"

विहारी पाल की बहू ने कहा, "खैर, अब करना क्या है! मंगलचंडी स्थान में पूजा देनी होगी।"

"पूजा?"

विहारी पाल की बहू ने कहा, "हाय राम, पूजा नहीं करोगी? और कोई होता तो इतना टंटा न करने से भी चलता, लेकिन नई बहू की बात है। नई बहू को लेकर जाना होगा।"

"लेकिन मौसी जी, इधर एक और मुसीबत आन पड़ी है।" कहते-कहते प्रीति का गला मानो भर आया। बोली, "किसीसे कहना मत मौसी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं। बहू ने सुना तो रो-धोकर प्रलय मचा देगी।"

गुप्त बात का इंगित पाने से विहारी पाल की बहू को और भी कौतूहल हुआ। बोली, "किसीसे कहे मेरी बला। बात क्या है, यह तो कहो।"

"तुम्हें घर की समझती हूं, इसीसे कह रही हूं। अभी किसीको मालूम नहीं है..."

"बात क्या है, यही बताओ न!"

"बहू की मां का देहान्त हो गया है।"

"हाय राम! यह क्या? कब? किस समय? कहां से यह खबर मिली?"

प्रीति ने कहा, "समधी जी ने सबेरे खबर भेजी है। अब मैं क्या जो करूं, किससे पूछूं-आछूं, यही सोच रही हूं। बहू को भी यह मालूम नहीं है। पुरोहित जी को बुलवा पठाया है। मालिक लोग यह सब कर-करा रहे हैं। घर के अन्दर मैं क्या करूं, समझ में नहीं आता।"

विहारी पाल की बहू ने कहा, "मुझसे कहा, अच्छा ही किया। एक काम करो। आज बहू को मछली-वछली खाने को मत देना। आज निरामिष ही खाए। और, चौठारी कर लेने का इन्तजाम करना होगा—"

"लेकिन वहां से तो बहू को लिवा ले जाने के लिए आदमी आए थे। असल में बहू के नैहर में मां के सिवाय और तो कोई स्त्री नहीं है। समधी जी बहुत ही हताश हो पड़े हैं। मैं सोच रही हूं, बहू को भेज दूं।"

सोच-विचारकर विहारी पाल की बहू ने कहा, "खैर भेज ही दो।"

उसके बाद फिर जाने क्या सोचकर बोली, "एक तो बेचारी को मां के मरने की खबर आई, फिर बृहस्पति वार को पांव से लगकर पत्थर का बर्तन

किसीका भला नहीं होगा।

...टा, ये सब तो अच्छे लच्छन नहीं हैं बहू—इससे किसीका भला नहीं होगा। तुम्हारी लड़की के लिए भी यह बुरा है। तुम्हारे बेटे को इससे थोड़ी तकलीफ जरूर होगी। मुन्ना बहू को छोड़कर ये कई दिन रह तो लेगा न?"

प्रीति ने कहा, "मेरे बेटे की बात छोड़ो।"

"तो तुम्हारा बेटा अगर नाराज न हो तो बहू वहीं रहे। श्राद्ध आदि क्रिया-कर्म हो जाने के बाद लौट आएगी। इस समय बाप के पास उसके रहने से बाप को भी थोड़ा भरोसा होगा। न हो तो बेटे को भी बहू के साथ वहां भेज दो। बेटा अगर बहू को छोड़कर न रह सके, तो वही करो।"

प्रीति ने खोलकर कुछ कहा नहीं। बोली, "देखती हूं, क्या करती हूं। परन्तु यह खबर मैं बहू को कैसे दूं, यही सोच रही हूं मौसी, उसे तो अभी कुछ भी मालूम नहीं है।"

"कहो, तो मैं जाकर कहूं।"

प्रीति ने कहा, "मेरा ख्याल है, अभी रहने दो मौसी! उन्होंने भी कहा था, 'बहू को अभी यह बताने की जरूरत नहीं।' यहीं रोना-धोना शुरू कर दे तो मैं सम्भाल नहीं सकूंगी।"

"मगर तुम्हारे लड़के की क्या राय है? सदा क्या कहता है?"

"लड़के की तो बात ही छोड़ो मौसी! वह तो बस ब्याह करके ही छुट्टी पा गया। वह किसीके छह-पांच में नहीं। सुबह से कहां जो घूमता फिर रहा है, किसीने उसकी शकल भी नहीं देखी। उससे भेंट हो, जब तो यह बताऊं।"

बिहारी पाल की बहू ने कहा, "तो फिर तुम्हारे मालिक जो कहें, तुम वही करो बहू! लड़का सुने और कहीं बहू को जाने न दे।"

अचानक चौधरी जी अन्दर आए। प्रीति उनकी तरफ बढ़ी। छोटे चौधरी से धीमे गले से पूछा, "उधर की क्या खबर है?"

वह बोले, "साहजी को तो विदा कर आया। बाज-बाज को अक्ल पर दंग रह जाना पड़ता है। और कोई समय नहीं मिला। इसी समय आ धमके। इसी मौके में पत्थर का गिलास टूट गया। कैसा अशुभ हुआ, सोचो तो।"

"यह सोचकर अब क्या लाभ? पुरोहित जी ने क्या कहा? बहू आज निरामिष भोजन करेगी न?"

"और क्या! जान-सुनकर आमिष भोजन कैसे कराया जा सकता है!"

"और, बहू को भेजने के बारे में?"

छोटे चौधरी ने कहा, "पुरोहित जी तो भेज देने को कहते हैं। दो दिन के बाद तो भेजना ही पड़ता है। एक दिन पहले ही सही। मैं सोचता हूं, अच्छा होगा। मुन्ना जैसा कांड कर रहा है, वह कहीं आज भी बहू के साथ में न गोए तो बहू को सामला सन्देह होगा। इससे तो बहू को वहां भेज देना ही अच्छा होगा।"

"साथ में कौन जाएगा?"

चौधरी जी ने कहा, "साथ तो मुन्ना ही जाता तो अच्छा था। मगर है कहां?"

"होता तो भी क्या वह वहां जाता ? मुन्ना अगर न जाए तो साथ में प्रकाश और गौरी जाए। अपने यहां से किसीका जाना अच्छा होता।"

"सबसे अच्छा तो मुन्ने का ही जाना होता। फिर और किसीकी जरूरत ही नहीं होती।"

प्रीति ने कहा, "पूछकर देखो न, यदि उसे राजी कर सको।"

चौधरी जी ने कहा, "खैर, वह मैं देखता हूं। लेकिन इस बीच तुम बहू को तैयार कर रखो। खिला-पिला दो। पहना-ओढ़ा दो। जाना हो तो अभी ही निकलना होगा। रजबअली से गाड़ी तैयार रखने को कह दिया है। बेर रहते ही ट्रेन से भेजना अच्छा है। मैंने गौरी और प्रकाश को भी तैयार होने के लिए कह दिया है।"

और वह जैसे आए थे, वैसे ही बाहर चले गए।

हाय रे नसीब ! नयनतारा को उस समय भी इसका आभास नहीं मिला कि जिस घर से उसे सदा के लिए चल देना है, यही उसका सूत्रपात है। यह सुहागरात ही शायद उनके जीवन की एक अमोघ सूचना थी। नहीं तो पांव की ठोकर से पत्थर का गिलास ही ऐसे क्यों टूट गया ? अथच मां ने जब ये सब बातें कही थीं, तो उसने विश्वास ही नहीं किया। सोचा, यह सब मां के मन का कुसंस्कार है। कहां, कितनी दूर रह गई उसकी मां और कहां सदा के लिए उससे बिछुड़कर वह चली आई नवाबगंज और इसी नवाबगंज में ही शायद उसे सारी उम्र बितानी पड़ेगी।

सारा जीवन यहां बिताने की सोचते ही वह कैसे तो एक आतंक से सिहर उठी। कल रात से ही वह डर से कांप रही थी। डर किस बात का ? यहां उसके डरने का तो कोई कारण नहीं। सास तो उसकी भली हैं। ससुर भी तो भले हैं। और…

और अपने पति को सोचते ही जैसे उसका सारा कुछ धुंधला हो उठा। कौन है वह ? किस तरह का आदमी ? उसका स्वभाव-चरित्र कैसा है ? ब्याह के समय सिर्फ उसकी हथेली का परस भर मिला था जरा देर। कृष्णनगर के सबने ही कहा था, "ऐसा दूल्हा कम ही देखने को मिलता है।"

विदा होते समय नयनतारा जब खूब रो रही थी, तो अपने आंचल से उसकी आंखें पोंछते हुए मां ने कहा था, "रो मत बिटिया, तुझे किस बात का दुःख ? तूने जैसा पति पाया है, ऐसा पति कितनों को है ! रो मत।"

बात भी सही है। ब्याह के दिन नैहर में एक-एक करके सभी उसे यही बात कह गए। जिनका ब्याह नहीं हुआ है, या जिनका हो भी चुका है। वैसी सभी लड़कियां उसके दूल्हे का रूप देखकर ईर्ष्या कर रही थीं।

इतने में परोसी हुई थाली लिए गौरी बुआ कमरे में आईं। बोलीं, "भोजन कर लो बहू !"

नयनतारा अवाक् हो गई। पूछा, "इतना सबेरे भोजन ? क्या बजा ?"

गौरी बोली, "सबेरे-सबेरे खा लो। आज कृष्णनगर जो जाओगी।"

"कृष्णनगर ? आज ? क्यों ?"

तुम्हारे ससुर की इच्छा है कि तुम एक वार अपने मां-वाप से मिल। आते समय तुम शायद वेतरह रोई थी, इसीलिए। मां को देखने का जी करता है, न?"

नयनतारा ने कहा, "हां फूफी, वड़ा जी कर रहा है। मां के लिए मेरा कैसा तो कर रहा है! लेकिन यह तुम लोगों ने कैसे समझा? मैंने तो लोगों से कुछ भी नहीं कहा?"

गौरी वुआ ने कहा, "अहा, जी क्यों नहीं करेगा? मां क्या जैसी-तैसी ज है।"

नयनतारा ने कहा, "जानती हो फूफी, मैंने कल रात मां को सपने में खा है। जैसे वह वहूभात के दिन यहां आई, आकर मेरे माथे पर हाथ रखकर मुझे आशीर्वाद दिया। मैंने पूछा, 'मां, तुमने तो कहला भेजा था कि नहीं आओगी। तो फिर क्यों आई?' यह सुनकर मां ने क्या कहा, जानती हो? बोली, 'तेरे वहूभात के दिन आए विना क्या रह सकती थी रे!' इतने में नींद उचट गई। देखा, मैं विस्तर पर पड़ी हूं और मेरी आंखें छलक पड़ी हैं। कव मैं रोई, पता ही नहीं।"

गौरी वुआ ने कहा, "झटपट खा लो वहूरानी, देर हो जाएगी। आज किन्तु मछली नहीं है। खा लोगी न?"

"मछली क्यों नहीं है फूफी?"

गौरी वुआ ने कहा, "आज तुम्हें मछली नहीं खानी चाहिए।"

"क्यों फूफी, आज क्या है?"

इसका जवाव न देकर गौरी वुआ वोली, "तुम्हारे लिए और थोड़ा-सा दूध ला दूं।"

खाते-खाते नयनतारा सिर्फ मां की ही चर्चा करती रही। मां कितनी अच्छी रसोई वनाती है, कैसी सिलाई करती है, मां कैसी वातें वोलती हैं! मां की चर्चा करने के लिए सुनने वाली को पाकर वह जैसे जी गई।

गौरी वुआ ने कहा, "तुम्हारी सास भी वड़ी अच्छी हैं वहू! तुम्हारी सास जैसी औरत विरले ही मिलती हैं..."

नयनतारा ने कहा, "मां ने भी मुझे यही कहा है। कहा है, अव से सास को मां जैसी भक्ति करना।"

गौरी वुआ ने कहा, "यह थोड़ा-सा चावल दूध के साथ खा लो वहू, मैं एक सन्देश लिए आती हूं..."

गौरी वुआ वाहर चली गई। कृष्णनगर जाने की सोचते ही नयनतारा का सारा दुःख दूर हो गया। फिर से मानो जी उठी वह। फिर जैसे उसने अपनी सत्ता वापस पा ली। जीने में इतना सुख है, इसकी वह इस तरह म कभी उपलब्धि नहीं कर सकी थी। उसे यदि पंछियों जैसे डैने होते, तो म में उड़कर चली जाती। तव उसे कृष्णनगर जाने में इतनी देर नहीं होती।

इतने में वाहर जैसे प्रकाश मामा का गला सुनाई पड़ा।

"हां री गौरी, वहू अचानक नैहर क्यों जा रही है? क्या हुआ?"

गौरी बुआ की आवाज उसके बाद कानों में आई। गौरी बुआ बोली, "उनसे ज़ोर से मत बोलो मामा बाबू, जरा आहिस्ते, बहू सुन पाएगी। और बहू सुन लेगी तो बड़ा अनर्थ होगा—"

"क्यों क्या हो गया? बहू सुनेगी तो हर्ज क्या है?"

गौरी बुआ बोली, "अजी बहू के मां का देहान्त हो गया।"

"एं? मां का देहान्त हो गया? सदा की सास? कैसे चल बसीं? कब यह खबर आई? मुझे तो कुछ नहीं मालूम, मुझे तो किसीने कुछ नहीं कहा।"

गौरी बुआ ने खीजकर कहा, "उफ, धीरे! बहू कमरे में है, सुनेगी।" लेकिन इतने में ही जो होना था, हो गया। गौरी बुआ कमरे पहुंची, तो देखा, बहू की आंखें फैली तो विह्वल-सी होकर शून्य को देख रही हैं। हो सकता है, अभी ही वह लुढ़क पड़े।

गौरी बुआ ने जल्दी से जाकर उसे थाम लिया। बोली, "तुम्हें हो क्या गया बहू? तबियत खराब हो गई क्या?"

नयनतारा को उस समय भी मानो बोलने की शक्ति नहीं थी। किसी तरह से यह बोल उठी, "मेरी मां का देहान्त हो गया। कहां, तुम लोगों ने तो मुझे कुछ बताया नहीं फूफी···"

और नयनतारा वहीं बैठ-बैठी टूट-सी पड़ी।

संसार में जिसके जीवन के यात्रा-पथ की सूचना ही मृत्यु से अभिषिक्त हुई, उसकी अंतिम परिणति जो कहां, कैसे, किस दलदल में होगी, यह जैसे स्वयं उसका स्रष्टा भी नहीं बता सकता, वैसे ही कोई इतिहास-लेखक भी नहीं बता सकता। लेकिन तो भी सृष्टिकर्ता का सृष्टि का काम बन्द नहीं होता, और इसीलिए लेखक को भी लिखने ही आना पड़ता है। इसलिए कि बूंद-बूंद लहू से जैसे एक आदमी है, वैसे ही एक-एक आदमी से ही समाज, देश, भूगोल और इतिहास है। जिसे यह इतिहास तैयार करना पड़ता है, उसे कभी मधुर और कभी निष्ठुर भी बनना पड़ता है। उसे किसीके मनोरंजन की गरज नहीं और किसीका मुंह जोहने का भार लेने से भी उसका नहीं चलता। वह तो निष्ठुर निरासक्त, निर्विकार होता है।

कम-से-कम नयनतारा को उस दिन यही लगा था। किसके खिलाफ शिकायत करे वह? किसके पास इसके प्रतिकार की प्रार्थना करे? अपनी मां को उसने दो दिन पहले भी देखा है। दो दिन पहले भी उसकी मां ने उसे छाती से लगाकर दिलासा दिया है। मां ने कहा, "तू सोच मत बिटिया, अगले बृहस्पति वार को ही तुझे लिवा लूंगी, समधी जी से उन्होंने यह कह दिया है।"

वह बृहस्पति वार को मां के पास जाने की ही राह देख रही थी। सोचा था, यह, यह ससुराल उसका सामयिक आश्रय है, कृष्णनगर का घर ही उसका शाश्वत आश्रय है। वह फिर वहीं लौट जाएगी। अपने मां-बाप के ही चारों

तुम्हारे ससुर की इच्छा है कि तुम एक बार अपने मां-बाप से मिल
। आते समय तुम शायद बेतरह रोई थी, इसीलिए। मां को देखने का जी करता है, न ?"

नयनतारा ने कहा, "हां फूफी, बड़ा जी कर रहा है। मां के लिए मेरा कैसा तो कर रहा है! लेकिन यह तुम लोगों ने कैसे समझा? मैंने तो लोगों से कुछ भी नहीं कहा?"

गौरी बुआ ने कहा, "अहा, जी क्यों नहीं करेगा? मां क्या जैसी-तैसी
ज है।"

नयनतारा ने कहा, "जानती हो फूफी, मैंने कल रात मां को सपने में
खा है। जैसे वह बहूभात के दिन यहां आई, आकर मेरे माथे पर हाथ
रखकर मुझे आशीर्वाद दिया। मैंने पूछा, 'मां, तुमने तो कहला भेजा था कि नहीं आओगी। तो फिर क्यों आई?' यह सुनकर मां ने क्या कहा, जानती हो? बोली, 'तेरे बहूभात के दिन आए बिना क्या रह सकती थी रे!' इतने में नींद उचट गई। देखा, मैं बिस्तर पर पड़ी हूं और मेरी आंखें छलक पड़ी हैं। कब मैं रोई, पता ही नहीं।"

गौरी बुआ ने कहा, "झटपट खा लो बहूरानी, देर हो जाएगी। आज किन्तु मछली नहीं है। खा लोगी न?"

"मछली क्यों नहीं है फूफी?"

गौरी बुआ ने कहा, "आज तुम्हें मछली नहीं खानी चाहिए।"

"क्यों फूफी, आज क्या है?"

इसका जवाब न देकर गौरी बुआ बोली, "तुम्हारे लिए और थोड़ा-सा दूध ला दूं।"

खाते-खाते नयनतारा सिर्फ मां की ही चर्चा करती रही। मां कितनी अच्छी रसोई बनाती है, कैसी सिलाई करती है, मां कैसी बातें बोलती हैं! मां की चर्चा करने के लिए सुनने वाली को पाकर वह जैसे जी गई।

गौरी बुआ ने कहा, "तुम्हारी सास भी बड़ी अच्छी हैं बहू! तुम्हारी सास जैसी औरत बिरले ही मिलती हैं..."

नयनतारा ने कहा, "मां ने भी मुझे यही कहा है। कहा है, अब से सास की मां जैसी भक्ति करना।"

गौरी बुआ ने कहा, "यह थोड़ा-सा चावल दूध के साथ खा लो बहू, मैं एक सन्देश लिए आती हूं..."

गौरी बुआ बाहर चली गई। कृष्णनगर जाने की सोचते ही नयनतारा का सारा दुःख दूर हो गया। फिर से मानो जी उठी वह। फिर जैसे उसने अपनी सत्ता वापस पा ली। जीने में इतना सुख है, इसकी वह इस तरह से कभी उपलब्धि नहीं कर सकी थी। उसे यदि पंछियों जैसे डैने होते, तो मज़े में उड़कर चली जाती। तब उसे कृष्णनगर जाने में इतनी देर नहीं होती।

इतने में बाहर जैसे प्रकाश मामा का गला सुनाई पड़ा।

"हां री गौरी, बहू अचानक नैहर क्यों जा रही है? क्या हुआ?"

गौरी बुआ की आवाज उसके बाद कानों में आई। गौरी बुआ बोली, "उतने ज़ोर से मत बोलो मामा बाबू, जरा आहिस्ते, बहू सुन पाएगी। और बहू सुन लेगी तो बड़ा अनर्थ होगा—"

"क्यों क्या हो गया ? बहू सुनेगी तो हर्ज क्या है ?"

गौरी बुआ बोली, "अजी बहू के मां का देहान्त हो गया।"

"ऐं ? मां का देहान्त हो गया ? सदा की सास ? कैसे चल बसी ? कब यह खबर आई ? मुझे तो कुछ नहीं मालूम, मुझे तो किसीने कुछ नहीं कहा।"

गौरी बुआ ने खीजकर कहा, "उफ, धीरे ! बहू कमरे में है, सुनेगी।" लेकिन इतने में ही जो होना था, हो गया। गौरी बुआ कमरे पहुंची, तो देखा, बहू की आंखें कैसी तो विह्वल-सी होकर शून्य को देख रही हैं। हो सकता है, अभी ही वह लुढ़क पड़े।

गौरी बुआ ने जल्दी से जाकर उसे थाम लिया। बोली, "तुम्हें हो क्या गया बहू ? तबियत खराब हो गई क्या ?"

नयनतारा को उस समय भी मानो बोलने की शक्ति नहीं थी। किसी तरह से वह बोल उठी, "मेरी मां का देहान्त हो गया। कहां, तुम लोगों ने तो मुझे कुछ बताया नहीं फूफी···"

और नयनतारा वहीं बैठे-बैठे टूट-सी पड़ी।

संसार में जिसके जीवन के यात्रा-पथ की सूचना ही मृत्यु से अभिषिक्त हुई, उसकी अंतिम परिणति जो कहां, कैसे, किस दलदल में होगी, यह जैसे स्वयं उसका स्रष्टा भी नहीं बता सकता, वैसे ही कोई इतिहास-लेखक भी नहीं बता सकता। लेकिन तो भी सृष्टिकर्ता का सृष्टि का काम बन्द नहीं होता, और इसीलिए लेखक को भी लिखते ही जाना पड़ता है। इसलिए कि बूंद-बूंद लहू से जैसे एक आदमी है, वैसे ही एक-एक आदमी से ही समाज, देश, भूगोल और इतिहास है। जिसे यह इतिहास तैयार करना पड़ता है, उसे कभी मधुर और कभी निष्ठुर भी बनना पड़ता है। उसे किसीके मनोरंजन की गरज नहीं और किसीका मुंह जोहने का भार लेने से भी उसका नहीं चलता। वह तो निष्ठुर निरासक्त, निर्विकार होता है।

कम-से-कम नयनतारा को उस दिन यही लगा था। किसके खिलाफ शिकायत करे वह ? किसके पास इसके प्रतिकार की प्रार्थना करे ? अपनी मां को उसने दो दिन पहले भी देखा है। दो दिन पहले भी उसको मां ने उसे छाती से लगाकर दिलासा दिया है। मां ने कहा, "तू सोच मत चिड़िया, अगले बृहस्पति वार को ही तुझे लिवा लूंगी, समधी जी से उन्होंने यह कह दिया है।"

वह बृहस्पति वार को मां के पास जाने की ही राह देख रही थी। सोचा था, यह, यह ससुराल उसका सामयिक आश्रय है, कृष्णनगर का घर ही उसका शाश्वत आश्रय है। वह फिर वहीं लौट जाएगी। अपने मां-बाप के ही पासों

"तुम्हारे ससुर की इच्छा है कि तुम एक बार अपने मां-बाप से मिल
आओ। आते समय तुम शायद बेतरह रोई थी, इसीलिए। मां को देखने का
बड़ा जी करता है, न?"

नयनतारा ने कहा, "हां फूफी, बड़ा जी कर रहा है। मां के लिए मेरा
मन कैसा तो कर रहा है! लेकिन यह तुम लोगों ने कैसे समझा? मैंने तो
तुम लोगों से कुछ भी नहीं कहा?"

गौरी बुआ ने कहा, "अहा, जी क्यों नहीं करेगा? मां क्या जैसी-तैसी
चीज है।"

नयनतारा ने कहा, "जानती हो फूफी, मैंने कल रात मां को सपने में
देखा है। जैसे वह बहूभात के दिन यहां आई, आकर मेरे माथे पर हाथ
रखकर मुझे आशीर्वाद दिया। मैंने पूछा, 'मां, तुमने तो कहला भेजा था कि
नहीं आओगी। तो फिर क्यों आई?' यह सुनकर मां ने क्या कहा, जानती
हो? बोली, 'तेरे बहूभात के दिन आए बिना क्या रह सकती थी रे!' इतने
में नींद उचट गई। देखा, मैं बिस्तर पर पड़ी हूं और मेरी आंखें छलक पड़ी
हैं। कब मैं रोई, पता ही नहीं।"

गौरी बुआ ने कहा, "झटपट खा लो बहूरानी, देर हो जाएगी। आज
किन्तु मछली नहीं है। खा लोगी न?"

"मछली क्यों नहीं है फूफी?"

गौरी बुआ ने कहा, "आज तुम्हें मछली नहीं खानी चाहिए।"

"क्यों फूफी, आज क्या है?"

इसका जवाब न देकर गौरी बुआ बोली, "तुम्हारे लिए और थोड़ा-सा
दूध ला दूं।"

खाते-खाते नयनतारा सिर्फ मां की ही चर्चा करती रही। मां कितनी
अच्छी रसोई बनाती है, कैसी सिलाई करती है, मां कैसी बातें बोलती हैं! मां
की चर्चा करने के लिए सुनने वाली को पाकर वह जैसे जी गई।

गौरी बुआ ने कहा, "तुम्हारी सास भी बड़ी अच्छी हैं बहू! तुम्हारी
सास जैसी औरत विरले ही मिलती हैं..."

नयनतारा ने कहा, "मां ने भी मुझे यही कहा है। कहा है, अब से सास
की मां जैसी भक्ति करना।"

गौरी बुआ ने कहा, "यह थोड़ा-सा चावल दूध के साथ खा लो बहू, मैं एक
सन्देश लिए आती हूं..."

गौरी बुआ बाहर चली गई। कृष्णनगर जाने की सोचते ही नयनता
का सारा दुःख दूर हो गया। फिर से मानो जी उठी वह। फिर जैसे उस
अपनी सत्ता वापस पा ली। जीने में इतना सुख है, इसकी वह इस तरह
कभी उपलब्धि नहीं कर सकी थी। उसे यदि पंछियों जैसे डैने होते, तो
में उड़कर चली जाती। तब उसे कृष्णनगर जाने में इतनी देर नहीं होती

इतने में बाहर जैसे प्रकाश मामा का गला सुनाई पड़ा।

"हां री गौरी, बहू अचानक नैहर क्यों जा रही है? क्या हुआ?"

गौरी बुआ की आवाज उसके बाद कानों में आई। गौरी बुआ बोली, "उतने जोर से मत बोलो मामा बाबू, जरा आहिस्ते, वहू सुन पाएगी। और वहू सुन लेगी तो बड़ा अनर्थ होगा—"

"क्यों क्या हो गया? वहू सुनेगी तो हर्ज क्या है?"

गौरी बुआ बोली, "अजी वहू के मां का देहान्त हो गया।"

"हैं? मां का देहान्त हो गया? सदा की सास? कैसे चल बसी? कब यह खबर आई? मुझे तो कुछ नहीं मालूम, मुझे तो किसीने कुछ नहीं कहा।"

गौरी बुआ ने खीजकर कहा, "उफ, धीरे! वहू कमरे में है, सुनेगी।" लेकिन इतने में ही जो होना था, हो गया। गौरी बुआ कमरे पहुंची, तो देखा, वहू की आंखें कैसी तो विह्वल-सी होकर शून्य को देख रही हैं। हो सकता है, अभी ही वह लुढ़क पड़े।

गौरी बुआ ने जल्दी से जाकर उसे थाम लिया। बोली, "तुम्हें हो क्या गया वहू? तबियत खराब हो गई क्या?"

नयनतारा को उस समय भी मानो बोलने की शक्ति नहीं थी। किसी तरह से वह बोल उठी, "मेरी मां का देहान्त हो गया। कहां, तुम लोगों ने तो मुझे कुछ बताया नहीं फूफी···"

और नयनतारा वहीं बैठे-बैठे टूट-सी पड़ी।

संसार में जिसके जीवन के यात्रा-पथ की सूचना ही मृत्यु से अभिषिक्त हुई, उसकी अंतिम परिणति जो कहां, कैसे, किस दलदल में होगी, यह जैसे स्वयं उसका स्रष्टा भी नहीं बता सकता, वैसे ही कोई इतिहास-लेखक भी नहीं बता सकता। लेकिन तो भी सृष्टिकर्ता का सृष्टि का काम बन्द नहीं होता, और इसीलिए लेखक को भी लिखते ही जाना पड़ता है। इसलिए कि बूंद-बूंद लहू से जैसे एक आदमी है, वैसे ही एक-एक आदमी से ही समाज, देश, भूगोल और इतिहास है। जिसे यह इतिहास तैयार करना पड़ता है, उसे कभी मधुर और कभी निष्ठुर भी बनना पड़ता है। उसे किसीके मनोरंजन की गरज नहीं और किसीका मुंह जोहने का भार लेने से भी उसका नहीं चलता। वह तो निष्ठुर निरासक्त, निर्विकार होता है।

कम-से-कम नयनतारा को उस दिन यही लगा था। किसके खिलाफ शिकायत करे वह? किसके पास इसके प्रतिकार की प्रार्थना करे? अपनी मां को उसने दो दिन पहले भी देखा है। दो दिन पहले भी उसकी मां ने उसे छाती से लगाकर दिलासा दिया है। मां ने कहा, "तू सोच मत बिटिया, अगले वृहस्पति वार को ही तुझे लिवा लूंगी, समधी जी से उन्होंने यह कह दिया है।"

वह वृहस्पति वार को मां के पास जाने की ही राह देख रही थी। सोचा था, यह, यह ससुराल उसका सामयिक आश्रय है, कृष्णनगर का घर ही उसका शाश्वत आश्रय है। वह फिर वहीं लौट जाएगी। अपने मां-बाप के ही पास

र फिर से उसके जीवन की परिक्रमा सुचारू रूप से चलेगी।

लेकिन अदृष्ट देवता के किस अमोघ निर्देश से जाने, उसका सारा कुछ यों अचानक चौपट हो गया।

नयनतारा ने मन-ही-मन यह सोचना चाहा कि उसने जो सुना है, वह लत है। यह सोचने में अच्छा लगा कि उसकी मां जिन्दा है। हे भगवान, उसका सोचना ही जिसमें सत्य हो। कृष्णनगर जाकर जिसमें वह मां को देख पाए। फिर तो वह मां से कहेगी, 'मां, मैं अब नवावगंज नहीं जाऊंगी, यहीं कृष्णनगर में तुम्हारे पास रहूंगी।'

मां शायद उससे कहेगी, 'नहीं वेटी, ऐसा नहीं कहते। अब तुम्हारा व्याह हो चुका, अब से पति का घर ही तुम्हारा घर है, पति ही तुम्हारे अपने हैं, वही तुम्हारे सब कुछ हैं।'

आश्चर्य है, यह कौन जानता था कि यह पति ही एक दिन उसके लिए सबसे ज्यादा पराया हो जाएगा, सबसे ज्यादा दूर हो जाएगा। एक दिन जिसके हाथों नयनतारा को सौंपकर उसकी मां ने सबसे ज्यादा निश्चितता का अनुभव किया था, वही सदानन्द ही उसे इस तरह से दूर झटक देगा—यह बात क्या उसकी मां ही कभी सपने में भी सोच सकी थी।

कालीकांत भट्टाचार्य महोदय ने अपना जीवन बड़े ऊंचे आदर्श को सामने रखकर शुरू किया था। उनका आदर्श था, लड़कों को आदमी बनाना। एक नहीं, हजारों-हजार लड़कों को। और लड़के ही नहीं केवल, उन्होंने सोचा था, लड़के-लड़कियों को वह अपने आदर्श के अनुसार तैयार कर जाएंगे। वह कहा करते थे, "जीवन में पाना ही सबसे बड़ी बात नहीं है निखिलेश, पाकर भी बहुतों का जैसे खो जाता है, वैसे ही बहुतेरे लोग खोकर भी बहुत कुछ पा जाते हैं। तथागत बुद्धदेव ने राजा का ऐश्वर्य खोकर सम्राट् का वैभव पाया था। वास्तविक पाना इसीको कहते हैं। लेकिन हम सब तो पाकर खोया करते हैं निखिलेश! असली अभागे हम लोग ही हैं। हम लोग जो कुछ पाते हैं, उसे संजोकर रख नहीं पाते, और जो नहीं पाते हैं, उसके लिए भी हमें गम-गिला नहीं। तुम मेरे ही जीवन को देखो न।"

यह कहकर वह उंगली से अपने को दिखा देते। कहते, "मैं चूंकि कुछ भी खो नहीं सका, इसलिए जीवन में कुछ भी नहीं पा सका।"

केवल निखिलेश ही नहीं, मास्टर साहब की ये बातें बहुतेरे छात्र गुना करते। छुट्टी के दिन सभी उनके घर आया करते थे। बातें करते-करते अगर काफी देर हो जाती, तो अचानक नयनतारा वहां पहुंचकर कहती, "बाबूजी आज आप नहाएंगे-खाएंगे नहीं?"

कहने पर मानो उनको होश आता। कहते, "लो, हम लोग मजे में बात कर रहे थे, विद्या के जगत में विचरण कर रहे थे, अविद्या ने आकर स चंटाढार कर दिया।"

नयनतारा रूठकर कहती, "क्या खूब, यानी मैं आपकी अविद्या हूं?"

अपनी गलती समझकर कालीकांत जी नयनतारा को पकड़कर दुला

लगते, "देख लो, मेरी बिटिया नाराज हो गई।"

लाड़ करते हुए कहते, "तुम अविद्या क्यों होने लगी बिटिया, तुम तो मेरी सरस्वती हो। मां-सरस्वती। मैं कल्पना और वास्तव की कह रहा था। हम लोग बहुत बड़ी-बड़ी बातों की आलोचना में डूबे थे, तुम हमें खींचकर वास्तव जगत में ले आई।"

नयनतारा कहती, "तो मेरा क्या कसूर? मां ने आपको बुलाने को कहा।"

कालीकांत जी कहते, "तुम्हारी मां ने ठीक ही किया है बिटिया, वास्तव को छोड़कर तो कल्पना नहीं होती। कल्पना की जड़ें वास्तव की माटी में होती हैं। ऐसा न हो तो कल्पना कौड़ी की नहीं होती। वैसी कल्पना फानूस होती है। फटे फानूस का कोई दाम नहीं होता।"

नयनतारा लेकिन पिता की इन बातों पर कान नहीं देती। पिता के छात्रों की ओर देखकर वह कहती, "तुम लोग यों मुंह बाए खड़े देख क्या रहे हो? घर नहीं जाओगे? तुम्हारे घर-द्वार नहीं हैं?"

छात्रों में निखिलेश जरा स्पष्टवक्ता था।

निखिलेश कहता, "आज तुम्हीं हम लोगों को खिलाओ न, हम यहीं दो मुट्ठी खाएं..."

नयनतारा कहती, "हुम, खाओगे। खाओगे तो पकाएगा कौन? मां की तो तबीयत खराब है। उन्हें रसोई बनाने में तकलीफ नहीं होती है?"

निखिलेश कहता, "तुम रसोई करना। हम लोगों के लिए तुम थोड़ी तकलीफ नहीं कर सकती?"

नयनतारा भी कुछ कम नहीं थी। कहती, "तुम्हारे लिए मैं क्यों तकलीफ उठाऊं? तुम लोग मेरे कौन होते हो?"

कालीकांत जी कहते, "छि: बेटी, ऐसा नहीं कहते। जानती हो, दुनिया में कोई किसीका पराया नहीं। दुनिया के हर आदमी को अपना बनाना चाहिए। जो ऐसा कर सकता है, वास्तव में वही आदमी है। हिन्दू-मुसलमान, ईसाई-बौद्ध—सबको अपना समझना बिटिया!"

नयनतारा कहती, "वाह रे, आप तो मेरे पिता हैं, मगर ये मेरे कौन हैं?"

कालीकांत जी जरा सोचकर कहते, "ये? ये लोग तुम्हारे भाई के समान हैं। मैं सिर्फ तुम्हारा पिता ही हूं? मैं तो सबका हूं। मैं जिस तरह से तुम्हारे लिए सोचा करता हूं, उसी तरह से इनके लिए भी तो मुझे सोचना पड़ता है। मैं इनका भी कल्याण चाहता हूं न..."

अन्दर से मां कहती, "मेरी ही कौन सोचे, तो मैं चली पराए की सोचने। औरों की सोचे मेरी बला।"

नयनतारा को अपने पास लिटाकर मां कहती, "अरी, तू उनकी बात छोड़। ये सब बड़ी-बड़ी बातें सुनने में अच्छी लगती हैं, बोलने में अच्छी लगती हैं, लेकिन इनसे अपना पेट तो नहीं भरता।"

पिता जब छात्रों को पढ़ाने म लगे होते, मां अपनी गिरस्ती संभालने में परेशान रहती। उस परेशानी में हर समय नयनतारा साथ हुआ करती। दिन-भर मां के पास-पास ही घूमा करती।

मां कहती, "बेटी नयन, ज़रा यह चावल तो बीन दे..."

मां के कहने पर नयनतारा सूप लेकर चावल बीनने बैठ जाती। पर उस काम के पूरा होते न होते मां और कोई काम करने को कह बैठती। कहती, "कहां गई रे नयन, ज़रा बरी सूखने दे दो बिटिया!"

नयनतारा जब-जब किताब लेकर पढ़ने बैठती, तब-तब मां कोई-न-कोई काम बता देती। कोई-न-कोई फरमाइश करती ही रहती मां। मां से मानो नयनतारा की पढ़ाई की कुट्टी थी। उसे पढ़ने के लिए बैठी देखती कि मां जो-सो कामो ईजाद कर लेती।

अन्त तक आजिज आ जाती नयनतारा। कहती, "मैं नहीं करती तुम्हारा काम। मुझे देखते ही शायद तुम्हें काम की याद आ जाती है..."

मां कहती, "अरी, अकेली कितने काम कर रही हूं, देख नहीं पा रही है तू? खटते-खटते मैं मर जाऊं, यही तुम सब चाहते हो न?"

नयनतारा कहती, "नौकरानी क्यों नहीं रख लेती? कल्याणी के यहां रात-दिन के लिए नौकरानी है, वही सब काम कर देती है।"

मां कहती, "अरी मैं तेरे ही भले के लिए कह रही हूं। अभी से अगर यह सब काम नहीं करेगी, तो जाने कहां, किसके घर जाएगी, सास की फटकार से ही जान जाएगी। सास उलाहना देगी। कहेगी, नैहर में मां ने बेटी को कुछ भी नहीं सिखाया है, बिलकुल ठूंठा जगन्नाथ बनाकर रख दिया है।"

उसके बाद मां अपने आप ही कहती, "मैं जो भी कहती हूं, तेरे भले के लिए ही कहती हूं री! मैं जब मर जाऊंगी, तू तब समझेगी कि मां तेरे भले के लिए ही इतना कहा करती थी।"

और, जब नवाबगंज का रिश्ता आया, तो मां दौड़ती हुई उसके कमरे में आई। बोली, "अरी, तू अब जमींदार की बहू होगी। जानती है।"

काश, मां उस समय जानती होती कि जमींदार की बहू होना क्या होता है! मगर मां ही क्यों, नयनतारा खुद ही क्या यह जानती थी! शायद सारे भू-भारत में कोई भी नहीं जानता था। नहीं तो किसी लड़की की सुहागरात में क्या ऐसी दुर्घटना घटती? किसीके पैरों की ठोकर से सफेद पत्थर का गिलास टूटकर यों चूर-चूर होता?

दिन-भर कहां-कहां का चक्कर काटकर सदानन्द जब घर आया तो सब कुछ शांत था। कल तक भी जिस घर में लोगों की खासी भीड़-भाड़ थी, जहां दाखिल होते ही पूरी छानने के घी की गंध मह-मह करती रही थी, वह अब नहीं थी। महज एक दिन पहले तक यहां उत्सव की धूमधाम और चहल-पहल

दीनू कुछ समझ नहीं सका। बोला, "किसके रोने को कह रहे हैं सरकार ?"

"किसका, वह क्या मैं ही खाक जानता हूं। लगा, जैसे कहीं कोई रो रही है। मैंने 'दीनू-दीनू' कहकर पुकारा भी, मगर तेरा कोई जवाब नहीं मिला।"

दीनू ने अपराधी की नाई कहा, "जी, मैं बेखबर सो गया था।"

"सोया तो ठीक ही किया। दिन-भर की हरारत थी, सोएगा नहीं ? हजार हो, आखिर शरीर ही तो है।"

जरा रुककर फिर पूछा, "तू नीचे गया था ?"

दीनू ने कहा, "जी। नीचे ही से तो आ रहा हूं।"

"नीचे क्या देख आया ?"

"देखा, रसोइए जाग गए हैं। अब जलपान की व्यवस्था होगी, चूल्हे में आंच पड़ गई।"

बूढ़े चौधरी ने कहा, "अरे, वह नहीं कह रहा हूं। कह रहा हूं, हवेली में क्या देखा ?"

"वहां तो अभी सब सो ही रहे हैं।"

"सो रहे हैं ? अच्छा। सभी सो रहे हैं ?"

"कल उधर सोने में काफी रात हो गई थी न, इसीलिए अभी तक कोई नहीं जगे हैं। छोटे बाबू को बुला दूं क्या ?"

"दुत्, छोटे बाबू को बुलाकर क्या होगा। मैं बूढ़ा आदमी ठहरा, कोई काम-धाम भी नहीं, इसीलिए ठीक से नींद भी नहीं आई। वह सब सो रहे हैं तो सोने दो। अब झंझट-झमेला सब चुक गया है। अब तो सब छूटकर सोएंगे ही।"

फिर जरा हंसकर बोले, "और, उधर की क्या खबर है रे ?"

"जी किधर की ?"

"दुल्हा-दुल्हिन की ?"

"जी, नन्हे बाबू को बाहर के अहाते में साला बाबू से बात करते देखा।"

उन्हें जैसे यकीन नहीं आ रहा था पूछा, "तूने ठीक-ठीक देखा है ?"

"जी हां। गलत क्यों देखने लगा ?"

"लेकिन वह इतना सवेरे क्यों उठा ? नई बहू कहां है ?"

"जी, उनके कमरे का दरवाजा तो भिड़का हुआ देखा।"

बूढ़े चौधरी कुछ सोच में पड़ गए जैसे। नई बहू, सुहागरात, उसमें दुल्हा इतना सवेरे क्यों उठ गया। ऐसे में तो सभी कुछ देर से ही जागते हैं। बोले, "तू जरा छोटे बाबू को तो बुला ला···"

दीनू चल दिया। तब तक प्राणकृष्ण साह भी आ पहुंचे। आढ़तिया हैं। सोना देकर नई बहू का मुंह देखेंगे। जरा देर में कैलास गुमाश्ता आ पहुंचा। उसके बाद छोटे बाबू खुद आए।

नीचे से खबर आई, बहू को तैयार होने में कुछ देर होगी। बूढ़े चौधरी बोले, "जरा देर तक बैठना होगा साहजी ! समझ ही सकते हैं, कल सब होते-

ते काफी रात हो गई…"

परन्तु यहीं तक नहीं। बहू को आशीर्वाद करके साहजी जब चले गए, तो चौधरी ने छोटे बाबू को बुलाया। एकदम अकेले में।

कमरे से सबको बाहर कर दिया गया।

बूढ़े चौधरी ने गले को ज़रा धीमा किया। पूछा, "रेल-बाजार से दरोगा आदमी आया था क्या?"

छोटे चौधरी ने कहा, "हां। मैंने सब चुका दिया।"

"कितना दिया?"

"जी, आपने जितना कहा था। पूरे पांच सौ ही दे दिए।"

"और बंसी ढाली को?"

छोटे चौधरी ने कहा, "वे लोग इस बार मोल-तोल कर रहे थे। डेढ़ सौ कम पर सौदा नहीं हो सका।"

"डेढ़ सौ!"

बूढ़े चौधरी जैसे चौंक उठे। बोले, "क्यों? उस बार सेगुनवाड़ी के गोखरे उस दंगल-देहाती में पन्द्रह लाशें गायब करने के मैंने सिर्फ पचास रुपये ए थे, उसीमें खुश होकर जमीन तक झुककर उन लोगों ने सलाम बजाया। इस बार एकबारगी तीन गुना दर कर दी? इन्हीं कै दिनों में रुपये इतने ते हो गए?"

छोटे चौधरी ने कहा, "जी सो नहीं। बड़ा गिड़गिड़ाने लगा। ऐसा करने ा जैसे डेढ़ सौ रुपये नहीं मिलने से बाल-बच्चों सहित फाके की नौबत गी।"

बूढ़े चौधरी का मुखड़ा गम्भीर हो गया। बोले, "उसने कहा था कि फाके से मरेंगे और तुमने उसीपर विश्वास कर लिया? इसी तरह से मेरी जायदाद को संभाल कर रखोगे। वे सब ओछे आदमी हैं, ऐसे छोटों भी नहीं प्रश्रय दिया जाता है।…कै जने थे?"

"जी, चार जने।"

"चार की लाश के लिए डेढ़ सौ रुपये। अंधेरनगरी हो गई। रुपया क्या ़ में फलता है कि तोड़ा और रख लिया? मैं जब कालीगंज में नायब था, लाश पीछे पांच रुपये के हिसाब से दिए। उन लोगों ने भी खुश होकर लाम किया। तुम लोग इसी तरह से हर चीज की दर बढ़ा देते हो। ये ग अगर इसी तरह से भाव बढ़ाते चले जाएंगे, तो आखिर जगह-जायदाद पते नहीं बनेगा। रुपया देने से पहले मुझसे पूछ तो लेना था। मुझसे छने तो इतना नुकसान होता तुम्हें? मैं तो यहीं हूं। पांव ही निकम्मे गए हैं, मर तो नहीं गया हूं? मेरे मर जाने के बाद जो जी में आए करना, देखने नहीं आऊंगा…"

डांट खाकर छोटे चौधरी पिता के सामने सिर झुकाए खड़े रहे।

उसी समय खबर मिली, "कृष्णनगर से आदमी आया है।"

बूढ़े चौधरी ने पूछा, "कृष्णनगर? तुम्हारे समधी के यहां से?"

समधी के यहां से इतना सवेरे फिर क्यों आदमी आया, पहले कोई नहीं समझ सका। लेकिन विपिन के चेहरे और जीभ से सृष्टिकर्ता ने ऐसी तो कोई नहीं गढ़ी है कि संसार की सारी घटनाएं उनकी जानकारी में ही घटेंगी। इसीलिए विपिन से खबर जो सुनी तो सबको काठ मार जाने की ही बात थी।

बूढ़े चौधरी ने पूछा, "हुआ क्या था?"

विपिन ने कहा, "जी, कुछ भी नहीं हुआ था। ब्याह के दिन बड़ा परिश्रम हुआ। उसके दूसरे दिन बेटी-दामाद की विदाई के बाद ही उन्होंने छाती पकड़ी। बोलीं, 'कलेजे में कैसा तो लग रहा है।' डाक्टर आए। उन्होंने सुई दी। सुई पड़ने के बाद वह सो गईं। लेकिन वह नींद ही उनकी नहीं टूटी।"

छोटे चौधरी ने कहा, "मैं जरा पुरोहित जी को कहला भेजूं..."

घर में हलचल-सी मच गई। एक तो नई बहू घर में, फिर इधर आ गए बालकृष्ण बाबू, और उधर दरोगा, गंदी गाली। और फिर कृष्णनगर का यह शोक-समाचार। कई रोज कैसा दुर्योग जो बीता, इसकी कल्पना करते हुए भी भय हो आता है। इन परेशानियों में किसीने ख्याल ही नहीं किया कि बालानन्द कहां है! उसने खाया या नहीं खाया, इसका भी किसीको ख्याल न था।

फिर बूढ़े चौधरी ने छोटे बाबू को बुलाकर पूछा था, "मुन्ने की क्या खबर है?"

छोटे चौधरी ने कहा, "वह ठीक ही है।"

"फिर कोई लड़ाई-झगड़ा तो नहीं किया?"

"जी नहीं।"

"लेकिन दीनू जो मुझसे कह रहा था, वह बहुत तड़के ही बहू के कमरे से बाहर निकल आया है?"

छोटे चौधरी ने कहा, "जी, दीनू ने ठीक ही कहा है।"

"सुहागरात के इतने सवेरे ही कमरे से निकल आया। बहू से झगड़ा-वगड़ा तो नहीं किया?"

छोटे चौधरी ने कहा, "जी नहीं। झगड़ा क्यों करने लगा?"

बूढ़े चौधरी बोले, "तुम्हारा बेटा जैसा बेअदब है, वह सब कर सकता है। खैर, भले-भले सब बीत गया, तो अब कोई खतरा नहीं। मुझे तो इसीका डर था न। नई बहू कैसी है? कृष्णनगर की यह खबर उन्हें कह दी गई है?"

छोटे चौधरी ने कहा, "अभी उनको कुछ नहीं बताया गया है। उनसे कहा भी जाए या नहीं, यही सोच रहा हूं। सुनेंगी तो बेतरह रोना-पीटना शुरू कर देंगी। पुरोहित जी से राय ले लूं, वह जैसा कहेंगे, वैसा ही किया जाएगा।"

यह सब होते-होते दोपहर बिखर गई। तीसरा पहर हो गया। ... दिनों से व्यग्रता और परेशानी थी, वह कुछ कम हो गई। बूढ़े चौधरी

भी मन में चैन की सांस ली। चलो, वंश-रक्षा की समस्या हल हो गई। अब कोई बात नहीं। वह मन में सोचने लगे, नई बहू के लड़का होगा, तो क्या देकर उस लड़के का मुंह देखेंगे। कोई बेशकीमती चीज देनी होगी। उनके जीवन का शायद यही अन्तिम देना हो। पोते के बच्चे को देना, सूद को ही देना होगा। या तो अशर्फियों की माला या हीरे की बालियां। हीरे की बालियों में बड़ा खर्च पड़ेगा, यह सुनार से पूछना पड़ेगा। अच्छे हीरों की बालियां बनवानी होंगी। जितने भी रुपये लगें।

इतने में नीचे शंख बज उठा।

दीनू आया। बूढ़े चौधरी ने उसकी ओर ताका। पूछा, "क्यों रे दीनू, वे लोग रवाना हो गए?"

"जी सरकार!"

"साथ में कौन गया?"

"जी, लाला बाबू और गोरी बुआ।"

सुनकर बूढ़े चौधरी और भी निश्चिन्त हो गए। उन्हें फिर अपनी बात याद आ गई। बोले, "एक काम करेगा? रेल-बाजार के कंचन सुनार को जरा खबर कर देगा?"

"कंचन सुनार को?"

बूढ़े चौधरी ने कहा, "हां। कहना, सुविधा से एक बार मुझसे मिल ले आकर।"

चौधरियों के घर के सदर रास्ते पर उस समय आगे-पीछे दो बैलगाड़ियां जा रही थीं। सामने वाली पर बैठी थी नई बहू नयनतारा और उसके बगल में गोरी। गोरी बुआ। पीछे वाली पर लाला बाबू। लाला बाबू ने चिल्लाकर कहा, "रज्जब जरा तेजी से। ट्रेन का वक्त हो गया है। सिद्धिदाता गणेश···"

सदर रास्ते से गाड़ी बरवारी-घाट पहुंची। बड़े-बड़े बरगद-पीपलों के पेड़ों से घिरी हुई जगह। दुकानों के चौतरे पर सांझ का अड्डा जम गया था ताश का। गाड़ी पर सदानन्द की बहू को देखकर सब अवाक् रह गए। पीछे वाली गाड़ी पर लाला बाबू पर नजर पड़ी, तो उन्हें थोड़ी हिम्मत हुई। चिल्लाकर पूछा, "बात क्या है लाला बाबू? नई बहू को कहां लिए जा रहे हैं?"

लाला बाबू के पास इतना समय नहीं था। बोला, "ट्रेन पकड़नी है भाई, अभी बात करने का समय नहीं है।"

और लाला बाबू ने अपनी गाड़ी के गाड़ीवान को फिर से ताकीद की, "जरा तेजी से चलो, तेजी से। ट्रेन का वक्त हो गया है।"

इधर मां ने घर में सदानन्द को देखा, तो अवाक् हो गई। पूछा, "अरे, सारा दिन तू कहां गायब था? घर में इतना झमेला गुजरा, तेरा कहीं पता नहीं।"

प्रकाश मामा रहा होता, तो अब तक हो-हल्ला मचा देता। लेकिन

प्रकाश मामा भी नहीं था, गौरी बुआ भी नहीं थी। जो दो जने घर को गुलजार किए रहते थे, उनमें से कोई नहीं था। घर में धीरे से आकर भीड़-भाड़ जो नहीं देखी, सदानन्द को कैसा अजीब-सा तो लगा। महज कई दिन पहले तक यहां मेला-सा था। पोखरे के बांध की ओर मिठाई के चूल्हे जले थे। बरवारी-थान के ताश खेलने वाले सब लोग यहां से भोज खा गए थे। बहू की भी खूब तारीफ की सबने। सवेरे जब सदानन्द वहां गया, तो सबने उसको घेरा। पूछा, "क्यों रे, इतना सवेरे ?"

सदानन्द ने कहा, "घर में अच्छा नहीं लग रहा था भाई, बेहद भीड़ है।"

गोपाल पाट ने कहा, "कल तेरे यहां छूटकर खाया है रे ! पेट फटने की नौबत···।"

केदार ने पूछा, "बहू कैसी हुई सदा ? पसंद आई ?"

पसंद की बात सुनते ही आसपास के सभी केदार पर हंस पड़े। ऐसी सुन्दर बहू, फिर भी पसन्द की बात उठती है। नये दुल्हे को देखकर चौंतरे पर धीरे-धीरे और भी भीड़ हो गई। सदानन्द को सब इतने दिनों से देखते आ रहे हैं, मगर सबके लिए रातों-रात वह मानो बिलकुल नया ही आदमी बन गया हो। यही आदमी इतने दिनों से उन लोगों के साथ अड्डा जमाता आया है, बातें करता रहा है, ताश खेला है, उठता-बैठता रहा है, फिर भी एक ही रात में वह सबके लिए जैसे बिलकुल ही अनचीन्हा सा हो पड़ा है। सबकी इच्छा हो रही थी कि उसकी सुहागरात कैसी गुजरी, यह सुने। उसकी सुहागरात क्या ठीक मेरी जैसी रही ? सबको अपनी-अपनी सुहागरात की बात याद आने लगी। सबने चाहा कि अपनी सुहागरात से सदानन्द की सुहागरात को मिलाकर देख ले। उतनी सुन्दर बहू से उसने पहले क्या बात की, यह भी जानने की इच्छा हुई।

भैरव ने कहा, "क्यों रे, हंस रहा है ?"

सदानन्द ने कहा, "तुम सबकी बातें सुनकर।"

"क्यों, गरीब हैं, इसलिए हम आदमी नहीं हैं क्या ? या कि हमारी बीवियां काली हैं, इसलिए वे बीवियां नहीं हैं ?"

कोई एक बोल उठा, "अरे भाई, जो सोच रहा है, बात यह नहीं है। अंधेरे में जैसी काली बीवी, वैसी गोरी बीवी। बराबर।"

"तू मत बोल—" केदार ने फटकारा। कहा, "जो बात तू नहीं जानता, उसमें दखल मत दे। तूने विवाह ही नहीं किया है, विवाह का मर्म तू क्या जाने ?"

बात सोलहों आने सही थी। सबने यह कबूल किया कि ब्याह किए बिना ब्याह का मर्म नहीं जाना जा सकता। सबने कहा, "तू यहां से जा तो सही, भाग जा यहां से।"

इसने विवाहितों के बीच से अविवाहित को फौरन खारिज कर दिया गया। उसके बाद सदानन्द को घेरकर सब गोल होकर बैठे। कहा, "हां,

अच्छा, अब तू बता कि हुआ क्या ?"

सदानन्द ने कहा, "कुछ भी नहीं हुआ।"

"कुछ भी नहीं हुआ। मतलब ? हमें बेवकूफ समझता है तू ?"

सदानन्द ने कहा, "यह सब छोड़ो भाई, कुछ और बात करो।"

मगर दूसरी बात उस समय किसीको सुहा सकती थी भला। प्रसंग जब पुराना पड़ जाएगा, तब तो सदानन्द से यह सब कोई पूछेगा ही नहीं। फिर तो वह उन्हीं सब जैसा साधारण हो जाएगा।

एकाएक बैलगाड़ियों को देखकर केदार बोल उठा, "सदा, तेरी बहू नैहर जा रही है रे, वह देख।"

गाड़ियां आगे-पीछे रेल-बाजार की ओर जा रही थीं। केदार चिल्ला उठा, "बात क्या है साला बाबू, नई बहू को कहां लिवा जा रहे हैं ?"

साला बाबू ने उनकी ओर ताके बिना ही कहा, "अभी ट्रेन पकड़ने की जल्दी है भाई, बात करने का समय नहीं है।"

दोनों बैलगाड़ियां दौड़ने लगीं। सबने सदानन्द की ओर देखा। पूछा, "क्यों रे सदा, तेरी बहू इतनी जल्दी नैहर क्यों जाने लगी ? कल ही तो 'बहूभात' हुआ और आज ही जाने लगी।"

भैरव ने कहा, "तब तो तेरी रात आज तकिए के साथ गुजरेगी सदा, तेरा नसीब ही खोटा है।"

सदानन्द ने कहा, "मैं चलता हूं भाई !"

वह और खड़ा नहीं रहा। उसे लगा, उसके सामने अब जैसे कोई बाधा ही नहीं रही। अब वह बिलकुल आज़ाद है।

सब बोल उठे, "उधर कहां चला रे ?"

सदानन्द ने सुबह से ही वहां बैठकबाजी की थी। समय का ख्याल ही नहीं रहा। उसने सीधे पच्छिम का रास्ता पकड़ा। जाते-जाते बोला, "पच्छिम-टोले में कुछ काम है भाई !"

असल में पच्छिम-टोला भी नहीं, दक्खिन-टोला भी नहीं, सदानन्द को लगा, अब वह सारी पृथ्वी की ही परिक्रमा कर आ सकता है। उसे ज़रा भी क्लांति नहीं होगी, तनिक भी श्रांति नहीं होगी।

केदार ने कहा, "ब्याह करके सदा का सिर फिर गया है। सबके साथ ऐसा होता है।"

पर आते ही मां ने कहा, "सुना, तेरी सास मर गई। कृष्णनगर से आदमी आया था, इसीलिए बहू को भेज दिया।"

सदानन्द ने हां-ना कुछ भी नहीं कहा। जैसा खाया करता था, खा लिया। मां ने आंचल की चाबियों के गुच्छे से एक चाबी निकालकर उसे दी। कहा, "तेरे कमरे में ताला पड़ा है। बहू की चीज़ें पड़ी हुई हैं न, इसीलिए। यह ले चाबी।"

चाबी लेकर सदानन्द ने कमरे को खोला। खोलते ही कैसी तो एक मीठी-सी महक उसकी नाक को लगी। पर की सारी ही खिड़कियां बन्द थीं।

पिछले दरवाजे में भी ताला लग गया था। कहीं से, होकर भी भागने रास्ता नहीं था। घर के कोने की अलगनी में एक चून की हुई साड़ी पड़ी है। उसीके पास एक ब्लाउज।

अचानक मां आ पहुंची। पूछा, "क्यों रे, आज तो यहां सोएगा न? यहीं सोना हो, तो बता। बहू के सन्दूक-पिटारे पड़े हैं, उन्हें न होगा तो मैं अपने कमरे में उठवा मंगाऊंगी।"

सदानन्द ने फिर भी कुछ नहीं कहा। मां को लगा, लड़के की मति शायद फिरी। बोली, "तो मैं जाती हूं। बत्ती बुझाकर तू सो जा।"

सदानन्द ने कुरता उतारकर रखा। उसके बाद बत्ती गुल करने से पहले उसने एक बार छत की ओर देखा। कहां, कपिल पायरापोड़ा की लटकती हुई लाश तो नहीं नजर आ रही है। वह कहां गई? अपनी गंजी की ओर भी उसने देखा। कालीगंज की बहू के लहू का दाग भी तो नहीं रहा। ऐसा कैसे हुआ? ऐसा तो नहीं होना चाहिए। तो क्या एक ही रात में सारे दाग धुल गए। एक सुहागरात के प्रलेप का यह जादू। सदानन्द को लगा, वह महक अभी भी नाक में आ रही है। महज कई घंटे पहले एक स्त्री इस कमरे में थी। अभी भी उसके शरीर और यौवन की सन्निध का स्पर्श कमरे के एक-एक अंग में लगा था। एक चूनन डाली हुई साड़ी की मुड़न में वह मानो अपने मन को छिपाकर रख गई है। वह छिप-छिपकर देख रही है। देख रही है कि लोगों की नजरों की ओट में वह उस साड़ी और ब्लाउज को एक बार छूता है या नहीं। उसकी निश्चित धारणा है कि सदानन्द इन्हें छुएगा ही, उनके स्पर्श को बचाकर वह जी नहीं सकता। उसे अभिभूत करने के लिए उसके पूर्वपुरुषों ने एक मोहिनी माया बिछा रखी है। उसमें वह फंसकर ही रहेगा, फंसकर तबाह होगा ही।

शायद वास्तव में ही उसकी आंख लग गई थी। अकस्मात् उसके दरवाजे पर दस्तक पड़ी। बाहर से मां पुकार रही थी।

"मुन्ने, ओ मुन्ने—दरवाजा खोल, बहूरानी आई है।"

सदानन्द की समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। जो कृष्णनगर गई, वहीं जिसके दो-तीन दिन रहने की बात थी, वह लौट कैसे आई?

"ए मुन्ने, किवाड़ खोल। बहू आई है। गाड़ी छूट गई। वापस आ गई।" और उसी क्षण प्रकाश मामा का गला भी सुनाई पड़ा, "अजीब है, आज ही उनकी ट्रेन छूटनी थी।"

सदानन्द ने दरवाजा खोल दिया।

बाहर थोड़ा-थोड़ा उजाला था। उसी अध-अंधेरे और आधे प्रकाश में वह मूर्ति चुप खड़ी थी। दरवाजा खोलते ही नयनतारा धीरे-धीरे कमरे के अन्दर आई।

सदानन्द ने पत्नी के मुंह की ओर देखा। आंखें दोनों गीली हो गई थीं। पीछे से प्रकाश मामा की आवाज मिली, "हम लोग इधर स्टेशन पहुंचे और उधर ट्रेन खुल गई।"

गौरी बुआ भी लौट आई । वह भी बोल उठी, "नसीब का फेरा भाभी,
[सा]रे बदन में दर्द हो गया, मगर कोई लाभ नहीं हुआ ।"

मां ने कहा, "नाहक ही बेचारी बहू को इतना कष्ट उठाना पड़ा ।"

सदानन्द उस समय तक भी पत्थर की नाई खड़ा था । क्या जो करे, [कु]छ समझ में नहीं आ रहा था । कमरे से चला जाए कि वहीं रहे । कमरे [से] निकल जाने से प्रकाश मामा उसे देख लेगा ।

एकाएक जाने क्या हो गया कि सदानन्द नयनतारा की ओर जरा बढ़ा । उसे कुछ तो कहना चाहिए । कल वह बिना कुछ कहे ही कमरे से निकल-कर चला गया था । क्यों चला गया था, यह उसने नयनतारा को नहीं बताया । और किसीको न बताने से कुछ आता-जाता नहीं, पर ब्याह करके लाई हुई अपनी स्त्री को तो सफाई देनी चाहिए ।

नयनतारा के करीब जाकर वह बोला, "सुनो ।"

लेकिन कुछ कहने से पहले ही नयनतारा जैसे फुंकार उठी । बोल उठी, "मुझे मत छूओ ।'"

उसका यह कहना था कि सदानन्द की नींद खुल गई । तकिये से सिर उठाकर उसने चारों ओर निहारा । कहां, कोई तो नहीं है कहीं । कमरा अंधेरा है । वह धीरे-धीरे बिस्तर पर से उठा । रोशनी जलाई । दरवाजे की छिटकिनी लगी की लगी ही थी । कहीं कोई नहीं था । अब तक कमरे में वह अकेला ही सोया था । कोई अन्दर नहीं आया । अलगनी पर साड़ी और ब्लाउज वैसा ही पड़ा था । एक ही जैसा, एक ही जगह, किसीने छुआ तक नहीं । आश्चर्य ! आश्चर्यजनक सपना देखा । लेकिन सपना ही देखना था, तो ऐसा सपना क्यों देखा ? क्यों देखा ऐसा सपना ?

बत्ती को बुझाकर वह फिर से बिस्तर पर लेट गया । फिर सब अंधेरा । फिर से सोने की कोशिश की । उसे लगा, अब कोई डर नहीं रहा । उन लोगों की ट्रेन नहीं छूटी है । नाहक ही वह डर गया था । अब तक वे तीनों शायद कृष्णनगर पहुंच गए होंगे । नयनतारा अभी जार-बेजार हो रही होगी । ब्याह के एक ही दिन बाद मां चल बसी । आम तौर से ऐसा होता तो नहीं है ।

लेकिन इतना सारा सोचने से सदानन्द का काम नहीं चल सकता । उसे किसीका भला-बुरा, किसीका स्वार्थ नहीं देखना है । उसके स्वार्थ, उसके भले-बुरे की बात कभी किसीने सोची है क्या ? उसको केन्द्र बनाकर सबने अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना चाहा है । उसके दादाजी ने इस वंश और वंश की प्रतिष्ठा-मर्यादा को अक्षय करना चाहा । पिता ने चाहा कि सदानन्द इस वंश की धारा को जिलाए रखे । इसके सिवा किसीने उससे और कुछ नहीं चाहा । सदानन्द का सुख और स्वच्छंदता किसीने नहीं चाही ।

कालीगंज की बहू ने सदानन्द से उस दिन यही बात कही थी । य[ह]
बोली, "तुम मेरी चिन्ता क्यों कर रहे हो बेटे ? तुम्हारी शादी होग[ी]
तुम्हारी घर-गिरस्ती होगी, तुम्हारे बाल-बच्चा होगा—तुम्हारे सा[थ]

लम्बा भविष्य पड़ा है, मेरा पांव तो गंगा की ओर बढ़ा ही हुआ है,
चल दूं, तो जी जाऊं। तुम अब मेरी न सोचो बेटे…"

तकिए में मुंह गाड़कर सदानन्द ने यह सब न सोचने की ही चेष्टा
। सच तो, कालीगंज की बहू के लिए वह क्यों सोचता है! कपिल
पायरापोड़ा की क्यों सोचता है वह! क्यों वह माणिक घोष और फटिक
ाई की सोचता है! दुनिया में और कोई भी तो उसकी तरह फिज़ूल की
बातें नहीं सोचता।

न, अब से वह कुछ नहीं सोचेगा। किसीकी नहीं सोचेगा। बस, अपनी
ही सोचा करेगा। अपने सुख की बात, अपने स्वार्थ की बात। कहां का
कौन कपिल पायरापोड़ा, कहां की कौन कालीगंज की बहू—वे सब तो अब
इस दुनिया में हैं नहीं। उन सबकी सोचकर भी तो वह उनकी कोई भलाई
नहीं कर सकता। वे सब मर चुके। उनकी तरफ कोई भी नहीं। उनके
सिपाही नहीं, दरोगा नहीं, कानून नहीं, सरकार नहीं—यहां तक कि समाज भी
उनके ख़िलाफ है। फिर वहीं उनकी क्यों सोचे! उन सबकी सोचकर वह
अपना दिमाग क्यों खराब करे! उससे तो बल्कि वह अपनी ही सोचे। अपना
स्वार्थ, अपना सुख, अपनी पत्नी, अपनी सम्पत्ति। यह लाख-लाख की जमींदारी,
उसे और कैसे बढ़ाया जाए, दूसरों की सम्पत्ति हड़पकर अपनी सम्पत्ति को
दुगना कैसे किया जाए—वह अब केवल यही सोचेगा।

अब यदि नयनतारा आए, तो वह इसी कमरे में सोएगा। इसी कमरे में
अपनी स्त्री के साथ सोएगा।

फिर वह कब जो सो गया, उसे खुद भी पता नहीं।

बहुत दिन पहले की, और एक दिन की घटना। नवाबगंज में ख़ासी सर्दी
पड़ने लगी थी। गांव के लोग सर्दी में सवेरे ही बाहर निकल आते हैं। चारों
ओर सुना। खेत-खलिहान का भी काम उस वक्त खास नहीं रहता। धान
कट चुका होता है, पाट भी। खेत में सिर्फ सरसों। सरसों के खेत सूखकर
काले हो जाते। चौधरियों के घर के बाहर चंडीमंडप के पश्चिम के आंगन में
सरसों ही सरसों। चारों ओर टट्टियों का घेरा। इसलिए कि गाय-बकरी
मुंह न लगाए। सरसों को चुन-बीनकर बोरियों में जमा कर लेना। उसके
बाद बारी-बारी से प्राणकृष्ण साह की आढ़त में रेल-बाज़ार भेजा जाता
रहेगा। वहां से नकद रुपये नरनारायण चौधरी के सन्दूक में आते रहेंगे। उन
रुपयों से फिर जमीन खरीदी जाएगी, उस जमीन में फिर और फसल होगी
यह जमीन खरीदना, फसल उगाना और फसल से आने वाले रुपयों से न
नारायण चौधरी जी निकम्मे पैरों को लेकर पड़े-पड़े अखण्ड साम्राज्य के स
देखा करेंगे और उसी सपने के नशे में साल-साल अपनी परमायु समाप्त क
रहेंगे।

फुरसत में सदानन्द धान की दौनी, सन छुड़ाना और सरसों निकालना देखा करता। बिधु अनाज तौला करता। चौधरी जी बहुत बार खड़े होकर देखा करते।

सदानन्द पूछा करता, "अच्छा बिधू काका, इतनी सरसों खाएगा कौन ?"

बिधू कहता, "और कौन, आदमी।"

सदानन्द कहता, "इतनी सरसों लोग खा सकेंगे ?"

बिधू डंडीदार हंसता। कहता, "दुनिया में आदमी क्या कुछ कम हैं नन्हे बाबू ! आदमी का अन्त नहीं है। दुनिया में कितने लोग रोज पैदा होते हैं, मालूम है ?"

"कितने ?"

"करोड़ों-करोड़ आदमी पैदा होते हैं। और करोड़ों-करोड़ मरते हैं। जितने लोग पैदा होते हैं, वे सब यही चावल, दाल, सरसों खाएंगे।"

सदानन्द पूछता, "इतने लोग कैसे पैदा होते हैं ?"

बिधू कहता, "यह आप अभी नहीं समझेंगे। यह सब आप बड़े होने पर समझेंगे।"

सदानन्द कहता, "तुम कहो न काका, मैं तो बड़ा हो गया हूं। मैं ठीक समझूंगा।"

मगर बिधु तो भी नहीं कहता। शायद लड़के से यह सब कहना-सुनना नहीं चाहता हो। और इतना बोलने का समय भी नहीं था उसे। बहुत काम था। जब तौल का काम नहीं रहता, तो उसे दूसरा काम दिया जाता। चौधरी जी के यहां काम क्या एक ही था। गुहाल के गाय-भैंस के लिए चरवाहा, खेत-खलिहान में काम करने के लिए हलवाहे-मजूर, तौलने के लिए डंडीदार, कचहरी के काम के लिए गुमाश्ता था। घर के काम-काज के लिए अलग आदमी। लोगों से भरा था घर। चौधरी जी के यहां काम शुरू हो जाता अलस्सुबह से और खत्म होता शाम के बाद। शाम के बाद ही जैसे नवाबगंज थोड़ा ठंडा होता।

वही बिधु डंडीदार अचानक एक दिन चल बसा।

वह भी एक घटना। चौधरी परिवार में एक दिन हलचल-सी मच गई। बात क्या है ? तो, बिधू डंडीदार को सांप ने काटा है। सभी दौड़े बिधू के यहां। सदानन्द कभी उसके यहां गया नहीं था। जाकर देखा, माटी पर बिधू चित पड़ा है और एक बूढ़ा ओझा उसकी झाड़-फूंक कर रहा है। मन्तर पढ़ रहा है। याद है, सदानन्द एकटक बिधु काका की ओर ताक रहा था। उफ, कैसी वीभत्स मृत्यु ! कपिल पायरापोड़ा की मौत एक और तरह की थी—वह भी वीभत्स थी। वह भी अपमृत्यु ही थी। लेकिन बिधू डंडीदार की अपमृत्यु जैसे और ही तरह की हो। सदानन्द उस दिन यह नहीं सोच पाया कि इसके लिए वह किसको जिम्मेवार ठहराए। उसने सबसे पूछा था। पिता से पूछा। मां से पूछा। गोरी बुआ से पूछा। यहां तक कि प्रकाश मामा से भी पूछा। भांजे का प्रश्न सुनकर प्रकाश मामा तो अवाक्। बोला, "अरे, सांप काटेगा,

...मिल जाए कहीं तो जान...
आदमी मरेगा नहीं ? और ऐसे ही दांव पर पाता है, वहीं उसे मारता है,
...को मार डाले। जो जिसे दांव पर पाता है, वहीं उसे मारता है,
...भा ?"

सदानन्द समझ नहीं सका। बोला, "इसका मतलब ?"

"मतलब सब एक-दूसरे के दुश्मन हैं। सभी सबको दांव पर पाने की ताक में रहते हैं। यों समझ न, तेरे दादाजी ने कपिल पायरापोड़ा को दांव पर पाया, वह मर गया, कहीं कपिल पायरापोड़ा तेरे दादाजी को दांव पर पाता, तो तेरे दादाजी को भी मारता। यही तो नियम है। इसी नियम से तो दुनिया चलती है।"

इस बात ने दिनों तक सदानन्द को बड़े सोच में डाल दिया था। वह बीच-बीच में बिधू के बारे में सोचा करता। बिधू की जगह पर काम करने के लिए उसका बेटा शशी आया। तब से वही उसके यहां काम करता। शशी भी अपने बाप की तरह ही धान तौला करता, सरसों तौला करता। सोचता, दादाजी कभी शायद इसे भी दांव पर पाएंगे।

एक दिन सदानन्द ने शशी से पूछा, "अच्छा शशी, तुम किसको दांव पर पाने की कोशिश कर रहे हो, कहो तो ?"

शशी सुनकर भौंचक्का-सा रह गया। बोला, "मतलब ?"

सदानन्द ने पूछा, "इसका मतलब नहीं जानते ?"

"नहीं।"

सदानन्द ने कहा, "मतलब तुम जरूर जानते हो, सिर्फ मुझे बता नहीं रहे हो। तुम जरूर—किसीका खून करने की कोशिश कर रहे हो। सब कोई ऐसी कोशिश करता है। यही नियम है। इसी नियम से दुनिया चलती है।"

अपना काम रोककर शशी उसकी ओर ताकता रहा, "कह क्या रहे हैं नन्हे बाबू !"

उधी होकर चौधरी जी जा रहे थे। पूछा, "क्या बातें हो रही हैं शशी ?"

शशी ने कहा, "जी देखिए न, नन्हे बाबू कह रहे हैं, मैं किसीका खून करना चाहता हूं।"

"यानी ?"

चौधरी जी भी अवाक् रह गए। सदानन्द की ओर देखकर बोले, "तुमसे यह सब किसने कहा ? शशी किसका खून करेगा ?"

सदानन्द ने कहा, "हां। मैं जानता हूं।"

"जानते हो के क्या माने ? क्या जानते हो तुम ?"

सदानन्द ने कहा, "सब सबके खून की ताक में हैं।"

चौधरी जी और भी हैरान हो गए। पूछा, "यह सब तुम्हें किसने सिखाया ?"

सदानन्द ने कहा, "प्रकाश मामा ने।"

"प्रकाश मामा ने ?"

"हां, प्रकाश मामा ने बताया। क्यों, बिधू को सांप ने नहीं काटा...

ल पायरापोड़ा को दादाजी ने नहीं मारा ?"

चौधरी जी आगे कुछ नहीं बोले। तुरन्त बेटे को चंडीमंडप ले गए। रह करने लगे उससे, "किसने तुमसे ऐसी बातें कहीं ? किसने ये सब सवाल गए ?"

सबके जवाब में सदानन्द ने प्रकाश मामा का नाम लिया।

प्रकाश मामा को बुलाया गया। चौधरी जी ने उनसे भी जिरह की, तुमने सदानन्द को यह सब सिखाया है ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "मैंने ? मैं क्यों सिखाने लगा जीजाजी ? मुझे क्या गरज पड़ी। आप सदा को सीधा समझ रहे हैं। वह मुझको सब सिखा सकता है।"

चौधरी जी ने रात में पत्नी से सारी बातें कहीं, "देखो, तुम्हारा भाई लेकिन मुन्ने को चौपट किए दे रहा है। मुन्ने को उससे ज्यादा मिलने मत दो..."

गृहिणी ने कहा, "क्या जो कहते हो तुम, समझ नहीं आता। लड़के ने क्या कहा, इसीपर परेशान हो। तुम अपना काम करो, बच्चों की बात पर कान देने से कहीं काम चलता है ?"

इस सम्बन्ध में आगे और कोई बात नहीं हुई। सदानन्द देखते-देखते बड़ा हो गया। जो देखना था, उसने देखा, जो सीखना था, सीखा। क्या देखा और क्या सीखा, यह जानने का अवसर किसीको नहीं मिला। चौधरी जी अपनी जगह-जायदाद की देखभाल में डूबे रहे और प्रीति उलझी रही अपनी गिरस्ती के जाल में। उन दिनों प्रीति के नित नये गहने बनते। दो दिन के बाद ही उसे तुड़वाकर कंचन सुनार से नये पैटर्न के गढ़वाए जाते। सदानन्द उस समय छोटा था। मां-बाप ने सोचा था, बच्चा जैसा है, वैसा ही सदा बच्चा रहेगा, लेकिन वह जो यही रबड़ के बैलून वाली घटना से लेकर कपिल पायरापोड़ा, माणिक घोष, फटिक नाई की परेशानियों की सारी घटनाओं को इतने दिनों तक मन में पालता रहेगा, इसकी कल्पना कौन कर सकता है ? इसी हवेलीदार से ही वह उसके बाप विधू के बारे में क्यों पूछे ? और कालीगंज की बहू ?

जैसे होना है, वैसे ही दूसरे दिन सवेरा हुआ।

सदानन्द सवेरे ही खा-पीकर घर से निकल गया था। पहले दिन जैसी लोगों की आवा-जाई नहीं थी। शोरगुल भी थम गया था। प्रकाश मामा नहीं था, गौरी बुआ भी नहीं। इन दोनों की अनुपस्थिति से सारा घर ही जैसे सां-सां कर रहा था।

दोपहर को छोटे चौधरी भोजन करने के लिए अन्दर आए थे। खा-पीकर वह अपने सोने के कमरे में थोड़ा आराम कर रहे थे। जरा देर में प्रीति भी आ गई।

चौधरी जी ने पूछा, मुन्ना कहां है ? खा चुका ?"

प्रीति ने कहा, "हां। खाकर ही चल दिया।"

"कहां गया ?"

प्रीति ने कहा, "सो मैं क्या जानूं ! कभी मुझसे कहकर जाता है ?"

"कल तो वह अपने कमरे में ही सोया था । बहू के आने बाद भी वहीं सोएगा न ?"

प्रीति ने कहा, "मैंने यह पूछा था, मगर उसने कोई जवाब नहीं दिया ।"

"आखिर वह कोई कांड न कर बैठे । जैसा वह है कि सब कुछ कर सकता है । तुमसे कुछ बताया है कि वह आखिर सो क्यों नहीं रहा है ?"

प्रीति ने कहा, "उसकी बात का सिर-पैर मेरी समझ में नहीं आता कुछ कहो तो वह न जाने किस कपिल पायरापोड़ा, माणिक घोष, फटिक न की बात, कालीगंज की बहू की बात ले आता है । इसीलिए न तो अब उससे वह सब पूछती हूं, न वह सब समझती हूं ।"

छोटे चौधरी अपने आप ही बोल उठे, "पागल है, बिलकुल पागल । देश-गांव में इतने तो छोरे-छोकरे हैं, इतने लड़कों ने शादी की है—ऐसा पागल-पन तो किसीने नहीं किया ।"

प्रीति ने पूछा, "लेकिन वह जिन लोगों का नाम लेता है, कौन हैं वे लोग उन लोगों ने उसका क्या किया ?"

चौधरी जी बोले, "भगवान जाने । किसने जो उसके दिमाग में यह सब खुराफात भर दी है, मैं यही नहीं सोच पाता । यह हरकत जरूर प्रकाश की है ।"

प्रीति ने कहा, "प्रकाश ? दोष तुम प्रकाश के मत्थे पर मढ़ रहे हो ? कसूर तुम्हारे लड़के ने किया और उसका जिम्मेदार हुआ प्रकाश ? तुम हर बात की जिम्मेवारी प्रकाश पर क्यों थोपते हो, कहो तो ?"

छोटे चौधरी ने कहा, "प्रकाश ही तो बचपन से उसे साथ लिए चलता है । कहां तो राणाघाट ले गया यात्रा दिखाने के लिए । कहां रूप-कीर्तन हो रहा है, वहां ले गया । मैंने तो उसी समय तुम्हें चेतावनी दी थी कि देखो, सदा को प्रकाश से ज्यादा मत मिलने दिया करो । तुमने मेरी एक नहीं सुनी—अब जो होना था, सो होकर रहा ।"

प्रीति ने कहा, "अब जितना भी दोष है, सब मेरे मत्थे । तुम्हार लड़का है, हर वक्त अपने साथ ही रख सकते थे ।"

चौधरी जी ने कहा, "मुझे क्या और कोई काम-काज नहीं है ? लड़के को कंधे पर बिठाए चलने से मेरा काम चलेगा ? मुझे किन-किन झमेलों में रहना पड़ता है, मैं उसकी खबरगिरी कब करूं, यह तो कहो ? तुम घर में रहती हो, उसका ख्याल तुम नहीं रखोगी, तो कौन रखेगा ?"

प्रीति को भी रंजिश हो आई । बोली, "यानी काम सिर्फ तुम्हें ही है, मैं हाथ-पांव समेटे बैठी रहती हूं, क्यों ? मुझे कोई काम ही नहीं है, है न ? तु ने जो इन लोगों को घर में पाल रखा है, इनकी निगरानी कौन करता है इसमें कोई मेहनत नहीं पड़ती है ?"

चौधरी जी ने देखा, बात अब झगड़े की तरफ मोड़ ले रही है । आ करना नसीब न हुआ । जरा देर में बात बढ़ जाएगी । वह उठ पड़े । बो

"ज़रा चंडीमंडप की तरफ़ जाऊं। प्रकाश शायद अब लौटे। उन लोगों के लौटने का समय हो आया।"

कहकर वह चले जा रहे थे। एकाएक जाने क्या याद आ गया, वह फिर लौट आए। बोले, "हां, सुनो। कोई कह रहा था, एक साधु शायद दैवी दवा दिया करता है।"

"दैवी दवा?"

"हां, उससे सबको फायदा हुआ। कोई हंगामा नहीं, सिर्फ हाथ में पहनना पड़ता है।"

प्रीति ने पूछा, "ताबीज़?"

चौधरी जी बोले, "ताबीज़ भी देता है, दवा भी देता है, खाने के लिए। मुझे पूरी जानकारी नहीं है। मैंने उसे बुलवा भेजा है।"

प्रीति ने कहा, "तुम्हारा लड़का जैसा है, वह भला ताबीज़-फाबीज़ पहनेगा?"

"लड़का न पहने तो बहू पहनेगी। उन लोगों के पास वशीकरण आदि कितनी ही चीज़ें तो रहती हैं। कल रात लेटे-लेटे मैं यही सोच रहा था।

प्रीति ने कहा, "लड़का तो नहीं पहनेगा। बहू के पहनने से अगर काम बने तो मैं कोशिश कर सकती हूं। लेकिन खाने-पीने की दवा का इस्तेमाल मैं नहीं करूंगी। पता नहीं, क्या का क्या हो जाए! लेने के देने न पड़ें!"

"देखता हूं। उस आदमी के इसी वक्त आने की बात है।"

चौधरी जी चंडीमंडप की ओर चल पड़े।

तीसरे ही पहर गौरी बुआ और प्रकाश मामा आ धमके। बहू को कृष्णनगर पहुंचाया, वहां रात बिताई और सुबह की ही ट्रेन से रवाना होकर आ गए। इन कामों में प्रकाश मामा का सानी नहीं। हां, उसे खातिरदारी करने की गुंजाइश होनी चाहिए। यानी मुखियागिरी। मुखियागिरी करने को मिले तो प्रकाश मामा को और कुछ नहीं चाहिए।

गौरी बुआ आते ही सीधे अन्दर चली गईं।

लेकिन सदानन्द जब घर लौटा तो सांझ बीत चुकी थी। सुबह ही खा-पीकर वह निकल पड़ा था। तबसे शाम-शाम तक घर में क्या गुज़रा, उसका उसे पता नहीं था। वह जब चंडीमंडप के पास पहुंचा, तो अन्दर से चौधरी जी की नज़र उस पर पड़ गई।

उन्होंने आवाज़ दी, "सुनो…"

सदानन्द अन्दर गया। जाते ही देखा, कोई तो चौधरी के सामने बैठा [illegible] और बड़े गौर से उसको देख रहा है। उस आदमी के सिर पर घने घुंघराले बाल। चेहरे का चमड़ा तेल-सना सा चकचक। बदन पर नामावली। और, दोनों

भौंहों के बीच कपाल में सिंदूर का बड़ा-सा टीका।

चौधरी जी ने बेटे से कहा, "इनको प्रणाम करो…"

सदानन्द को समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। कौन है यह ? यहां क्यों आया है ? चेहरे से साधु संन्यासी जैसा लग रहा है।

"करो, प्रणाम करो। देख क्या रहे हो ?"

सदानन्द ने कहा, "क्यों, प्रणाम क्यों करूंगा ?"

चौधरी जी ने कहा, "ये तुम्हारा भला करेंगे, इनको प्रणाम करने से तुम्हारा भला होगा।"

सदानन्द ने पूछा, "ये क्या भला करेंगे मेरा ?"

चौधरी जी ने कहा, "तुम तो बेहद तर्क करते हो, देख रहा हूं। मैं जो कह रहा हूं, तुम वही करो। प्रणाम करने में तुम्हारा हर्ज क्या है ?"

सदानन्द ने कहा, "मुझे अपने भले की जरूरत नहीं। मैं प्रणाम नहीं करूंगा जिसको-तिसको मैं क्यों प्रणाम करूं ?"

चौधरी जी से अब बरदाश्त नहीं हुआ। मारे गुस्से के वह एकाएक उठ खड़े हुए। बोले, "तुम्हारी इतनी हिम्मत। मेरी बात पर बात ? मैं कह रहा हूं, तुम इनको प्रणाम करो।"

सदानन्द फिर भी निर्विकार-सा। बोला, "मैं तो कह चुका, मैं प्रणाम नहीं करूंगा, और कितनी बार कहूं ?"

"प्रणाम नहीं करोगे ?"

"नहीं।"

उसकी इस हिमाकत पर चौधरी जी क्या कर गुजरते, कहा नहीं जा सकता, लेकिन उसी संन्यासी ने उठकर उनको रोका। बोले, "तू रुक जा, रुक जा—महज मामूली-सी बात।" चौधरी जी पल में पानी हो गए। जादू हो गया जैसे।

संन्यासी की ओर देखकर चौधरी जी ने कहा, "देख लिया न बाबा, यह लड़का कितना ढीठ है। मेरे मुंह पर मुझको जवाब दे रहा है। मैं उसके भले की सोच रहा हूं और वह मुझसे कैसे पेश आ रहा है, देखा न आपने ?"

भले आदमी ने कहा, "तू दिमाग को ठंडा रख, सब ठीक हो जाएगा।"

"ठीक हो जाएगा। सब ठीक हो जाएगा बाबा ?"

संन्यासी सज्जन ने कहा, "हां रे, सब ठीक हो जाएगा।"

चौधरी जी फिर अपनी जगह पर जा जरूर बैठे थे, मगर उत्तेजना से वह हांफ रहे थे। बोले, "इस लड़के के लिए मैंने क्या-क्या किया, जानते बाबा ? इसके पीछे मैंने हजारों-हजार रुपये खर्चे। आखिर वह खर्च इसीलि तो किया, जिससे वह आदमी बने, दस आदमी के बीच सिर उठाकर ख हो सके। और नहीं तो अपना कौन-सा स्वार्थ है ? मैं अब हूं ही कै दिन मेहमान ? मैं जो कुछ छोड़ जाऊंगा, वही तो उसका मालिक होगा। वह ऐसा ही नमकहराम है कि मुंह पर मुझको जवाब देता है। इतनी हिमाकत।"

संन्यासी सज्जन लेकिन इतनी बातों से भी विचलित नहीं हुए। हंसते-हंसते ही कहने लगे, "सब कुछ ठीक हो जाएगा रे, तू ज़रा भी चिन्ता न कर। जब मैं आ पहुंचा तो अब तुझे कोई चिन्ता नहीं…"

चौधरी जी विगलित हो पड़े। बोले, "इसीलिए तो आपको बुलाया है बाबा! अब आपका ही भरोसा है।"

बाबाजी ने कहा, "तेरी किस्मत बड़ी अच्छी है कि ठीक समय पर ही मुझे पा गया।"

उसके बाद वह सदानन्द की ओर देखकर बोले, "तेरा नाम क्या है रे कम्बख्त?"

सदानन्द उखड़ गया। बोला, "मुझको कम्बख्त क्यों कह रहे हो?"

सदानन्द की बात पर बाबाजी बिगड़े, सो नहीं, वह हो-हो हंस उठे। पूरे कमरे को जैसे ठहाके से कंपा दिया। बोले, "खून अभी भी गरम है न, इसीलिए मुंह से गरम-गरम बात निकल रही है। षडैश्वर्य की धाक अभी गई नहीं है।"

उन्होंने पैनी निगाह से कुछ देर तक सदानन्द के कपाल की तरफ देखा। बोले, "अरे, तेरे कपाल पर तो भृगुपदचिह्न है। आश्चर्य! पहले तो नहीं देखा।"

चौधरी जी ने पूछा, "भृगुपदचिह्न? मतलब? इसका क्या मतलब बाबा?"

बाबाजी ने कहा, "असल में तेरा लड़का कौन है, जानता है?"

"कौन?"

"स्वयं भृगु ऋषि तेरे घर में पैदा हुए हैं। एक बार भृगु ऋषि की गिरस्ती करने की बड़ी इच्छा हुई थी। पिछले जन्म में घर-गिरस्ती करने की उनकी वह साध पूरी नहीं हो सकी। इसीलिए उन्होंने तेरे लड़के के रूप में नवाबगंज में जन्म लिया। तेरे वंश की बड़ी उन्नति होगी। तेरे वंश में देश का मुंह उज्ज्वल करने वाला वंशधर जन्म लेगा। देश-विदेश में तेरे वंश की ख्याति फैलेगी।"

सदानन्द अब तक सुनता रहा। अब बोला, "यह सब लम्बी-लम्बी बातें रहने दो। यहां सुनाकर पिताजी से रुपये ऐंठना चाह रहे हो।"

"सुने!"

लड़के की तरफ ताककर चौधरी जी फिर गरज उठे।

बाबाजी ने चौधरी जी को फिर डांट बताई, "फिर तू लड़के पर बिगड़ रहा है। यह भी पिछले जन्म की तरह ही गुस्सैल मिजाज लेकर पैदा हुआ है। ऋषि का गुस्सा, वह कितनी देर। गुस्साने में कितनी देर, शान्त हो जाने में भी उतनी ही देर। जानता नहीं है, भृगु ऋषि ऐसे ही गुस्सैल थे?"

चौधरी जी ने भृगु ऋषि का नाम कभी नहीं सुना। भृगु ही क्यों, किसी भी ऋषि का नाम नहीं सुना। मुनि-ऋषि के आस-पास से भी गुज़रने की कभी नौबत नहीं आई। वह तो जगह-ज़मीन, रुपया-पैसा, सूद-आढ़तिया,

वकील-मुहर्रिर और जज को लेकर ही सदा दिमाग खपाते रहे। वकील या जज के बारे में कुछ पूछा जाता, तो कुछ कह भी सकते थे। कौन-से जज बिगड़ैल हैं, कौन अमायिक, कौन जज भले और कौन बुरे हैं—यह उनको मुखस्थ है। इसलिए संन्यासी के मुंह से सहसा ऋषि-मुनि की चर्चा सुनकर वह चुप रह गए। वह इसी सहज बात को आसानी से समझ सके कि वास्तव में अगर भृगु ऋषि उनके यहां पैदा हुए हैं, तो उन्हें और भी ज्यादा रुपये, और भी ज्यादा दौलत होगी। अपने बेटे की बेअदबी पर वह कुछ बोलने जा रहे थे, सो रुक गए।

तब तक बाबाजी एक गजब की करतूत कर बैठे। सदानन्द के दोनों पांव छूकर उन्होंने सिर से लगाया। सदानन्द तो तीन हाथ पीछे हट गया। बोला, "अपनी यह पोंगापंथी रहने दो।"

बाबाजी लेकिन नाराज नहीं हुए। बोले, "तुम क्रोधित क्यों हो रहे हो बेटे? मैं तुमको तो प्रणाम कर नहीं रहा हूं, प्रणाम कर रहा हूं, ऋषि-श्रेष्ठ भृगु को।"

सदानन्द देर तक यह सब सहता रहा। लेकिन उससे अब नहीं सहा गया। बोला, "यह सब ढोंग मैंने बहुत देखा है, अब देखना नहीं चाहता, चलता हूं।"

चौधरी जी ने कहा, "चले क्यों जा रहे हो?"

सदानन्द ने कहा, "चला नहीं जाऊंगा तो क्या खड़े-खड़े यही सब नखरे देखता रहूंगा? मैं अब यहां नहीं रहता। आपसे जो बने, कीजिए जाकर।"

कहकर वह कमरे से चला जा रहा था। कि तब तक प्रकाश मामा कमरे में आ पहुंचा। आया और यह सब देख-सुनकर अवाक् रह गया। सदानन्द को देखकर बोला, "क्यों रे सदा, यहां क्या कर रहा है।"

चौधरी जी ने पूछा, "उधर की खबर तो सब ठीक है न प्रकाश? समधी जी कैसे थे?"

प्रकाश ने कहा, "समधी जी तो बेतरह टूट गए हैं। मैंने उन्हें दिलासा दिया। कहा, मौत क्या किसीके हाथ की बात है। जीवन और मृत्यु तो भगवान की दी हुई है। सिर झुकाकर कबूल कर लेने के सिवा आदमी के लिए और कोई चारा नहीं।"

"और बहू?"

"बहूरानी बहुत रो-धो रही थीं। उन्हें भी समझा-बुझा आया।"

"बहूरानी को वह यहां फिर कब भेजेंगे?"

प्रकाश मामा ने कहा, "कह तो दिया है जल्दी भेज देने के लिए। कहा है कि जितनी जल्दी हो सके, भेज दीजिएगा। हम लोग बहूरानी की राह देखते रहेंगे।"

उसके बाद प्रकाश मामा हाथ पकड़कर सदानन्द को बाहर ले आया। बाहर आते ही बोला, "क्यों रे सदा, सुना, सुहागरात में तू बहू के साथ नहीं सोया? तू शायद उसे अकेली छोड़कर कमरे से बाहर चला आया था?"

सदानन्द ने कुछ नहीं कहा।

का जवाब क्यों नहीं दे रहा है ? उतनी ... जो यह सुना,
ही नहीं सोया। बात क्या है, बता तो ? दीदी ने जो यह सुना, मुझे तो
दंग रह गया। दीदी तो मुझपर ही बकझक कर रही है। मुझे तो
ही है। कहती है, तू कैसी बहू ले आया कि यह मेरे लड़के को कमरे
र रख नहीं सकी ? माजरा क्या है ? तूने तो मुझसे कुछ भी नहीं
ने तो सोचा, तूने मौज से नई बहू के साथ रात बिताई होगी और
कारनामा ! हुआ क्या आखिर ? बहू ने तुझसे कुछ कहा है ? या कि
पसन्द नहीं आई ? क्या बात है ? इतना खोज ढूंढ़कर मैं तेरे लिए
परी ले आया और तू उसे ऐसे नकार रहा है ?"
दानन्द ने इसका भी कोई जवाब नहीं दिया। हवेली की तरफ से कोई
रहा था। उसको देखते ही प्रकाश मामा ने बोलना बन्द कर दिया। बोला,
, उधर चल, तुझसे मुझे सीरियस बात करनी है। किसी एकान्त में बैठकर
फैसला करना होगा।"
प्रकाश सदानन्द को खींचकर पोखरे की ओर ले गया।
चंडीमंडप में उस समय संन्यासी जो भृगु ऋषि के माहात्म्य का बखान कर
थे। त्रिकालज्ञ ऋषि। भूत, वर्तमान, भविष्य—तीनों उनके नख-दर्पण
। उन्होंने दिव्यचक्षु से एक दिन देखा, कलियुग में वह हरनारायण चौधरी
औरस से संसार धर्म पालन करने के लिए फिर से जन्म लेंगे।
बीच में हरनारायण चौधरी ने कहा, "मैं आपको अपने बेटे की अगली
बीमारी की बात बताऊं।"
"बीमारी ? कौन-सी बीमारी ?"
चौधरी जी ने कहा, "मुझे इतनी जमींदारी, इतनी दौलत है, यह तो आप
जानते हैं। लेकिन लड़का यही एक है। अभी-अभी मैंने उसका ब्याह कर
दिया है। लेकिन लड़का सुहागरात में अपनी स्त्री के साथ नहीं रहा। सबकी
नजर बचाकर जाने कब कमरे से निकलकर भाग गया।"
बाबाजी आंखें बन्द करके सुन रहे थे। सुन-सुनकर मुस्करा रहे थे। वैसे
ही मुस्कराते हुए बोले, "फिर ?"
"फिर क्या ! सबेरे उसकी मां ने पूछा, 'तुम घर से भाग क्यों गए थे ?'
तो उसने कहा, 'मैं बहू के पास नहीं सोऊंगा।' "
बाबाजी ने पूछा, "क्यों ? क्यों नहीं सोएगा ?"
"यह उससे कहे कौन ? आप ही कहिए, यदि मेरा वंश नहीं रहे तो आखिर
मेरी इतनी सम्पत्ति को भोगेगा कौन ? आखिर मैंने बेटे का ब्याह ही क्यों
किया ? स्वयं जगद्धात्री जैसा रूप देखकर ही मैंने पतोहू को लाया है।"
बोलते-बोलते चौधरी जी को जैसे याद आया। पूछा, "आज रात आपके
खाने के लिए क्या इन्तजाम करूं बाबा ?"
बाबाजी ने कहा, "मैं खाता नहीं हूं रे, सेवा करता हूं। संन्यास लेने के
बाद से मैंने खाना छोड़ दिया है।"
चौधरी जी हड़बड़ाकर बोले, "ठीक है। आप बैठिए। मैं आपकी सेवा

ा प्रबन्ध पहले कर लूं।"

चौधरी जी ने अन्दर जाकर सीधे अपनी स्त्री से भेंट की। बाबाजी खाते नहीं, सेवा करते हैं—यह बात समझाकर उसे बताया।

प्रीति ने कहा, "बाबाजी ने और क्या कहा ?"

चौधरी जी बोले, "बोले तो बहुत ही अच्छी-अच्छी बातें। इतनी ही अच्छी-अच्छी बातें कहीं कि सबपर विश्वास करने में भी डर लगता है।"

"सो क्या ?"

"बोला, यह मुन्ना, पिछले जन्म में भृगु ऋषि था। इस बार तुम्हारा बेटा बनकर आए हैं। उसे डांटने-फटकारने को मना किया।"

सुनकर प्रीति कुछ देर तक चौधरी जी की ओर एकटक देखती रह गई। फिर बोली, "सच ?"

चौधरी जी ने कहा, "सच-झूठ की नहीं जानता। उन्होंने जो बताया, अगर वह सच है, तो ठीक ही है। उनकी बात सुनकर जी कुछ अच्छा हुआ। मगर ऐसा बेअदब है तुम्हारा बेटा कि उससे बाबाजी को प्रणाम करने को कहा, हरगिज नहीं किया। बोला क्या, पता है। कहा, 'ढोंग है।' "

"ढोंगी कहा ?"

"हां, मुंह पर उन्हें ढोंगी कह दिया। मैं क्या करता, बेटे के दोष के लिए मैंने ही माफी मांग ली। अब खूब अच्छी तरह से उनकी सेवा का प्रबन्ध कर दो। छेना, दूध, फल, मिठाई—जो भी है, उसीसे उनकी सेवा करो।"

वैसी ही व्यवस्था हो गई। बाबाजी उसी दिन से वहां रह गए। बड़े ही शक्ति वाले पुरुष। अपने बारे में ज्यादा बोलना नहीं चाहते। जितना बोलते नहीं, उससे ज्यादा अनुभव करते हैं। बाबाजी के व्यवहार से चौधरी जी एक-बारगी मुग्ध हो गए। उनकी गृहिणी भी आई। आकर प्रणाम किया।

बाबाजी ने आशीर्वाद दिया। कहा, "तेरा भला होगा बिटिया, मैं जानता हूं। डरने की बात नहीं। अब तो मैं आ पहुंचा हूं।"

प्रीति ने कहा, "मुझे जो भी चिन्ता है, सब इस लड़के ही के लिए। वह संसारी तो बनेगा ?"

बाबाजी ने कहा, "मैं तो हूं न। यह भार तू मुझे दे दे। तेरी चिन्ता मैं करूंगा।"

इससे पहले और किसीने भी इस तरह से भरोसा नहीं दिया था। प्रीति पिघल गई। उसे लगा, उसका सारा झंझट-झमेला जाता रहा। बोली, "मेरा यह लड़का ही मेरा सबसे बड़ा झमेला है बाबा! लोगों को लड़की के लि झंझट होती है, मुझे उलटे लड़के के लिए झंझट है।"

एक बार बोलना शुरू करने पर औरतों के पेट में बात बाकी नहीं जाती। सब कुछ बाबा को बताकर ही तृप्ति की मानो सांस ली प्रीति ने।

हठात् प्रकाश वहां आया। उसे देखकर बाबाजी ने पूछा, "यह है ?"

प्रीति ने कहा, "नाते में मेरा भाई होता है बाबा!"

बाबाजी ने इस बार और भी तीखी नजर से उसे देखा।

चौधरी जी ने कहा, "प्रकाश, इन्हें प्रणाम करो।"

प्रकाश ने सिर्फ प्रणाम ही नहीं किया, उनके चरणों की धूल लेकर अपनी जीभ से लगाई। उसके बाद हाथ जोड़कर सामने बैठ गया। तब तक बाबाजी की सेवा समाप्त हो चुकी थी। घर में अब कोई काम नहीं रह गया था, कोई समस्या नहीं रह गई थी। इस घर की मालिक-मालकिन जैसे अपनी सारी शक्ति, सारी सामर्थ्य लगाकर बाबाजी की सेवा करके ही परित्राण पाना चाह रहे थे। जैसे विपत्ति के सामने खड़े होकर सब कोई बाबाजी को ही डूबते का तिनका करके बचना चाह रहे हों। कहा, "हमारे सारे दुःख दूर करो बाबा, हमें शांति दो, ऐश्वर्य दो, समृद्धि दो, सुख दो। हमारे इकलौते बेटे को सुमति दो कि वह संसारी बने, सहज हो, स्वाभाविक हो, साधारण हो। हमें और कुछ नहीं चाहिए।"

लेकिन सुख, शांति और सौभाग्य देने वाले विधाता मानो मन-ही-मन हँसे। हँसे या शायद उन्होंने कटाक्ष किया। सदानन्द ने सब सुना। सब कुछ उसके कानों तक पहुंचा। वह समझ गया, यह इतनी सारी तैयारी, इतनी सेवा, इतना श्रम—सब उसीके लिए है।

परिश्रम भी क्या ऐसा-वैसा। उसी दिन से घर की शक्ल बदल गई। प्रकाश मामा को फिर एक काम मिल गया। बूढ़े चौधरी ऊपर के कमरे में अकेले पड़े रहते। वहीं लेकर कैलास गुमाश्ता हिसाब-पत्तर लिखता, तहसील-वसूल के बारे में बताता। और फिर दीनू था।

काम करते-करते हठात् बूढ़े चौधरी बोल उठे, "नीचे शंख कौन फूंक रहा है कैलास ?"

सब कुछ जानते हुए भी कैलास ने कहा, "जी, यह शंख अपने यहां नहीं, पालों के यहां बज रहा है।"

"ऐसे असमय में शंख क्यों बज रहा है ?"

कैलास गुमाश्ता ने कहा, "पूजा-वूजा हो रही होगी। बिहारी पाल तो बड़े भक्त आदमी हैं।"

होगा। फिर कोई बात नहीं आई। लेकिन दूसरे दिन भी वही हाल। बूढ़े चौधरी ने कहा, "बिहारी पाल को पैसा हुआ है, समझे कैलास ! नमक-मसाले कि दूकान से दो पैसे हुए हैं तो देवता-ब्राह्मण में भक्ति बढ़ गई है। यह सब ढोंग हम समझते हैं।"

कैलास ने कहा, "जी, भक्ति-वक्ति तो कहने की है, असली बात है रुपया।"

बूढ़े चौधरी ने कहा, "बिहारी पाल रुपया छोड़कर और किसीकी पूजा नहीं करता है, समझे कैलास ! रुपया ही उसके लिए ठाकुर-देवता, सब कुछ है।"

लगातार कई दिनों से बूढ़े चौधरी के कानों घंटा-घड़ियाल की आवाज आने लगी। उन्हें अब इसका कोई क्षोभ नहीं। हो, सबको रुपया ...

कोई परवाह नहीं। मेरी जितनी संपत्ति, मेरे जितना ऐश्वर्य और किसी-
न हो, वस। मैं उसीमें निश्चिन्त हूं।

"अच्छा कैलास, तुमने तो बहुतों के यहां की वहू देखी है, मगर रूप-गुण
उजाला करनेवाली ऐसी वहू और कहीं देखी है?"

कैलास ने कहा, "जी आपके घर की बहूरानी की मिसाल क्या! ऐसी
लाखों में एक होती है।"

"और मेरा पोता? सदानन्द? वैसा पोता किसीको है? गांव में कितने
ही तो लड़के हैं, ऐसा लड़का किसका है, सुनूं तो ज़रा? विहारी पाल पूजा
चाहे कितनी ही करे, कितना ही घंटा-घड़ियाल वजाए, वह मेरी वरावरी कर
सकता है?"

कैलास ने कहा, "आपने तो हंसाया हुजूर! आपसे विहारी पाल की
तुलना!"

बूढ़े मालिक बोले, "नहीं-नहीं, मैं महज एक वात कह रहा हूं, घंटा-घड़ियाल
की आवाज़ रोज़ सुनता हूं न, इसीलिए कह रहा हूं।"

कैलास ने कहा, "जी विहारी पाल भी कोई आदमी है? वह तो सूद पर
रुपया लगाता है। सूदखोर की कोई श्रद्धा-भक्ति करता है कभी? मगर आपको?
आपको तो सभी श्रद्धा करते हैं, भक्ति करते हैं।"

बूढ़े चौधरी को जानने की ललक हुई। पूछा, "मुझे श्रद्धा-भक्ति करते हैं
लोग?"

"नहीं करते हैं? आपके सामने जैसी श्रद्धा करते हैं, पीठ पीछे भी
वैसी ही श्रद्धा करते हैं। और करेंगे भी क्यों नहीं? आप जैसे आदमी
कहां मिलते हैं!"

"लोग ऐसा भी कहते हैं क्या?"

कैलास ने कहा, "वेशक।"

"क्या कहते हैं?"

कैलास ने कहा, "कहते हैं, बूढ़े मालिक जैसा आदमी विरला ही होता
है।"

सुनकर बूढ़े चौधरी को खुशी हुई। उनके खुश होने पर सव समझ जा
हैं कि वे खुश हुए। उस समय उनकी मूंछें ज़रा कांपने लगती हैं, आंखें ज
सिकुड़ जाती हैं। सभी समझ जाते हैं। उस समय उनसे कोई कुछ दरखा
करे तो वह तुरन्त मंजूर हो जाती है। जो मांगना होता है, लोग उसी स
उनसे मांगते हैं। कोई जगह-ज़मीन, कोई वाकी-उधार मांगता है।
वंसवारी से दो वांस और कोई नकद रुपया।

पोते के व्याह के वाद से ही बूढ़े मालिक का मन-मिजाज़ सदा खु
रहता। सुहागरात के दूसरे दिन से, जब उन्होंने सुना कि उनका पोता
वहू के कमरे में एक ही विछौने पर सोया, वह विलकुल दूसरे ही आद
गए हैं। दरअसल उनकी असली दुश्मन थी कालीगंज की वहू। उनके
का राहु। वह राहु ही जव सदा के लिए चला गया तो अव किसकी प

संग छिड़ जाता। बूढ़े चौधरी पूछते, "खैर, जाने दो। गायकवाड़ महाराजा आखिर कलकत्ता क्यों आ रहे हैं, यह तो कहो? तुम्हारा क्या ख्याल है?"

कैलास कहता, "जी, मैं निरा मामूली आदमी ठहरा, मैं कैसे जानूं?"

"मामूली आदमी हुए तो क्या, जरा दिमाग लड़ाकर सोचो न, महाराजा क्यों आ रहे हैं? अखबार में उसके बारे में कुछ लिखा है?"

कैलास तमाम टटोल गया, मगर महाराजा के कलकत्ता आने की वजह के बारे में कहीं कुछ न मिला। सिर्फ उनके आने की खबर छपी है, आने के कारण के बारे में कहीं कुछ नहीं लिखा है।

खोजते-खोजते आखिर बूढ़े चौधरी ने एक कारण ढूंढ़ निकाला। बोले, "समझे कैलास, मुझे लगता, महाराजा शिकार खेलने आ रहे हैं—"

"शिकार खेलने?"

"हां, बाघ का शिकार करने, समझे? कलकत्ता के पास ही तो सुन्दरवन है। सुन्दरवन में रायल बंगाल टाइगर बहुत हैं, उन्हींका शिकार करने के लिए आ रहे हैं। मैं समझ गया। नहीं तो भला महाराजा बड़ौदा से कलकत्ता क्यों आएंगे?...हां, और क्या खबर है, पढ़ो..."

बूढ़े चौधरी के दिन इसी तरह कटते। सदानन्द के ब्याह के बाद से ही उनका मन खासा चंगा था, इसीलिए अखबार में ज्यादा मन लगाते थे। कभी बड़ौदा के महाराजा के कलकत्ता आने की खबर। कभी धान-चावल-पाट की दर और कभी बिहारी पाल के पैसे की गरमी की बात। सभी चर्चा होती।

हठात् एक दिन कैलास ने कहा, "कृष्णनगर से चिट्ठी आई है हुजूर।"

"चिट्ठी? क्या लिखा है? बहू के बाप ने लिखी है? बहू आ रही है?"

"जी हां, क्रिया-कर्म सब हो-हवा गया न, अब बहूरानी आएंगी।"

यह बोलते ही बूढ़े चौधरी को याद आ गया। बोले, "अरे, तुमने कंचन सुनार को तो बुलाया नहीं कैलास? मैंने बुलाने को कहा था न?

"जी, मैंने खबर कर दी थी।"

"तो वह आया क्यों नहीं? फिर से कहला भेजो तो।"

आखिर एक दिन आदमी भेजकर ही कंचन सुनार को बुलवाना पड़ा। कंचन के आते ही पहले तो बूढ़े चौधरी ने उसे खूब फटकारा। बोले, "तुम तो एक-बारगी नवाब के साहबजादे हो गए कंचन! तुम्हें बहुत रुपया हो गया, है न? रुपये की खूब गरमी है। मगर जब रुपये की इतनी ही गरमी है, तो आए ही क्यों? नहीं ही आते।"

कंचन ने गिड़गिड़ाकर बताया, वह बीमार था, इसीलिए नहीं आ सका नहीं तो कब का आ गया होता...

मगर बूढ़े चौधरी का गुस्सा हरगिज कम नहीं हो रहा था। बोले, "य से निकल जाओ। मेरी नजरों के सामने से चले जाओ। तुमसे अब मैं जिन्द में कभी भी गहने नहीं गढ़वाऊंगा। जाओ, चले जाओ..."

कंचन खूब जानता था, बूढ़े मालिक गुस्से में ऐसा कहते हैं।

आखिर बहुत-बहुत अनुनय-विनय के बाद उनका क्रोध शांत हुआ। ब

"पहले तुम यह बता दो कि तुम मेरा गहना गढ़ोगे या नहीं, नहीं तो बाजार में बहुतेरे और सुनार हैं। सुनारों की दुनिया में कमी नहीं है। जानते हो, पैसा फेंकने से तुमसे कहीं अच्छे-अच्छे सुनार आकर मेरी खुशामद करेंगे।"

जरा सांस करके फिर बोले, "तुमने सोचा क्या है? क्या सोचा है? पोता-पोतबहू के गहने बनवाने के लिए मुझे दूसरा आदमी नहीं मिलेगा?"

अन्त-अन्त तक बूढ़े चौधरी ने आखिर कंचन सुनार को माफ कर दिया। माफ ही नहीं किया केवल, सौ एक रुपये पेशगी भी दिए। बयाना। कंचन ने बयाना लेना नहीं चाहा, फिर भी उन्होंने दिया ही। बोले, "ये रुपये रख ही लो कंचन! गरीब आदमी हो, रुपये कहां पाओगे तुम? रुपये नहीं लोगे तो तुम्हें सुद जल्दी नहीं होगी। मेरे पास बहुत रुपये हैं, समझे? गायकवाड़ महाराज जितना जरूर नहीं है, फिर भी रुपया मेरे पास बहुत है। बात इतनी ही है, चीज खूब अच्छी हो, यह याद रहे।"

बीस तोले का हार। उसपर मीनाकारी। जिसमें लोग कहें, हां, बूढ़े मालिक ने एक चीज दी है।

वहां से बाहर निकलकर कंचन ने रुपयों को अच्छी तरह से टेंट में खोंस लिया। कैलास गुमाश्ता साथ-साथ आ रहा था। कंचन ने पूछा, "गुमाश्ता जी, यह हार आखिर बन किसके लिए रहा है? बूढ़े मालिक यह हार किसको देंगे?"

कैलास हंसने लगा। बोला, "अपने पोते के लड़के को, परपोते को।"

"परपोते को? अभी-अभी उस दिन तो पोते की शादी ही हुई है और इसी बीच में उसके लड़का भी हो गया? अभी तो दस महीने भी नहीं हुए।"

कैलास गुमाश्ता और भी हंसने लगा। बोला, "हुआ नहीं है, लेकिन एक दिन परपोता होगा तो?"

कंचन अचम्भे में आ गया। "जो परपोता अभी हुआ नहीं है, बूढ़े मालिक को उसीके लिए इतनी हड़बड़ी। अब मारें, तब मारें—यह हालत। लगा, जैसे हार के बिना बच्चे का अन्नप्राशन रुका जा रहा है।"

कैलास गुमाश्ता ने कहा, "बिलकुल पागल हैं ये, पागल। निहायत नौकरी के बिना गुजर नहीं, इसलिए मैं भी इनकी इतनी भली-बुरी सुनता हूं। मुझे भी तो हरदम जो मुंह में आता है, वही कहते हैं। तुम सोच रहे हो, इनके परपोता होगा? नहीं होगा, देख लेना तुम, नहीं होगा।"

"नहीं होगा? नहीं होगा माने?"

कैलास ने कहा, "यह सब फिर बताऊंगा। अभी तुम जाओ।"

कंचन ने पूछा, "मगर हार ये लेंगे तो? नहीं तो मेरी मेहनत ही अकारथ जाएगी।"

कैलास ने कहा, "अरे, तुम्हारा क्या! माल दोगे, पैसा लोगे। बूढ़े चौधरी के परपोता हो या नहीं हो, तुम्हारा क्या आता-जाना है? तुम्हें तो तुम्हारी मजदूरी मिलनी चाहिए।"

लेकिन परपोता होगा क्यों नहीं गुमाश्ता जी ?"

कैलास खाने के लिए जा रहा था । भूख लग आई थी । बोला, "बस, एक ही रट ! कहा तो, फिर बताऊंगा। चलता हूं..."

यह कहकर कैलास अपने घर की ओर चला गया ।

कालीगंज की बहू ने शाप दिया था कि बूढ़े चौधरी निर्वंश होंगे—यह बात अभी किसीसे न कहना ही ठीक है । दबी पड़ी रहे । वह और किसीको याद न भी रहे, सिर्फ कैलास गुमाश्ता की ही जानकारी में रहे । जिस बात के याद करते ही कलेजा कांप उठता है, उसे जानने को तुम्हें ज़रूरत नहीं । कुल दस हज़ार रुपये मात्र । बूढ़े मालिक का पोता दस हज़ार रुपये का खेसारत देगा । उसका ब्योरा कंचन सुनार ने नहीं सुना तो क्या !

हां, कृष्णनगर से सचमुच ही एक दिन समधी जी की चिट्ठी आई थी । श्राद्ध-शांति हो गई । नयनतारा को लेकर वह खुद ही नवाबगंज आ रहे हैं ।

लेकिन समधी जी का यह आना बड़ा मर्मांतक है । नियम है, लड़की के जब तक बाल-बच्चा नहीं होता, लड़की के मां-बाप कोई लड़की की ससुराल नहीं जाएंगे । लेकिन उपाय क्या था ! कालीकांत जी के और था ही कौन ? किसके साथ बेटी को भेजते ?

नयनतारा ने कहा था, "आप इतनी जल्दी भेजे क्यों दे रहे हैं बाबूजी, आपके पास अभी और कुछ दिन रह लूं । मेरे चले जाने के बाद आपकी देख-भाल कौन करेगा ?"

कालीकांत जी को लेकिन सहने की असीम क्षमता थी । कहीं लड़की भी रोना शुरू करे, इसलिए पत्नी-वियोग के उस शोक में वह बेटी के सामने कभी नहीं रोए । बल्कि बेटी से कहा, "यह ऐसी क्या बात हुई बिटिया ! आदमी सब दिन थोड़े ही ज़िन्दा रहता है ? एक न एक दिन उसे मरना ही है । इसीलिए तुम्हारी मां चली गई ।"

यह भी एक विचित्र परिस्थिति । कौन किसे सांत्वना दे, इसका ठिकाना नहीं । बेटी बाप का मुंह निहारती, बाप बेटी का । फिर भी यह गनीमत है कि मरने से पहले वह बेटी का ब्याह कर गई । यह नहीं होता तो क्या होता, कहो तो बिटिया !

कालीकांत जी ने कहा, "तुम मेरी चिन्ता मत बिलकुल मत करो । मे छात्र सब हैं । वही सब मेरा ख्याल रक्खेंगे ।"

लड़की ने कहा, "आप अपनी सेहत का ख्याल रखिएगा । आप अपने नहीं देखिएगा तो दूसरा कोई आपको नहीं देखेगा ।"

"यह बताना नहीं पड़ेगा बेटी ! देख लेना, मैं सब ठीक चला ले जाऊं कोई बीमारी-बीमारी तो नहीं है मुझे ।"

"है नहीं सही, मगर होते क्या देर लगती है ! अब तक मां थीं, आपका ख्याल रखती थीं। अब तो वह रहीं नहीं। और मुझको भी आप नवाबगंज भेज दे रहे हैं। मैं और कुछ दिन रह जाती तो ऐसा क्या बिगड़ जाता !"

कालीकांत जी बोले, "मेरा कुछ नहीं बिगड़ता, लेकिन तुम्हारा ?"

"खूब ! मेरा क्या बिगड़ता है ?"

कालीकांत जी ने कहा, "नहीं बेटी, तेरे सास-ससुर, सदानन्द—वे लोग क्या सोचेंगे ?"

लड़की ने कहा, "मेरे लिए सोचे उनकी बला। मेरी अगर उन्हें इतनी ही चिन्ता पड़ी होती, तो इतने दिनों से कम-से-कम एक चिट्ठी भी देते। श्राद्ध की चिट्ठी आपने भेजी तो थी, आया कोई वहां से ?"

बात में युक्ति थी। सच ही तो, कोई नहीं आए। नाम के लिए लड़के के मामा को भेज दिया था। वह भी अपना मामा नहीं।

कालीकांत जी बोले, "सच तो बिटिया, सदानन्द भी तो एक बार आ सकता था ?"

लड़की बोली, "क्यों आएं ? वे लोग आने क्यों लगें ?"

कालीकांत जी बोले, "क्यों, आएंगे क्यों नहीं ? जात-कुटुम्ब के आपद-विपद में नहीं आएंगे ?"

लड़की ने कहा, "नहीं। वे लोग नहीं आएंगे। बड़े आदमी गरीब के यहां क्यों आएंगे ? आपने तो बड़ा आदमी देखकर ही उस घर में मेरा ब्याह किया। आपको लोभ लगा था कि वहां मैं खाने-पीने से सुखी रहूंगी। अब ? अब देख लिया न ?"

सुन-सुनाकर कालीकांत जी को मन में तकलीफ हुई। टोले-मुहल्ले के भी किसी-किसीने शिकायत की, "इतना बड़ा दुःख पड़ा, मगर जामाता तो नहीं आया।"

कालीकांत ने कहा, "अरे बाबा, जमाई कुछ बेकार आदमी है कि कहा और झट चला आया। जमींदार है, जरूरी काम-काज होगा। शायद कचहरी की तारीख-वारीख हो। जमाई न आया सही, अपने मामा को तो भेज दिया था—।"

"और समधी जी ? वह जरा देर के लिए नहीं आ सकते थे ?"

"तुम लोग सब विश्व-निन्दक हो, विश्व-निन्दक। समधी जी के कितनी बड़ी जमींदारी है, कितना बड़ा तालुका है, इसकी खबर है ? नहीं जानते हो, तो यह विपिन खड़ा है, इसीसे पूछ देखो। विपिन सुहागरात के सामान लेकर वहां गया था। देख आया है। हजार आदमी पत्तल बिछाकर कलिया-पुलाव खा गए हैं। नयनतारा भी तो थी। उससे भी पूछो। उसने भी देखा है। इसकी सास ने कितना बड़ा सीता-हार दिया है, देखा है ? वजन में कम-से-कम दो सौ भरी का होगा।"

सवाल करने वाला दो सौ भरी के जिक्र से दंग रह गया। बोला, "आप भी कैसा कहते हैं पंडित जी, दो सौ भरी का हार हरगिज नहीं होगा···"

"हरगिज़ नहीं। ख़ैर, हाथ कंगन को आरसी क्या! फौरन सबूत ले लो। अरे ओ नयन—नयन—"

कहते हुए वह बगल के कमरे में चले गए। बिलकुल नयनतारा के सामने जाकर खड़े हो गए। पूछा, "अच्छा, उबटन की रस्म में तेरी सास ने जो हार दिया था, उसका वज़न क्या है? दो सौ भरी नहीं। निखिलेश कहता क्या है, दो सौ भरी का हरगिज़ नहीं होगा।"

नयनतारा ने कहा, "मैं नहीं जानती।"

"नहीं जानती? मतलब? तुमने वह हार देखा नहीं है? ज़रा मेरे साथ बाहर तो चल, उन लोगों को समझा देना।"

नयनतारा बोल उठी, "आप चुप तो रहिए। मैं समझाने नहीं जाती।"

"चल-चल न बिटिया! जाने में तेरा नुकसान क्या है?"

अन्त तक नयनतारा अधीर हो उठी। बोली, "आप जाइए, मैं नहीं जाती आप मुझे तंग मत कीजिए।"

और उसने अपनी दोनों हथेलियों से अपना मुंह ढंक लिया।

लेकिन मुंह ढंकने से ही क्या मान ढांका जा सकता है। जिसके अपने मान ढंकने का भार औरों पर निर्भर है, उसके मान-अपमान का दाम ही कितना! दायित्व ही क्या उसका! दूसरे के अपराध को वह अपने मुंह की बात से ढंके भी कैसे! पतला-सा एक लाज-वसन देकर जिसने उसके सारे इज़्ज़त-आबरू की ज़िम्मेदारी लेने की शपथ खाई है, उसकी ओर से सफाई देना ही तो शर्मनाक है। यह तो चोर की तरफ से चोर की मां के गाल बजाने जैसी बात हुई।

मगर ताज्जुब है, अन्त तक सिर नीचा किए उन अपराधियों के पास ही जाना पड़ता है। औरतों की ज़िन्दगी में इससे बढ़कर और कोई दूसरी विडंबना नहीं। इसीलिए पिता के साथ नयनतारा जब नवाबगंज जाकर अपनी ससुराल में उतरी, तो किसने तो उसके घूंघट काढ़े झुकाए हुए मुखड़े को और भी झुकाकर तब उसे छोड़ा।

किन्तु इतने दिनों में चौधरी परिवार में और भी बहुत कांड हो चुके थे। सांझ को शंख, घंटा-घड़ियाल बजा करता, बाबाजी यज्ञ किया करते। यज्ञ के समय बाबाजी की जो मूर्ति होती, पूछिए मत। यज्ञ का मंत्र पढ़ना देख चौधरी जी के बदन के रोंगटे खड़े हो जाते। यज्ञस्थल में गले में कपड़ा डाले हाथ जोड़े प्रीति भी बैठी रहती।

मंत्र पढ़ते-पढ़ते बाबाजी बीच-बीच में विकट चीत्कार कर उठते, "मां-मां-मां…"

प्रकाश मामा से रहा नहीं जाता। दोनों हाथों से ज़ोर-ज़ोर से घड़ियाल पीटते हुए चीख उठता—"जय, जय जगदंबा!"

इसमें सबसे ज्यादा उत्साह मानो प्रकाश मामा को ही था। अभी-अभी उस दिन ही तो इस घर में ब्याह की वैसी धूम-धाम हुई। उस समय कई दिन तक ठूंस-ठूंसकर खाया। उसके बाद वह श्राद्ध में कृष्णनगर गया। वहां

गले तक खाया। वहां से लौटते ही यह दूसरा उत्सव। उत्सव का अर्थ ही सेवा। बाबाजी तो आहार नहीं करते, सिर्फ सेवा ही करते हैं। प्रकाश मामा ने भी लौटने के बाद में आहार के बजाय सेवा ही शुरू कर दी है। गाय के घी की दर्जनों पूरियां, रसगुल्ले, बेल और मिसरी का शरबत, पिस्ता-बादाम, क़िस्म-क़िस्म के मेवे।

बाबाजी कहते, "यज्ञ को सार्थक करना हो, तो मन को सात्विक करने के साथ-साथ सात्विक सेवा भी चाहिए।"

प्रकाश मामा कहता, "बेशक। सात्विक सेवा ही तो श्रेष्ठ सेवा है महाराज! उसमें जैसा मन ठीक रहता है, वैसा ही पेट भी।"

इस सात्विक सेवा से प्रकाश मामा का पेट इधर ठीक रहा था, इसलिए मन भी खासा उदार हो गया था। वह कहता, "आप ज़रा भी न सोचें जीजाजी, सदा अब बिलकुल ठीक हो जाएगा। देख लीजिएगा, वह अब केंचुए की तरह बहू के पैरों से लिपटा रहेगा।"

"लिपटा रहे, वही अच्छा। इसी भरोसे चौधरी जी ने मुट्ठी एकबारगी खोल दी है। काम-धंधा छोड़-छोड़कर बाबाजी के चरणों में पड़े हैं।"

प्रीति भक्ति से गद्‌गद्‌ होकर बाबाजी से पूछती, "मेरा बेटा संसारी तो होगा न महाराज?"

बाबाजी कहते, "नहीं कैसे होगा? उसके कपाल पर भृगुपदचिह्न है और वह संसारी नहीं होगा?"

प्रीति की शंका शायद फिर भी नहीं जाती। पूछती, "कब होगा महाराज?"

बाबाजी कहते, "अबकी उसकी बहू को आ जाने दे, उसके आने से ही पता चल जाएगा, तेरा बेटा कैसा दुनियादार हो गया।"

प्रीति पूछती, "बहू-बेटे में बनाव तो होगा न महाराज?"

"हां री हां, होगा। मैं जब कह रहा हूं, तो होगा ही। देख लेना।"

"सदा अपनी पत्नी के कमरे में सोया करेगा? उसकी सुहागरात में बहू के साथ रात-भर मुझे सोना पड़ा बाबा! मेरी तक़दीर में जो क्या तकलीफ़ गुज़री है, उसका बयान आपसे क्या करूं मैं! जितना बहू रोती रही, उतना ही मैं। हमारे उसने रोने का कोई नतीजा तो निकलेगा न?"

प्रकाश मामा कहता, "तुम इतनी चिन्ता क्यों करती हो, यह तो कहो दीदी? मैं भी तो हूं। तुमने अगर मुझे पहले बताया होता, तो मैं कब का मुश्किल आसान कर देता। मुझसे तुमने भी कुछ नहीं कहा, सदा ने भी कुछ नहीं कहा। मैं तो यह सोचकर निश्चिन्त था कि सुहागरात में सदा अपनी पत्नी के कमरे में सोया। मुझे इन सब बातों का खाक पता था।"

दीदी कहती, "तू कैसे ठीक करता?"

प्रकाश मामा कहता, "मैं? मैं कैसे ठीक करता, यह मैं अब तुम्हें दिखा दूंगा। सदा को बहू के कमरे में दाखिल करके बाहर से दरवाज़े की जंजीर चढ़ा दूंगा। देखता हूं कि कम्बख़्त कैसे भागता है। मुझे उस समय पता होता तो इतने जाप-यज्ञ की भी नौबत नहीं आती। और इतना खर्च भी नहीं करना पड़ता।"

फिर तुरन्त अपने को सुधार कर कहता, "खैर, जाग-यज्ञ करा रही हो, अच्छा ही है। उधर से बाबाजी का मंतर चलेगा और इधर से मेरी कार्रवाई—फिर देखता हूं, बच्चू कैसे पार पाता है?"

दुतल्ले पर बूढ़े चौधरी के कानों सारी ही आवाज़ पहुंचती। कहते, "बिहारी पाल का गरूर बहुत बढ़ गया है। यह अति अच्छी नहीं।"

कैलास गुमाश्ता हामी भरता, "जी हां हुज़ूर, आप ठीक कह रहे हैं, बड़ी बाढ़ बढ़ गई है।"

बूढ़े चौधरी बोले, "सूदखोर है न। सूदखोर लोग एक तरफ तो अर्थ-पिशाच होते हैं, और दूसरी तरफ देवता-ब्राह्मण में भक्ति। यह घंटा-घड़ियाल, शंख—सब दिखावा है, ढोंग।"

इतने में दीनू आया। बोला, "कृष्णनगर से बहूरानी आई हैं।"

बूढ़े चौधरी का चेहरा खिल गया। कंचन सुनार को बीस तोले का हार बनाने को कहा है। सौ रुपये पेशगी भी दिए हैं। यह हार बनवाना सार्थक हो। पूछा, "बहूरानी को ले कौन आया है?"

"जी, उनके पिताजी ही ले आए हैं।"

कालीकांत जी वास्तव में यही पहली बार बेटी की ससुराल आए हैं। ब्याह के पहले एक बार आए थे, पर वह आना समधी के नाते आना नहीं था। मेहमान के हिसाब से यही पहला आना है। लेकिन उन्होंने यह पहले ही बता दिया कि रुक नहीं सकेंगे। दोपहर को आए, शाम को ही लौट जाएंगे। बोले, "रुकने से मेरा चल सकता है समधी जी? वहां का काम-काज सब यों ही छोड़ आया हूं। घर में और कोई है भी तो नहीं। सूना घर।"

बातों-बातों में बहूरानी की मां की बात आ गई। "उन्हें आखिर हो क्या गया था, डाक्टर ने देखकर क्या बताया, पहले कोई रोग-वोग था या नहीं?" जीवन और मृत्यु के बारे में लोग बंधी-बंधाई जो बातें कहते हैं, वह सब भी हुई। जीवन को जो लोग ज्यादा जकड़े रहना चाहते हैं, जीवन की अनित्यता के बारे में अधिक वही बोला करते हैं। इसीलिए बूढ़े चौधरी ही जीवन की क्षणभंगुरता के बारे में ज्यादा भाषण देने लगे।

कालीकांत जी ने कहा, "हमारे शास्त्रों में लिखा है, फल के पकने पर उसकी डंठल तुनुक हो ही जाती है। सो, इसका मुझे कोई दुःख नहीं। लेकिन अकाल मृत्यु दुःख देती है। मेरी पत्नी के उम्र हुई थी, वह इसीलिए चल बसीं। इसीलिए मैं उनके लिए दुःख नहीं करता हूं चौधरी जी! और, वह तो स्वयं ही नयनतारा का ब्याह कर गईं। अपनी आंखों यह देख गईं कि बेटी उनकी अच्छे पात्र के हाथों पड़ी।"

प्रकाश मामा वहीं खड़ा था। बोल उठा, "अच्छे पात्र में क्या सन्देह है। यह मैं इसीलिए नहीं कह रहा हूं कि सदानन्द मेरा भांजा है—ऐसा अच्छा लड़का इस ज़माने में जनमता नहीं है समधी जी! मैं इसका सर्टिफिकेट देता हूं—"

कालीकांत जी बोल उठे, "कहां, सदानन्द जी को देख तो नहीं रहा हूं। कहीं काम से गए हैं शायद ?"

चौधरी जी ने कहा, "जी हां, जरा बाहर गया है।"

बाकी प्रकाश मामा ने पूरा कर दिया। कहा, "सदानन्द के काम का कोई अन्त है समधी जी ! इतनी बड़ी जमींदारी, सच पूछिए तो सारी देख-भाल वही करता है। जीजाजी बूढ़े हो गए न—सदानन्द ने इनसे कहा, 'आपको कुछ भी नहीं करना है बाबूजी, सब देखभाल मैं ही करूंगा।' "

कालीकांत जी बोले, "लायक लड़के जैसा ही कहा है।"

प्रकाश मामा ने कहा, "लायक। सदानन्द लायक छोड़ नालायक जैसा कहेगा ? बाप-दादे का सिखावन ही वैसा नहीं। मेरे जीजाजी को देख रहे हैं न, ये भी अपने पिता के योग्य पुत्र हैं। अभी भी, इस बुढ़ापे में भी पिता का नाम आते ही निहाल। आपकी बेटी के बड़े भाग हैं कि वह ऐसे परिवार में पड़ी।"

प्रकाश मामा फिर जरा बोल उठा, "और फिर आप मेरी ही लीजिए न, मैं तो इस वंश का कोई भी नहीं हूं, लेकिन सदानन्द पर मेरे चरित्र का प्रभाव पड़ा है। मैं मां-बाप का भक्त हूं, सदानन्द भी मां-बाप का भक्त है। आप लोगों की संस्कृत में वह श्लोक है न—नरानां मातुलः क्रमः—सदा हूबहू वैसा ही है।"

बोलकर प्रकाश ने चौधरी जी की तरफ देखा। कहा, "ठीक नहीं कहा जीजाजी ?"

किसीने जब उसकी बात पर हामी नहीं भरी तो प्रकाश मामा ने दूसरा प्रसंग उठाया। बोला, "हां, एक बात कहूंगा। समधिन जी के श्राद्ध में आपने खिलाया खूब। सुनते हैं जीजाजी, वैसा खाना मैंने जीवन में बहुत दिनों से नहीं खाया। मैंने तो कोई दो दर्जन मलाई-मिठाई खाई। आह, स्वाद की न पूछिए।"

प्रकाश की इस बात का भी किसी पर कोई असर नहीं पड़ा। उधर कालीकांत जी के जाने का भी समय होता जा रहा था। वह बोले, "अब मुझे चलना होगा समधी जी !"

जाने के पहले बिटिया से एक बार मिल लेंगे। प्रकाश मामा ने मिलने का इन्तजाम कर दिया। समधी जी को हवेली के अन्दर ले गया। कालीकांत जी ने कमरे के चारों ओर देखा। करीने से सजाया हुआ कमरा। कीमती आईना, दामी अलमारी, कीमती चादर से ढंका बिस्तर-तकिया, मोढ़े। उन्होंने सुहागरात के मौके पर जो सामान भेजे थे, उनके सिवाय भी सास-ससुर ने बहुत से असबाब दिए हैं। कालीकांत जी का जी जरा भारी हो गया। नयनतारा की मां बेचारी यह सब देखकर नहीं जा सकी। बेटी का यह सुख, यह ऐश्वर्य देखतीं तो वह खुश होतीं।

पिता को देखकर नयनतारा बिछौने पर से उतरी। पांव छूकर प्रणाम करके खड़ी हो गई।

फिर तुरन्त अपने को सुधार कर कहता, "खैर, जाग-यज्ञ करा रहा है, अच्छा ही है। उधर से बाबाजी का मंतर चलेगा और इधर से मेरी कार्रवाई—फिर देखता हूं, बच्चू कैसे पार पाता है ?"

दुतल्ले पर बूढ़े चौधरी के कानों सारी ही आवाज़ पहुंचती। कहते, "बिहारी पाल का गरूर बहुत बढ़ गया है। यह अति अच्छी नहीं।"

कैलास गुमाश्ता हामी भरता, "जी हां हुजूर, आप ठीक कह रहे हैं, बड़ी बाढ़ बढ़ गई है।"

बूढ़े चौधरी बोले, "सूदखोर है न। सूदखोर लोग एक तरफ तो अर्थ-पिशाच होते हैं, और दूसरी तरफ देवता-ब्राह्मण में भक्ति। यह घंटा-घड़ियाल, शंख—सब दिखावा है, ढोंग।"

इतने में दीनू आया। बोला, "कृष्णनगर से बहूरानी आई हैं।"

बूढ़े चौधरी का चेहरा खिल गया। कंचन सुनार को बीस तोले का हार बनाने को कहा है। सौ रुपये पेशगी भी दिए हैं। यह हार बनवाना सार्थक हो। पूछा, "बहूरानी को ले कौन आया है ?"

"जी, उनके पिताजी ही ले आए हैं।"

कालीकांत जी वास्तव में यही पहली बार बेटी की ससुराल आए हैं। ब्याह के पहले एक बार आए थे, पर वह आना समधी के नाते आना नहीं था। मेहमान के हिसाब से यही पहला आना है। लेकिन उन्होंने यह पहले ही बता दिया कि रुक नहीं सकेंगे। दोपहर को आए, शाम को ही लौट जाएंगे। बोले, "रुकने से मेरा चल सकता है समधी जी ? वहां का काम-काज सब यों ही छोड़ आया हूं। घर में और कोई है भी तो नहीं। सूना घर।"

बातों-बातों में बहूरानी की मां की बात आ गई। "उन्हें आखिर हो क्या गया था, डाक्टर ने देखकर क्या बताया, पहले कोई रोग-वोग था या नहीं ?" जीवन और मृत्यु के बारे में लोग बंधी-बंधाई जो बातें कहते हैं, वह सब भी हुई। जीवन को जो लोग ज्यादा जकड़े रहना चाहते हैं, जीवन की अनित्यता के बारे में अधिक वही बोला करते हैं। इसीलिए बूढ़े चौधरी ही जीवन की क्षणभंगुरता के बारे में ज्यादा भाषण देने लगे।

कालीकांत जी ने कहा, "हमारे शास्त्रों में लिखा है, फल के पकने प
उसकी डंठल तुनुक हो ही जाती है। सो, इसका मुझे कोई दुःख नहीं। लेकि
अकाल मृत्यु दुःख देती है। मेरी पत्नी के उम्र हुई थी, वह इसीलिए
वर्षों। इसीलिए मैं उनके लिए दुःख नहीं करता हूं चौधरी जी ! और, वह
स्वयं ही नयनतारा का ब्याह कर गईं। अपनी आंखों यह देख गईं कि
उनकी अच्छे पात्र के हाथों पड़ी।"

प्रसाद मामा वहीं खड़ा था। बोल उठा, "अच्छे पात्र में क्या सन्दे
यह मैं इसीलिए नहीं कह रहा हूं कि सदानन्द मेरा भांजा है—ऐसा
लड़का इस जमाने में जनमता नहीं है समधी जी ! मैं इसका सर्टिफिके
हूं—"

कालीकांत जी बोल उठे, "यहां, सदानन्द जी को देख तो नहीं रहा हूं। कहीं काम से गए हैं शायद ?"

चौधरी जी ने कहा, "जी हां, जरा बाहर गया है।"

बाकी प्रकाश मामा ने पूरा कर दिया। कहा, "सदानन्द के काम का कोई अन्त है समधी जी ! इतनी बड़ी जमींदारी, सच पूछिए तो सारी देख-भाल वही करता है। जीजाजी बूढ़े हो गए न—सदानन्द ने इनसे कहा, 'आपको कुछ भी नहीं करना है बाबूजी, सब देखभाल मैं ही करूंगा।' "

कालीकांत जी बोले, "लायक लड़के जैसा ही कहा है।"

प्रकाश मामा ने कहा, "लायक। सदानन्द लायक छोड़ नालायक जैसा कहेगा ? बाप-दादे का सिखावन ही वैसा नहीं। मेरे जीजाजी को देख रहे हैं न, ये भी अपने पिता के योग्य पुत्र हैं। अभी भी, इस बुढ़ापे में भी पिता का नाम आते ही निहाल। आपकी बेटी के बड़े भाग हैं कि वह ऐसे परिवार में पड़ी।"

प्रकाश मामा फिर जरा बोल उठा, "और फिर आप मेरी ही लीजिए न, मैं तो इस वंश का कोई भी नहीं हूं, लेकिन सदानन्द पर मेरे चरित्र का प्रभाव पड़ा है। मैं मां-बाप का भक्त हूं, सदानन्द भी मां-बाप का भक्त है। आप लोगों की संस्कृत में वह श्लोक है न—नराणां मातुलः क्रमः—सच्चा हूबहू वैसा ही है।"

बोलकर प्रकाश ने चौधरी जी की तरफ देखा। कहा, "ठीक नहीं कहा जीजाजी ?"

किसीने जब उसकी बात पर हामी नहीं भरी तो प्रकाश मामा ने दूसरा प्रसंग उठाया। बोला, "हां, एक बात कहूंगा। समधिन जी के श्राद्ध में आपने खिलाया खूब। सुनते हैं जीजाजी, वैसा खाना मैंने जीवन में बहुत दिनों से नहीं खाया। मैंने तो कोई दो दर्जन मलाई-मिठाई खाई। आह, स्वाद की न पूछिए।"

प्रकाश की इस बात का भी किसी पर कोई असर नहीं पड़ा। उधर कालीकांत जी के जाने का भी समय होता जा रहा था। वह बोले, "अब मुझे चलना होगा समधी जी !"

जाने के पहले बिटिया से एक बार मिल लेंगे। प्रकाश मामा ने मिलने का इन्तजाम कर दिया। समधी जी को हवेली के अन्दर ले गया। कालीकांत जी ने कमरे के चारों ओर देखा। करीने से सजाया हुआ कमरा। कीमती आईना, दामी अलमारी, कीमती चादर से ढंका बिस्तर-तकिया, मोढ़े। उन्होंने सुहागरात के मौके पर जो सामान भेजे थे, उनके सिवाय भी सास-ससुर ने बहुत से असबाब दिए हैं। कालीकांत जी का जी जरा भारी हो गया। नयनतारा की मां बेचारी यह सब देखकर नहीं जा सकीं। बेटी का यह सुख, यह ऐश्वर्य देखतीं तो वह खुश होतीं।

पिता को देखकर नयनतारा बिछौने पर से उतरी। पांव छूकर प्रणाम करके खड़ी हो गई।

कालीकांत जी ने आशीर्वाद दिया, "सुखी रहो बिटिया, पति के घर की
क्ष्मी बनी रहो, मन-प्राण से पति की सेवा करो। लड़कियों के लिए इससे
ड़ा और आशीर्वाद नहीं होता।"

नयनतारा की आंखों से आंसू बह रहा था। कालीकांत जी बोले, "रोते नहीं बेटी ! छिः ! किसीके मां-बाप सदा नहीं जीवित रहते। तुम्हें सुखी देखने में ही हमारा सुख है। तुम तन-मन से पति की घर-गिरस्ती करो, यही देखकर उनकी दिवंगत आत्मा सुखी होगी। तुम्हें दुःख किस बात की बिटिया, तुम्हारे जैसा पति कितनी लड़कियों को मिलता है, कहो तो? खैर, मैं चलता हूं। सदानन्द जी से भेंट नहीं हुई। सुना, मुकदमे के काम से राणाघाट गए हैं। घर आने पर उनसे कह देना कि मैं आया था, उन्हें भी आशीर्वाद किए जा रहा हूं।"

नयनतारा ने फिर पांव छूकर पिता को प्रणाम किया। कालीकांत जी और नहीं रुके। बाहर निकल आए। माया चीज ही कुछ ऐसी होती है कि जितना ही बढ़ाओ, उतनी ही बढ़ती है। बाहर गाड़ी खड़ी थी।

चौधरी जी ने कहा, "फिर आइएगा समधी जी!"

प्रकाश मामा ने कहा, "आपका इस बार का आना आने जैसा नहीं हुआ समधी जी, अबकी आने पर यहां रात रहकर जाना होगा।"

भलमनसाहत से कालीकांत जी ने भी कहा, "उधर कहीं जाना हो, तो आप लोग भी आइएगा, चरणों की धूल दीजिएगा अपने।"

प्रकाश मामा ने कहा, "मुझसे कहना नहीं पड़ेगा। जरूर आऊंगा, जरूर। जाकर मलाई-मिठाई खा आऊंगा।"

दुर्गा-दुर्गा कहकर वह चल पड़े। रजबअली ने गाड़ी हांक दी।

फिर वही रात। सुहागरात की उस अमोघ रात के बाद नयनतारा यह
दूसरी बार इस कमरे में रात बिताएगी। इस रात की सोचते ही उससे बदन
के रोंगटे खड़े हो आए। अब तक मां थी, इसलिए उतना डर नहीं था। अ
तो उसके कोई नहीं है। शिकायत करने को, लाड़ करने को, आत्मसमर्प
करने को भी मानो उसके कोई नहीं। अब से उसे अपने अदृश्य भाग्य
अभियोग, लाड़, आत्मसमर्पण—जो भी हो, सब करना होगा। वह अपने अ
ही आप बड़ी बेबस-सी लगी।

सास ने सामने बैठकर उसे खिलाया। बोली, "तुम्हारे मां नहीं है
मगर मैं तो हूं। कोई तकलीफ हो तो मुझे बताना। शरमाना मत।"

खाने के बाद भी वह चुपचाप खड़ी थी।

सास ने कहा, "तुम खड़ी क्यों हो बहू, अपने कमरे में जाओ।"

"अभी तक तो आप लोगों का खाना नहीं हुआ है मां!"

"हम लोगों का खाना हो चाहे न हो, तुम बच्ची हो, इसके लि

रुपयों से जमीन खरीद ली। सूद के कारबार में वैसी इज्जत नहीं है। उस समय बूढ़े चौधरी जरा इज्जत की ओर झुक गए थे।

विहारी पाल ने पूछा, "मगर अचानक इस बाबाजी को कहां से जुटा लाया?"

"हिमालय के साधु हैं। अपने किसी शिष्य के यहां राणाघाट आए थे। वहीं से शायद चौधरी जी अपने यहां ले आए। अब यज्ञ होगा। यज्ञ के बाद साधु बाबा फिर हिमालय चले जाएंगे।"

"साधु बाबा दिन-भर करते क्या है?"

पत्नी ने कहा, "साधु-संन्यासी के बारे में तुम ऐसा हंसी-खेल न करो, किसके मन में क्या है, यह कौन कह सकता है! भला न करे, बुरा भी तो कर सकता है। फिर? और फिर, इसमें अपना खर्च तो नहीं होता!"

विहारी पाल ने कहा, "यह सब बूढ़े चौधरी की ढाप है—ढोंग। भीतर-ही-भीतर तो कालीगंज के हर्षनाथ चक्रवर्ती की सारी सम्पत्ति डकार गए, अब शायद परकाल का डर घुस गया है मन में। एक दिन सब जाएगा, मैं तुमसे कहे रखता हूं, एक दिन यह सब चला जाएगा। तुम क्या समझती हो, कपिल पायरापोड़ा, माणिक घोष, फटिक नाई क्या मुफ्त ही मरे हैं?"

विहारी पाल चाहे जो कहे, किसीको कुछ आता-जाता नहीं। रुपया होने से आपस में ऐसा ईर्ष्या-द्वेष होता है। इसके लिए दिमाग खराब करने से दुनिया नहीं चलती। और फिर बाबाजी लोगों की कैसे चले? उन्हें भी तो आखिर खा-पीकर जीना है? चौधरी जी के यहां शान्ति हो रही होती तो साधु बाबा को बुलाकर कोई इतनी खातिर करता? कि दिन-रात उनकी सेवा के लिए इस तरह से बहाए जाते पैसे।

बाबाजी एक-एक दिन एक-एक व्रत करते। कहते, "आज 'भूत-अपसारन दिग्बंधन' करूंगा।"

"यह क्या होता है?"

बाबाजी कहते, "इस घर की चौहद्दी से भूत-प्रेत को भगाऊंगा।

"इस घर पर उन सबकी नजर पड़ी है।"

"इसके लिए क्या-क्या उपचार करना होगा?"

बाबाजी फिहरिश्त देते, "गंगाजल, फूल, सफेद सरसों। ज्यादा कुछ नहीं।"

सो वही किया गया। सब आ जुटे। सचमुच ही अगर घर पर भूत-प्रेत की नजर पड़ी हो, तो पहले उन्हींको भगाना होगा।

सारी व्यवस्था हो-हवा गई, तो उन्होंने 'दिग्बंधन' मंत्र पढ़ना शुरू किया। धूप-गुग्गुल की गंध से लोग आंखों से अंधेरा देखने लगे।

बाबाजी ने पूछा, "घंटा घड़ियाल कहां है?"

प्रकाश मामा जोर-जोर से घड़ियाल बजाने लगा। कोई दूसरा घंटा बजाने लगा।

बाबाजी जोर-जोर से मंत्र पढ़ने लगे, "ओं अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता

सदा घर ही की तरफ गया। यही सुनकर मैं घर की ओर आया। लेकिन तो नहीं आया है। अब ?"

प्रीति ने पूछा, "उसने यह सुना है क्या कि वह लौट आई है ?"

"यह ख़बर उसे कैसे मिलेगी ?"

"रास्ते में किसीने गाड़ी देखी हो और उसे कह दिया हो ?"

सुनकर प्रकाश मामा कुछ देर चुप रहा। फिर बोला, "तो हमारे बाबाजी क्या कह रहे हैं ?"

प्रीति ने कहा, "उन्होंने जब कहा है कि सब ठीक हो जाएगा, तो ज़रूर ही होगा। मैं तो उसीके आसरे हूं।"

"यज्ञ कब होगा ?"

"वह मैं कैसे बताऊं ! जिस दिन बाबाजी कहेंगे।"

"इसी घर में होगा न ?"

"बात तो ऐसी ही है।"

बाबाजी तब से बड़े मज़े में ही हैं। घर-भर में दिन-भर उनके लिए चहल-पहल-सी मची रहती है। रेल-बाज़ार से फूल-फल-मिठाई आती है। दूध घर में ही होता है। उस दूध के ज्यादा से ज्यादा छेना ही तैयार होता है बाबाजी के लिए। वह चावल-दाल-आटा, मांस-अण्डा, कुछ भी नहीं छूते। बाबाजी के पास शालिग्राम-शिला है। सांझ-विहान उस शिला की वह आरती उतारते हैं। आरती के लिए गाय का घी, दूब, चन्दन, तुलसीदल, फूल, बेल के पत्ते का जुगाड़ करना पड़ता है। गौरी बुआ सारे दिन वही सब जुटाने में जुटी रहती है। चौधरी बाबू के घर में ही बहुतेरे कुल-देवता हैं। वे कुल-देवता नाम की ही हैं। हर कुल-देवता के नाम पचहत्तर बीघे ज़मीन लिखी गई है। पुजारी जो नियम से रोज़ फूल-बेल पत्ता चढ़ाकर पूजा कर जाया करते हैं। उसके लिए न तो कभी कोई उत्सव हुआ, न धूम-धाम हुई। उसके लिए कभी सोचता भी नहीं कि पूजा कब हुई। उसके लिए सारी व्यवस्था की कराई है। पुजारी को उसके लिए ज़मीन मिली है। उस पूजा की सारी ज़िम्मेदारी उन्हीं पर है।

यह पूजा लेकिन और है।

बिहारी पाल की पत्नी भी आकर कुछ-कुछ कर-धर देती है। कभी फल काट देती है, कभी आरती होते समय सामने जाकर खड़ी रहती है। आरती हो चुकने पर गले में आंचल डाल सबके साथ प्रणाम करती है।

घर लौटती है तो बिहारी पाल पूछता है, "आज उनके यहां क्या हुआ ?"

पत्नी कहती, "और क्या होगा, वही पूजा।"

नमक-मसाले की दुकान से ही बिहारी पाल को काफी पैसा है। उन पै[से] से उसकी महाजनी भी चलती है। धान-पाट, तीसी-सरसों पर रुपया उ[धार] देता है। लेकिन दाम बाज़ार-भाव से कम देता है। कम देने से क्या होता[,] आखिर उस तरह से नकद रुपया निकालकर देता कौन है ? बूढ़े चौधरी ने कभी यह कारबार किया था। उससे जब उन्हें काफी रुपये हो गए, तो

संस्यताः ।"

और भी कैसा-कैसा अद्भुत उच्चारण करने लगे, जिसका मतलब किसी-समझ में नहीं आया। न समझे चाहे, शब्द जितना ही दुर्बोध्य होता है, गों की भक्ति उतनी ही बढ़ती है। अन्त में बाबाजी चुटकियां बजाने गे। "ओं यं लिंग शरीरं शोधय शोधय स्वाहा:...."

पूजा खत्म होने को आई, बाबाजी सहसा चीखकर बोलने लगे, "फट, फट, फट, स्वाहा...."

और आखिर दिशाएं भी बांधी गई, भूत भी भगाए गए।

दूसरे दिन चौधरी जी ने पूछा, "घर में भूत थे क्या महाराज ?" बाबाजी ने कहा, "थे कैसे नहीं ! कई थे। एक प्रेतनी भी थी।"

सुनते ही चौधरी जी का कलेजा धक् से रह गया। प्रेतनी बनकर काली-गंज की बहू ने यहीं डेरा डाला था क्या ?

"लेकिन अब सब भाग गए न ?"

"नहीं भागेंगे माने ? सब रोते-पीटते ही भागे।"

"आप यज्ञ कराया करेंगे। कह रहे थे, यज्ञ से सारे अमंगल दूर हो जाएंगे।"

"अजी, पहले ही यज्ञ ? भूत-प्रेत के उपद्रव से भृगु को बड़ा कष्ट हो रहा था। भूत भाग खड़े हुए, भृगु को अब राहत मिली।"

ठीक इसी समय नयनतारा को लेकर कृष्णनगर से समधी जी आ पहुंचे। समधी जी या उनकी लड़की को यह नहीं मालूम हो पाया कि उनकी अनुपस्थिति में यह घर, यह वंश भूत के उपद्रव से मुक्त हो चुका।

बूढ़े चौधरी को भी खाक खबर नहीं लगी कि चुप-चुप यहां इतना कुछ होता रहा। उनकी नाक में धूप की गंध और कानों में घड़ियाल की आवाज पहुंचती। कहते, "बिहारी पाल की देवता-ब्राह्मण में यह भक्ति महज एक दिखावा है गुलाम, समझे ? सब आडम्बर। दरअसल यह रुपये की गरमी है। सूद से रुपये कमाकर अब लोगों को दिखा रहा है—अजी ओ, तुम लोग देखो कि मेरे पास कितना रुपया है।"

उस दिन चौधरी जी ने जाकर बाबाजी से कहा, "आज हमारी बहूरानी आई हैं महाराज !"

"आ गई ? अच्छा ही हुआ।"

"लड़के की बहू के पास सोने के लिए भेजूं तो ?"

"बेशक।"

"लेकिन लड़का अगर फिर भड़क जाए ?"

बाबाजी हंसे, "अरे, नहीं-नहीं। वह खतरा नहीं। दिशाएं तो मैंने बांध दीं, अब थोड़ा-सा पादोदक दूंगा, वही पिला देना। अभी इतना ही रहे, फिर तो मैं हूं ही।"

काफी रात गए तब तो सदानन्द चुपचाप घर में आया। वह रोज इसी तरह से चुपचाप ही आता। कब कहां रहता है, किनसे मिलता-जुलता है, यह भी जैसे कोई नहीं जानता। कभी नजर आता, बरवारी-थान में जाकर

फिर वहां से भी उठकर कभी चल देता, किसीको पता नहीं होता। धीरे-
[illegible] लोगों का जब रास्ते पर चलना पतला हो आता, तो उसे भूख लग
[illegible]ती। नदी के किनारे विशाल चौर था। वहीं जाकर लेट जाता। इस पार
[illegible]ावगंज, उस पार कालीगंज। नदी पार करके कुछ दूर पैदल चलने पर ही
[illegible]र्षनाथ चक्रवर्ती का टुटहा दो मंजिला मकान। वह उस घर के सामने जाकर
[illegible] जरा देर खड़ा रहता।

उस रास्ते पर चलते किसीको देखकर अन्दाज नहीं कर सकता। पूछता, "कौन ?"

सदानन्द कहता, "मैं।"

वह बूढ़ा आदमी पूछता, "तुम किसके यहां के हो ?"

सदानन्द कहता, "मैं नवाबगंज के चौधरी का लड़का हूं।"

"ओ, तुम गुमाश्ता जी के पोते हो। मगर इतनी रात गए ? क्या देख रहे हो ?"

सदानन्द कहता, "नहीं, कुछ देख नहीं रहा हूं। यों ही।"

"यह घर किसका है, जानते हो ? हर्षनाथ चक्रवर्ती का। तुम्हारे दादा जी इन्हीं चक्रवर्ती बाबू के गुमाश्ता थे। कभी यह घर कैसा था बेटे, उफ! और आज यही क्या हो गया! रातों-रात भुतहा मकान हो गया।"

सदानन्द वहां ज्यादा देर नहीं रुकता। कई दिन पहले वह यहां आया था। इसी घर के अन्दर गया था। और इसी बीच घर जैसे [illegible] में भर गया था। टूटी ईंटों की फांकों से दो-चार पौधे जहां-तहां [illegible]। कहीं न आदमी न आदमजाद। अन्दर कहीं कोई रोशनी भी नहीं। [illegible] ही भुतहा मकान हो गया है।

फिर वह पैदल घर की ओर मुड़ा। लगने लगा, [illegible] रहा है। पलटकर देख लिया। कहीं कोई नहीं! [illegible] आवाज हुई। सदानन्द ने फिर उलटकर देखा। [illegible]

एकाएक कोई बोल उठी, "मेरी ओर मुड़कर [illegible]।"

सदानन्द ने फिर मुड़कर देखा। ठीक जैसे [illegible]

"मेरे लिए तुम नाहक ही क्यों कष्ट [illegible] हूं।"

उस धू-धू सीमाहीन अंधेरे की [illegible] शब्द में कोई अवयव ढूंढ़ने की चेष्टा की।

"तुमने नई-नई शादी की है। [illegible] अब मेरे लिए मत सोचो बेटे। [illegible] हो जाएगी। तुम अपने घर [illegible]

रुआंसा-सा होकर सदानन्द [illegible] बहू, कहां ?"

"मैं ? मैं तो अब हूं [illegible]

"नहीं हो तो बोल [illegible]

[illegible]

"मैं अब कहां रहूंगी। मुझे तो तुम्हारे गुमाश्ते ने एकबारगी खत्म कर दिया। मैं तो खो गई बेटे !"

कहते-कहते फटे बांस जैसे एक आर्तनाद से सहसा हवा जैसे चौचीर हो गई और उस शब्द से सदानन्द का शरीर मानो थर-थर कांपने लगा। अचानक नज़र आया, उसके सामने ही एक कुत्ता खड़ा है। रास्ते का लावारिस कुत्ता, अनजान आदमी को देखकर ज़ोर से भौंकने लगा।

सदानन्द ने चीखकर कहा, "मैं तो पाप का प्रायश्चित करूंगा कालीगंज की बहू ! देख लेना, मैं अपने दादाजी, पिताजी के सारे पापों का प्रायश्चित करूंगा किसी दिन।"

आश्चर्य है। एक तुच्छ कुत्ता भी आज उसे पराया समझ रहा है। उस-पर अविश्वास कर रहा है। अश्रद्धा कर रहा है उसकी। रास्ते के इस कुत्ते ने भी मानो किसी तरह से जान लिया है कि वह एक निष्ठुर हत्यारे, पराई सम्पत्ति हड़पने वाले का वंशधर है।

शरम से सिर झुकाकर सदानन्द फिर अपने घर की ओर चला। और दिन होता, तो वह उस कुत्ते को खदेड़ता। या उसपर निशाना करके ढेला फेंकता। लेकिन आज उसे लगा, कुत्ते का कोई कसूर नहीं है। उसने कोई गुनाह नहीं किया। नवाबगंज के लोग भी जो उसे आज तक इसी तरह काटने नहीं दौड़े हैं, यही उसकी बहुत बड़ी खुशकिस्मती है।

प्रकाश मामा की नज़र ही उसपर पहले पड़ी। वह चिल्ला उठा, "दीदी, यह देखो, तुम्हारा मुन्ना अब आ गया।"

गौरी बुआ भी रसोई-घर से निकल आई। सभी को यह कह रक्खा गया था कि गुस्से से बहू के आने की बात न कहे। सदानन्द सबका चेहरा देखकर हैरान-सा हो गया। और कभी तो लोग उसकी तरफ इस तरह से नहीं दे[ख] करते। कम-से-कम ऐसी तेज निगाह से कभी कोई नहीं देखते।

मां ने कहा, "चल, खा ले।"

कुएं पर जाकर सदानन्द हाथ-पैर धो आया। धोकर खाने बैठ ग[या।] नित्य दिन का एक-सा काम। सवेरे खा-पीकर घर से निकल जाना और को लौटकर फिर खा-पीकर अपने कमरे में सो जाना। और खाना भी किसी तरह से गले से कुछ कौर भात उतार लेना।

मां ने कहा, "तू दिन भर रहता कहां है बेटे? भूख भी नहीं लग या किसीके यहां खा लेता है?"

यह अभियोग नित्य-नैमित्तिक की है। सदानन्द इसपर कान नहीं।

मां बोली, "अच्छा, खाने से पहले इसे जरा पी ले बेटे, देखन लगे।" और उसने पत्थर की एक कटोरी उसकी ओर बढ़ा दी।

"क्या है यह?"

"पूजा का चरणामृत है। पूजा हुई थी, उसीका प्रसाद।"

सदानन्द ने कहा, "मैं नहीं खाऊंगा।"

"क्यों ? प्रसाद लेने में क्या दोष है ?"

सदानन्द ने कहा, "इससे क्या होगा ?"

मां ने कहा, "इससे तेरा भला होगा । तेरी मति-गति फिरेगी ।"

सदानन्द ने कहा, "मेरी मति-गति क्या खराब है कि उसे ठीक करना है ?"

मां ने कहा, "देख, इतना तर्क न कर । मैं कहती हूं, प्रसाद ले ले । मां की बात रखनी चाहिए ।"

सदानन्द ने हाथ से कटोरे को झटक दिया । कटोरा उलटकर पानी गिर गया ।

मां ने कहा, "यह क्या किया ? प्रभु का प्रसाद गिरा दिया ? इससे पाप होगा ।"

"होने दो पाप । पाप होगा तो मुझको होगा । मुझे पाप होगा, तो तुम लोगों का क्या ? तुम लोग कोई मेरी चिन्ता करती हो ?"

सदानन्द थाली से कौर उठाकर खाने लगा । कुछ इस तरह से कि किसी तरह से खाकर मां के सामने से निकल जाए, तो उसकी जान बचे । जो बना खा लिया । कुएं पर जाकर हाथ-मुंह धोया और अपने कमरे में चला गया ।

प्रकाश मामा इसी मौके की ताक में आड़ में छिपा था । सदानन्द जैसे ही कमरे के अन्दर गया कि बाहर से उसने दरवाजे की सिकड़ी लगा दी । सदानन्द को उस समय किसी बात का ख्याल न था । उसने अपना कुरता उतारा और झट बिस्तर पर पड़ गया । लेकिन वह उसी दम उठ पड़ा, जैसे सांप ने फन मारा हो । उसे लगा, बगल में कोई लेटी है । उसे सन्देह-सा हुआ । खिड़की खोल दी । ठंडी हवा के साथ चांदनी अन्दर आई । उसने देखा, नयनतारा है । बिस्तर के एक ओर मुंह ढंककर वह सोई है ।

सदानन्द सोच ही नहीं सका था कि उसकी पत्नी इस तरह से आ पहुंचेगी । वह इतना ही जानता था कि अपनी मां के मरने की खबर आते ही वह चली गई है । लेकिन उसके लौटने के बारे में तो किसीने नहीं बताया । क्या करे, समझ नहीं पाया । घटना की इस आकस्मिकता से वह सकते में आ गया । उसके बाद दरवाजा खोलकर बाहर जाना चाहा, तो पता चला, दरवाजे की सिकड़ी बाहर से चढ़ी हुई है ।

सदानन्द ने दरवाजे में धक्का देना शुरू किया, "मां, दरवाजा खोलो । बाहर से बन्द क्यों कर दिया है ? खोलो न ।"

प्रकाश मामा मजा लेने के लिए बाहर खड़ा था । दीदी से कहा, "खबरदार, दरवाजा मत खोलना, बन्द ही रहे वह ।"

प्रीति को लेकिन सन्देह हो रहा था, कहीं वह कुछ कर बैठे ।

प्रकाश मामा ने कहा, "करेगा क्या ? मैं तो हूं । मेरे पास उसकी भी दवा है ।"

सदानन्द अन्दर से बार-बार दरवाजे में धक्का दे रहा था, "मां दरवाजा खोलो ।"

बावाजी को छोड़कर चौधरी जी भी देखने के लिए आ गए थे। पूछा,
से चरणामृत तो पिला दिया था न ?"

प्रीति बोली, "ऐसा लड़का है तुम्हारा कि पिएगा ? मैंने कटोरा जैसे ही
सकी तरफ बढ़ाया, उसने ठेलकर उसे गिरा दिया।"

चौधरी जी खीज उठे, "यह मामूली-सा काम भी तुम लोगों से नहीं हो
सका ? अब मैं बावाजी से क्या कहूं, यह तो कहो ?"

प्रीति ने कहा, "तुम बोलो मत। तुममें अगर इतनी ही ताकत हो तो
यह भार तुम ही लेते। देखती मैं कि तुम्हारा लड़का कितना आज्ञाकारी है।
क्या सोचते हो तुम, मैंने उसे पिलाने की कोशिश नहीं की ?"

प्रकाश मामा ने चौधरी जी को वहां से हटा दिया, "आप यहां से जाइए
तो जीजाजी, जाइए आप। आप जाकर बावाजी का ख्याल रखिए। इधर
हम लोग संभालते हैं..."

चौधरी जी वहां रुके नहीं, किन्तु उनके मन से दुर्भावना भी नहीं गई।
इतनी चेष्टा, जाग-यज्ञ, पूजा-अरचा, इतना-इतना खर्च—आखिर सब बेकार
ही गया ? तो क्या भगवान नाम की कोई चीज नहीं है ?

प्रीति ने कहा, "क्यों रे प्रकाश, अन्त में हित का विपरीत तो नहीं
होगा ?"

प्रकाश मामा ने भरोसा दिया, "हित का विपरीत क्या होना है ? क्या
होगा ?"

प्रीति ने कहा, "मुन्ना कहीं वैरागी होकर चला जाए ? अब तक तो
और रात को घर आ जाया करता था, अब से अगर वह आना भी छोड़ दे ?"

"पागल हो गई हो तुम ? घर नहीं आएगा तो खाएगा कहां ? सोना तो
जहां-तहां चल भी सकता है, लेकिन खाना ? खाना कौन देगा उसे ? तुम्हारे
लड़के में यह भी क्षमता नहीं कि खुद कमा कर गुजारा चलाएगा। घर नहीं
आएगा, तो जाएगा कहां ? तुम खामखा इतना सोचती क्यों हो दीदी ? मैं तो
हूं ही। इससे नहीं सुलझेगा तो दूसरा रास्ता भी तो है।"

"दूसरा कौन-सा रास्ता ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "एक तरह का तावीज है। बिलकुल अचूक।"

प्रीति ने कहा, "तावीज है। तो तेरे भांजे ने पहन लिया ! जिसने चरण-
मृत ही फेंक दिया, वह क्या तो तावीज पहनेगा।"

प्रकाश ने कहा, "सदा को पहनाने की क्या जरूरत है, बहू को प
देगा। देख लेना, वह तावीज पहना देने से सदा बहू का पांव चाटते-
नगल तक पिला देगा। तुमने सुहागरात के दिन ही बताया होता, तो मैं
उपाय करता। इस बावाजी के पीछे नाहक ही इतना खर्च भी न होता।

सदानन्द अन्दर से दरवाजे में धक्का दे ही रहा था, "तुम्हारे पैरों
हूं मां, दरवाजा खोल दो..."

प्रकाश मामा को हंसी छूट रही थी। जीत की हंसी। बहादुरी
का ऐसा मौका उसे बहुत दिनों से नहीं मिला। उसने मानो स

ही रोगों की अचूक दवा का प्रयोग किया है। रोगी अब जी ही जाएगा। दीदी के मुंह के पास मुंह ले जाकर प्रकाश ने कहा, "तुम अब जाकर घोड़ा बेचकर सो रहो। अब कोई डर नहीं। तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है, मखा क्यों तकलीफ उठाओगी।"

लेकिन प्रीति फिर भी निश्चिन्त नहीं हो पा रही थी। बोली, "आखिर-कार लेने के देने तो नहीं पड़ेंगे? मुझे तो डर लग रहा है।"

"डर?" प्रकाश अवाक् हो गया। बोला, "मैं हूं, फिर भी डर? पता है तुम्हें, मैंने इससे भी बड़ी-बड़ी उलझनें सुलझाई हैं और तुम्हें अभी भी सन्देह है?"

प्रीति ने कहा, "मुझे बहू की सोचकर डर लग रहा है। हजार हो, आखिर बेचारी आज ही तो नई-नई आई है। अभी-अभी उसकी मां चल बसी। और उसे पहले से सावधान भी तो नहीं किया गया है।"

प्रकाश ने कहा, "दुल्हा-दुल्हिन एक कमरे में सोएंगे, इसमें सावधान कर देने की क्या बात है? तिरिया-चरित तुम मुझे सिखा रही हो? सोच रही हो, मैं स्त्रियों का स्वभाव नहीं जानता। सदा अगर ज़रा भी होशियार हो तो वह आज का यह मौका हाथ से नहीं जाने देगा। पहले दिन जो किया सो किया, वह अगर आज का मौका हाथ से जाने देगा, तो समझ लो, उसके नसीब में बहुत दुःख है, यह मैं तुमसे कहे देता हूं।"

प्रीति ने कहा, "दरवाजे पर इस तरह कब तक सांकल दिए रहोगे?"

प्रकाश हंसा। बोला, "घी जब पिघल जाएगा, तो खोल दूंगा"

"मतलब?"

"मतलब नहीं समझा? आग के पास रखने से ही तो घी गल जाता है। तुम जरा देर सब्र करो न, यह सदा खुद से ही अन्दर से दरवाजे को बन्द कर लेगा। मुझे फिर खड़ा नहीं रहना पड़ेगा।"

प्रीति ने कहा, "तेरा मनसूबा मेरी समझ में नहीं आता भैया! तू ठहर। मुझे नींद आ रही है, मुझसे अब नहीं रहा जाता, जाती हूं मैं।"

प्रीति अपने कमरे की ओर चली गई। चौधरी जी पहले से ही जाकर बिस्तर पर लेट गए थे। वह भी सुनने के लिए उतावले थे। पत्नी को देखते ही पूछा, "क्या खबर है उधर की?"

प्रीति ने कहा, "प्रकाश वहां है, मैं चली आई। नींद आ रही है मुझे।"

चौधरी जी ने पूछा, "प्रकाश ने अभी वैसे ही सांकल दे रखी है?"

"हां।"

"कब खोलेगा?"

"क्या पता, कब खोलेगा! जो हरकत है तुम्हारे लड़के की। इतने-इतने लड़कों का ब्याह देखा, मगर बाप के जन्म में भी ऐसा रवैया किसीका नहीं देखा। यह भी अपनी ही भाग्य का दोष!"

चौधरी जी ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। जवाब देने को था भी क्या! उन्होंने भी अपने जीवन में ऐसा नहीं देखा। लोगों को ब्याह होता है,

गरात में वर-वधू एक बिस्तर पर सोते हैं, दूसरे दिन रात-भर जग वजह से देर करके जगते हैं। दूसरे दिन से दिन-भर छटपट करते रहते, कब रात होगी, कब फिर पत्नी से भेंट होगी। एक दिन उनका भी ब्याह आ था। ब्याह के बाद उन्होंने भी ऐसा ही किया। ऐसा ही तो होता है। ही तो स्वाभाविक है। सबके जीवन में यही होता है। यहां तो अजीब ही हालत है। लोग यह सुनेंगे, तो क्या कहेंगे। और समधी जी के कानों बात पहुंचेगी, तो वही क्या सोचेंगे। कहीं कोई बात नहीं, दादा ने क्या दोष किया, बाप ने क्या कसूर किया, इन बातों को लेकर कोई लड़का ऐसा पागलपन करता है, सुना भी है किसीने?

चौधरी जी ने पत्नी की ओर घूमकर कहा, "सुनती हो?"

प्रीति जगी ही थी। बोली, "क्या?"

"बहू से कह तो दिया है न कि ये बातें वह समधी जी से न कहे?"

प्रीति बोली, "कहा तो है। पहले ही कहा है। बार-बार कहने में शरम आती है। सास होकर बार-बार बहू को यह कहना अच्छा लगता है?"

चौधरी जी ने कहा, "कहने में मुझे ही क्या अच्छा लगता है, मगर करूं क्या? लड़का अगर ऐसा नालायक नहीं होता तो मैं ही क्या यह सब कहता?"

प्रीति ने कहा, "दोष तो सब लेकिन तुम्हीं लोगों का है।"

"क्यों, हम लोगों ने क्या दोष किया? हम लोग यानी किन लोगों ने?"

"तुमने और तुम्हारे पिताजी ने। तुम लोग लोगों को ठग-ठगाकर रुपया पैसा, जगह-जायदाद बनाओगे, किसीको गायब करवाओगे, किसीका खून करोगे तो उसके जी में लगेगा नहीं? सच ही तो, कालीगंज की बहू यों जैसी भी हो चाहे, वह जीती-जागती औरत चली कहां जाएगी? सिपाही दरोगा आए, वह लोग भी कोई कुल-किनारा क्यों नहीं कर पाए? उन सबको रुपयों से अपनी मुट्ठी में कर लिया। खैर, मेरा क्या, अब तुम्हीं लोग सम्भालो।"

चौधरी जी ने बात को दबा देना चाहा। बोले, "तुम इन बातों को लेकर अपना दिमाग मत खपाओ?"

प्रीति बोली, "क्यों? दिमाग क्यों न खपाऊंगी?"

"तुम लोग स्त्री हो। अन्दर महल में रहती हो। बाहर के मामलों में दिमाग खपाने की तुम्हें जरूरत क्या है? जमींदारी-जोतदारी के मामलों में तुम्हारा दखल न देना ही ठीक है।"

प्रीति ने कहा, "यही दिमाग खपाने नहीं देने से ही तो आज हमारी की यह छीछालेदर हो रही है, नहीं तो यह हालत नहीं होती।"

चौधरी जी को बात पसन्द नहीं आई। बोले, "तो कहो, जगह-ज छोड़कर संन्यासी बन जाऊं, संन्यासी बनकर, घर-गिरस्ती छोड़कर जंगल रहूं न? यह भी तो नहीं बनेगा। इसमें भी तुम्हें तकलीफ होगी।"

प्रीति ने कहा, "घर-गिरस्ती छोड़ने की बात मैंने एक बार भी कहीं

इस दोपहर रात में तुम क्या जो अनाप-शनाप कह रहे हो।"

चौधरी जी ने कहा, "यह सब अनाप-शनाप है ? देखता हूं, तुमसे यह सब कहना भी पाप है।"

प्रीति ने कहा, "अनाप-शनाप नहीं तो क्या है ? संसार छोड़कर मैंने तुम्हें जंगल में जाने को कभी कहा है ?"

चौधरी जी ने कहा, "तो फिर तुमने कालीगंज की बहू की बात क्यों उठाई ? उसे क्या हम लोगों ने खून किया है ? और खून ही किया होता, तो सिपाही-दरोगा क्या उसका कोई किनारा नहीं कर पाता। आखिर वह सब क्या घास खाते हैं ?"

उसके बाद जरा रुके, फिर गले को कुछ तेज करके कहा, "और, जमींदारी का तुम क्या जानती हो, कहो ? फिर तो कल से तुम्हीं चंडीमंडप में बैठा करो, मैं रसोई-घर में दाखिल होता हूं, देखूं जरा कि तुम कैसे जमींदारी चलाती हो !"

प्रीति बोली, "छोड़ो-छोड़ो, तुमसे और कुछ तो हो नहीं सकता, सिर्फ झगड़ा ही कर सकते हो।"

चौधरी जी ने कहा, "मैं अच्छी बात कहता हूं और तुम्हारे लिए यह झगड़ा हुआ ?"

"अरे बाबा, तुम सोओ न सोओ, मुझे सोने दो। दिन-भर गिरस्ती की गाड़ी में जुती रहने से मेरा हाड़-मांस काला हो गया है, मैं जरा सोऊंगी। सवेरे उठते ही तो फिर घर भर का पिण्ड रांधने का इंतजाम करना होगा। दाना-पानी नहीं मिलने से तुम्हीं लोग तो चीखोगे-चिल्लाओगे।"

चौधरी जी ने कहा, "तुम्हारी सेहत खराब है। तुम इतना खटती ही क्यों हो ? तुम्हारे सिवा क्या और कोई आदमी नहीं है ? गौरी दिन-भर क्या करती है ? मैंने तो देखा है, वह सिर्फ नाचती ही फिरती है। उससे कुछ काम नहीं करा सकती हो ? गौरी है, विष्णु की मां है—आदमी की तो मैंने कमी नहीं रहने दी है। उन्हें क्या गोदी में बिठाकर खिलाने के लिए रखा है ? यह सब अगर कोई काम ही नहीं करती हैं, तो उन्हें हटा दो न ? आफत विदा हो···"

प्रीति से और रहा नहीं गया। बोली, "देखो, जो बात जानते नहीं हो, वह बोला मत करो। बाहर से ऐसी बातें बहुत की जा सकती हैं। बोलने में कोई टैक्स तो नहीं लगता। हाथ-कलम से करो, तो मजा समझ में आए।"

चौधरी जी ने कहा, "तो तुम एक दिन रसोई में न जाकर ही देखो न, काम होता है या नहीं, लोगों को खाना नसीब होता है या नहीं।"

प्रीति ने कहा, "वह जब मैं मर जाऊंगी, तो तुम लोग ही देखना। मैं थोड़े ही देखने आऊंगी।"

"यही एक बात तो जानती हो। जब तर्क में हार जाओगी तो मरने की बात के सिवाय और कोई उपाय नहीं।"

"रुको भी तो। रुको।"

गुस्से से चीख उठी प्रीति। बोली, "मुझसे बोलना तुम्हें इतना ही बुरा ा है, तो मेरे कमरे में आते ही क्यों हो? यहां न सोकर चंडीमंडप में ो सकते हो। कल से तुम्हारे लिए वहीं इंतजाम कर दूंगी।"

प्रीति ने करवट बदल ली। बोली, "मुझे इस समय कुछ भी अच्छा नहीं ा रहा है। मुझे नींद आ रही है। सोऊंगी।"

उसने बगल के तकिए को खींच लिया और आंखें बन्द करके सोने की ष्टा करने लगी। चारों तरफ सन्नाटा। कहीं कोई आहट नहीं। सारा नवाबगंज गहरी नींद की गोद में। ऐसी अंधेरी रातों में बरवारी-थान से यात्रा के गीत की कड़ी उड़ती हुई आती है। अबकी दशहरे में ये लोग 'पाषाणी' खेलेंगे। प्रकाश कह गया है। रात जरूर काफी हो चुकी है। जबरन आंखें बंद करके प्रीति सोने की कोशिश करने लगी। जरा ही देर में बगल में चौधरी जी की नाक बजने लगी। अजीब आदमी हैं। बोलते-ही-बोलते खुर्राटे भरने लगते हैं। आश्चर्य है कि काम के समय भी आदमी इस तरह से खुर्राटे भरकर कैसे सो सकता है! इसका मतलब यह कि इस आदमी के मन पर कोई छाप नहीं पड़ती। दिन-भर जैसे बेहद काम करेगा, रात में वैसे ही फोंस-फोंस करके सो जाएगा। प्रीति के भी ऐसा होता तो बड़ा अच्छा होता। जीवन में कभी भी उसे बिस्तर पर पड़ते ही नींद नहीं आई। यह भी एक तरह की बीमारी है। बीमारी नहीं तो क्या! नहीं तो सारा दिन मशक्कत तो कुछ कम नहीं होती! रात जितनी ही बढ़ेगी, उतनी ही जम्हाई आती रहेगी। मगर आंखें बन्द करते ही दईमारी नींद जो कहां भाग जाती है, पता नहीं।

प्रीति ने फिर दूसरी ओर करवट ली। फिर आंख बन्द करके नींद का तप। फिर हजारों चिन्ताएं दिमाग में चक्कर काटने लगीं। पता नहीं, सदा और बहू अब कमरे में क्या कर रहे हैं। शायद हो कि दोनों में मेल हो गया हो। दोनों शायद बातें कर रहे हों।

और प्रकाश?

प्रकाश की याद आते ही नींद मानो आते-आते और दूर भाग गई। आंखें खोलकर उसने अंधेरे में ही देखा। बगल में उस करवट लेटे चौधरी जी नींद में बेखबर पड़े। बगल में कोई इस तरह से बेखबर सोया रहे तो अच्छा लगता है भला। अथच कल सवेरे से ही फिर गिरस्ती का पहिया घूमने लगेगा। सवेरे नजर पड़ते ही गौरी भंडार की कुंजी मांगेगी। विष्णु की मां पूछेगी, क्या खाना बनेगा? खाएंगे सब लोग, पर बनेगा क्या, यह बताना पड़ेगा अकेले प्रीति को। जैसे घर-गिरस्ती सिर्फ उसीकी है, औ किसीकी नहीं।

प्रकाश की याद आ जाते ही प्रीति बिस्तर से उठ पड़ी। झमेला है दिन-भर की हड्डी-तोड़ मेहनत के बाद रात को जो जरा आराम करे इसकी भी गुंजाइश नहीं। कपड़े को ठीक से सम्भालकर वह कमरे से बा

निकली।

क्या जाने, रात कितनी हुई! कहीं से भी किसीकी आवाज़ नहो आ रही थी। वह धीरे-धीरे मुन्ने के कमरे की ओर गई।

लेकिन वहां जाकर वह अवाक् रह गई—दरवाज़े के सामने खाली फर्श पर पड़ा प्रकाश खुर्राटे भर रहा था।

प्रीति ने कहा, "प्रकाश, ऐ प्रकाश!"

प्रकाश की नींद जैसे कुम्भकर्ण की नींद। कोई उसे कन्धे पर भी उठा ले जाए तो उसकी नींद नहीं टूटने की।

"प्रकाश! ऐ प्रकाश!"

इस बार उसे झकझोरना पड़ा। भैंस की तरह सो रहा है। कपड़े भी बदन से उतार लो तो खाक भी पता न होगा। ऐसी नींद।

धक्का खाकर प्रकाश हड़बड़ाकर उठ बैठा। बोला, "कौन? क्या बात है?"

एक तो नींद की जड़ता, फिर आधी रात। फिर जैसे कुछ होश-सा हुआ। प्रीति की ओर देखा। पूछा, "क्या हुआ? मैं कहां हूं?"

प्रीति ने कहा, "अरे मैं तेरी दीदी हूं, मैं तेरी दीदी बोल रही हूं।"

दीदी की बात से मानो वह आपे में आया। बोला, "यह कहो। भला ऐसे भी कोई झिंझोड़ता है? मैं तो जग ही रहा था। सिर्फ आंखें बन्द कर ली थीं। मगर तुमने आने की तकलीफ क्यों की? मैंने जब भार ले लिया है, तो तुम इतना क्यों सोचती हो।"

उन बातों पर कान न देकर प्रीति ने कहा, "मुन्ने ने फिर से किवाड़ में धक्का दिया था?"

मुन्ना? सदानन्द? नहीं तो। धक्का देता तो मैं तो सुनता। मैं तो जग ही रहा हूं।"

मन-ही-मन प्रीति मानो खुश हुई।

"तो बहू से उसका मेल हो गया, क्या ख्याल है?"

प्रकाश ने कहा, "मैंने तो तुमसे कह ही दिया है, चिन्ता न करो। जब तक मैं हूं, तुम पांव पर पांव रखकर निश्चिन्त बैठी रहो। सदा की बहू को मैंने पसन्द किया है, वह ज़िम्मेदारी मेरी है।"

प्रीति ने कहा, "वह तो मैं जानती हूं रे! मगर तेरे जीजाजी जो सोच से तड़प रहे हैं। वह खुद भी सोचता है और मुझे भी चिंतित करके मारे डालता है।"

प्रकाश ने कहा, "जीजाजी इतना सोचते क्यों हैं, मैं समझ नहीं पाता हूं। तुम क्या सोच रही हो, मैंने स्त्री नहीं देखी है या कि स्त्री से ब्याह नहीं किया है। कभी मेरी भी तो शादी हुई थी। आग के पास घी को रखने से क्या होता है, यह क्या मैं नहीं जानता हूं? तुम्हीं बताओ, आग के पास घी रखने से क्या होता है? कहो? तुम्हारा भी तो ब्याह हुआ है···"

प्रीति कुछ समझ नहीं सकी। प्रकाश जो कह रहा है, वह तो सीधा हिसाब

पर दुनिया का सारा हिसाब ही अगर इतना सीधा होता, तब तो कोई ही नहीं थी। फिर क्या प्रीति को इतनी फिक्र होती या कि चौधरी जी का ना खर्च होता। चौधरी जी अपने दिन कैसे काट रहे हैं, यह बाहर से कोई ीं समझ सकता। परन्तु प्रीति तो उनकी जलन का अन्दाज कर सकती है। है मालिक तक को इन सबके बारे में कुछ बताया नहीं गया है। उनको पता , दुनिया के सब लोग जैसे संसार-धर्म करता है, उनका पोता भी वैसे ही करता ा रहा है। उन्होंने रेल-बाजार के कंचन सुनार को हार बनाने के लिए दिया है। बहू के लड़का होगा, तो वही हार देकर लड़के का मुंह देखेंगे। आग्रह मानो उन्हींको सबसे ज्यादा है। बहू के लड़का होने से वही सबसे ज्यादा खुश होंगे। लेकिन घर में यह जो घंटा-घड़ियाल बजता है, इसके बारे में उन्हें कुछ भी नहीं बताया गया है। वह सोचते हैं कि बिहारी पाल के यहां पूजा हो रही है। यदि उन्हें असली बात का पता चले, तो क्या होगा?

प्रकाश ने कहा, "तुम जाकर सो रहो दीदी, तुम यहां क्यों तकलीफ कर रही हो, इस रात्रि में?"

प्रीति ने कहा, "और तुम? सांकल चढ़ाकर कब तक ऐसे अगोरे रहोगे?"

प्रकाश ने कहा, "सांकल खोल देने से सदा कहीं भाग जाए, तो?"

प्रीति ने कहा, "तू धीरे से सांकल खोल दे न। आवाज न हो, बस। उसे क्या पता चलेगा! और, अब वे दोनों सो गए होंगे!"

"क्या जो कहती हो तुम। यह तो दोनों की पहली मुलाकात है, आज रात भला वे सोएंगे? अपनी सुहागरात की रात मैं तो नहीं सोया था। तुम सोई थीं?"

प्रीति उस बात के पास भी नहीं फटकी। बोली, "तो तू सारी रात यहां ऐसे ही बैठा रहेगा?"

प्रकाश ने कहा, "रात ही अब कहां है? भोर तो हो आई।"

उसके बाद में जाने क्या सोचा। बोला, "ठहरो। एक मनसूबा आया है। मैं पीछे के दरवाजे से एक बार बगीचे की ओर जाता हूं। अगर खिड़की खुली हो तो झांककर देख लूंगा कि वे क्या कर रहे हैं, तुम ठहरो।"

प्रकाश चल दिया। बरामदे से आंगन में। हवेली के आंगन में। आंगन में जाने से पश्चिम की ओर बगीचे की चहारदीवारी का दरवाजा है। उसी दरवाजे के अन्दर बगीचा। भोर हो चली थी। चांद फीका हो आया था। जंगल-झाड़ पार करके प्रकाश सदानन्द के कमरे के उत्तर तरफ की खिड़की के पास जा खड़ा हुआ। उधर झाड़ियां थीं। केले और नींबू की झाड़ियां। सिर पर कांटे लगने से लहू-लुहान होने की नौबत। देखा, झरोखे के दोनों पल्ले खुले हैं। दबे पांवों करीब जाकर उसने अन्दर झांका। अवाक् रह गया। देर तक खड़े-खड़े उसने देखा।

उसके बाद जिधर से गया था, उसी होकर आंगन से होते हुए वह चल आया। प्रीति वहीं खड़ी थी। प्रकाश के आते ही पूछा, "क्यों रे, क्या देखा? कुछ दिखाई दिया? क्या कर रहे हैं वे, सो गए?"

प्रकाश ने कहा, "चलो न, तुम भी देखना।"

"मैं ? मैं क्या देखूंगी ?"

प्रकाश ने कहा, "चलो तो सही। अपने बेटे का कारनामा अपनी आंखों से देखो।"

प्रीति ने कहा, "तू ही बता न। मैं जाकर क्या देखूं ?"

प्रकाश नाछोड़ बन्दा। बोला, "न, अपनी आंखों देखना ही ठीक है। चलो। जरा बेटे की हरकत देख लो।"

प्रकाश ने खप् से दीदी का एक हाथ पकड़ लिया। पकड़कर खींचने लगा, "चलो-चलो।"

प्रीति ने कहा, "छोड़-छोड़। मैं मां होती हूं। मुझे नहीं देखना चाहिए। मेरा देखना ठीक नहीं है।"

मगर प्रकाश दीदी की सुनने वाला शख्स ही नहीं। वह दीदी का हाथ पकड़कर खींचने लगा। खींचते हुए बिलकुल बगीचे के अन्दर ले गया। उसके बाद दीदी का हाथ छोड़ दिया। बोला, "अब जरा धीरे चलो। पांव दबाकर। सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट न हो।"

प्रीति फिर एतराज करने जा रही थी। प्रकाश ने कहा, "नहीं, अपने बेटे की करतूत अपनी आंखों देखना ठीक है। नहीं तो मुझसे सुनकर तुम्हें यकीन नहीं आएगा। आओ।"

प्रीति भी पांव दबाए प्रकाश के पीछे-पीछे चलने लगी। उत्तर की तरफ वाले झरोखे के पास जाकर प्रकाश ने प्रीति के कानों में फुसफुसाकर कहा, "यहां से भीतर उझककर देखो।"

प्रीति को कैसी तो झिझक हुई। बोली, "मैं देखूं ?"

प्रकाश ने कहा, "हां, देखो न। अन्दर चांदनी गई है। सब साफ दिखाई देगा।"

प्रीति ने कहा, "मगर मैं मां जो हूं। मुझे नहीं देखना चाहिए।"

प्रकाश ने कहा, "जरा धीरे बोलो न, सुन जो लेगा। उझककर देखो, कोई अनुचित न होगा। मैं कहता हूं, कुछ अनुचित न होगा।"

प्रीति आखिर क्या करे ! सिर ऊंचा करके उसने अन्दर की ओर झांका।

देखकर वह हैरान रह गई। उत्तर-पश्चिम कोने में मुन्ना एक कुर्सी पर सिर झुकाए बैठा था। चुपचाप। गम्भीर चेहरा। मन-ही-मन जैसे बड़ा कष्ट पा रहा हो। और खाट के दक्खिन के कोने में पीठ फेरे पांव लटकाए बैठी है बहू। गले तक घूंघट। किसीके मुंह में बोली नहीं। दोनों ही गूंगे हों जैसे।

दोनों ने क्या इसी तरह से सारी रात बिताई ?

प्रीति की दोनों आंखों में आंसू छलक आए थे। देखते नहीं बना। नजर फेर ली। प्रकाश ने पूछा, "क्या देखा दीदी ?"

प्रीति ने कुछ कहा नहीं। जिधर से आई थी, उधर से ही वह लौटने लगी। बगीचे से आंगन में जा पहुंची।

प्रकाश भी पीछे-पीछे आ रहा था। अभी तक उसने भी कुछ नहीं कहा।

पर दुनिया का सारा हिसाब ही अगर इतना सीधा होता, तब तो कोई ही नहीं थी। फिर क्या प्रीति को इतनी फिक्र होती या कि चौधरी जी का ना खर्च होता। चौधरी जी अपने दिन कैसे काट रहे हैं, यह बाहर से कोई ीं समझ सकता। परन्तु प्रीति तो उनकी जलन का अन्दाज कर सकती है। है मालिक तक को इन सबके बारे में कुछ बताया नहीं गया है। उनको पता , दुनिया के सब लोग जैसे संसार-धर्म करता है, उनका पोता भी वैसे ही करता ा रहा है। उन्होंने रेल-बाजार के कंचन सुनार को हार बनाने के लिए दिया है। बहू के लड़का होगा, तो वही हार देकर लड़के का मुंह देखेंगे। आग्रह मानो उन्हींको सबसे ज्यादा है। बहू के लड़का होने से वही सबसे ज्यादा खुश होंगे। लेकिन घर में यह जो घंटा-घड़ियाल बजता है, इसके बारे में उन्हें कुछ भी नहीं बताया गया है। वह सोचते हैं कि बिहारी पाल के यहां पूजा हो रही है। यदि उन्हें असली बात का पता चले, तो क्या होगा?

प्रकाश ने कहा, "तुम जाकर सो रहो दीदी, तुम यहां क्यों तकलीफ कर रही हो, इस रात्रि में?"

प्रीति ने कहा, "और तुम? सांकल चढ़ाकर कब तक ऐसे अगोरे रहोगे?"

प्रकाश ने कहा, "सांकल खोल देने से सदा कहीं भाग जाए, तो?"

प्रीति ने कहा, "तू धीरे से सांकल खोल दे न। आवाज न हो, बस। उसे क्या पता चलेगा! और, अब वे दोनों सो गए होंगे!"

"क्या जो कहती हो तुम। यह तो दोनों की पहली मुलाकात है, आज रात भला वे सोएंगे? अपनी सुहागरात की रात मैं तो नहीं सोया था। तुम सोई थीं?"

प्रीति उस बात के पास भी नहीं फटकी। बोली, "तो तू सारी रात यहां ऐसे ही बैठा रहेगा?"

प्रकाश ने कहा, "रात ही अब कहां है? भोर तो हो आई।"

उसके बाद में जाने क्या सोचा। बोला, "ठहरो। एक मनसूबा आया है। मैं पीछे के दरवाजे से एक बार बगीचे की ओर जाता हूं। अगर खिड़की खुली हो तो झांककर देख लूंगा कि वे क्या कर रहे हैं, तुम ठहरो।"

प्रकाश चल दिया। बरामदे से आंगन में। हवेली के आंगन में। आंगन में जाने से पश्चिम की ओर बगीचे की चहारदीवारी का दरवाजा है। उसी दरवाजे के अन्दर बगीचा। भोर हो चली थी। चांद फीका हो आया था। जंगल-झाड़ पार करके प्रकाश सदानन्द के कमरे के उत्तर तरफ की खिड़की के पास जा खड़ा हुआ। उधर झाड़ियां थीं। केले और नींबू की झाड़ियां। सिर पर कांटे लगने से लहू-लुहान होने की नौबत। देखा, झरोखे के दोनों पल्ले खुले हैं। दबे पांवों करीब जाकर उसने अन्दर झांका। अवाक् रह गया। देर तक खड़े-खड़े उसने देखा।

उसके बाद जिधर से गया था, उधर होकर आंगन से होते हुए वह चल आया। प्रीति वहीं दम किए खड़ी थी। प्रकाश के आते ही पूछा, "क्यों रे, क्या देखा? कुछ दिखाई दिया? क्या कर रहे हैं वे, सो गए?"

प्रकाश ने कहा, "चलो न, तुम भी देखना।"

"मैं ? मैं क्या देखूंगी ?"

प्रकाश ने कहा, "चलो तो सही। अपने बेटे का कारनामा अपनी आंखों देखो।"

प्रीति ने कहा, "तू ही बता न। मैं जाकर क्या देखूं ?"

प्रकाश नाछोड़ बन्दा। बोला, "न, अपनी आंखों देखना ही ठीक है। रो। जरा बेटे की हरकत देख लो।"

प्रकाश ने झट् से दीदी का एक हाथ पकड़ लिया। पकड़कर खींचने ल चलो-चलो।"

प्रीति ने कहा, "छोड़-छोड़। मैं मां होती हूं। मुझे नहीं देखना चाहिए। तेरा देखना ठीक नहीं है।"

मगर प्रकाश दीदी की सुनने वाला शख्स ही नहीं। वह दीदी का हाथ पकड़कर खींचने लगा। खींचते हुए बिलकुल बगीचे के अन्दर ले गया। उसके बाद दीदी का हाथ छोड़ दिया। बोला, "अब जरा धीरे चलो। पांव दबाकर। सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट न हो।"

प्रीति फिर एतराज करने जा रही थी। प्रकाश ने कहा, "नहीं, अपने बेटे की करतूत अपनी आंखों देखना ठीक है। नहीं तो मुझसे सुनकर तुम्हें यकीन नहीं आएगा। आओ।"

प्रीति भी पांव दबाए प्रकाश के पीछे-पीछे चलने लगी। उत्तर की तरफ वाले झरोखे के पास जाकर प्रकाश ने प्रीति के कानों में फुसफुसाकर कहा, "यहां से भीतर झांककर देखो।"

प्रीति को कैसी तो झिझक हुई। बोली, "मैं देखूं ?"

प्रकाश ने कहा, "हां, देखो न। अन्दर चांदनी गई है। सब साफ दिखाई देगा।"

प्रीति ने कहा, "मगर मैं मां जो हूं। मुझे नहीं देखना चाहिए।"

प्रकाश ने कहा, "जरा धीरे बोलो न, सुन जो लेगा। झांककर देखो, कोई अनुचित न होगा। मैं कहता हूं, कुछ अनुचित न होगा।"

प्रीति आखिर क्या करे ! सिर ऊंचा करके उसने अन्दर की ओर झांका।

देखकर वह हैरान रह गई। उत्तर-पश्चिम कोने में मुन्ना एक कुर्सी पर सिर झुकाए बैठा था। चुपचाप। गम्भीर चेहरा। मन-ही-मन जैसे बड़ा कष्ट पा रहा हो। और खाट के दक्खिन के कोने में पीठ फेरे पांव लटकाए बैठी है बहू। गले तक घूंघट। किसीके मुंह से बोली नहीं। दोनों ही गूंगे हों जैसे।

दोनों ने क्या इसी तरह से सारी रात बिताई ?

प्रीति की दोनों आंखों में आंसू छलक आए थे। देखते नहीं बना। नजर फेर ली। प्रकाश ने पूछा, "क्या देखा दीदी ?"

प्रीति ने कुछ कहा नहीं। जिधर से आई थी, उधर से ही वह लौटने लगी। बगीचे से आंगन में जा पहुंची।

प्रकाश भी पीछे-पीछे आ रहा था। अभी तक उसने भी कुछ नहीं कहा।

...में आते ही पूछा, "देख लिया न? देख लिया ?" जरा देर के लिए वह जैसे गूंगी हो गई। धीरे-धीरे बरामदे पर आई।

प्रकाश ने कहा, "क्या हो गया ? कुछ बोल नहीं रही हो ?"

प्रीति ने कहा, "मैं क्या कहूं ?"

प्रकाश ने कहा, "क्या अजीब लड़का तुमने पेट में पाला था दीदी ! ...हारे बेटे को धिक्कार है। इतने दिनों तक कोशिश करके भी मैं इसे आदमी ...हीं बना सका। मुझे अपने आपपर ही लाज आ रही है, समझीं, मुझे ही ...लाज लग रही है, अथच इतनी सुन्दर लड़की खोजकर लाया। मैं जानता था ...कि आग के पास रहने से घी गलकर पानी हो जाता है, यह तो देख रहा हूं, बिलकुल बर्फ है, बर्फ।"

प्रीति तब भी मन में कुछ सोच रही थी। बोली, "मुझे लगता है, इसका ब्याह न कराना ही अच्छा था। उसने उस समय 'ना' किया था। जाने, क्यों मैंने इतनी जोर-जबर्दस्ती की। पता नहीं, मां होकर मैंने उसका भला किया कि बुरा किया। और, पराए घर की एक लड़की की जिन्दगी भी खामखा खराब कर दी।"

प्रकाश ने भरोसा दिया। कहा, "चलो, तुम इसके लिए चिन्ता मत करो। तुम्हें भी तो बात-बात में धड़कन होने लगती है। मैं सब दुरुस्त कर दूंगा। लगता है, मुझे वह तावीज लाना ही पड़ेगा।"

सचमुच ही प्रीति के कलेजे के पास पीड़ा से टनटन कर रहा था। उसे ऐसा अक्सर ही होता है। नियम में जरा भी इधर-उधर हो जाने से ही होता है। ब्याह के हंगामे में कितने दिनों तक तो उसे ठीक से नींद ही नहीं आई। यह हंगामा चुक जाने के बाद भी अनियम चल रहा है। दिल बेचारे का क्या दोष ?"

प्रीति ने कहा, "अब सांकल लगाए रहने से कोई लाभ नहीं।"

प्रकाश बोला, "तो खोल देता हूं।"

प्रीति ने कहा, "हां खोल दे।"

प्रकाश ने बाहर से आवाज दी, "सदा, सदा !" और सांकल खोल दी। जरा ही देर में सदा चुपचाप कमरे से बाहर निकल आया।

प्रकाश मामा सामने ही खड़ा था। उसकी ओर एक बार ताककर ही सदानन्द ने मुंह फेर लिया। उसकी बगल से वह बरामदे की ओर चला गया।

प्रकाश मामा ने जाकर उसे पकड़ा, "क्यों रे, इतना सवेरे ही उठ पड़ा, रात सोया नहीं क्या ?"

देखने से लगा, मारे गुस्से के सदानन्द फूल रहा है। प्रकाश मामा की बात पर ध्यान न देकर वह जिधर जा रहा था, उधर ही जाने लगा। प्रकाश मामा ने सामने जाकर उसकी राह रोक ली। बोला, "तू क्या अब मुझसे बोलेगा ही नहीं? मुझपर क्यों नाराज हो गया। मैंने तेरा क्या किया ?"

सदानन्द ने कहा, "तुम मुझे छोड़ दो।"

प्रकाश मामा ने कहा, "छोड़ूंगा नहीं तो क्या पकड़े रहूंगा ? मगर तुझे क्या, यह तो बताएगा ?"

सदानन्द ने कहा, "नाहक ही क्यों मुझे तंग कर रहे हो प्रकाश मामा ? तबियत ठीक नहीं है, कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।"

सदानन्द के साथ-साथ चलते हुए प्रकाश मामा ने कहा, "क्यों, तबीयत खराब क्यों है ? रात नींद नहीं आई ?"

सदानन्द खफा हो गया। बोला, "तुम लोग क्या मुझे पागल बना देना चाहते हो ? मुझे मार डालना चाहते हो तुम लोग ? मुझे समझा क्या है तुम लोगों ने ? मैं पागल हूं ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "तू क्यों पागल होने लगा, जैसी हरकतें तू कर रहा है कि हम लोगों को ही पागल बना छोड़ेगा।"

सदानन्द ने कहा, "उससे तो बेहतर है, तुम लोग मुझे छोड़ दो प्रकाश मामा ! मैं जिधर दोनों आंखें जाएं, चला जाऊं। मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।"

सदानन्द की पीठ पर हाथ फेरते हुए प्रकाश मामा ने कहा, "न-न, तू ऐसा काम मत कर। पढ़ा-लिखा लड़का है तू, पागलपन मत कर। तू मुझे बता कि हुआ क्या है ?"

सदानन्द बिगड़ गया, "किससे क्या कहूं ? कितनी बार कहूं ? कोई यदि मेरी सुने नहीं तो मैं क्या करूं ? तुमने मुझको ब्याह करने के लिए क्यों कहा ? तुम लोगों ने शामना ही मुझे चमका क्यों दिया ? मेरी बात तुम लोगों ने मानी क्यों नहीं ? कालीगंज की बहू का ऐसा सर्वनाश तुम लोगों ने क्यों किया ? उसके दस हजार रुपये उसे दिए क्यों नहीं ? क्यों, क्यों नहीं दिए ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "रुपये क्यों नहीं दिए, इसका जवाब तेरे दादाजी के पास है। तेरी बहू ने कौन-सा कसूर किया ? अपने दादाजी के किए का बदला तू अपनी पत्नी से लेगा ?"

उधर प्रीति झटपट मुन्ने के कमरे में चली गई। आवाज दी, "बहू !"

नयनतारा खाट के कोने में उस समय भी ठीक वैसी ही बैठी थी। सास का गला सुनकर उसका घूंघट जैसे जरा हिला। लेकिन उसने उसी दम अपने को संभाल लिया। सास जब उसके सामने आकर खड़ी हुई, तो आंसुओं से सब कुछ धुंधला हो गया था।

सास ने पूछा, "रो रही हो बहू ? क्या हुआ ?"

नयनतारा ने अपना सिर और भी झुका लिया। जैसे अपना जला हुआ मुंह दिखाने में भी शरम लग रही हो।

सास ने फिर पूछा, "क्या हुआ ? बहू कुछ बोल क्यों नहीं रही हो आज रात तो मुन्ना तुम्हारे कमरे में था। आज तो वह भागा नहीं था।"

नयनतारा के मुंह से फिर भी कुछ नहीं निकला। उसका सिर मा और भी झुक गया।

उसकी ठोड़ी पकड़कर प्रीति ने नयनतारा के मुंह को अपनी ओर उठाया।
...ज, घृणा, अपमान से नयनतारा ने आंखें बन्द कर लीं। लेकिन आंखें बन्द
...रने से ही क्या आंसू की बाढ़ को रोका जा सकता है! बेताब आंसू तब तक
...तेज़ी के साथ गाल पर ढुलकने लगा।

प्रीति ने कहा, "मेरी बात का जवाब दो बहू, मैं जानना चाहती हूं, मुन्ने ने आज तुमसे क्या कहा? तुमसे कुछ बोला है?"

नयनतारा ने कुछ कहा नहीं। सिर्फ गरदन हिलाकर जताया, "नहीं।"

"कुछ नहीं बोला?"

"नहीं।"

"तो वह सारी रात सोया ही रहा?"

"नहीं।"

"तुम सारी रात जगती रहीं। बोलो, जवाब दो। दोनों ही जगे रहे और फिर भी दोनों में बिलकुल बातचीत नहीं हुई? शायद इसीलिए तुम्हारी दोनों आंखें सूज गई हैं। एक तो रात को जगना, फिर सारी रात रोती रही हो, आंखें तो सूजेंगी ही।"

फिर इस समस्या का कोई हल ढूंढ़ न पाकर प्रीति ने कहा, "तो फिर तुम ज़रा देर सो जाओ। सो जाने की कोशिश करो। सवेरा हो आया है। बासी कपड़े बदलकर मैं तुम्हारे लिए थोड़ा-सा दूध गरम करके भिजवा दूं।"

यह कहकर प्रीति चली जा रही थी। अब नयनतारा बोल उठी, "मां!"

"क्या बात है बहू? मुझसे कुछ कहोगी? क्या कहना चाह रही थी, कहो।"

नयनतारा ने किसी तरह से कहा, "मुझे पिताजी के पास भिजवा दीजिए।"

बहू के प्रस्ताव से प्रीति स्तम्भित हो गई। बोली, "छिः, ऐसा नहीं कहते, लोग क्या कहेंगे? इससे तुम्हारी भी निन्दा होगी और तुम्हारी ससुराल की भी निन्दा होगी। लोग कहेंगे, चौधरी जी ने ऐसी बहू की थी, जो ससु... राल से मिलकर नहीं चल सकी। और फिर अपने पिताजी को सोचो। ... तो अभी उनको एक इतने बड़े शोक का धक्का लग चुका है, उसपर अ... वह सुनेंगे कि तुम्हारा भी भाग्य फूट गया, तो क्या वह जीवित रहेंगे?"

नयनतारा ने सब कुछ ध्यान से सुना। कुछ बोली नहीं।

प्रीति ने कहा, "तुम बल्कि और कुछ दिन बरदाश्त करो, देखूं ... क्या कर सकती हूं। मुझे सोचने का थोड़ा समय दो।"

नयनतारा अचानक पूछ बैठी, "लेकिन मैंने ऐसा क्या अपराध कि... मां, कौन-सा अपराध किया है, जिसके लिए मुझे ऐसी सज़ा भुगतनी ... आप लोग तो मुझे देख-सुनकर, पसन्द करके घर की बहू बनाकर ल... मैं खुद अपने से चाह कर आपके यहां नहीं आई हूं कि मुझसे इस तर... चुकाएं।"

बोलते-बोलते नयनतारा जैसे टूट पड़ी। जी की जलन से वह शायद और भी कुछ कहती, लेकिन उसका गला बीच ही में रुंध गया।

नयनतारा की पीठ सहलाते हुए प्रीति ने कहा, "दोष तुम क्यों करने लगी बहू, सारा दोष मेरा और मेरे लड़के का है। दोष हम लोगों ने ही किया है। मेरे लड़के ने ब्याह ही नहीं करना चाहा था। जबरदस्ती उसका ब्याह कराया गया। मगर तुम इसके लिए चिन्ता मत करो बहू, पहले-पहल बहुत-से लड़के ऐसा ही करते हैं, आगे चलकर सब ठीक हो जाता है। बाल-बच्चों से घर भर जाता है। मैंने ऐसा बहुत देखा है। लेकिन तुम अभी यह बात दूसरे के कानों न डालना। टोले-मुहल्ले के लोग सुन लेंगे तो फिर खैर नहीं। गांव में ढिंढोरा पिट जाएगा।"

तब तक बाहर से आवाज आई, "भाभी !"

प्रीति ने कहा, "गोरी बुला रही है। विष्णु की मां अभी-अभी रसोई-घर में जाएगी, गौरी भंडार की कुंजी मांग रही होगी। मैं अभी आई। चूल्हा सुलगते ही मैं तुम्हारे लिए एक कटोरा गरम दूध ले आती हूं। सारी रात जगती रही, पीने से तबीयत थोड़ी ठीक होगी।"

प्रीति बाहर चली गई।

लेकिन उसी दिन से मानो चौधरी परिवार पर शनि की दृष्टि पड़ी। उसी दिन से, जिस दिन कालीगंज की बहू नई बहू को देखने के लिए आई थी। राणाघाट से आदमी आया, खबर दी कि वकील साहब ने कहला भेजा है, कोर्ट में और एक मामला चला है। चौधरी जी को एक बार जाना होगा।

जगह जायदाद रहने से मामला-मुकदमा तो खैर लगा ही रहता है। लेकिन बात वैसी नहीं। यह मामला बड़ा कठिन है। वकील साहब की चिट्ठी दो दिन पहले ही आई थी। चौधरी जी ने सोचा था, बहू आ जाए, लड़के का रंग-रवैया कैसा रहता है, यह देखकर निश्चिन्त होकर ही जाएंगे। उन्होंने साधु बाबा से भी यही कहा था। साधु बाबा ने कहा था, "मैं तो हूं, तू निश्चिन्त रह—मैं सब ठीक कर दूंगा।"

चौधरी जी ने कहा, "आपके 'दिग्बंधन' का कोई नतीजा देख बिना जाने में डर लग रहा है बाबा, आप तो जानते ही हैं, मेरे वही एक लड़का है, इकलौता। नतीजा अगर उलटा निकला तो बड़ी मुसीबत होगी। अभी तक पिताजी से इसके बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है।"

"नहीं कहा है, अच्छा ही किया है। गुह्य बात किसीको बतानी नहीं चाहिए।"

ये सब बातें पहले ही दिन हो चुकी थीं। दूसरे दिन जब जगे, तो देखा, काफी बेला हो चुकी है। उतने बड़े बिछौने पर वह अकेले ही सोए हुए हैं, बगल

…कोई नहीं है। हड़बड़ाकर बिस्तर से उठे। बाहर निकलकर देखा, घर का दिन का काम-धंधा शुरू हो गया है। पत्नी से भेंट करने के लिए उन्होंने …ोई-घर में झांका। वह वहां नहीं थीं। क्या करें, कुछ समझ नहीं सके। लौट …ले। आखिर कुएं की ओर गए। महज कई दिन पहले ही तो घर में शादी …ई। बड़े-बड़े गड्ढे खोदकर चूल्हे बनाए गए थे। ये चूल्हे अब किसी काम नहीं आएंगे। जली हुई मिट्टी के ढेले अभी भी वहां पर जमा थे। कुएं के पास हाथ-मुंह धोने के लिए माटी के बहुत बड़े-बड़े घड़े रखे हुए थे। उन्होंने वहां से पानी लिया। ज़रा ही देर में रोज़मर्रे का काम-काज शुरू हो जाएगा। खेत-मजूर, डंडीदार, रैयत लोग आएंगे। चौधरी जी का बैठका गरम रहेगा। विधू का बेटा शशी नियम से सरसों झाड़ना शुरू करेगा। खेतों से सरसों के पौधे काट करके गोबर से लिपे खलिहान में फैला रखा है। सूखे-सरसों के ढेरों अंटिए। उन सबको झाड़कर सरसों निकालना है। उसके बाद तौल-तौलकर बोरियों में रखना है। रजबअली भी बैलों की तलाश में आएगा। उनको खिलाने और उनकी हिफाजत का भार उसीपर है। फिर जिस दिन चौधरी जी बाहर जाएंगे, उस दिन सवेरे से ही वह गाड़ी के पहियों में रेंड़ी का तेल डालेगा। गाड़ी की टप्पर को झाड़े-पोंछेगा। गाड़ी पर के बिछाने की दरी को पोखरे में फींचकर धूप में सूखने के लिए देगा। शशी डंडीदार और रजबअली ही नहीं, हजार आदमी के हजार काम। सबके काम-काज की देख-भाल चौधरी जी के जिम्मे। ये इतने-इतने लोग जब ठीक से काम करेंगे, तो चौधरी परिवार के संसार-यंत्र का पहिया ठीक से घूमेगा।

गौरी रसोई-घर की ओर से आ रही थी। सवेरे से उसे भी फुरसत नहीं थी। चौधरी जी अन्दर आ रहे थे, इसलिए बगल होकर उसने जगह दी। उसे देखते ही चौधरी जी ने पूछा, "क्यों गौरी, तेरी भाभी कहां है?"

प्रीति भी ठीक उसी समय बेटे के कमरे से दूध का कटोरा लिए इधर ही आ रही थी। बोली, "क्या हुआ, जग गए तुम?"

चौधरी जी उसके नजदीक गए। पूछा, "बहू की क्या खबर है?"

प्रीति ने कहा, "बहू के ही पास से तो आ रही हूं। थोड़ा-सा गरम दूध पिला आई।"

"और मुन्ना? वह कहां है?"

प्रीति ने कहा, "रात भर तो तुम खुर्राटे भरते रहे, अब मुन्ने की पू… रहे हो?"

चौधरी जी ने कहा, "पता नहीं क्यों, कल बेहद नींद लग गई थी! प… नहीं, कल क्यों इतना सो गया!"

प्रीति ने कहा, "तुम सोते कब नहीं हो, सो तो कहो? तुम तो सदा … नहीं कि खुर्राटे भरने लगते हो। तुम्हारी जैसी नींद मेरी होती, तो मैं … जाती। हटो, मुझे काम है।"

चौधरी जी ने कहा, "काम तो मुझे भी है। मगर कल हुआ क्या, य… नहीं बताया? मुन्ने को तो कमरे में बाहर से सांकल लगाकर बन्द कर…

अपमान करेगा, नजर उठाकर उसे देखेगा नहीं, उसे देखते ही कमरे
जाएगा, कमरे में रहने पर भी दूसरी ओर मुंह किए बैठा रहेगा—
वसे उसे चोट नहीं लगेगी ? ज़रा भी आत्मसम्मान का ख्याल हो तो
भी औरत इसे बरदाश्त नहीं कर सकती । मुझे तो भय हो रहा है, अंत
वह कुछ कर न बैठे ।"

"क्या कर बैठेगी ?"

"अजी, औरतों के मन का हिसाब तुम मर्द कैसे जानोगे ? मैं सोचती
आखिर वह आत्महत्या न कर ले । गले में फंदा लगाकर कोई गजब न
र बैठे ।"

अब जैसे चौधरी जी को होश आया । बोले, "क्यों, वह खूब रो रही
? कुछ कह रही है ?"

"कहेगी नहीं ? दो ही दिन पहले तो उतना बड़ा शोक हुआ, फिर इधर
तुम्हारे बेटे की यह हरकत, इसपर वह अगर कुछ बोले तो मैं उसका मुंह
कैसे भी दूंगी ?"

"वह क्या कह रही थी, कहो न ?"

"और क्या कहेगी ? दुःख करती हुई कह रही थी, 'आप लोग तो देख-
सुनकर, पसन्द करके मुझे लाए हैं, मैं कुछ अपनी इच्छा से नहीं आई हूं,
फिर हम लोग उसपर ऐसा जुल्म क्यों ढा रहे हैं, मैंने कौन-सा दोष किया
है ?' "

"जवाब में तुमने क्या कहा ?"

प्रीति ने कहा, "इस बात का जवाब मैं क्या दे सकती हूं, तुम्हीं बताओ ।
आखिर मैं भी तो स्त्री हूं । स्वयं स्त्री होकर मैं यदि स्त्री का दुःख नहीं समझूं
तो क्या तुम समझोगे कि तुम्हारा लड़का समझेगा ?"

"फिर ?"

प्रीति ने कहा, "फिर क्या ? फफक-फफककर रोने लगी । मैं क्या
करती, देखकर मुझे बड़ी तकलीफ हुई । मैं भी रोई । बेचारी रात-भर एक-
सा पड़ी रोती रही और सारी रात आंखों में ही बिताई । इसीलिए मैं उसे
थोड़ा-सा गरम दूध पिला आई ।"

"और मुन्ना ? वह कहां गया ?"

अचानक बाहर बैठके में कुछ आवाज़-सी हुई, ऐसा लगा । कोई हंगामा-
सा । चौधरी जी ने कान खड़े कर लिए । बोले, "काहे का हल्ला है ?"

देर तक उन्होंने सुना, मगर कुछ समझ नहीं सके । प्रीति को इतनी
बातें सुनने का समय नहीं था । इतनी बड़ी गिरस्ती के इतने-इतने लोगों की
जरूरतें उसीकी ओर ही किए हुए है । उसे रात-भर नींद आए चाहे नहीं
आए, उससे लोगों का कुछ नहीं आता-जाता । सबको बस एक ही बात, मेरी
जरूरत पूरी होनी चाहिए । रुपये कहां से आ रहे हैं, कौन कमा रहा है, यह
सब देखने-सुनने की जिम्मेवारी अपनी नहीं । मुझे समय पर खाना और
वेतन मिलना चाहिए । बस ! हम सिर्फ लेने वाले हैं, देने की क्षमता तुम्हे

पा नहीं, यह तुम्हारे सोचने की बात है। अथच पान से ज़रा चूना गिर
ए तो जवाबदेही तुम्हारी, आखिर तुम इस घर की मालकिन क्यों हुई?

चौधरी जी वहां और खड़े नहीं रहे। जल्दी से वह अन्दर महल से बाहर
ले गए। तब तक आवाज साफ सुनाई पड़ने लगी।

लगा, जैसे गला मुन्ने का है।

बाहर वाले कमरों में से ही एक बड़े कमरे में साधु बाबा के रहने का
प्रबन्ध किया गया था। उसीमें बाबाजी की पूजा-अरचा-सेवा, सब कुछ
ती थी। आवाज उसी कमरे से आ रही थी। वहां जाते ही उन्होंने देखा,
ांगन से, चंडीमंडप से, चारों तरफ से कुतूहल से लोग वहां आ रहे थे।

"ऐ दासी, वहां क्या हो रहा है रे?"

दासी ठिठक गया। बोला, "क्या पता छोटे हुजूर, मैं तो वही देखने के
लिए जा रहा था।"

अन्दर से दौड़ता हुआ दीनू आ रहा था।

चौधरी जी ने उससे भी पूछा, "वहां क्या हो रहा है दीनू? यह गोल-
माल कैसा है?"

"जी मैं आपको ही भागकर बुलाने जा रहा था। नन्हे बाबू बाबाजी को
मार रहे हैं।"

"नन्हे बाबू?"

चौधरी जी के माथे पर जैसे गाज गिर पड़ी। बोले, "क्यों? मार क्यों
रहा है?"

दीनू ने कहा, "सो तो मैं नहीं जानता सरकार! हल्ला सुनकर वहां
दौड़ता हुआ गया था। जाकर यही देखा और देखते ही आपको बुलाने के
लिए भागा आ रहा था।"

चौधरी जी अब मानो सारी बातों का अन्दाज कर सके। वह बाबाजी
के कमरे की तरफ ही जाने लगे, लेकिन जाते-जाते रुक गए। पीछे पलटकर
पूछा, "दीनू, बड़े मालिक क्या कर रहे हैं?"

"जी, वह सबेरे ही जगे। अभी पूजा कर रहे हैं।"

"यह हंगामा उनके कानों तक पहुंच गया क्या?"

"यह नहीं जानता। अब जाऊंगा, तो पता चलेगा। गुमाश्ता जी अभी
हीं आए हैं।"

चौधरी जी ने कहा, "तो तू बड़े मालिक के पास जा। उन्हें सम्भा
रहना। अगर पूछें कि नीचे क्या हंगामा हो रहा है, तो कुछ मत बतान
कह देना, बिहारी पाल के यहां झगड़ा हो रहा है।"

और, वह दौड़कर ही घटनास्थल पर पहुंच गए। चौधरी जी को देख
सबने रास्ता छोड़ दिया। कमरे के अन्दर उस समय घनघोर मच रहा
चौधरी जी ने देखा, सदानन्द ने एक हाथ में बाबाजी की मोटी-मोटी ज
को उमेठकर पकड़ लिया है और दूसरे हाथ में उनका सिन्दूर लगा
उठाकर उनकी ओर निशाना किए हुए है। कह रहा है, "बोल, फिर व

…र करेगा ऐसा ?"

बेचारे बाबाजी कह रहे हैं, "मुझे छोड़ दीजिए, मुझे छोड़ दीजिए।"

सदानन्द की सख्त मुट्ठी के ताव से वैसे तगड़े बाबाजी डर के मारे सिकुड़ गए थे।

चौधरी जी से रहा नहीं गया। उन्होंने सदानन्द के हाथ से त्रिशूल को छीन लेना चाहा। लेकिन सदानन्द के शरीर में उस समय असुर की शक्ति थी। वह भी उसे कसकर पकड़े ही रहा।

चौधरी जी बोले, "यह हो क्या रहा है मुन्ने ? छोड़ो, छोड़ दो।"

"मैं नहीं छोड़ूंगा। आप रोक क्यों रहे हैं। छोड़ दीजिए।"

चौधरी जी भी नहीं छोड़ने के और सदानन्द भी पकड़े ही रहेगा।

"छोड़ो-छोड़ो।"

सदानन्द ने कहा, "नहीं। नहीं छोड़ूंगा। इस कम्बख्त ढोंगी को मैं मार डालूंगा।"

इतनी देर के बाद चौधरी जी की नजर पड़ी कि प्रकाश एक ओर खड़ा तमाशा देख रहा है। उसे देखकर चौधरी जी ने डांट बताई, "तुम खड़े-खड़े तमाशा देख रहे हो ? मुन्ने के हाथ से त्रिशूल को छीन नहीं सकते ?"

प्रकाश ने कहा, "मैं तो तब से सदा को यही कह रहा हूं जीजाजी, बाबाजी ने क्या दोष किया है ? इनका तो कोई दोष नहीं है। मगर वह मेरी एक नहीं सुनता, मैं क्या करूं ?"

चौधरी जी ने कहा, "इन सारी बुराइयों की जड़ तो तुम्हीं हो। तुम्हारी ही वजह से तो यह सारा झमेला हुआ है।"

प्रकाश मामा मानो आसमान पर से गिर पड़ा। बोला, "मैं ? सारी बुराइयों की जड़ मैं हूं ? दोष किया सदा ने और पड़ा मेरे मत्थे ?"

"तुम देख रहे हो कि वह त्रिशूल लेकर एक आदमी को मार डालने को है और तुम खड़े हंस रहे हो ? इतनी उम्र हुई और इतनी भी अक्ल नहीं आई ?"

उसके बाद सदानन्द की ओर मुड़कर बोले, "अभी भी नहीं छोड़ा। छोड़ो।"

"मैं नहीं छोड़ूंगा।"

उसने पत्थर जैसा कठोर होकर बाबाजी की जटाओं को और जोर से पकड़ा।

बाबाजी सिर की पीड़ा से तड़प रहे थे। बोले, "छोड़ दीजिए बाबा, मुझे छोड़ दीजिए। मैंने तो आपका भला ही करने की कोशिश की है। मैं आपका मंगल चाहता हूं।"

सदानन्द ने चिल्लाकर कहा, "मंगल करने की कोई जरूरत नहीं, तू पहले बोरिया-बसना समेटकर यहां से चल दे।"

इसका जवाब चौधरी जी ने दिया। बोले, "क्यों, चले क्यों जाएंगे ? बाबाजी को भगाने वाले तुम कौन होते हो ? उन्हें मैंने यहां बुलाया है, वह खुद तो

ए नहीं हैं। इस घर का मालिक मैं हूं। उनको विदा करना होगा, तो मैं गा, तुम कौन हो ?"

सदानन्द ने कहा, "मगर यह मेरे मामले में क्यों दखल देता है ?"

"उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा ? वह तो हम सबका भला ही चाहते हैं।"

"नहीं, मैं क्या करता हूं, क्या नहीं करता हूं, यह देखने की उसे क्या पड़ी है ? रात में घर में सोया था या नहीं, यह जानने की उसे क्या जरूरत है ?"

"गुरुजन क्या पूछते नहीं हैं ? पूछा है, तो अच्छा ही किया है।"

सदानन्द ने कहा, "आप यह कहना चाहते हैं कि यह मेरे गुरुजन हैं ? एक—एक ढोंगी, ठग, फरेबी मेरा गुरुजन होगा ? और वह जो कहेगा, मैं वही करूंगा ?"

"क्यों नहीं करोगे ? उनकी बात तुम्हें माननी होगी। यह जब मेरे गुरुजन हैं और तुम मेरे लड़के हो, तो वह तुम्हारे भी गुरुजन हुए। छोड़ो, उनकी जटा छोड़ दो, त्रिशूल रख दो, उनको प्रणाम करो।"

चौधरी जी के विरोध में ही मानो सदानन्द ने बाबाजी की जटा को और भी जोर से खींचा। बोला, "मैं आज इसे घर से निकालकर ही रहूंगा।"

"तुम्हारी इतनी बड़ी हिमाकत ? तुम मेरे मुंह पर जवाब दे रहे हो ?"

सदानन्द ने कहा, "जवाब दूंगा, जरूर दूंगा।"

"खबरदार !"

चौधरी जी मारे गुस्से के गुर्राने लगे। उनके गले की आवाज से सारा कमरा जैसे थर-थर कांप उठा।

प्रकाश मामा से रहा नहीं गया। जीजाजी के सामने अभी तक वह ज्यादा कुछ बोल नहीं रहा था। अब जब उसने देखा माजरा काफी बढ़ गया, तो वह सदानन्द की ओर बढ़ा। बोला, "ऐ सदा, क्या कर रहा है ? तूने अक्ल क्या बेच खाई है ? किससे कैसा बोलना चाहिए, तूने यह भी नहीं सीखा ?"

"तुम तो चुप ही रहो प्रकाश मामा !"

"पागल है क्या तू ?"

चौधरी जी ने आगे बढ़कर प्रकाश से कहा, "तुम हट जाओ, मैं देखता हूं।" उन्होंने जबरदस्ती प्रकाश को ढकेल दिया। प्रकाश छिटककर फर्श पर गिर पड़ा। किसीने थामकर उसे उठाना चाहा। प्रकाश बिगड़ उठा। बोला, "हट जा। कौन है तू ? मुझे उठाना नहीं पड़ेगा, मैं आप ही उठ जाऊंगा।"

लेकिन उठने की कोशिश करते ही फिर लुढ़क गया। माथे में खूब चो से लगा था शायद। माथे से लहू बह रहा था।

परन्तु चौधरी जी को उस समय उसका ख्याल नहीं था। वह उस स सदानन्द पर कूद पड़े थे। सदानन्द के हाथ से उन्होंने बाबाजी को छुड़ाया अ त्रिशूल छीनकर दूर फेंक दिया। सदानन्द को उन्होंने दोनों हाथों से जकड़ लि बोले, "चलो, अब अन्दर चलो।"

सदानन्द चीख़ उठा, "मैं नहीं जाऊंगा, मैं हरगिज़ नहीं जाऊंगा।"

चौधरी जी ने ज़ोर से पुकारा, "दीनू—दीनू!"

दीनू पास ही खड़ा डरता हुआ सब देख रहा था। पुकार सुनकर दौड़ा आया। चौधरी जी ने कहा, "पकड़ो तो इसे।"

दीनू को पकड़ने में झिझक हो रही थी। पकड़ने में वह सकपका गया।

चौधरी जी ने डांट बताई, "हा किए ताक क्या रहा है? पकड़ इसे, पकड़कर खींचता हुआ ले जा, आज मैं इसे घर में बन्द कर दूंगा। इसे मैं सबक सिखाऊंगा, बेहद मिज़ाज हो गया इसका।"

बोले और किसी और का आसरा देखे बिना खुद ही उसे खींचते हुए अन्दर ले जाने लगे। जो लोग यह देखने आए थे, सब छिप गए। छिपकर देखने लगे।

उन सबको देखते ही चौधरी जी चीख उठे, "निकलो सब यहां से—निकलो।"

हड़बड़ाकर जिसकी जिधर नजर पड़ी, भाग गए। सदानन्द अपने को छुड़ाने के लिए छटपटा रहा था। बोला, "मैं नहीं जाऊंगा, मुझे छोड़ दीजिए।"

लेकिन चौधरी जी के शरीर में उस समय असुर की शक्ति उतर आई थी। वह सदानन्द को खींचते हुए ले गए और अन्दर एक कमरे में डाल दिया। उसके बाद आवाज़ दी, "गौरी—गौरी।"

गौरी के आने से पहले दौड़ी-दौड़ी प्रीति आ पहुंची। बोली, "कर क्या रहे हो? मुन्ने को पकड़ा क्यों है? क्या किया है इसने?"

"वह तुम्हें फिर बताऊंगा। गौरी कहां है?"

गौरी पीछे खड़ी थी। उससे उन्होंने कहा, "ताला-कुंजी ले आ।"

गौरी ताला-कुंजी ले आई। सदानन्द को कमरे में बन्द करके चौधरी जी ने बाहर से ताला लगा दिया। बोले, "पड़ा रहे अब। जैसी करनी, वैसी भरनी।"

प्रीति तब तक उत्तेजित हो उठी थी। बोली, "तुम यह क्या कर हो? घर में नई बहू है और तुम यह क्या कर रहे हो?"

चौधरी जी ने इसपर कान नहीं दिया। बोले, "वह तुम नहीं समझो उधर वकील साहब की चिट्ठी आई है, मुकदमे की तारीख है और इधर लड़के की बेहूदगी। मैं कहां तक बरदाश्त करूंगा? मैं भी तो आखिर अ हूं, मेरे भी तो सहने की कोई सीमा है।"

प्रीति कुछ कहने जा रही थी, पर पहले ही बाधा पड़ गई। दौड़ता कैलास गुमाश्ता आया।

"छोटे बाबू?"

"क्या है?"

चौधरी जी अवाक् हो गए थे। ऐसे समय कैलास क्यों आया?

कैलास ने कहा, "बड़े हुजूर कैसा तो कर रहे हैं! आपको बुला र

"बड़े हुजूर! बड़े हुजूर को यह मालूम हो गया था क्या?"

"जी।"

"बड़े हुजूर से किसने कहा ? मैंने तो दीनू को बार-बार कह दिया था, उन्हें इस बात का पता न हो, फिर भी किसने कह दी ?"

"बिहारी पाल ने ।"

चौधरी जी आग-बबूला हो गए, "बिहारी पाल को और समय नहीं मिला, ठीक इसी समय आना था ?"

चौधरी जी ने कुंजी टेंट में खोंस ली थी । बोले, "चलो कैलाश !"

सदानन्द को याद है, घर की हालत उस समय किस कदर बेतरतीब हो गई थी । जिस घर का काम अब तक नियम से होता आया, जिस घर में सब नियम मानकर चलते रहे, उसी घर में मानो एकाएक एक अराजकता-सी आ गई । एक ओर बूढ़े चौधरी की बीमारी, दूसरी ओर मालती और घर में कोई कायदा-कानून नहीं । और, इस सबके मूल में सदानन्द । उसके मामूली से असहयोग से इतने दिनों के सारे तौर-तरीके टूटकर बिलकुल तहस-नहस हो गए ।

ऐसा ही होता है । वास्तव में ऐसा ही होना है । क्योंकि हर कोई तो दुनिया के नियम पर ही अपने को ढाल लेता है । दुनिया से समझौता करके चलकर सुख-शांति से जो पाते हैं वही सब चैन की सांस लेते हैं । लेकिन ऐसे लोग भी संसार में पैदा होते हैं, जो दुनिया की बनी-बनाई लीक पर न चलके दुनिया को ही अपने जैसा बना लेने की कोशिश करते हैं । ऐसों को ही लोग बेहिसाबी कहते हैं । अथच ऐसे बेहिसाबी लोगों के चलते ही हमारी यह दुनिया आगे बढ़ती है । उनके अमानुषिक कृच्छ-साधन से ही बाद वाले युग के लोग अनेक अत्याचार और अनेक अन्यायों के चंगुल से छुटकारा पाते हैं ।

सदानन्द भी शायद ऐसा ही एक बेहिसाबी आदमी है ।

वरना वह मज़े में ही तो था । उसके पुरखों के पापों की कैफियत तो उससे कोई मांग नहीं रहा था । किसीने यह तो नहीं कहा कि तुम प्रायश्चित करो । किसीने तो उससे यह नहीं कहा कि तुम अपनी आत्माहुति से अपने पुरखों के सारे कलंक को धो दो । किसीने भी तो नहीं कहा कि अपने जन्मदाता के सारे अपराधों के उत्तराधिकारी तुम हो । और, उनके प्रायश्चित करने के साथ तुम्हीं हकदार हो ।

बिहारी पाल पहले समझ नहीं सका । खबर उसके कानों तक उसकी स्त्री के जरिए पहुंची । अगल-बगल मकान । इस घर की सीढ़ी-छत पर बिल्ली बैठे तो उस घर की बिल्ली गुस्से से फुफकारती है । उसी बिहारी पाल को यह खबर मिली ।

पत्नी ने कहा, "राम-राम, अपने बाप के जन्म में भी ऐसा कभी नहीं सुना था ।"

बिहारी पाल का कौतूहल और भी बढ़ गया । पूछा, "आखिर तुमने सुना किससे ?"

"विष्णु की मां से। घाट पर उससे मेरी मुलाकात जो हुई। दईमारी बदमाश तो है, पर मन उसका अच्छा है।"

"सो क्या ?"

"अजी, उसीने तो बताया कि चौधरी जी का लड़का अपनी बहू के साथ सोता ही नहीं है। मुझसे तो पतियाते न बना। विष्णु की मां ने कहा, 'बहू शायद बदचलन है।' "

"ऐं ?"

यह खबर कई दिनों से बिहारी पाल को सुनने में आ रही थी। बिहारी पाल अपना काम-काज करता और चौधरी परिवार के घंटा-घड़ियाल की आवाज़ भी सुना करता। लेकिन वजह कभी समझ में नहीं आती। अबकी वजह मानो कुछ साफ हुई। समझ गया कि चौधरी वंश की रीढ़ में ही घुन लग गया है। अब बूढ़े की ठसक गई। अब बुड्ढा झुकेगा।

एकान्त में पत्नी को बुलाकर बिहारी पाल ने कह दिया, "देखो, तुम यह सब बात किसीसे कह मत देना। समझ गई ?"

"क्यों ? कहने में हर्ज़ क्या है ?"

बिहारी पाल चौकस आदमी है ? कहा, "अभी सब खोल दोगी, तो यह चीज़ बढ़ेगी नहीं। अभी ज़रा बढ़ने दो इसे, बढ़कर डाल-पत्ते निकलें, फिर कहना।"

मगर बिहारी पाल समझता था, औरतों को यह कहना न कहना बराबर है। फिर भी कह जो दिया, उसकी भी कीमत है। लेकिन उससे भी निश्चिन्त नहीं हुआ जा सका। कब जाने औरत के मुंह से बात निकल पड़े और सब परदाफाश हो जाए, इस चिन्ता में ही रात गुज़री। सच पूछिए तो रात बिहारी पाल को ठीक से नींद नहीं आई। इसीलिए तड़के ही उठकर सामने के बगीचे में पायचारी कर रहा था। देखा, कैलास गुमाश्ता जा रहा है। बोला, "क्यों जी कैलास ? खबर क्या है ? सरसों हुई ?"

कैलास ने कहा, "इस बार तो देर का बोया था, अच्छी नहीं हुई। किसी तरह से पांचेक सौ बोरे हुए।"

"तुम्हारे बड़े हुज़ूर कैसे हैं ?"

कहां, आपके यहां बजता है सरकार ! आप ही के यहां तो एक साधु बाबा आए हैं, वही दिन-रात जाग-यज्ञ करते रहते हैं, दिशाओं को बांधकर घर से भूत-प्रेत भगाते है। आपको यह सब मालूम नहीं है?"

सुनकर बूढ़े चौधरी जल-भुन उठे। बोले, "मतलब तुम्हारा ? शंख-घंटा बजे तुम्हारे यहां और तुम कहते हो, पूजा मेरे यहां होती है ? तुम क्या आजकल जगे-जगे ही सोते हो बिहारी ? सूद से कुछ रुपये हो गए है, इसलिए जो मुंह में आता है, वही बोलना शुरू कर दिया है ?"

उन्होंने कैलास की ओर ताका। कहा, "सुन ली न कैलास, बिहारी की बात सुन ली ?"

कैलास की उस समय त्रिशंकु की हालत। बूढ़े मालिक की बात पर न तो ना कर पा रहा था, न हां।

बिहारी पाल को अंदरूनी बात का उतना पता नहीं था। वह बोला, "जी सूद का कारबार तो मैं करता हूं, लेकिन क्या आज से ? उसकी वजह से मैं खामखा आपसे झूठ क्यों बोलने लगा ? और शंख-घंटा बजता ही है तो कोई बुरी बात है बड़े मालिक ?"

बूढ़े चौधरी और भी तैश में आ गए। बोले, "उससे तो खोलकर ही कहो न, वह तुम्हारा ढोंग है, ढोंग कहने में शरम कैसी ?"

"अजीब है। मैं आपके पास आपका कुशल जानने के लिए आया। और आप मुझे गाली-गलौज कर रहे हैं।"

"मैंने गाली-गलौज की ! वाह रे वाह ! शंख-घंटा बजने की बात गाली-गलौज है ? तुम तो आजकल बड़े बदअकल हो गए हो जी बिहारी ? थोड़ा-सा पैसा हो जाने से आदमी को ऐसा बदअकल हो जाना चाहिए, छि:-छि: !"

बूढ़े चौधरी ने आखिरी छि: पर जरा जोर देकर बात खत्म की। सोचा, इस छि:-छि: से ही बिहारी पाल नर्म होकर झुक जाएगा।

लेकिन नहीं, बूढ़े चौधरी ने बिहारी पाल को पहचाना नहीं। सोचा, वही पहले का बिहारी पाल ही है। वही मर्से भीगी, निहायत दब्बू-सा आदमी। उसके बाद जो इछामती नदी से कितना पानी बह गया, चारों तरफ की दुनिया कितनी बदल गई, घर बैठे उन्हें इसकी खबर नहीं मिली। सोचा, कालीगंज के हर्षनाथ चक्रवर्ती का ही जमाना शायद अभी तक चल रहा है। अभी भी जमींदार के कहे को लोग वेदवाक्य ही मान लेंगे। चूंकि वह नवाबगंज के सबसे अमीर आदमी है, इसलिए इलाके में दूसरा कोई धनी नहीं रह सकता, रहना जैसे गैरकानूनी हो। वह खुद पंगु हैं, निहाजा सोच लिया है कि सारी दुनिया मानो उन्हीं की तरह पंगु होकर पड़ी हुई है।

इसके बाद ही बात हद को गुजर गई। बिहारी पाल एकाएक बोल उठा, "पहले अपने घर की तरफ निगाह डालकर देखिए बड़े मालिक, दूसरे का अपना माजरा आप ही देख लेंगे।"

"क्या कहा तुमने ? क्या कहा ?"

बिहारी पाल ने कहा, "अभी-अभी तो पोते की शादी ही की है'

की बहू भी घर में आई है। अभी आप उधर ही ध्यान दें, नहीं तो नुकसान आपका ही है, मेरा ठेंगे से।"

बोला और बोलते ही बिहारी पाल उठ खड़ा हुआ। लेकिन उठने के पहले ही जो होना था, हो गया। बूढ़े चौधरी के गले से कैसी तो एक गों-गों आवाज़ निकलने लगी, जैसे वह कुछ कहने जा रहे थे और बात अन्दर ही अटक गई। क्रोध में सक्रिय हाथों को उठाकर उन्होंने क्या कहना चाहा, किसी-की समझ में न आया। बिहारी पाल वहां और खड़ा नहीं रहा, झटपट चल दिया।

लेकिन मुसीबत आन पड़ी, कैलास गुमाश्ता पर। वह घबरा गया। वह वहां रुका नहीं। जल्दी-जल्दी ज़ीने से नीचे उतर आया।

नीचे उस समय छोटे चौधरी ने सदानन्द को कमरे में बन्द करके ताला लगा दिया था। घर के सारे लोग आस-पास से उझक-उझककर यह देख रहे थे।

घर के दरवाज़े में ताला बन्द होने से क्या हुआ, बगल में ही एक बड़ा-सा झरोखा था। सीखचों में से साफ दिखाई दे रहा था—सदानन्द ने न तो कोई विरोध किया, न ही बाधा दी। बन्द हो जाने के बाद कमरे में पड़ी खाट पर वह बैठ गया और सिर को झुका लिया।

गौरी भी बुत-सी खड़ी अब तक सब देख रही थी। ताला-कुंजी लाकर उसीने छोटे बाबू को दी थी। क्षण-भर में क्या जो हो गया, किसीने उसी क्षण उसकी कल्पना भी नहीं की। सदानन्द का अपराध क्या है और किस अपराध की यह इतना बड़ा दण्ड है, इसका भी किसीको अनुमान नहीं हुआ।

प्रीति ने झरोखे के बाहर से पूछा, "क्यों रे मुन्ने, तूने क्या किया था? तेरे बाप तुझपर इस कदर नाराज़ क्यों हो गए? क्या किया था तूने?"

प्रकाश मामा भी अभी तक कुछ नहीं बोला था। पीछे खड़ा वह सब देख रहा था। इतना बड़ा बातूनी आदमी, वह भी जैसे घटना की इस आकस्मिकता से ज़रा देर के लिए बिलकुल काठ का मारा-सा रह गया था।

प्रीति ने प्रकाश से भी पूछा, "क्या हुआ था रे प्रकाश, तेरे जीजाजी इतना बिगड़ क्यों गए? मुन्ना ने क्या किया था?"

प्रकाश ने कहा, "इसने बाबाजी का त्रिशूल छीन लिया था और उनकी जटा खींचते हुए उन्हें भला-बुरा कह रहा था।"

"भला बुरा कह रहा था? गालियां दे रहा था मुन्ना? उंहूं, यह हो ही नहीं सकता। मुन्ना कभी किसीको गाली दे ही नहीं सकता।"

अन्दर सदानन्द सिर झुकाए बैठा था। चुपचाप। प्रीति ने पूछा, "क्यों मुन्ने, तूने बाबाजी को गालियां दी थीं? क्या किया था बाबाजी ने?"

सदानन्द जैसे बैठा था, बैठा रहा। कोई जवाब नहीं दिया उसने।

प्रीति ने फिर कहा, "पूछती हूं, सो जवाब दे।"

झरोखे से बाहर खड़ी प्रीति पूछ रही है और अन्दर जो सुन रहा है, वह पत्थर या पेड़, समझ में नहीं आ रहा है।

में ताला बन्द करके रखोगे ? ताला लगाने से लड़का तुम्हारा सुधर जाएगा ? यह क्या नन्हा-नादान है कि इसे मार-पीट कर, भुला-फुसलाकर सम्भाल लोगे ?"

चौधरी जी ने कहा, "इतना बड़ा लड़का और उसे इतनी अक्ल भी नहीं रहेगी । उसने सोच लिया है, वह जो जी में आएगा, वही करेगा ? जो लड़का अपने बाप के मुंह पर करारा जवाब देता है, उसे ऐसी सजा देनी ही चाहिए । जरूरत क्या है मिलने की । ऐसा लड़का रहा तो क्या, न रहा तो क्या ! ऐसे लड़के को तुमने गर्भ में धारण क्यों किया था ?"

आः !

प्रीति बेहद खिजला उठी, "तुम्हारी जबान पर रोक भी नहीं । क्या कह रहे तुम, यह भी नहीं जानते हो ? दो, कुंजी मुझे दो, मैं खोल देती हूं ।"

चौधरी जी ने कुंजी कसकर दबा ली, "नहीं । कुंजी हरगिज नहीं दूंगा ।"

प्रीति बोली, "पागलपन मत करो । दो, कुंजी दे दो ।"

"मगर तुम्हारा लड़का तुरन्त बाबाजी से माफी मांगे । उनके पांव छूकर उनसे माफी मांगे ।"

प्रीति बोली नहीं । उसने झटके से चौधरी से कुंजी छीन ली । लेकिन वह जैसे ही ताला खोलने गई कि चौधरी जी ने उसका हाथ पकड़ लिया । बोले, "कुंजी दे दो, दे दो कुंजी, ताला नहीं खोल सकती ।"

वह पत्नी का हाथ पकड़कर खींचने लगे ।

जब तक प्रकाश मामा ने चौधरी जी का हाथ पकड़ लिया । बोला, "जीजाजी, कर क्या रहे हैं आप ! आप शांत होइए ।"

चौधरी जी ने प्रकाश के हाथ को झटक दिया । बोले, "खबरदार, तुम मेरा हाथ पकड़ने वाले कौन होते हो ? हटो यहां से । तुम्हें मैंने अभी देखा है न ? कहीं अबकी हाथ बढ़ाया तो तुम्हें आंगन के कुएं में डाल दूंगा—हटो ।"

प्रकाश ने कहा, "मगर आप ठंडे दिमाग से सोचिए जीजाजी ! दीदी जो कह रही हैं, ठीक ही कह रही हैं । "

"फिर ? फिर तुम सामने आ रहे हो ?"

किन्तु इसी मौके से प्रीति ताला खोल चुकी थी । बोली, "मुन्ने आ । बाहर निकल आ ।"

सदानन्द ने लेकिन बाहर निकलने की कोई कोशिश नहीं की । प्रीति खुद ही अन्दर गई और सदानन्द का हाथ पकड़कर उसे खींचने लगी । बोली, "हां किए खड़ा देख क्या रहा है ? बाहर चल ।"

चौधरी जी जब तक प्रकाश से जूझ ही रहे थे । बोले, "तुम हमारे मामले में दखल क्यों देने आते हो ? तुम्हारा अपना घर-द्वार नहीं है ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "मैं तो जाना चाहता हूं । मेरी पत्नी, मेरे बाल-बच्चे वहां पड़े हैं, मैं तो चला ही जाना चाहता हूं । "

"तो फिर जा क्यों नहीं रहे हो । जा ही सकते हो । बला टले ।"

सा बन्द करके रक्खोगे? ताला लगाने से लड़का तुम्हारा सुधर जाएगा?
ना नन्हा-नादान है कि इसे मारपीट कर, फुसला-फुसलाकर सन्मार्ग
?"

चौधरी जी ने कहा, "इतना बड़ा लड़का और उसे इतनी अक्ल भी नहीं
ता। उसने सोच लिया है, वह जो जी में आएगा, वही करेगा? जो लड़का
न बाप के मुंह पर करारा जवाब देता है, उसे ऐसी सजा देनी ही चाहिए।
रत क्या है छिपाने की। ऐसा लड़का रहा तो क्या, न रहा तो क्या! ऐसे
लड़के को तुमने गर्भ में धारण क्यों किया था?"

आः!

प्रीति बेहद तिलमिला उठी, "तुम्हारी जबान पर रोक भी नहीं। क्या कह रहे हो तुम, यह भी नहीं जानते हो? लो, कुंजी मुझे दो, मैं खोल देती हूं।"

चौधरी जी ने कुंजी कसकर दबा ली, "नहीं। कुंजी हरगिज नहीं दूंगा।"

प्रीति बोली, "पागलपन मत करो। लो, कुंजी दे दो।"

"मगर तुम्हारा लड़का तुरन्त बाबाजी से माफी मांगे। उनके पांव छूकर उनसे माफी मांगे।"

प्रीति बोली नहीं। उसने झटके से चौधरी से कुंजी छीन ली। लेकिन वह जैसे ही ताला खोलने गई कि चौधरी जी ने उसका हाथ पकड़ लिया। बोले, "कुंजी दे दो, दे दो कुंजी, ताला नहीं खोल सकती।"

वह पत्नी का हाथ पकड़कर खींचने लगे।

जब तक प्रकाश मामा ने चौधरी जी का हाथ पकड़ लिया। बोला, "जीजाजी, क्या कर रहे हैं आप! आप शांत होइए।"

चौधरी जी ने प्रकाश के हाथ को झटक दिया। बोले, "खबरदार, तुम मेरा हाथ पकड़ने वाले कौन होते हो? हटो यहां से। तुम्हें मैंने अभी टोका है न? यदि अबकी हाथ बढ़ाया तो तुम्हें आंगन के कुएं में डाल दूंगा—हटो।"

प्रकाश ने कहा, "मगर आप ठंडे दिमाग से सोचिए, जीजाजी! दीदी जो कह रही है, ठीक ही कह रही है।"

"फिर? फिर तुम मानने आ रहे हो?"

किन्तु इसी मौके से प्रीति ताला खोल चुकी थी। बोली, "मुन्ने आ। बाहर निकल आ।"

सदानन्द ने लेकिन बाहर निकलने की कोई कोशिश नहीं की। प्रीति खुद ही अन्दर गई और सदानन्द का हाथ पकड़कर उसे खींचने लगी। बोली, "हां फिर खड़ा देख क्या रहा है? बाहर चल।"

चौधरी जी अब तक प्रकाश से उलझे ही रहे थे। बोले, "तुम हमारे मामले में दखल क्यों देने आते हो? तुम्हारा अपना घर-द्वार नहीं है?"

प्रकाश मामा ने कहा, "मैं तो जाना चाहता हूं। मेरी पत्नी, मेरे बाल-बच्चे वहां पड़े हैं, मैं तो चला ही जाना चाहता हूं।"

"तो फिर जा क्यों नहीं रहे हो। जा ही सकते हो। बला टले।"

लेकिन दीदी जो मुझे जाने नह। देतीं। मैं तो सदानन्द के व्याह के बाद
ना चाह रहा था, दीदी ने रोक लिया।"
चौधरी जी ने कहा, "दीदी कौन होती है? यह घर मेरा है, इस घर का
क मैं हूं। मैं कहता हूं, तुम यहां से चले जाओ। तुम यहां बैठे-बैठे मेरे
ह क्यों तोड़ रहे हो?"

प्रकाश जैसे बेहया को भी मानो मान-अपमान का ज्ञान है। नहीं तो,
जाजी के कहने से एकाएक वह वैसे चुप क्यों हो जाता। अब तक जो उसकी
ल थी, इस बात से वह पिचक-सी गई। वह काठ-सा एक ओर जाकर
ड़ा हो गया। घर के इतने-इतने लोगों के सामने उसका इतना बड़ा अपमान
उसके जीवन में और कभी नहीं हुआ।

उसने सिर्फ इतना ही कहा, "तो नोनी डाक्टर को बुलाने नहीं जाऊं?"

इन झमेलों में चौधरी जी का दिमाग शायद ठिकाने नहीं था। प्रकाश
के कहते ही उन्हें मानों याद आ गया। बोले, "डाक्टर के यहां जाने के लिए
मैंने थोड़े ही मना किया है? पहले डाक्टर के यहां जाओ।"

"लेकिन आपने तो मुझे इसी वक्त घर से चले जाने को कहा?"

चौधरी जी ने कहा, "देखता हूं, तुम बड़े बेवकूफ हो। अजी, डाक्टर
को बुला देने के बाद अपने घर नहीं जा सकता है? डाक्टर को बुला दो,
खा-पी लो, दोपहर की गाड़ी से चले जाओ।"

अब ये बातें प्रीति के कानों पहुंचीं। वह करीब आई। बोली, "क्या
हुआ? किसे जाने को कह रहे हो। कौन घर से चला जाए?"

प्रकाश ने मुंह सुखाकर कहा, "जीजाजी मुझे यहां से चले जाने को कहते
हैं।"

"क्यों? प्रकाश क्यों चला जाएगा?"

इतनी देर के बाद चौधरी जी की नजर पड़ी कि कमरे का दरवाजा
खुला हुआ है। अन्दर झांककर देखा, मुन्ना नहीं था। बोले, "मुन्ना कहां
गया?"

प्रीति ने कहा, "उसे मैंने छोड़ दिया।"

"छोड़ दिया माने? कहां गया वह?"

"कहां गया, यह मुझे क्या मालूम?"

चौधरी जी ने कहा, "तुमने दरवाजा क्यों खोल दिया? मैंने खुद से उसे
बन्द किया था, ताला खोलकर तुमने निकाल क्यों दिया?"

प्रीति ने कहा, "निकाल दिया, ठीक किया है?"

चौधरी जी काठ के मारे-से वहीं खड़े रहे। उसके बाद जब कुछ आपे
आए, तो बोले, "तुमने ऐसा कहा?"

प्रीति ने कहा, "कहूं नहीं। ऐसे जवान लड़के को तुमने सबके सामने ऐ
अपमानित क्यों किया? अब उसकी उम्र हुई, उसका व्याह हो गया, घ
उसकी नई बहू है, ऐसी हालत में तुमने उसकी इज्जत नहीं रक्खी और मैं
नहीं खोलूंगी?"

चौधरी जी ने कहा, "उसकी इज्जत? तुमने उसीकी इज्जत की सोची, मेरी इज्जत का तो एक बार भी ख्याल नहीं किया? तुम्हारे लिए तुम्हारे लड़के की इज्जत ही बड़ी हुई?"

प्रकाश क्या करे, समझ नहीं पा रहा था। वह एक बार जीजाजी के और एक बार दीदी के मुंह की ओर ताक रहा था। चौधरी जी गुस्से में गुर्रा रहे थे। दीदी से जीजाजी को इस तरह से झगड़ते प्रकाश ने कभी नहीं देखा। दीदी कह रही थी, "ठीक ही किया, सदानन्द को ताला खोलकर निकाल दिया।" जीजाजी कह रहे थे, "तुमने ताला क्यों खोला?" तो? जीजाजी के कहने की कोई कीमत नहीं?

जीजाजी बीच में बोल उठे, "खैर, मैं अगर इस घर का कोई नहीं हूं तो या तो मैं ही घर छोड़कर चला जाता हूं, नहीं तो तुम ही चली जाओ।"

दीदी ने कहा, "तुम क्यों जाओगे? तुमने कौन-सा दोष किया है? जाना होगा, तो मैं ही जाऊंगी। मुझे तुम मेरे नैहर भेज दो, जो थोड़े दिन जीना है, पिताजी के पास ही रहूंगी—तुम दिन-भर अपनी जगह-जायदाद और बेटा-पतोहू को लेकर आराम से रहना। कोई तुमसे कुछ कहने नहीं आएगा।"

चौधरी जी ने कहा, "तुम्हारी यह बात तो गुस्से की हुई। मैंने तुम्हें ऐसा कुछ कहा है कि तुम भागलपुर चली जाना चाहती हो?"

प्रीति ने कहा, "कहने को बाकी क्या रखा तुमने? आदमी और किस तरह से किसीको हेठी करता है? प्रकाश तो सामने ही खड़ा है। वह भी तो सब सुन रहा है। यही कहे न कि तुमने मेरा अपमान किया कि मैंने तुम्हारा अपमान किया? बोले वह, छाती पर हाथ रखकर बोले।"

प्रकाश ने कहा, "चुप भी करो दीदी, क्यों बात बढ़ा रही हो? जाओ, तुम अपना काम करो जाकर।"

चौधरी जी को इतनी देर के बाद फिर मानो प्रकाश की मौजूदगी का पता चला। बोले, "तुम चुप तो रहो। तुम्हें मातबरी दिखाने को किसने कहा? मैंने तुम्हें नानी डाक्टर को बुलाने के लिए कहा न।"

इतने में अन्दर से धीमे गले की आवाज आई, "मां!"

अब मानो सबको होश आया। जैसे इतनी देर के बाद एकाएक ख्याल आया कि इस घर में ऐसी भी कोई है, जिसके सामने इस तरह का व्यवहार उचित नहीं। कम-से-कम आंख की लाज के नाते भी उसके सामने जरा संभलकर बोलना चाहिए। इसके अलावा भी चौधरी जी को फिर से याद आ गया कि ऊपर बूढ़े मालिक की हालत नाजुक है। और भी याद आ गया कि थोड़ी ही दूर पर बाबाजी भी हैं—पति-पत्नी का झगड़ा उनके कानों भी पहुंच सकता है। सबको सब बात याद आ गई। बगल ही में बाज की निगाह वाले बिहारी पाल के कानों भी यह आवाज जा सकती है, अब इन सबको इस बात का भी ख्याल हुआ। और, ख्याल आया कि पल में सबको अपना असली स्वरूप मिल गया। लाज से चौधरी वहां से जैसे भाग खड़े हों, तो जी जाएं। देखा, सामने ही प्रकाश भौंचक्का-सा खड़ा है। उसे साथ लेकर बाहरी दालान की

जाते-जाते बोले, "तुम अभी तक खड़े ही हो साल साहब,
पट कर रहे हैं।"

जीजाजी का यह रूप भी प्रकाश का देखा हुआ है। जब उन्हें उससे कोई ज़रूरी काम कराना होता है, तो उनके मुंह से आदर का यह संबोधन 'साले साहब' निकल आता है।

प्रकाश भी जीजाजी की बात से गद्गद् हो गया। बोला, "आप ज़रा भी फिक्र न करें जीजाजी, बस मैं भागता हुआ जाता हूं और फौरन आता हूं। प्रकाश के रहते आपको कुछ सोचना नहीं पड़ेगा! मैं चला।"

प्रकाश चला गया।

प्रीति बगल के बरामदे में गई। देखा, बहू मुन्ने के कमरे से आकर बरामदे पर खड़ी है। घूंघट काढ़े हुए हैं। लेकिन घूंघट की फांक से मुंह का जितना-सा हिस्सा दिखाई दे रहा था, उसीसे समझ में आ रहा था कि बहू का मुंह जैसे सूख गया है। सिर्फ 'मां'—एक संक्षिप्त पुकार। लेकिन उसी छोटी-सी पुकार से प्रीति तुरन्त और ही स्त्री हो गई। अब तक जिसे बेहया की नाईं पति से झगड़ने में झिझक नहीं हुई, वही प्रीति पल में स्नेह-ममता करुणा से जननी रूप में बदल गई। बहू के पास जाकर बोली, "मुझसे कुछ कह रही थी बहूरानी?"

नयनतारा उसी तरह से सिर झुकाए हुए ही रही। उसके मुंह की बात मानो ज़रा देर के लिए मुंह में ही अटकी रह गई। उसके बाद बड़ी मुश्किल से उसके मुंह से बात निकली। बोली, "मैं कह रही थी क्या मां, मुझे मेरे पिता-जी के पास भिजवा दीजिए न।"

प्रीति ने कहा, "छि: बिटिया, ऐसा भी कहना चाहिए? तुमने देखा नहीं, तुम्हारा सोच-सोचकर तुम्हारे ससुर ने अपना दिमाग कैसा गरम कर लिया है? सारी बातें तो तुम्हारे कानों पहुंची ही होंगी। इससे तुम कुछ और न सोचो, तुम्हारी सुसुर का यही स्वभाव है। बिगड़े तो बिगड़े, आग हो गए और फिर दूसरे समय वही आदमी एकदम पानी। उनकी बात का ख्याल मत करो बिटिया, उनकी बात पर कान देती होती, तो मैं ही कबकी चली गई होती अपने नैहर। इस घर की सभी मर्द-सूरतें की ऐसी बातों पर ध्यान देने से क्या घर-गिरस्ती चल सकती है बहूरानी! अपने ससुर को तुमने आज देखा, मेरे साथ भी ठीक ऐसा ही करते हैं। इस घर के मर्द जब गुस्सा होते हैं, उन्हें होश-हवास नहीं रहता।"

नयनतारा ने कहा, "लेकिन मेरे लिए जब इतना झंझट झमेला है, मेरे चले जाने से ही सब ठीक हो जाएगा। मैं न हो तो कुछ दिनों के लिए जाऊं, बाबूजी का गुस्सा जब उतर जाएगा, तो फिर लौट आऊंगी।"

"नहीं-नहीं बहू, ऐसा नहीं होता। तुम पागलपन मत करो। तुम कमरे में जाकर बैठो ज़रा, मैं ज़रा रसोई-घर की ओर से झांककर आती हूं—मैं ही नहीं देखूंगी, उधर ही सब बंटाढार।"

प्रीति इतना कहकर विष्णु की मां को देखने के लिए रसोई-घर की

रही थी कि आमने-सामने दीनू आ खड़ा हुआ। बोला, "मां जी, बहू के नैहर से सामान लेकर आदमी आया है।"

"सामान ? काहे का सामान ?"

"जी, जाड़े का।"

सुनकर प्रीति का दिमाग फिर गरम हो गया। समधी जी को सामान भेजने का और कोई समय नहीं मिला। ठीक इसी समय !

कालीकांत जी की नजर सभी तरफ थी। हर बात को सहज कर लेने की क्षमता उनमें थी, इसीलिए शायद इतने बड़े शोक में भी वह बेटी की सुसराल में जाड़े का सामान भेजने की बात न भूले। उन्होंने सोचा, अपना चाहे जो हो, कम-से-कम सास-ससुर के पास बेटी की आदर-कदर हो। नयनतारा सुखी रहे, इसीमें उनका सुख है।

निखिलेश आदि से भी वह यही कहते थे। कहते, "मेरा जो कुछ भी है, सब तो नयनतारा का है। वह बड़े घर में ब्याही है, सामान-वामान उनके सम्मान को देखते हुए ही भेजना होगा न।"

सच पूछिए तो खरीदारी सब निखिलेश ने ही कर दी थी। कालीकांत जी ने उससे कह दिया था, "जो भी खरीदो, बाजार की सबसे अच्छी चीज हो, समझ गए ? मलाई-मिठाई, संदेश, कुरता, कपड़ा—बेहतरीन से बेहतरीन हो जिसमें।"

कालीकांत जी को शौकीनी की कोई वजा कभी भी नहीं थी। चप्पल, धोती और चादर से ही अपनी जिन्दगी बिता रहे हैं। कुरता है, पर उसे पहनने की वैसी अनिवार्यता नहीं होती। इसीलिए उन्होंने निखिलेश को ही बुलवा भेजा था। समझाकर उसे बताया। कहा, "देखो, नयनतारा के सास-ससुर जिसमें यह न सोचें कि चूंकि बहू की मां नहीं है, इसलिए समधी जी ने जाड़े का तरव तक नहीं भेजा।" फिर कहा, "तुम तो कलकत्ता जाते हो। वहां सबसे अच्छी दुकान से गरम कपड़ा लेकर सबसे अच्छे दरजी से कुरता सिलवा लाना।"

निखिलेश ने वैसा ही किया था। कोई कोर-कसर नहीं रखी। उसे मास्टर साहब का कहा याद था, रुपया चाहे कितना भी लगे, मुझसे ले लेना। रुपये के लिए सामान जैसा-तैसा न हो। अच्छी-से-अच्छी चीज हो, ताकि नवाबगंज के लोग देखकर कहें कि हां, चौधरी जी के समधी ने सामान जैसा सामान भेजा है।

मगर उन्हें यह क्या पता था कि उनके इतने कष्ट की कमाई से भेजे गए सामान की ऐसी छीछालेदर होगी। विपिन नाई के सिवाय कालीकांत जी के लिए सामान ले जाने वाला दूसरा आदमी और कौन था ! विपिन ने ही और चार आदमी जुटा लिए थे। एक के सिर पर दही-रबड़ी, एक के सिर पर मिठाइयों की परात, एक के नारंगी, गोभी, मटर के छीमियों की टोकरी, एक

...थ में वीसेक सेर वजन की एक रोहू मछली, और एक के माथे पर कुरसी इत्यादि।

नोनी डाक्टर को बुला लाकर प्रकाश मामा ने यह सब जो देखा, तो वाक् रह गया। वोला, "क्यों जी, समधी जी के यहां से सामान लेकर आए ...। अरे वाह! समधी जी तो वड़े काम के आदमी हैं, हर तरफ ख्याल है ...नका। हां, मलाई-मिठाई तो है देख रहा हूं।"

उससे रहा नहीं गया। वह सीधे अन्दर चला गया। वोला, "दीदी, अरी ओ दीदी!" यह खुशखवरी दीदी को दिए वगैर मानो उसके पेट का अन्न हज़म नहीं हो रहा था। लेकिन दीदी वहां थी नहीं। प्रीति उस समय यह खवर देने के लिए वहू के पास गई थी। उससे कह रही थी, "तुम्हारे पिताजी ने जाड़े का सामान भेजा है वहूरानी! जो लोग आए हैं, वे शायद तुमसे मिलना चाहें। इसलिए तुम वदलकर दूसरी कोई अच्छी-सी साड़ी पहन लो। आईन में देख-कर ज़रा मुंह-हाथ धो-पोंछ लो।"

इस खवर से नयनतारा क्षण में ही दूसरी नयनतारा हो गई। पिताजी ने भेजा है! तो क्या विपिन आया है?

सास ने फिर कहा, "देखो वहू, तुम उनसे यह सव झमेले-वमेले की वात न कहना, हां?"

नयनतारा अव क्या कहे! पिताजी ने जाड़े का सामान भेजा है। रात-भर की जो ग्लानि उसके मन में थी, वह पल में पुंछ गई। सवेरे से इस घर में जो-जो रवैया चल रहा है, वह सव भी मानो अव उसके याद न रहा। पिता-जी ने सामान भेजा है। नयनतारा को ढूंढ़े एक आश्रय मिल गया मानो। वह एकवारगी वेवस, वेसहारा, वेचारी तो नहीं है। एक जगह तो उसके लिए अभी भी है, जहां जाकर खड़े होने पर उसे सिर छिपाने का आश्रय मिलेगा। मां के देहान्त के वाद भी वह विलकुल निरुपाय नहीं हुई है।

वह झट आईने के सामने गई। आंचल से अपना मुंह पोंछा। रात जागने की वजह से आंखों के नीचे एक काली रेखा-सी पड़ गई थी। उस जगह उसने थोड़ा-सा पाउडर लगा लिया। घर के एक कोने में जाकर उसने एक नई साड़ी पहनी। नैहर के लोग जिसमें यह समझें कि वह यहां मज़े में है, कोई तकलीफ नहीं है उसे। सास-ससुर ने उसे वड़े आदर-जतन से रखा है।

वाहर से आवाज आई, "दीदीजी!"

भिड़के हुए किवाड़ खोलकर नयनतारा ने कहा, "ओ, आओ।"

पांचों आदमी कमरे में आए। आगे-आगे विपिन। विपिन हंसता हुआ ही नयनतारा के आगे जाकर खड़ा हुआ। पूछा, "कैसी हो दीदीजी?"

"अच्छी हूं। तुम लोग? अच्छे हो न?"

"जी दीदीजी!"

"वावूजी? वावूजी कैसे हैं?"

"पंडित जी मुंह से तो कहा करते हैं कि अच्छे हैं। लेकिन तुम्हारे आने के वाद से मन उनका कैसा तो हो गया है! वह पंडित जी नहीं...

तिसपर इतना बड़ा शोक का धक्का लगा। हम लोग होते तो टूट ही जाते दीदीजी ! यह तो पंडित जी ही हैं कि रीढ़ ताने खड़े हैं।"

"लेकिन यह सामान-वामान का इंतजाम किसने किया ? बाबूजी ने अकेले ही सब कर लिया ?"

"और क्या ! अकेले के सिवाय दुकेला है कौन, जो कर देगा ?"

"बाबूजी के खाने-पीने का कैसे चल रहा है ?"

"वहीं, वह ब्राह्मणी है न। वही पका-चुका जाती है। और फिर पंडित जी का खाना भी क्या !"

कहते-कहते विपिन को कैसा संदेह-सा हुआ। बोला, "तुम्हारा चेहरा कैसा सूखा-सूखा-सा लग रहा है दीदीजी, तबीयत तो ठीक है न ?"

नयनतारा ने होठों पर हंसी खींच लाने कि कोशिश करते हुए कहा, "ठीक ! मुझे क्या हुआ है कि तबीयत ठीक नहीं रहेगी ? सास-ससुर का इतना जतन पा रही हूं, ठीक क्यों न रहूंगी।"

"और, दुल्हा बाबू ? उन्हें नहीं देख रहा हूं। वह कहां हैं ?"

विपिन ने दुखती नस ही छू दी। लेकिन नयनतारा ने होंठों पर वही हंसी बरकरार रखकर कहा, "अभी-अभी तो थे, यहीं कहीं होंगे।"

उसी समय बाहर कुछ हो-हल्ला-सा हुआ। कोई जैसे चीख उठा, "मुन्ना कहां गया ? गया कहां ? वह अगर ऐसी ही हरकत करता रहेगा, तो मेरी इज्जत रहेगी ?"

जिन्होंने ये बातें कहीं, लगा, वह बहुत गुस्से में हैं। उनके गले से सारा घर ही जैसे गूंज उठा।

विपिन के साथ और जो लोग आए थे, यह आवाज उनके कानों भी गई। बाहर गोलमाल हो ही रहा था। औरत के-से गले से किसीने पूछा, "क्या, फिर क्या हो गया ! आपे से ऐसे बाहर क्यों हो रहे हो ?"

"न होऊं तो क्या करूं ? तुम लोगों ने ही तो लाड़ से लड़के को बिलकुल सिर पर चढ़ा दिया है। तुमने और इस प्रकाश ने। लड़के की शादी हो गई, तो उसमें क्या समझ लिया, उसके जो जी में आएगा, वही करेगा ? मैं उसे कुछ कह भी नहीं सकता ?"

"चुप भी रहो। धीरे-धीरे नहीं बोला जाता ? इतना चिल्लाने का क्या है ?"

"हां, चिल्लाऊंगा। मैं इधर नोनी डाक्टर को लेकर ऊपर गया पिताजी को दिखलाने के लिए और उधर वह बाबाजी का त्रिशूल लेकर चम्पत हो गया।"

इतने में प्रकाश आ पहुंचा। वह डाक्टर साहब का बैग पहुंचाने गया था। लौटकर आया तो यहां जो हो रहा था, देखकर अवाक् हो गया। बाबाजी के कमरे में सिंदूर लगा हुआ जो त्रिशूल था, उसे क्या तो सदानन्द ले भागा !

चौधरी जी बोल उठे, "कसूर तो तुम्हारा ही है। मैंने तो सदा को कमरे में बन्द कर दिया था, पर तुम लोगों ने ही उसे निकाल दिया। अब वह गया

?"

प्रीति ने बीच में ही टोका। कहा, "मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, चुप रहो। ...धियाने से सामान लेकर लोग आए हैं, उनके सामने यह बखेड़ा न करो। और फिर ...हें जाने दो, फिर लड़के को जी चाहे जितना भला-बुरा कहना। तुम्हें क्या अक्ल से कोई ...र में वहू है, वह क्या सोच रही होगी, सो तो कहो। ...रास्ता ही नहीं !"

चौधरी जी जैसे आसमान पर से गिर पड़े। बोले, "वहां से सामान आया है ? किस बात का सामान ? जाड़े का ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "हां जीजाजी ! मैंने अपनी आंखों देखा है। सदा के कपड़े, नारंगी, गोभी, मटर की छेमियां, मलाई-मिठाई..."

विपिन के साथ आए लोग सब सुन रहे थे। विपिन ने नयनतारा की ओर देखा। नयनतारा का चेहरा मानो फख हो गया था। पूछा, "यह गला किसका है दीदीजी ?"

नयनतारा क्या जवाब दे। लाज और अपमान से उसका सिर तो जैसे ज़मीन में गड़ गया था।

परन्तु इस सवाल का जवाब उसे देना नहीं पड़ा।

विपिन ही बोल उठा, "घर में कौन है दीदी जी ? दुल्हा बाबू शायद उसका त्रिशूल लेकर चले गए हैं।"

इतने में सास वहां आई। बोली, "चलो भैया, खाने चलो। तुम लोगों का खाना परोस दिया गया है।"

विपिन ने माटी तक झुककर दीदीजी की सास को प्रणाम किया। प्रीति बोली, "हां-हां, हो गया। तुम लोगों के समाचार तो सब अच्छे हैं ?"

अन्दर ही रसोई-घर के बरामदे पर कतार से पत्तल डालकर उन लोगों को खिलाने का इन्तज़ाम किया गया था। भरपेट भोजन। पूरी, तले हुए बैंगन से लेकर दाल, मछली, दही मिठाई—सब कुछ। जो लोग समधियाने से सामान लेकर आए, उन्हें खाने का हक है। गौरी परोस रही थी और प्रीति खड़ी-खड़ी निगरानी कर रही थी।

खाते ही खाते विपिन ने पूछा, "दुल्हा बाबू को नहीं देख रहा हूं, वह कहां हैं ? पिछली बार पंडित जी आए थे, उनसे भी उनकी भेंट नहीं हुई। मैं आ रहा था, तो उन्होंने उनसे मिलने को कहा था।"

प्रीति ने कहा, "मगर मुन्ना तो अभी घर में नहीं है। मुकदमे का कोई कागज़ लेकर वह वकील के पास राणाघाट गया है।"

जवाब सुनकर विपिन कुछ उलझन में पड़ गया। दीदीजी ने कुछ कहा, दीदीजी की सास कुछ कह रही हैं और दीदीजी के ससुर का कुछ और ही कहना।

बड़ी देर के बाद चौधरी जी आए। तब तक विपिन वगैरह खा-पी चु... थे। हाथ-मुंह धोकर पान खा रहे थे।

"समधी जी कैसे हैं ?"

"जी, अच्छे ही हैं।"

"तुम लोगों ने भरपेट भोजन तो किया न?"

"जी हां। खूब खाया। तो, अब आज्ञा दें।"

उनको दुबारा प्रणाम करके वे लोग जाने को हुए। विपिन ने कहा, "जी, सबसे तो भेंट हुई, पर दुल्हा बाबू से नहीं हो सकी।"

चौधरी जी ने कहा, "सवेरे तक तो वह घर पर ही था। तुम लोगों के आने के कुछ ही पहले वह चने का खेत देखने गया। इस बार पांच सौ बीघे में चना बोया गया है न, खुद से निगरानी न करे तो कौन देखे! इसीलिए।"

विपिन और असमंजस में पड़ गया। उसे लगा, हर बात के पीछे कैसा तो एक रहस्य-सा है। एक ही घर के लोग अलग-अलग बात क्यों बोल रहे हैं? तो क्या, दुल्हा बाबू के बारे में ठीक-ठीक किसीको भी नहीं मालूम है।

विपिन वगैरह चले गए, तो प्रकाश दौड़ता हुआ जीजाजी के पास आया। बोला, "देखिए जीजाजी, देखिए। आप कह रहे थे, बाबाजी का त्रिशूल लेकर सदा भाग गया, त्रिशूल तो घर में ही था, मैंने ढूंढ़कर निकाला।"

चौधरी जी ने पूछा, "कहां था?"

"मुझे दासी हंडीदार ने दिया। अनाज की बोरी के पास पड़ा था।"

"वहां कौन ले गया?"

प्रकाश ने कहा, "कौन ले गया, यह किसे पता। हो सकता है, भूत ले गया हो। बाबाजी ने भूत-प्रेतों को नाराज कर दिया है, भला वह सब इस आसानी से सुनता है? हो सकता है, भागते वक्त इस हथियार को सामने पाया और उठा ले गया।"

त्रिशूल लेकर चौधरी जी बाबाजी के कमरे की तरफ जाने लगे। प्रकाश भी उनके पीछे-पीछे जा रहा था। बोला, "आप खामखा सदा को दोष दे रहे थे।"

"तुम चुप तो रहो, बकर-बकर मत करो। यह बकर-बकर मुझे अच्छा नहीं लगता। एक तो मैं आप ही अपनी परेशानी से मर रहा हूं, और इसी वक्त बूढ़े मालिक बीमार, समधियाने का सोगात, बाबाजी का त्रिशूल, लड़के की शरारत, कचहरी में मुकदमा—टिड्डी की तरह सब एकबारगी ही टूट पड़े हैं।"

बोलते-बोलते दोनों बाबाजी के कमरे में दाखिल हुए। बाबाजी लेकिन आंखें बन्द करके जप कर रहे थे। ध्यान में मग्न। बाहर का कोई ख्याल नहीं। किसी भी पार्थिव वस्तु की तरफ उनका ध्यान नहीं। ध्यान-योग में उस समय वह शायद विश्व-ब्रह्मांड के अलौकिक-लोक में विचर रहे थे।

चौधरी जी और प्रकाश मामा जैसे आए थे, वैसे ही बैरंग वापस हो गए। बाबाजी का ध्यान भंग करने को जी न चाहा।

एक ही दिन में घर में तूफान-सा गुजर गया। मेहमान, मेजबानी, बीमारी और झमेलों का तूफान। सच पूछिए तो तूफान यह सदानन्द के उपनयन की रस्म के दिन से ही शुरू हुआ था। उसके बाद से झंझटों का अन्त ही नहीं

रहा। चौधरी जी और प्रीति के तो दिमाग खराब हो जाने की नौबत।

अकेला प्रकाश किधर-किधर सम्भाले। उसे एक बार डाक्टर के यहां जाना पड़ता है, तो एक बार सदानन्द को सम्भालना पड़ता है। उसे भी सारी रात नींद नहीं आई। सदानन्द के कमरे के सामने अंधेरे बरामदे के ठंडे फर्श पर लेटे रहने से नींद आ सकती है।

डाक्टर के यहां से दवा लाकर बूढ़े मालिक के कमरे में रख दिया और भागा-भागा रसोई-घर में हाज़िर हो गया। बोला, "दीदी, तुमने मुझे सौगात वाली मिठाई नहीं दी?"

दीदी उस समय रसोई की ताकीद में लगी थी। सुनते ही झुंझला उठी, "अभी मुझे कतई समय नहीं है—दूंगी..."

"इसका मतलब? पीछे तो खाऊंगा ही। अभी ज़रा चखने को भी नहीं दोगी?"

दीदी से गुस्सा सम्भालते नहीं बना। झुंझला उठी, "क्यों रे प्रकाश, इतनी उमर हो गई तेरी, बुड्ढा हो गया, तेरा ललाना नहीं गया है? अभी क्या मुझे फ़ुरसत है कि तुझे सौगात की मिठाई दूं?"

"तुम्हें देने के लिए कौन कह रहा है? कहां रक्खी हैं, मुझे बताओ न, मैं आप ही ले लूंगा, तुम्हें तकलीफ नहीं उठानी पड़ेगी—। समधी जी ने कैसा सौगात भेजा है, अच्छा है कि बुरा—यह परखना नहीं होगा?"

दीदी ने एकाएक हाथ का काम छोड़ दिया और भंडार से मिठाइयों की दो हांड़ियां लाकर प्रकाश के सामने रख दी, "ले, खा। भकोस।"

प्रकाश कहा, "अरे-रे! यह क्या किया? इतनी सारी मिठाइयां? इतनी मिठाइयां कोई खा सकता है भला! तुमने अपने लिए नहीं रक्खी? जीजाजी भी तो खाएंगे?"

उधर नहा-धोकर चौधरी जी आ धमके। बोले, "गौरी, ला, मेरी थाली ला—।" कि प्रकाश पर नजर पड़ी। हैरान रह गए। बोले, "क्या खा रहे हो?"

प्रकाश ने कहा, "देखिए न जीजाजी, यह इतनी-इतनी मलाई-मिठाई कोई खा सकता है? दो-दो हांड़ी? समधियाने से जाड़े का सौगात आया है, यह कुछ मेरे अकेले के लिए तो आया नहीं है। आप खाएंगे, दीदी खाएगी, सदा खाएगा, बहू खाएगी। सो नहीं, दीदी सारी की सारी मुझको देकर चली गई।"

चौधरी जी को जल्दी थी। सदर से वकील की बहुत ही ज़रूरी बुलाहट आई है। मुकदमा है। रजबअली गाड़ी तैयार किए खड़ा है। बस, खाया नहीं कि रवाना हो जाएंगे।

गौरी थाली रख गई। प्रीति ने आकर कहा, "खाने दो, खाने दो, पसन्द करके वही बहू ले आया है, वही खाए।"

लेकिन चौधरी जी को इन बातों के लिए वक्त नहीं था। वह जल्दी-जल्दी खाने लगे। उसके बाद जब उन्होंने देखा कि दूसरा कोई नहीं हैं, तो पूछा, "सदा कहां है? सवेरे से ही घर से निकला तो अभी तक लौटा नहीं?"

प्रीति ने कहा, "नहीं।"

"बहू क्या कह रही है? उन्होंने समधियाने के लोगों से यहां की ये बातें तो नहीं कहीं ?"

प्रीति ने कहा, "बहू ने नहीं कहीं तो क्या, तुमने ऐसा हंगामा खड़ा कर दिया कि वे लोग तो उसीसे जान गए।"

"कैसे ?"

प्रीति बोली, "तुम्हारा दिमाग गरम होता है, तो होश-हवास तो नहीं रहता है। वह चिल्ल-पों मचाई कि बगल के घरवाले भी सब जान गए।"

चौधरी जी ने खाते-खाते कहा, "बिहारी पाल तो इससे पहले ही बूढ़े मालिक को सब कुछ कह गया। यह डाक्टर और दवा का इतना बखेड़ा तो इसीलिए हुआ। कैलास गुमाश्ता ने मुझे सब कुछ बताया।"

प्रीति ने कहा, "यह तो तुम्हारा ही दोष है। मैं तो घर की बात किसीको बताने नहीं जाती, अपना वैसा स्वभाव भी नहीं। तुम खुद ही सबसे कहते भी चलोगे और खुद ही हम सबको खबरदार करोगे।"

चौधरी जी ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। बोले, "तो ? आज क्या करूंगा।"

"किस बात का क्या ?"

"आज रात तो मैं रहूंगा नहीं। सब काम-धाम, कोर्ट-कचहरी कर-कराके कहीं परसों तक आ पाऊं। मुन्ना अगर लौटे, तो आज वह कहां सोएगा ?"

प्रीति ने कहा, "तुम्हें इसकी चिन्ता नहीं करनी है। तुम अपना काम करो जाकर। कल ही तुमने क्या किया था ? तुम तो बस पड़े-पड़े खर्राटे भरते रहे, जो कुछ करना था, मैंने और प्रकाश ने ही तो किया।"

"आखिर तुम कहना क्या चाहती हो, मुझे कोई चिन्ता नहीं होती ? मैं जगह-जमीन की देखभाल में रहता हूं, तो क्या बहू-बेटे की बात मेरी नहीं ? है ? तो फिर इतनी जायदाद जोड़ किसके लिए रहा हूं ? मामला-मुकदमे का इतना झमेला हो आखिर किसके लिए है ? जब मैं नहीं रह जाऊंगा, तो यह सब देखे-सुनेगा कौन ? मेरा जो कुछ भी है, सब तो इस लड़के के लिए ही है। लड़का लायक बना कि नालायक, इसकी मैं नहीं तो और कौन सोचेगा ? यह जो मैं राणाघाट चला, तुम क्या समझती हो, मुझे वहां चैन मिलेगा ? मेरा जी तो यहीं लगा रहेगा। रात को वहां भी लेटे-लेटे यही बात मन में आती रहेगी—मुन्ना क्या कर रहा है, वह कहां सोया ? बहू से उसका बनाव हुआ या नहीं, यही सब सोचता रहूंगा। मामले का सारा कुछ तो वकील करेगा, मैं तो यहीं की सोच-सोचकर रात-दिन छटपट करता रहूंगा…"

खाना खत्म हो आया था। वह उठने-उठने को थे।

प्रीति ने कहा, "अरे। तुम तो उठ गए ? दूध नहीं पिओगे ?"

"नहीं। खाने-पीने का बारह बज चुका है मेरा। जब तक इस लड़के का कोई किनारा नहीं कर पाता, मुझे खाकर भी कोई सुख नहीं है।"

प्रीति ने कहा, "लड़के के लिए तुम्हें इतनी फिक्र नहीं करनी है। मैं कह रही हूं, यह भार तुम हम लोगों पर छोड़ दो। मैं हूं, प्रकाश

नों मिलकर कुछ-न-कुछ करेंगे ही। प्रकाश तो कह रहा था, किसी साधु से वह वशीकरण जन्तर ला देगा।"

"जन्तर-तावीज़ पहनेगा भी तुम्हारा लड़का। ऐसी मिट्टी का है बेटा तुम्हारा ?"

"तावीज़ मुन्ना क्यों पहनेगा ? बहू को पहना दूंगी। खैर, वह जो भी होगा, हम करेंगे। तुम दूध पी लो। फिर दो-तीन दिन तो दूध-घी नसीब नहीं होगा।"

चौधरी जी गट-गट करके दूध पी गए। बोले, "साधु-संन्यासी, जन्तर-मन्तर पर अब मुझे विश्वास नहीं रहा। अच्छा सबक मिल चुका मुझे।"

अब तक प्रकाश के कानों यह सब बात नहीं पहुंची थीं। उसने जीजाजी को उठते देखा, तो ख्याल हो आया। बोला, "अरे, आपने सौगात की मिठाइयां नहीं खाई जीजाजी ? इतना खर्च-वर्च करके समधी जी ने इतना सामान भेजा और आपने मुंह में भी नहीं रखा। जाते-जाते कम-से-कम एक मलाई-मिठाई चख लीजिए।"

जाते-जाते चौधरी जी ने कहा, "वह सब तुम खा लो साले साहब, तुम्हारे मन में तो कोई चिन्ता-विन्ता नहीं है, मामले-मुकदमे का झमेला भी नहीं। यह मामला-मुकदमा क्या बला है, यह तुम्हीं क्या समझोगे—और तुम्हारी दीदी ही क्या समझेगी !"

प्रीति पीछे खड़ी थी। बोली, "मैं खूब समझती हूं। आखिर मैं भी ज़मींदार की लड़की हूं। पिताजी कहा करते थे, जायदाद बटोरूंगा और मामले से भागूंगा, यह कैसे हो सकता है !"

कपड़ा-लत्ता पहनने में ज्यादा समय नहीं लगा। जूता पहनकर कागज़ात का बंडल लेकर वह गाड़ी पर सवार हो गए। और समय होता, तो कैलास गुमाश्ता साथ जाता। मगर उसके चले जाने से बूढ़े मालिक की देख-रेख कौन करेगा ?

"दुर्गा, दुर्गा, दुर्गा, दुर्गा !"

बड़ी भक्ति के साथ पूरब ओर के उद्देश्य से या शायद इष्टदेवता स्मरण करके वह रवाना हो गए।

गाड़ी चल पड़ी।

चौधरी जी के नहीं रहने पर सरिश्तेदार परमेश मौलिक ही चं का सारा काम सम्भाला करता है। झंझट-झमेले से कोई वास्ता नहीं, नि सा आदमी। अन्दर महल के बखेड़ों से उसे कोई मतलब नहीं। हां, पत्तर उलटते-पलटते कभी-कभी झपकी ले लेता है। चौधरी जी के के बाद वह भी खा-पीकर घर में थोड़ा सो लिया था। उस रोज़ काम की वैसी हड़बड़ी नहीं थी। जब घर के मालिक ही घर में नहीं,

काम की भी कोई जल्दी नहीं। गर्मियों में चंडीमंडप के सामने अच्छी खासी छांह-सी रहती है। लेकिन आखिरी मुसीबत रहती है जाड़ों में। शरीफे के बड़े-बड़े पेड़ की छाया में धूप नहीं पैठ पाती।

परमेश मौलिक चंडीमंडप के बाहर बरामदे पर धूप खा रहा था। छोटे बाबू थे नहीं, लिहाजा उसके मन में भी छुट्टी जैसा भाव था।

साला बाबू हनहनाता हुआ घर की ओर आ रहा था। परमेश मौलिक पर नजर पड़ते ही पूछा, "क्यों सरिश्तेदार साहब, सदा को देखा है?"

"नन्हे बाबू को? जी, नहीं तो।"

"नहीं देखा है? देखने भी क्यों लगे। फिर तो घर का उपकार करना हो जाएगा।"

परमेश ने कहा, "क्यों? नन्हे बाबू खाना खाने नहीं आए हैं?"

तुम्हारी भी बुद्धि की बलिहारी सरिश्तेदार, वह अगर खाने के लिए आया ही होता तो मैं सारे गांव की खाक क्यों छानता फिरता?"

प्रकाश फिर रुका नहीं। सीधे अपनी दीदी के पास जा पहुंचा। पूछा, "सदा आ गया दीदी?"

प्रीति बेटे के लिए तब तक भूखी ही बैठी थी। बोली, "कहां? नहीं तो।"

"तो तुमने खा क्यों नहीं लिया?"

"मैं कैसे खा लूं, बता? मना-मनू कर बड़ी मुश्किल से बहू को अभी खिला आई। वह खाना नहीं चाह रही थी। मैंने कहा, 'मैं तुम्हारी सास हूं, मैं कह रही हूं—खा लेने में कोई दोष नहीं है।'"

प्रकाश ने कहा, "देख लिया दीदी, तुम्हें मैंने कैसी सती-साध्वी बहू ला दी है। कम्बख्त सदा निहायत ही बदनसीब है, ऐसी सती-साध्वी बहू मिली और उसकी ओर से ऐसी लापरवाही। तुमने अच्छा ही किया कि उसे खिला दिया। तुम भी खा ले सकती थी। उस अभागे के लिए आखिर कब तक बैठी रहोगी?"

"उसने नहीं खाया है, और मां होकर मैं कैसे खा लूं, बता?"

"और बाबाजी? उनकी सेवा हो चुकी?"

प्रीति ने कहा, "यह भी एक परेशानी है। मैंने उसी समय तेरे जीजाजी से कहा था, घर में यह सब झंझट मत पालो। मुझसे इतना सब करते नहीं बनेगा। मगर तेरे जीजाजी को तो मेरी बात का यकीन नहीं हुआ, पानी की तरह पैसे बहाए। अब सम्भालने की बारी आई तो सारा भार बस मुझी-पर।"

उसके बाद जरा रुकी। फिर पूछा, "मुन्ने को कहीं नहीं पाया?"

प्रकाश ने कहा, "नहीं। पैदल चलते-चलते मेरे पांव की गांठ खुल गई। बरधारी-थान की खाक छानी। नदी किनारे गया। सोचा, वहीं शायद अकेला बैठा शिव का भजन गाता हो। इतना भावुक है न तुम्हारा बेटा। मैं समझ ही नहीं पाता कि उसे इतनी चिन्ता काहे की है! गुस्सा करता है, जो चाहे

जितना कर। मगर अन्न पर भी कोई गुस्सा करता है? ऐसा भी वेवकूफ कोई है? तुम्हीं बताओ न।"

"तो, वह कहीं नहीं मिला?"

"मैं दक्खिन-टोला गया, पच्छिम-टोला गया। कहीं नहीं है। मैंने कहा न, चक्कर काटते-काटते मेरे पांव की गांठ खुल गई। आखिर मुझे भूख लग आई।"

प्रीति ने कहा, "हाय राम, अभी-अभी ही खाकर गया है न तू! और सवेरे उतनी मिठाइयां खाईं, और फिर अभी ही तुझे भूख लग गई?"

"भूख बेचारी का कौन-सा कसूर है, कहो? मेरी तरह तुम ज़रा चक्कर काट आओ, देखना, चट भूख लग आएगी। समधी जी ने जो नारंगियां भेजी थीं, मैंने तो चख कर भी नहीं देखीं..."

प्रीति को यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। बोली, "सारी नारंगियां भंडार में धरी हैं, जो चाहे, जितनी खा ले।"

प्रकाश मामा ने कहा, "मैं यह थोड़े ही कह रहा था। कह रहा था, नारंगियां मीठी हैं या खट्टी, चखकर देखना तो होगा।"

प्रीति ने कहा, "मीठी हों चाहे खट्टी, उन्हें अब वापस तो नहीं कर सकती। वे तो दुकान की नहीं हैं। खानी ही पड़ेंगी।"

प्रीति ने अपना मुंह दूसरी तरफ को फेर लिया। जाड़े की दोपहरी, सारे घर में सन्नाटा-सा। सवेरे का कर्मव्यस्त घर थकावट से चूर होकर शायद सांझ की प्रतीक्षा में ध्यानमग्न हो गया था। मुन्ने के लिए हांड़ी में भात रक्खा हुआ है, जाने कब आए! गौरी धूप में ज़रा झपकी ले रही थी। दिन-भर के धंधों की इस फांक में ज़रा लेट लेने के ख्याल से विष्णु की मां भी घर के किसी एकान्त कोने में जाकर दुबक गई थी।

तीसरी पहर होते-होते फिर वही सक्रियता की तैयारी। छोटे बाबू घर में नहीं हैं तो क्या, बाकी सभी तो हैं। ये सारे लोग पेट में ताला डालकर तो नहीं पड़े रहेंगे। इन सबकी जो-जो भी ज़रूरत है, प्रीति को पूरी करनी ही पड़ेगी। ऊपर बूढ़े ससुर बीमार हैं। बाहर के कमरे में बाबाजी विराजमान हैं। बगल के कमरे में नई बहू है। मगर सिर्फ जिस एक के लिए इतना करना-धरना, जिसके लिए पराए घर की लड़की को बहू बनाकर घर में लाया, वही कहां है, पता नहीं।

बाहर पैरों की आहट हुई। प्रीति ने उधर देखकर कहा, "कौन?"

विष्णु की मां थी। उसने पूछा, "चूल्हे में आंच डालूं मां जी?"

प्रीति बिगड़ गई, "इस भरी दोपहरी में चूल्हे में आंच? तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है क्या विष्णु की मां?"

विष्णु की मां बोली, "दोपहर? सांझ हो चली मां जी!"

"सांझ!" प्रीति हड़बड़ाकर उठ पड़ी। जाड़े का दिन देखते-देखते ढल जाता है। कब दोपहरी ढली और तीसरा पहर हुआ, फिर कब तीसरा पहर बीत कर सांझ हो गई, प्रीति को पता ही न चला। "गौरी कहां है? वह

मुंहजली कहां गई ? उसने मुझको बताया क्यों नहीं ?"

गौरी के आते ही प्रीति ने फटकारा, "क्यों री, कहां रहती है ? मुझे याद दिलाते नहीं बना ? घर के अन्दर मैं क्या समय का अन्दाज कर सकी ? चूल्हे में अभी तक आंच नहीं पड़ी। तुम लोगों से क्या कोई काम ही नहीं हो सकता ? मालिक घर में नहीं है, इसलिए तुम लोगों ने सांप के पांच पांव देख लिए ?"

गौरी ने कहा, "तुम तो सो रही थी मामी, मैंने इसीलिए नहीं पुकारा।"

प्रीति उखड़ गई, "मैं सो रही थी ? तूने मुझे सोते देखा ? पता है, मुन्ना नहीं आया है, इसलिए मैं तब से बिना खाए-पिए बैठी हूं—मैं सो जाऊंगी ? मुझे नींद आएगी ? चल, भंडार की कुंजी ले, चावल-दाल निकाल। मैं जरा बहू को देखकर तुरन्त आती हूं।"

उधर परमेश मौलिक ने चंडीमंडप का काम-काज चुकाया। लालटेन जलाकर फिर बही-खाता लेकर बैठने जा रहा था कि थाने का चौकीदार दौड़ता हुआ आया।

"सरिश्तेदार बाबू ! सरिश्तेदार बाबू !"

बंशी ढाली ने उस समय चंडीमंडप के पीछे वाले कमरे में ही अपनी रसोई चढ़ाई थी। थाने के चौकीदार का गला सुनकर वह भी चौंक उठा। छोटे बाबू घर पर नहीं हैं। ऐसे में थाने का चौकीदार क्यों आया ! वह बाहर निकला। देखा, अकेला चौकीदार ही नहीं, रेल-बाजार का दरोगा भी आया है।

"क्या खबर है बंशी ? तेरे छोटे बाबू कहां हैं ?"

जवाब परमेश मौलिक ने दिया, "जी, वह तो राणाघाट गए हैं। कल मुकदमे की तारीख है।"

"और बूढ़े मालिक ?"

"जी, वह तो बीमार हैं। कल सुबह से बोली बन्द हो गई है। नोनी डाक्टर का इलाज चल रहा है। हालत नाजुक है।"

"तो घर में और कौन है ?"

"साला बाबू हैं। प्रकाश मामा ! उन्हें बुलाऊं ?"

"उंहूं ! उससे काम नहीं चलेगा। वह भी कोई आदमी है ?"

फिर जाने क्या सोचकर दरोगा ने कहा, "खैर, उन्हींको बुला लाओ। उन्हें बता जाऊं, बहुत जरूरी बात है।"

बंशी ढाली गया। बूढ़े चौधरी के कमरे से साला बाबू को बुला लाया। प्रकाश आया तो दरोगा जी ने कहा, "जब घर में कोई नहीं हैं, तो बात आपको ही बता जाऊं, सदानन्द गिरफ्तार हो गया है।"

"सदानन्द ! गिरफ्तार हो गया है ! कहां है वह ? सुबह से मैं उसके लिए दर-दर की खाक छानता फिर रहा हूं, उसने खाया-पिया तक नहीं है। उसके चलते दीदी ने भी सुबह से मुंह में पानी नहीं डाला, उपवास किए बैठी है। कहां था वह ?"

"कालीगंज में !"

"कालीगंज में ? कालीगंज में कहां ?"

दरोगा जी ने कहा, "कालीगंज के उसी ज़मींदार के टुटहे मकान में। ...र पांच डकैतों के साथ छोटे वावू का लड़का भी पकड़ाया है। स्वरूपगंज ...जो डकैती हुई थी रेलगाड़ी में, उसके मुजरिम उसी मकान में थे। पूरे का ...ा दल ही पकड़ लिया गया।"

प्रकाश भौंचक्का रह गया। यह फिर कैसी अनहोनी विपदा आई। ...ीजाजी हैं नहीं, अव यह सम्भालेगा कौन ? वोला, "लेकिन सदानन्द क्यों ...कड़ा गया ? उसने भी डकैती की है क्या ?"

स्वरूपगंज की डकैती के वारे में नवावगंज के लोगों को मालूम था। नवावगंज ही क्यों, कृष्णनगर के इलाके के लोगों को भी कमोवेश जानकारी थी। गांव-गांव में उसपर काफी चर्चा हो चुकी थी। भीषण डकैती। स्वरूप-गंज होकर जाती हुई मेल ट्रेन एक दिन एकाएक रुक गई थी। कितनी रात होगी, यह किसीको मालूम नहीं। सभी मुसाफिर वेखवर सो रहे थे। अचानक पिस्तौल की गोलियों की आवाज़ से जगकर सव डर के मारे थर-थर कांपने लगे। ऐसा तो कभी होता नहीं। जो साहसी थे, उन्होंने खिड़की से वाहर अंधेरे में झांककर देखना चाहा। साफ-साफ कुछ दिखाई नहीं दिया। सिर्फ इतना ही नज़र आया, अंधेरी रेल-लाइन के किनारे कुछ लोग टार्च लिए इधर-उधर दौड़ रहे हैं और गोलियां छूट रही हैं।

उसके वाद किसी डिव्वे से चीख-सी उठी।

उसके कई घंटे वाद दूसरी एक ट्रेन से ढेरों पुलिस के लोग आए। उन्होंने पूरी ट्रेन को छान मारा। फिर ट्रेन धीरे-धीरे चलकर स्वरूपगंज में जा खड़ी हुई। उतनी रात में भी स्टेशन पर उस समय वड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। सिपाहियों से सारा स्टेशन छा गया था। और अन्त तक उत्सुक मुसाफिरों की जिज्ञासा का जवाव मिला, "पहले दरज़े के डिव्वे से डकैत डेढ़ लाख रुपया लूट ले गए।"

लूटने वाले लोग वास्तव में डकैत नहीं, स्वदेशी किसी पार्टी के थे। यह कई महीने पहले की घटना है। इस घटना के वाद से वूढ़े चौधरी वड़े सावधान हो गए थे। कैलास गुमाश्ता ने अखवार पढ़कर जव यह समाचार सुनाया था, तो वूढ़े चौधरी वहुत डर गए थे। खोने का डर उसीको होता है, जिसे कुछ है। जिन्हें ज्यादा है, उन्हें और ज्यादा खाने का डर है। वूढ़े चौधरी उन्हीं ज्यादा वालों की श्रेणी में थे, लिहाज़ा डर उन्हें ही ज्यादा लगा था।

उसके वाद से सप्ताह में दो वार जव-जव भी अखवार आया, वूढ़े चौध... ने कैलास से पूछा किया, "कैलास, अखवार में उन डकैतों के वारे में कुछ न... निकला है ?"

कैलास शुरू से आखिर तक पंक्ति-पंक्ति देख गया। कुछ नहीं मिला। हर बार उसने कहा, "जी नहीं हुजूर।"

हर बार यही हाल। देखते-देखते कई महीने गुजर गए। दूसरी-दूसरी खबरों में स्वरूपगंज की डकैती की खबर दब गई। बूढ़े चौधरी को लगा, अब सब ठीक हो गया। अब कुछ नहीं होगा। शान्ति हो गई। उनकी जगह-जमीन, रुपया-पैसा अब कोई नहीं छीनेगा। अब से वह बेखटके दुनिया के सभी उपकरणों का भोग-दखल कर सकेंगे। शायद हो कि उनके पांव भी कभी अच्छे हो जाएं। वह फिर से चल-फिर सकें। फिर तो वह खेत-खलिहान का चक्कर काटा करेंगे। उस समय दुनिया में डकैत नहीं रहेंगे।

लेकिन अजीब है, उस समय उनके आस-पास ऐसा कोई नहीं था जो कहे कि दरअसल आप भी डकैत ही हैं। स्वरूपगंज के डकैतों की तरह आपने भी एक दिन डकैती ही की है। यह दौलत, यह जगह-जायदाद आपने डकैती करके ही बटोरी है। स्वरूपगंज के डकैतों ने रेलगाड़ी में डकैती की, आपने की कालीगंज की जमींदारी में।

इस डकैती और उस डकैती में जो कोई फर्क नहीं है, बूढ़े चौधरी में यह समझने की चेतना नहीं थी। उनका भी इसमें क्या दोष! उनसे जो और भी बड़े डकैत हैं, उन्हें ही क्या इसकी समझ होती है? इतिहास की यही एक ही तो शिक्षा है। इतिहास पढ़कर ही तो हम सीखते हैं कि इतिहास पढ़कर हम कोई सीख नहीं लेते। नहीं तो इन्हीं बूढ़े चौधरी के खानदान में ही इस काला पहाड़ सदानन्द का जन्म क्यों हुआ?

इतिहास में ही लिखा है, "ढाई हजार साल पहले दूसरी एक जगह, दूसरे एक जमींदार वंश में दूसरे एक सदानन्द का जन्म हुआ था। उस लड़के का भी उस बूढ़े मालिक ने एक दिन ऐसी ही एक परम सुन्दर लड़की से ब्याह रचाया था। उस सदानन्द के लिए भी बहुत आदर-जतन, बिलास के बड़े-बड़े उपकरण जुटाए गए थे, लेकिन इस सदानन्द की तरह उस सदानन्द का भी उस सुख-ऐश्वर्य से जी नहीं भरा था। उसके भी मन में यही प्रश्न जगा था—यह अन्याय है, यह पाप है। इस अन्याय, इस पाप का प्रतिकार होना चाहिए।"

यही कहकर कपिलवस्तु का वह सदानन्द भी एक दिन दुनिया के सारे आयोजन-उपकरण, पत्नी-प्रियजन, सबको छोड़-छाड़कर राह पर निकल पड़ा था।

नवाबगंज के घर से निकलने पर उस दिन इस सदानन्द को भी लगा, यह पाप है, यह अन्याय है। इस पाप, इस अन्याय का प्रतिकार होना चाहिए। इस दिखावा, ढोंग और मिथ्या का महल छोड़कर [illegible] निकल पड़ेगा।

घर से वह सवेरे ही निकला था। [illegible] कुछ दूर तक उसके साथ आया था। पूछा था, "तू जा कहां रहा है?"

और फिर अपने-आप ही बोल [illegible] में पड़ा। देखता हूं, आखिर [illegible]

ज़रा ही देर पहले घर में जो कांड हो चुका था, प्रकाश मामा की यह
द था। एक ओर दीदी और जीजाजी में कहा-सुनी, कुंजी के लिए खींचा-तानी, घर बाबाजी की छीछालेदर और फिर एकाएक बूढ़े चौधरी का बीमार हो ड़ना। फिर नोनी डाक्टर के यहां दौड़-धूप। इस नई बहू के घर आते ही घर में सब तरह की झंझटें शुरू हो गई। असल में यह नई बहू ही असगुन है।

सदानन्द के साथ और आगे तक जाने का समय प्रकाश को नहीं था। वह लौट पड़ा। भाड़ में जाए। सुबह से उसके पेट में दाना नहीं पड़ा था। बिना खाए-पिए भांजे के पीछे-पीछे कहां तक घूमे? वह तो खैर घुमंतू है खाली पेट घूम सकता है। मगर प्रकाश के बूते की बात नहीं। खाना चाहिए, पहले पेट। बोला, "मैं अब तेरे साथ नहीं जाता। कब तक लौटेगा तू?"

सदानन्द कुछ कहे बिना चलता रहा।

प्रकाश मामा घर लौट आया। घर क्या, आग हो जैसे। वहां चलना यानी कि आग पर चलना। फिर भी चले बिना चारा क्या! हाथ पसारते ही इस तरह से रुपया और कहां मिलने को है। भागलपुर जाने से तो यह आराम नसीब नहीं। वहां बीवी-बच्चों का झमेला। आज यह बीमार, तो कल वह। यहां तो ज़रूरत पड़ी—दीदी के आगे हाथ फैलाया। उन्हीं रुपयों में से कुछ बीवी को भेज दिया। वहां उन्हें खाना मयस्सर हो रहा है या वे भूखे हैं, अपनी आंखों देखना तो नहीं पड़ता है।

लेकिन घर पहुंचते ही देखा, दीदी और जीजाजी में खंडयुद्ध छिड़ गया है।

सदानन्द को लेकिन इन बातों की बला नहीं। सिर के ऊपर खुला आसमान। बरबारी-थान की तरफ जाओ तो पेड़ तले दूकान के चौंतरे पर अड्डेबाज़ी, रात को रिहर्सल। उससे भी दूर जाओ। बिलकुल नदी किनारे।

जाड़ों में नदी की शक्ल ही बिलकुल बदल जाती है। पानी सूख जाता है। सरपतों की नोकें नरली के ऊपर सिर निकाले आकाश की ओर हाथ बढ़ाती है—जैसे, पानी के घेरे को तड़पकर सूरज की असीमता में वे प्राण ढूंढ़ती हों। उस समय चलकर ही इछामती को पार किया जा सकता है।

सदानन्द नदी के उस पार जाकर खड़ा हुआ। वह उधर नहीं गया, जिधर लोगों की भीड़ थी। मेड़ों पर का रास्ता बड़ा सूना-सा था। जहां तक निगाहें जातीं, चने के खेत और खेत। आधे इंच जितने बड़े हरे-हरे पौधे। कुछ चिड़ियां खेत में बैठी जाने क्या खा रही थीं! सदानन्द को देखकर डर से उड़ भागीं।

सदानन्द ठिठक गया। देखा, चिड़ियों का झुंड फिर किसी दूसरे के खे में जा बैठा। वह समझ नहीं सका कि क्या करे! उसी खेत के बगल से रास था। उधर से जाए तो चिड़िया फिर उड़ जाएंगी।

सदानन्द वहीं खड़ा रहा। बोला, "अरी, मैं कुछ नहीं बिगाड़ूंगा। मत। मज़े में खा।"

चिड़ियों ने उसकी बात समझी या नहीं, क्या पता ! झुंडों में बैठी वह सब
के कोमल—हरे पत्ते खाने लगीं । सदानन्द को खुद भी भूख लगी थी ।
कन चिड़ियों को जो खाने को छोड़ दिया, तो उसीकी भूख मानो मिट जाने
गी । खाओ-खाओ । जिनके ये खेत हैं, उन्हें बहुत है । उन लोगों ने जाने
कतने कपिल पायरापोड़ा, कितने माणिक घोष, कितने फटिक नाई को फाका
कराके मार डाला है । उन लोगों ने अनेक कालीगंज की अनेक बहुओं का
बहुत-बहुत सर्वनाश किया है । तुम्हारे थोड़ा-सा खा लेने से उनका कोई नुकसान
नहीं होगा । तुम सब गरीब हो, तुझे बल्कि खिलाने वाला कोई नहीं है ।
खा लो, पेट भरकर खा लो । मैं कुछ नहीं बोलूंगा । यहां बूढ़े चौधरी, चौधरी
जी भी नहीं हैं, कैलास, दीनू, प्रकाश मामा, मां भी नहीं । कोई नहीं है ।
सिर्फ मैं हूं । मैं कुछ नहीं कहूंगा । जानती हैं, मैं भी तुम्हारे जैसा हूं । खाओ,
जी भरकर खा लो..."

उसके बाद नलगाड़ी की बैहार, बहूरानी का पोखरा, खजूर का एक पेड़ । दो बैल । उसके आगे उमरपुर । उसके बाद सिर्फ आसमान । आसमान और आसमान । और आसमान के उस पार ?

"कौन ?"

चलते-चलते कब वह कालीगंज आ पहुंचा, पता ही नहीं था उसे ! सूरज कब डूब गया, इसकी भी खबर नहीं थी उसे ! वह बिलकुल कालीगंज के बाजार में आ पहुंचा था ।

"मैं ।"

"मैं कौन ?"

सदानन्द ने कहा, "मैं सदानन्द ।"

"घर कहां है ?"

"नवाबगंज ।"

इतना ही जवाब देकर वह वहां और नहीं रुका । आखिर तक पूरी वंशावली न बतानी पड़े । क्यों यहां आया है ? अक्सर यहां क्यों आता है । नवाबगंज के हरनारायण चौधरी के लड़के को यहां आने की क्या जरूरत है ? यह सब पूछे, तो क्या जवाब देगा ? या कि जवाब देना वाजिब ही होगा ? और इसका जवाब भी खाक क्या है कि वह देगा ! घूम-फिरकर वह कालीगंज क्यों आ जाता है, यह क्या खुद उसे ही मालूम है । सच तो, वह यहां क्यों आता है ? यहां—खेत-बैहार-मैदान पार करके इतनी दूर कालीगंज ?

हाट के एक कोने में खासी भीड़ जमा थी । लोग गोलाकार होकर खड़े थे । अन्दर से नारी कंठ का गीत गूंज रहा था :

"काश, सखी मैं जान जो पाती ।
प्रेम श्याम का गरल मिला है
कानों में यह बात जो आती ।
कुल की बाला, मन की सरला
तो क्या भूले वह विष खाती !"

यह तो वही गीत है। बहुत दिन पहले राणाघाट में राधा। स
ा देखने के बाद रात के दो बजे प्रकाश मामा उसे राधा के यहां ले
। 'तो क्या भूले वह विष खाती!' देर तक वहां खड़े-खड़े सदानन्द ने
ा सुना। असल में उसने गीत नहीं सुना। लगा, वह जैसे अपने ही
बात सुन रहा है। कालीगंज की बहू यदि यह जानती होती कि ब्याह
ावगंज जाने से खून करके उसकी लाश को यों लापता कर दिया जाएगा,
या वह नवाबगंज जाती? कपिल पायरापोड़ा को यदि यह मालूम होता
एक दिन उसे गले में फंदा लगाकर मरना पड़ेगा, तो वह बूढ़े चौधरी के
को रबर का बेलून उपहार देता। ऐसे 'यदि'—'अगर' उसके जीवन में
ने कितने हैं। बूढ़े चौधरी ने यदि कहा होता कि मैं रुपये नहीं दूंगा, तो
दानन्द ही क्या ब्याह करने के लिए जाता! और नयनतारा के बाप ही यदि
ानते होते कि रुपया नहीं मिलने से दामाद उनकी बेटी के साथ घर नहीं
बसाएगा, तो वही क्या सदानन्द से अपनी बेटी का ब्याह करते!

अथच इतिहास के पन्ने में तो सब कुछ लिखा है। उससे भी पहले हजारों-हजार सदानन्द ने तो इसी तरह से दुनिया के साथ कितना असहयोग किया है। सिद्धार्थ को घर लौटने की चेष्टा तो राजा शुद्धोदन ने बहुत की थी। नदिया की शचीमाता ने भी तो निमाई को संसारी बनाने का हर प्रयास किया। वास्तव में, इतिहास की तो वही एक ही सीख है। इतिहास पढ़कर ही तो हम सीखते हैं कि हम इतिहास पढ़कर कुछ भी नहीं सीखते। नहीं तो नवाबगंज में इतने वंश के होते हुए भी कालीगंज के नायब नरनारायण चौधरी के वंश में ही सदानन्द का जन्म क्यों हुआ?"

फिर वही अजीब गले की आवाज, "कौन?"

"मैं।"

"मैं कौन?"

"मैं सदानन्द।"

"घर कहां है?"

"नवाबगंज।"

यह बात किसने पूछी, कहां से पूछी, कुछ भी समझ में नहीं आया। तब
तक खासा धुंधलका-सा हो आया था। कालीगंज के जमींदार के घर में वह
छिपकर कितनी बार तो गया है, कितनी बार कितनी देर तक रहा है।
अपने घर से निकलकर सबकी नजर बचाकर यहां चला आया है। आक
एकान्त में कालीगंज की बहू से दो घड़ी बात की है, लेकिन इस तरह से कभ
किसीने उसका नाम-धाम नहीं पूछा, किसीने इस तरह से कभी उसे ललका
भी नहीं।

लेकिन इस समय कौन हैं ये?

हर्षनाथ चक्रवर्ती का मकान कुछ ऐसा-वैसा नहीं। कभी उन्हें बेहि
पैसे थे, ज़मीन भी काफी थी। सम्भव है कि बूढ़े चौधरी की तरह ब
पायरापोड़ा, माणिक घोष और फटिक नाइयों को ठगकर ही उन्होंने

हो। लेकिन शायद इसीलिए जीवन के अन्तिम दिनों में वह नवद्वीप होने गए थे। और, सम्भव है कि नरनारायण चौधरी जैसा नायब नहीं इस घर की यह गत भी नहीं होती। धन और यश के शिखर पर के बाद उन्होंने यह मकान बनवाया था। इसीलिए प्रयोजन से ज्यादा जन या घर का। जितने आदमी नहीं थे, उतने कमरे थे। और, जितने थे, उससे कहीं ज्यादा था असबाब। मगर खाली पड़े मकान में असबाब रहते, इसीलिए समय पर ही वे गायब हो गए। लेकिन ईंट-लकड़ी? वह तो कंधे पर उठाकर एक ही दिन में ढोई नहीं जा सकती, इसीलिए हैं। हीं टूटी-फूटी ईंट-लकड़ी के बीच सदानन्द रोज जैसे जरा देर की शान्ति ढूंढा करता। उसी समय एकान्त में कालीगंज की बहू से दो घड़ी बात ती। वह अपने मन को उजाड़कर उसके सामने रख देता। कहता, "मैं ने पुरखों के सारे पापों का प्रायश्चित करूंगा कालीगंज की बहू, तुम चिन्ता करो, मैं प्रायश्चित करके ही रहूंगा।"

लेकिन उस दिन वैसा नहीं हुआ। टूटी दीवाल को फलांगकर अन्दर के आंगन की कंटीली झाड़ियों को पार करके सीढ़ी से जब वह दुतल्ले पर गया, तो उसी समय किनकी तो फुसफुसाहट सुनाई दी, "कौन?"

"मैं।"

"मैं कौन? कहां से आ रहे हो तुम?"

"मैं सदानन्द हूं। नवाबगंज में रहता हूं।"

उसके बाद वे लोग, जो छिपे हुए थे, एक-एक करके उसके सामने निकल आए। एकबारगी चार-पांच जने। उसीके हमउम्र। फिर जिरह, "कहां रहते हैं? यहां रोज क्यों आया करते हैं? इस अंधेरे और भुतहे मकान में आपका क्या है?" बहुत सारी बातें। बहुत-बहुत सवाल। फिर भी लगा, उन्हें जैसे बहुत सन्देह है।

सदानन्द ने पूछा, "मगर आप लोग कौन हैं? आप लोगों को तो मैंने इस मकान में कभी नहीं देखा?"

"हम लोग यहां हाट में आए थे। आज हाट का दिन है न। कल चले जाएंगे।"

लेकिन सदानन्द का शक नहीं गया, "हाट का दिन है तो घर लौटने में क्या है? इसके पहले भी तो कालीगंज में हाट लगती रही है। कभी तो तुम लोग यहां नहीं आए? यहां खाओगे क्या। रहोगे कहां? सोओगे कहां? कब तक रहोगे?"

"और आप? आप क्या खाएंगे? कहां सोएंगे? घर नहीं जाइएगा?"

सदानन्द ने कहा, "मैं तो रात में यहां नहीं रहता। मैं नवाबगंज चला जाता हूं। वहीं मेरा घर है।"

उन लोगों का सन्देह लेकिन नहीं गया। [illegible]

"यह जरूर पुलिस का आदमी है, जान[illegible]।" [illegible]

एक दूसरे ने कहा, "इसे जाने मत दे, [illegible]

स में खबर कर देगा ।"

उनमें से एक सदानन्द की ओर बढ़ा । एक के हाथ में रिवाल्वर । सदानन्द से चल देने की ताक में था । तब तक उसकी ओर रिवाल्वर का निशाना के उस नौजवान ने कहा, "कहां जा रहे हैं ?"

"घर ।"

"घर या पुलिस चौकी पर ? हमें सब पता है। आपको जाने नहीं दिया जाएगा ।"

सदानन्द हंसा । बोला, "ठीक तो है । यही रहूंगा । घर के लिए मुझे ऐसा कोई खिंचाव नहीं कि जाना ही पड़ेगा ।"

सब दंग रह गए। किसीको सन्देह ही न रहा कि पुलिस का आदमी नहीं है । बेहद धूर्त न हो तो कोई ऐसा कह सकता भला !

"खाइएगा क्या ?"

सदानन्द ने कहा, "खाना ? मुझे वैसी भूख नहीं लगती ।"

अब तो लोग और भी निश्चित रूप से समझ गए । बोले, "तो फिर आपको इस कमरे में बन्द करके बाहर से हम जंजीर चढ़ा देंगे ! सवेरा होने पर फिर खोल देंगे ।"

ठीक है । वही सही । और, उसे कमरे में बन्द करके वे लोग चले गए ।

इसके बाद ही वह घटना घटी । उस टुटहे मकान के एक वीरान पड़े कमरे में । याद है । सदानन्द के जीवन में इसके बाद बहुत सारी घटनाएं घटीं । मगर वह घटना मानो बेमिसाल है । जिस आदमी को एक दिन कठघरे में आसामी होकर खड़ा होना होगा, उसकी शुरुआत बहुत पहले से ही हो गई थी । उसके लिए सबसे बड़ी समस्या यह थी कि वह किस तरह से इस दुनिया से ताल-मेल बैठाए । अथच सब यह चाहते थे कि सदानन्द ही उनके अनुरूप हो जाए । और, उसका जितना विरोध था, यही । उसका यही विरोध कालीगंज के उस टुटहे मकान में स्थूल होकर उसके सामने आया ।

अचानक जाने कब झन्न से आवाज़ हुई और दरवाजा खुल गया । और दरवाजा खुलते ही सदानन्द ने देखा, सिपाहियों का एक झुंड उसके सामने खड़ा है । उन सब लोगों को इन्होंने पकड़ लिया था । इसे भी पकड़ लिया । सदानन्द ने कोई प्रतिवाद नहीं किया । भागने की भी कोई कोशिश नहीं की । बाकी पांच जने जिस कसूर में पकड़े गए, वही कसूर इसपर भी लगा । इसके लिए कैफि यत पूछने का प्रश्न ही नहीं उठता, सजा का ही सवाल उठता है । उसी कम के सामने ही मानो सदानन्द पर अंतिम फैसले की सजा आ पड़ी, जैसी स नवाबगंज में उसके अपने ही घर में आई थी ।

उसके बाद सबको हथकड़ियां डालकर सदर चलान कर दिया । घ इतनी जल्दी और ऐसे रोमांचकर ढंग से घट गई कि कुछ सोचने का भी म नहीं दिया ।

प्रकाश चंडीमंडप से भागता हुआ सीधे रसोई-घर की तरफ गया। नयनतारा की रात जैसे नहीं बीती, वैसे ही दिन भी नहीं बीतने के बराबर। और दिन की तरह फिर उसकी रात आएगी। दिन के बाद चूंकि रात के आने का नियम है, इसीलिए आएगी। अथच रात की बात सोचते ही नयनतारा को जैसे आतंक हो आया। फिर रात आएगी। फिर वही पुनरावृत्ति? फिर वही अपमान? फिर इस जले मुंह को घूंघट की आड़ में छिपाए रखना पड़ेगा।

सोचते हुए भी नयनतारा को डर मालूम हो रहा था।

इस घर की वह नई बहू है। इसका प्रतिवाद करना नई बहू का धर्म नहीं। उसका धर्म है मान-अपमान, अनादर-आघात—सब कुछ को होंठ बन्द करके पी जाना। 'तुम्हें चाहे जो भी कहे सब, तुम्हारा कर्तव्य है चुप रहना।' यहां आने से पहले मां ने उसे यही सिखाया था। उसे लगा, मां अगर जीवित होती, तो नयनतारा उससे पूछती, "मां, अगर मेरी स्थिति में तुम पड़ती, तो तुम क्या करतीं? तुम भी क्या मेरी ही तरह मुंह सीकर सब सह जातीं। इस तरह से हर कुछ बरदाश्त करके ही तुम अपने नारी धर्म का पालन करती?"

लेकिन मां जब रही ही नहीं तो यह प्रश्न वह किससे पूछे और उत्तर ही कौन दे इसका?

सास ने दिन-भर खाया नहीं। फिर भी एक के बाद एक सर्वनाश होते-होते चरम सर्वनाश की गुरुता भी शायद उसकी सास के लिए उस समय कम हो गई थी। या कि उसकी सास ने सब तरह के सर्वनाश के लिए ही अपने मन को सख्त कर लिया था।

प्रीति ने उद्वेगहीन स्वर से ही कहा, "क्या है?"

प्रकाश ने कहा, "सदा का पता चल गया।"

"चल गया पता? कहां? कहां था वह?"

प्रकाश ने कहा, "अभी-अभी रेल-बाजार के दरोगा आए थे—सिपाही-सिपाही लिए आए थे। सदा को पुलिस ने गिरफ्तार किया है। स्वरूपगंज की रेल-डकैती जिन लोगों ने की थी, सदा उन्हीं लोगों के साथ गिरफ्तार हुआ है।"

"रेल-डकैती? यह क्या कह रहा है तू? सदा डकैती करेगा?"

"मैं भी तो सुनकर दंग रह गया। अब मैं करूं क्या, कुछ समझ में नहीं आ रहा है। आखिर सदा एकाएक डकैती करने ही क्यों जाएगा? स्वरूपगंज की ट्रेन-डकैती तो स्वदेशी दल वालों ने की थी। वह उनके साथ कैसे जा जुटा?"

प्रीति को विश्वास नहीं हुआ। बोली, "तूने ठीक से सुना? मेरा लड़का डकैती करेगा? मेरे लड़के को क्या रुपयों की कमी है कि डकैती करेगा? तो, अब उपाय?"

प्रकाश ने कहा, "यह तो बड़ी मुश्किल है, देख रहा हूं। जीजाजी भी नहीं हैं और जितना झमेला है, सब इसी समय। अकेला मैं। बूढ़े मालिक को देखूं कि सदा को संभालूं। कहो तो मैं क्या करूं?"

प्रीति तो यह सुनकर वहीं बैठ पड़ी। बोली, "मैंने दिन-भर खाया नहीं। मेरा सिर घूम रहा है। मैं कुछ सोच नहीं पा रही हूं।"

"और, मैं ही क्या खाक सोच पा रहा हूं। खैर, छोड़ो! तुम खा लो जाकर। अभी? खाने पर फिर भी कुछ सूझ आएगी। मैं बाबाजी के पास जाऊं? देखूं कि वह क्या कहते हैं?"

प्रीति ने कहा, "तो, तू अब हंसी न करा। ठहर। अच्छा, उसे जमानत पर छुड़ाकर नहीं लाया जा सकता?"

प्रकाश ने कहा, "अपनी जिन्दगी में तो मुझे कभी जामिन नहीं होना पड़ा—जामिन कौन होगा?"

"पुलिस को रुपया देने से वह तो मामला भी छोड़ देती है। कितना रुपया लगेगा, जाकर जरा पता तो कर आ। पुलिस तो यहां की अपनी है।"

प्रकाश ने कहा, "दरोगा वगैरह तो चले गए। खबर दी और चले गए।"

प्रीति ने कहा, "तो तू तुरन्त रेल-बाजार ही जा। जा भैया! शायद हो कि रास्ते में ही उनसे भेंट हो जाए।"

"तो रुपये दो।"

"कितने रुपये दूं?"

प्रकाश ने कहा, "पांच सौ, हजार, जो भी तुम्हारे पास हो, दे दो। डकैती का मामला है। रास्ते में तो नहीं छोड़ेगा।"

प्रीति उठी। उसके सोने के कमरे में ही सन्दूक है। सन्दूक के नीचे नोटों की गड्डियां रखी रहती हैं। गिनकर नोटों का एक बंडल लेकर ही आई।

"कितने रुपये हैं?"

"चार सौ तीस।"

"इतने से क्या होगा?"

"जो है, अभी उसीसे मुन्ने को छुड़ाकर तो ले आ। फिर तेरे जीजाजी आ जाएंगे, तो ज्यादा दूंगी।"

रुपया लेकर प्रकाश जाने कहां चला गया।

नयनतारा को कमरे में सारी ही बातें सुनने में आ गईं। वह मानो पत्थर हो गई। यह क्या हो गया? ऐसा तो नहीं होना चाहिए! यह कहां और किसके साथ उसका ब्याह हो गया। धीरे-धीरे वह कमरे से बाहर निकली। और पा-पा करके रसोई-घर के पास पहुंची।

"मां!"

प्रीति ने सुना। पूछा, "क्या है बहू? कुछ कहना है?"

नयनतारा ने कहा, "क्या हुआ है मां! आप लोग क्या बात कर रहे थे?"

"ओ, तुमने सब सुना?"

नयनतारा ने कहा, "इतनी बड़ी एक घटना हो गई। मैं अपने पिताजी को लिखूं? चिट्ठी दूं?"

"चिट्ठी?" प्रीति ने क्या तो सोचा। बोली, "चिट्ठी लिखकर क्या होगा बहू! अभी-अभी तो सौगात पहुंचाकर तुम्हारे नैहर के लोग गए। अभी

शायद वे कृष्णनगर पहुंचे भी नहीं होंगे। वे लोग तो देख ही गए हैं कि तुम अच्छी तरह से हो।"

नयनतारा ने कहा, "नहीं। अपने बारे में नहीं। आखिर को पिताजी यह कहें कि उनपर इतनी बड़ी एक विपदा आई और तुम लोगों ने मुझे खबर तक नहीं दी? तो? आखिर तो दोष मुझे ही देंगे।"

प्रीति ने कहा, "नाहक ही उन बूढ़े आदमी को चिन्ता में क्यों डालोगी? वहां से तो वह कोई सुभीता भी नहीं कर पाएंगे। उलटे नाहक उन्हें परेशानी में डालना। और, जो करना है, सो तो हम यहां करेंगे ही।"

नयनतारा ने कहा, "मुझे लगता है, पिताजी को खबर भेजना अच्छा होगा। जान जाएंगे तो मुझपर नाराज होंगे।"

प्रीति ने कहा, "तो दो दिन सब्र करो बहू! तुम्हारे ससुर परसों तो राणा-घाट से आ रहे हैं, आ जाएं, उनसे राय-सलाह करके जैसा होगा किया जाएगा। और, यह तो बनाया हुआ मामला है बहू! साफ समझ में आ रहा है, सदा जैसा लड़का डकैती करने जाएगा? कोई यकीन करेगा इसपर? तुम्हीं कहो न, तुमने भी तो उसको देखा है। डकैती में यह रहेगा ही किसलिए? उसे रुपयों की जरूरत ही क्या पड़ी कि वह डकैती करने जाएगा?"

नयनतारा ने सास की युक्ति को शायद समझा, शायद नहीं समझा। और, युक्ति चाहे जितनी भी पैनी हो, सास की बात पर कुछ कहना भी सोहता है?

नयनतारा फिर चुपचाप अपने कमरे के अन्दर चली गई।

सुबह निखिलेश जगा भी नहीं था कि बाहर से आवाज आई, "निखिलेश, निखिलेश!"

रात कि अंतिम घड़ियो की नींद। [illegible] नींद। [illegible] की आवाज सुनते ही निखिलेश हड़बड़ाकर [illegible] पड़ा। [illegible] इतना सबेरे क्यों बुला रहे हैं? [illegible] आकर?

निखिलेश बाहर निकला। [illegible]

"तुम जग गए हो [illegible]"

निखिलेश ने कहा, "[illegible]"

पंडित जी ने [illegible] निखिलेश! मैं सुबह [illegible] मेरे साथ चलते तो [illegible]

"नवाबगंज [illegible]?"

"वहां [illegible] नवाबगंज [illegible]।"

वह बीमार-वीमार है क्या ?"

'नहीं-नहीं । विपिन वगैरह रेल-बाज़ार होकर लौट रहे थे न । स्टेशन उन लोगों ने देखा, पुलिस के लोग कुछ डकैतों को हथकड़ी लगाकर ट्रेन तज़ार में थे । स्वरूपगंज की रेल-डकैती की तुम्हें याद है ?"

"जी हां । बखूबी याद है । अखबारों में पढ़ा था ।"

"कालीगंज के किसी मकान से पकड़कर पुलिस उन्हीं डकैतों को कलकत्ता लान कर रही है। उसके लिए कलकत्ता से विशेष पुलिस आई थी। विपिन गैरह ने उन्हीं गिरफ्तार लोगों में मेरे दामाद को देखा ।"

निखिलेश चौंक उठा, "एं ! नयनतारा का पति ? वह भी उस डकैती में था ?"

"उन लोगों ने तो कहा कि जामाता जी को उन्होंने कमर में रस्सी पड़ी हालत में देखा ।"

निखिलेश को विश्वास नहीं हुआ । बोला, "ना-ना-ना, ऐसा कभी हो सकता है ? व्याह के समय सदानन्द बाबू को मैंने तो देखा है । उनसे बातें भी की हैं । ऐसा कुछ तो नहीं लगा । मुझे तो यकीन नहीं हो रहा है । अंधेरे प्लेट-फार्म में आंखों को धोखा हुआ हो शायद । उन लोगों ने और किसीको दुल्हा बाबू समझ लिया ।"

पंडित जी के कुछ कहने से पहले ही कुछ सोचकर निखिलेश ने फिर पूछा, "सौगात लेकर विपिन वगैरह तो वहां गए थे । उन लोगों ने दुल्हा बाबू को घर में नहीं देखा ?"

पंडित जी ने कहा, "नहीं । उसीसे तो मुझे और भी सन्देह हो रहा है । तो क्या जान-सुनकर मैंने बिटिया को पानी में डाल दिया ? उन लोगों ने उसकी सास से पूछा, 'दुल्हा बाबू कहां हैं ?' उन्होंने कुछ जवाब दिया, समधी जी से पूछा, तो उन्होंने कुछ जवाब दिया और बिटिया ने कुछ और कहा । मैं जिस दिन नयनतारा को वहां पहुंचाने गया था, उस दिन और सबको तो घर में देखा, जामाता से कहां भेंट हुई ? मेरी पत्नी का जब स्वर्गवास हो गया, उनके श्राद्ध के समय नयनतारा यहीं थी, न्योते पर वहां से नयनतारा क मामा-ससुर आए थे, जामाता तो एक दिन के लिए भी नहीं आए ।"

निखिलेश को इस बात ने सोच में डाल दिया । उसे कोई जवाब नहीं सूझा ।

कालीकांत जी ने कहा, "अभी मुझे ये सब बातें याद आ रही हैं, पहले य सब सोचा तक नहीं । विपिन से यह बात काफी रात गए सुनी । ठीक से नी नहीं आई । उस समय कोई ट्रेन रही होती, तो मैं उसी समय नवाबगंज चं जाता । लेकिन ट्रेन तो सवेरे है । सोचा, अकेले कैसे जाऊं । इसीलिए तुम्हें स ले चलने का ख्याल आया । चलोगे तुम ?"

"ज़रूर चलूंगा । आप तब तक स्टेशन की ओर बढ़िए । मैं तैयार हो आता हूं ।"

कालीकांत जी ने कहा, "तो मैं बढ़ता हूं । तुम देर मत करना ।"

वह स्टेशन की ओर चले। कृष्णनगर में ठीक से धूप भी नहीं निकली थी। पहली ट्रेन पकड़ लें तो दस बजे तक रेल-बाजार पहुंच जाएंगे। और वहां आकर साइकिल रिक्शा मिल गया, तो घंटे-दो घंटे में नयनतारा की ससुराल पहुंच जाएंगे।

थोड़ी दूर चलकर उन्होंने एक बार पीछे मुड़कर देखा। लगा, बाजार के टिन वाले मकान के बिलकुल उधर निखिलेश तेजी से कदम बढ़ाता हुआ चला आ रहा है। रात-भर ठीक से वह सोया नहीं था। सिर में अजीब-सा लग रहा था। तेज़ चलने में कठिनाई हो रही थी। तब तक निखिलेश आ पहुंचा!

पंडित जी ने कहा, "आओ। खैर, तुम तो जल्दी आ गए। यह समाचार सुनने के बाद से मेरा जी कैसा तो कर रहा है निखिलेश! मैंने तो खूब देख-सुनकर ही बिटिया का ब्याह किया था। तुम लोगों को तो मालूम ही है। नयनतारा जैसी लड़की के लिए पात्र मिलने में दिक्कत भी नहीं होती। उसका रूप-गुण देखकर बहुत जगहों से रिश्ता आया था, लेकिन सबको नकार कर मैंने उसकी शादी यहीं की। परन्तु आखिर यह क्या हो गया निखिलेश!"

निखिलेश ने कहा, "आप चिन्ता न करें। मैं तो चल ही रहा हूं—देखता हूं चलकर।"

दोनों स्टेशन के प्लेटफार्म पर जा पहुंचे।

ब्याह से पहले नयनतारा कभी इन दिनों की कल्पना करती थी। उस समय इस घर में ब्याह की बात चल रही थी। मां-बाबूजी की बातचीत के टुकड़े बीच-बीच में उसके कानों तक पहुंचते थे। नवाबगंज के ज़मींदार हैं। बड़े दौलतमन्द हैं। उनका इकलौता लड़का। स्वस्थ, सुन्दर। बाबूजी लड़के को देख आए तो मां को बता रहे थे। सुनकर नयनतारा की आंखों में मानो नवाबगंज की अपनी भावी ससुराल की तस्वीर-सी उतर आई थी। कल्पना की उस तस्वीर को देखकर अपने मन में ही उसने अपनी एक दुनिया रच ली थी। बड़े-बड़े कमरे, बहुत बड़ा दुमंज़िला मकान और राजकुमार जैसा उसका पति।

मां ने बाबूजी से पूछा, "परिवार में कौन-कौन हैं?"

पिता ने कहा, "बस, मां और बाप। एक बूढ़े दादाजी हैं। सम्पन्न परिवार। चौधरी जी जैसे आदमी कम होते हैं। बोले, 'मेरे बस यही एक लड़का है—यह सारी गिरस्ती उसीके लिए।'"

मां ने पूछा था, "लड़के के बहन-बहन नहीं है, क्यों?"

"नहीं।"

सुनकर मां बेहद खुश हुई, "अच्छा ही है। अपनी नयन को ननद का जुल्म नहीं सहना होगा..."

ज़रा रुककर मां ने फिर पूछा था, "लड़का कैसा है देखने में? अपनी बिटिया को सोहेगा तो?"

...से भी सुन्दर है। जैसा स्वास्थ्य,
पिता ने कहा था, "देखने में नयनतारा से भी सुन्दर है। जैसा स्वास्थ्य, वैसा ही रूप। बरात लगेगी, तो लोग कहेंगे, 'खूब, पंडित जी ने अनोखा सुन्दर जामाता किया।' "

यह सब सुनकर नयनतारा ने मन में उस दिन कल्पना का एक महल खड़ा कर लिया था। व्याह से पहले कल्पना का ऐसा महल बहुतेरी लड़कियां खड़ा करती हैं। व्याह ही क्यों केवल, आदमी सभी बातों में ऐसी आलौकिक आशा करना पसन्द करते हैं। मन-ही-मन आशा की एक अट्टालिका भी खड़ी कर लेती हैं। लेकिन नयनतारा की तरह शायद ही किसीकी आशा चूर-चूर होती हो।

रात ज्यादा नहीं हुई थी। घर में एक इतना बड़ा विपर्यय हो गया—मगर गिरस्ती के रोज़मर्रे के कार्यकलाप में कोई व्यतिक्रम नहीं। सबके सब काम ठीक ही ठीक हुए। गौरी नयनतारा को भी खाने के लिए बुलाने आई। नियम का पालन-भर। रात को खाना चाहिए, इसलिए खाना।

प्रीति अपने कमरे में लेटी ही थी। उसने गौरी को बुलाया। पूछा, "क्यों री गौरी, बहू ने खाया ?"

गौरी ने कहा, "खाना नहीं चाह रही थी। मैंने ज़ोर-जबरदस्ती खिलाया। तुम खाओगी भाभी ?"

प्रीति ने कहा, "नहीं।"

गौरी ने कहा, "नहीं खाने से शरीर कैसे टिकेगी ? खा लो।"

प्रीति खिजलाई, "तू मेरे कान के पास बक-बक मत कर, जा।"

गौरी भी छोड़ने वाली नहीं। बोली, "नहीं, खाना ही पड़ेगा। एक तो ऐसी मुसीबत आन पड़ी है। तुम घर की मालकिन हो, कहीं तुम बीमार पड़ जाओ तो तुम्हारी यह गिरस्ती सम्भालेगा कौन ! अपनी कहने को और है कौन जो तुम्हारी सेवा करेगा ?"

आखिर जो बना, दो कौर खाकर वह फिर जाकर अपने कमरे में लेट गई। लेकिन ज्यादा देर लेट नहीं सकी। पीठ में जैसे कांटे चुभने लगे। उठकर धीरे-धीरे वह बहू के कमरे में आई। दरवाज़ा खुला ही था। नयनतारा सोई नहीं थी। परस्पर एक-दूसरे को ज़रा देर दोनों देखती रहीं, जैसे दोनों को कहने को बहुत-बहुत है, पर बोलने की क्षमता किसीको नहीं है। अन्त तक बड़ी मुश्किल से सास के मुंह से बात निकली, "खा लिया बहू ?"

नयनतारा ने कहा, "जी। और आपने ?"

सास ने कहा, "मैंने भी खाया बहू ! पता नहीं मुन्ना कहां है उसने खाया या नहीं, मगर मां हूं मैं और मैंने खा लिया। मेरे गले के नीचे भात उतरा। मैं मां नहीं हूं बहू, राक्षसी हूं। लेकिन मेरी छोड़ो। मैं सिर्फ तुम्हारी ही सोचती हूं। मैं खामखा तुम्हें बहू बनाकर क्यों ले आई। मैं तुम्हें कितना कष्ट दे रही हूं। और कहीं व्याह हुआ होता, तो तुम्हें कितना सुख होता। वहां तुम कितने सुख से रहती। मैं यह पाप करने क्यों गई ? यह सारा दोष मेरा है बहू, और किसीका नहीं, सिर्फ मेरा। तुम मुझपर नाराज़ हो...

नाराज होकर मुझे तुम खरी-खोटी सुनाओ—शायद उससे मेरा प्रायश्चित्त हो। शायद उससे मुझे कुछ सबक मिले। उससे ज्यादा और मैं क्या कह सकती हूं ! तुम्हें जो तकलीफ हो रही है, उसकी जिम्मेदार मैं ही हूं बहू ! तुम मुझे मां कहकर भी मत पुकारो।"

कहते-कहते सास जैसे टूट पड़ीं।

नयनतारा ने पकड़कर सास को बिछौने पर बिठाया। बोली, "आप चुप रहें मां, शांत हों।"

"नहीं-नहीं, तुम अब मुझे यों मां कहकर न पुकारो। मैंने तुम्हारी मां का काम नहीं किया है। मुझे तुम क्षमा करो बहू !"

नयनतारा ने कहा, "आप नाहक ही यह सब क्यों कह रही हैं मां, इससे आपके बेटे का अमंगल होगा।"

"बेटा ? तुमने मेरे बेटे की बात कही ? जिस बेटे ने अपने मां-बाप की नहीं सोची, ब्याही बहू की ओर नहीं ताका, उसे मैं बेटा कहूंगी ? वह मेरा बेटा नहीं है बहू, मेरा शत्रु है। मैंने अपने शत्रु को अपने गर्भ में धारण किया था, यही मेरा अपराध है।"

नयनतारा ने सास के दोनों हाथ पकड़ लिए, "आप जाकर सोइए मां ! दिन-भर आपको कष्ट रहा, फिर रात भी जगेंगी तो आपकी सेहत खराब हो जाएगी। चलिए, मैं आपको आपके कमरे में सुला आऊं।"

सास उठीं। बहू का यह प्यार उसे बड़ा अच्छा लगा। ऐसी लक्ष्मी बहू पाकर भी मुन्न ने उसकी मर्यादा नहीं रक्खी ! हाथ की लक्ष्मी को यों पैरों ठुकराने से उसीका भला होगा क्या ? अगर ऐसा हो, फिर तो भगवान भी झूठा है, भगवान की सृष्टि के ये सूरज-चांद, ग्रह-नक्षत्र—यह सब भी झूठे हैं।

"बहू !"

सास को उनके कमरे में ले जाती हुई नयनतारा ने कहा, "हां मां !"

"कमरे में अकेले डर लगता हो तो आज तुम मेरे पास सोओगी ? तुम्हारे ससुर तो हैं नहीं।"

नयनतारा ने कहा, "नहीं मां, अकेले मुझे डर नहीं लगेगा।"

"तुम कहो, तो मैं ही आकर तुम्हारे कमरे में सो सकती हूं।"

नयनतारा ने सास को उनके कमरे में उनके बिस्तर पर सुलाकर कहा, "इसकी जरूरत नहीं मां, आप कुछ सोचें नहीं। अकेले सोने की मेरी आदत हो गई है। सिर्फ पहले दिन जरा डर गई थी।"

तब सास लेट गयी थीं और नयनतारा सामने खड़ी थी।

नयनतारा ने पूछा, "रोशनी बुझा दूं मां ?"

"नहीं-नहीं, तुम्हें कुछ नहीं करना होगा। गोरी है। खाकर आएगी, तो वही सब कर-करा देगी।"

नयनतारा ने कहा, "तो मैं जाऊं ?"

"हां, जाओ। नींद न आए तो मुझे बुला लेना, हां ?"

नयनतारा अपने कमरे की ओर ही जा रही थी। सास ने फिर पुकारा

"बहू !"

नयनतारा लौटी। पूछा, "मुझे कह रही हैं मां ?

सास ने कहा, "हां। एक बात कहना तुमसे भूल गई। मुन्ने को तो गिरफ्तार करके ले गया है, कब लौटेगा, नहीं जानती। कभी लौटेगा भी या नहीं, यह भी नहीं जानती। प्रकाश तो थाना गया है, रुपये भी ले गया है। लेकिन अभी तक लौटा तो नहीं। तुम्हारे ससुर भी घर पर नहीं हैं, तुम मेरी कुंजी अपने पास रख लो।"

"कुंजी ? कुंजी लेकर मैं क्या करूंगी मां ?"

"तुम इस घर की बहू हो। मेरे मर जाने पर इस गिरस्ती का भार तो तुम्हें लेना होगा। तुम्हारे सिवा और तो कोई है नहीं, जिसे सब कुछ सौंपकर मैं निश्चिन्त जा सकूं।"

नयनतारा बोल उठी, "आप यह सब क्या कह रही हैं मां ! आपको हुआ क्या है कि आप अभी यह सब कह रही हैं ? मैं कुंजी नहीं लेती।"

बोलकर वह जरा हट गई। मगर सास ने नहीं छोड़ा। अपने आंचल से कुंजियों का गुच्छा निकालकर ज़बरदस्ती उसने नयनतारा के हाथ में थमा दिया। बोली, "इसे तुम अपने पास रक्खो बहू, मैं कहती हूं। मैं तुम्हारी गुरुजन हूं, मेरी बात नहीं उठानी चाहिए। इसे तुम रख लो।"

नयनतारा ने कुंजी लेकर कहा, "मगर आप ऐसा क्यों सोचती हैं मां ! आपको कुछ भी तो नहीं हुआ है। आप खामखा ही डर रही हैं—"

सास ने कहा, "यदि वैसा कुछ नहीं हुआ तो ठीक ही है। वैसे में न होगा तो फिर तुमसे कुंजी लेकर अपने पास रख लूंगी। मगर मैं तुमसे जो कह रही हूं, वह झूठ नहीं है बहू ! तुम्हें पता नहीं, मेरा कलेजा बराबर धक्-धक् करता रहता है, कभी-कभी मैं लड़खड़ाकर गिर पड़ती हूं, किसीको मालूम नहीं है। वैसी कोई आफत आ पड़ी तो मेरी इस गिरस्ती को तुम्हारे सिवा और कौन देखेगा ? इस घर की कलछुल, झंझरा, छोलनी—सबके प्रति मेरी माया है। जब जहां गई, वहीं से खरीद लाई। तुम्हें मालूम नहीं, यह मेरे बड़े अरमानों की गिरस्ती है बहू, मुझे बड़ी साध थी, बेटे का व्याह करके घर में बहू लाऊंगी, ऐसी बहू लाऊंगी, जो लक्ष्मी-प्रतिमा सी घर को उजाला किए रहेगी। पोते-पोतियों से घर भर जाएगा। मेरे उन अरमानों में से एक भी पूरा नहीं हुआ, जीवन में अब शायद कभी पूरा भी न होगा।"

अचानक गौरी आ गई। बोली, "बहू, तुम यहां ?"

नयनतारा ने कहा, "मां ने मुझे यह कुंजी दी।"

प्रीति ने कहा, "गौरी, सवेरे भंडार की कुंजी बहू से मांग लेना। काम हो जाने पर फिर बहू को लौटा देना।"

गौरी भी अवाक् हो गई। बोली, "अपने पास कुंजी क्यों नहीं रक्खोगी भाभी ?"

नयनतारा ने कहा, "देखो न गौरी बुआ, मां क्या सब तो अमंगल भरी बातें कह रही हैं, कह रही हैं ! मैं अब नहीं बचूंगी—और, उन्होंने ज़बरदस्ती

कुंजी मुझे थमा दी…"

प्रीति ने कहा, "नहीं रे गौरी, मैंने जो कहा, ठीक ही कहा है। मैं अब ज्यादा दिन जिंदा नहीं रहूंगी रे! अब से बहू ही यह घर चलाएगी—बहू से ही कुंजी मांग लिया करना—"

प्रीति की ओर देखकर गौरी बुआ डपट उठीं, "तुम चुप तो रहो भाभी! दिन-भर भूखे रह-रहकर तुम्हारी यह दशा हुई है। उस समय लाख कहा, खा लो, खा लो, तुमने एक नहीं सुनी। धड़कन तो होगी ही। अब बोलो मत, अब सो जाने की कोशिश करो, मैं बत्ती बुझा देती हूं।"

फिर नयनतारा से कहा, "तुम भी जाकर सो रहो बहू, नाहक खड़ी क्यों कष्ट कर रही हो? मैं तो हूं ही। मैं आज यहीं फर्श पर सो रहूंगी। तुम अपने कमरे में जाकर सो रहो।"

नयनतारा ने कहा, "लेकिन यह कुंजी?"

गौरी बुआ ने कहा, "अपने ही पास रखो। जरा होशियारी से रखना। इसी गुच्छे में इस घर का सब कुछ है। कल जब विष्णु की मां आएगी, तो मैं तुमसे मांग लूंगी—"

कुंजियों के भब्बे को अपने आंचल में बांधकर नयनतारा चली गई। जाकर बिस्तर पर सो रही।

नयनतारा की सारी रात कैसी तो अर्धनिद्राई—अधजगी-सी बीती। सारे घर में सन्नाटा। ऐसे सन्नाटे में आज तक उसे केवल कृष्णनगर की ही याद आती थी। याद आती थी केवल पिताजी की बात। पिताजी की बात के साथ-साथ मां की बात? ब्याह के पहले मां क्या कहा करती थी, क्या करती थी, यह सब।

लेकिन उस दिन वह सब नहीं याद आया। उसे सिर्फ नवाबगंज के इस मकान की ही बात याद आती रही। उसकी ससुराल, सास-ससुर की बात। सास के लिए माया-सी होने लगी। सच तो, लड़के के दोष के लिए सास-ससुर का क्या दोष! उन लोगों ने तो पहले ही दिन से नयनतारा के आदर-जतन में जरा भी कोर-कसर नहीं की। बल्कि बराबर वह इसी कोशिश में रहे कि नयनतारा कैसे खुश रहे।

अंधेरे में लेटे-लेटे ही एक बार लगा, भोर होती आ रही है। दूर से मुर्गे की बांग कानों में आई। सचमुच ही सवेरा हो आया लगता है।

नयनतारा धीरे-धीरे उठी। बाहर के बरामदे पर खड़ी हुई जाकर। सास के कमरे का दरवाजा बन्द ही था। कहीं कोई नहीं था। सवेरे छै बजे से घर का काम-धन्धा शुरू होता है, उसे यह भी नहीं मालूम, अथच भंडार की कुंजी उसीके पास है।

वह लौटकर फिर अपने कमरे की ओर चली आ रही थी कि पीछे से आवाज आई, "जग गई हो बहू?"

नयनतारा ने पीछे उलटकर देखा, "गौरी बुआ है।"

गौरी बोली, "दो, कुंजी दो। दीदी अभी जगी नहीं हैं, सो रही हैं।"

नतारा ने पूछा, "मां अभी कैसी हैं?"
री वुआ ने कहा, "उन्हें अभी-अभी कुछ पहले नींद आई है। तुम
हो लो, विष्णु की मां आते ही चूल्हे में आंच देगी। भंडार से अभी
मान निकाल नहीं लेने से उधर फिर देर होगी।"
गौरी ने कुंजी ली और अपने काम में चली गई। नयनतारा ने वदन-
, धोया, नहाया, कपड़ा फींचा। उसके वाद रसोई में पहुंची तो देखा,
णु की मां और गौरी ने इतने में वहुत-सा काम कर लिया है।

नयनतारा ने कहा, "मुझे कुछ काम वताओ वुआ, अकेले तुमसे सब नहीं
गा, मैं तैयार होकर आई हूं।"

गौरी ने कहा, "तुम अपने कमरे में जाओ वहू! मैं वहीं तुम्हारा जल-
ान दे आती हूं—"

नयनतारा ने कहा, "मुझे अभी भूख नहीं लगी है, कोई काम हो तो मुझे वताओ। चुपचाप वैठे रहना अच्छा नहीं लगता है।"

गौरी ने कहा, "वैठे रहना अच्छा नहीं लगता है तो क्या तुम इस धुएं में वैठी रहोगी? अगर यही अच्छा लगे, तो इस पीढ़े पर वैठो।"

गौरी वुआ और विष्णु की मां—दोनों, दोनों हाथों से काम कर रही थीं। नयनतारा वैठी-वैठी देखने लगी। चंडीमंडप में जलपान गया। दुतल्ले पर कैलास गुमाश्ता के लिए जाएगा। वूढ़े मालिक चूंकि वीमार हैं, इसलिए उनके जलपान का प्रश्न ही नहीं उठता। इसके सिवा दीनू है, वंशी ढाली वगैरह हैं। जलपान की वारी चुक जाने पर रसोई। दाल, भात, तरकारी। विष्णु की मां रसोई में लगी, गौरी वुआ तरकारी काटने लगी। घर-भर के लोगों का खाना। लेकिन पकाने वाले कम। रोज़ ऐसा ही चलता आया है और शायद हो कि सदा ऐसे ही चलता रहेगा। अव नयनतारा भी इन्हीं लोगों में से एक हो गई है। उसकी भी ज़िन्दगी एक दिन इस घर-गिरस्ती से मिलकर एकाकार हो जाएगी।

अचानक शोर-सा करता हुआ प्रकाश मामा अन्दर आया, "कहां, दीदी कहां है, दीदी—"

मामा-ससुर के गले की आवाज़ मिलते ही नयनतारा ने जाकर अपने कमरे में पनाह ली। लेकिन प्रकाश मामा उससे पहले ही रसोई-घर में जा धमका।

गौरी वुआ ने कहा, "भाभी की तवीयत खराव है। सोई हुई हैं।"

"तवीयत खराव है? ऐसे मौके पर दीदी ने तवीयत खराव कर ली?"

वोलते-वोलते वह दीदी के कमरे में चला गया। हल्ला-गुल्ला से प्रीति
की नींद टूट गई थी। वोली, "क्या, हुआ रे, मुन्ने की खवर मिली?"

प्रकाश मामा ने कहा, "मैं क्या उसकी खोज लिए विना लौट सक
हूं? मगर तुमने ऐसे वक्त अपनी तवीयत क्या खराव कर ली? ऐसे समय
भी तवीयत खराव करने को है। असल में ठीक से तुम्हारा खाना-पीना
हो रहा है, मैं खूव समझ रहा हूं—"

"मेरी तबीयत की छोड़, मुन्ने का कुछ पता चला या नहीं, सो बता !"

प्रकाश ने कहा, "कह दो, जल्दी से मुझे खाना दे दो। मैं अभी तुरन्त कलकत्ता जाऊंगा। कलकत्ता से ही अभी आ रहा हूं—"

"मुन्ना क्या कलकत्ता में है ?"

प्रकाश ने कहा, "हां। सुना, पुलिस ने उसे कलकत्ता के कैदखाने में बन्द कर दिया है। रेल-बाजार के थाने में रहा होता, तो कब का छुड़ा लाता। लेकिन उसे तो कलकत्ता की पुलिस पकड़ ले गई है। सुनते ही मैं कल शाम को ही कलकत्ता चला गया। वहां जाने पर सारी बातें मालूम हुईं।"

और, जो-जो हुआ था, वह आदि से अन्त तक सुना गया।

"तो, मुन्ने से भेंट हुई ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "भेंट कैसे होती ? रुपये दिए हैं तुमने ?"

"क्यों, चार सौ तीस या कितने रुपये तो तू पुलिस को देने के लिए ले गया ?"

"उनमें से कुछ तो रेल-बाजार के थाने में दिए। उसके अलावा मेरा *जाने-आने का किराया, खाना-पीना, और-और खर्च।* कुछ रुपये हैं। पर, कलकत्ता की पुलिस को क्या उन कुछ रुपयों से राजी किया जा सकता है ? और भी पांच सौ के लगभग लगेंगे, उससे कम में तो वे बात ही नहीं करते हैं। तुम रुपयों का इन्तजाम करो मैं इतने में खा लेता हूं—तुरन्त कलकत्ता भागना होगा।"

प्रीति ने पूछा, "लेकिन पुलिस मुन्ने को छोड़ तो देगी ?"

प्रकाश ने कहा, "तुम कह क्या रही हो दीदी, रुपये खरचो तो कलकत्ता में बाघ का दूध मिल जाए और मैं मुन्ने को नहीं छुड़ा सकूंगा ? और बात यों है, मुन्ने ने वास्तव में डकैती की तो नहीं है। गलती से डकैत समझकर उसे पुलिस पकड़ ले गई है। यहीं छोड़ देता। रुपयों का खेल है। रुपया देने से सहज ही छोड़ देगा। लो, सन्दूक में कितने रुपये हैं, निकालो—"

प्रीति ने कहा, "कुंजी मेरे पास नहीं है। मैंने बहू को दे दी है।"

"क्यों, बहू को कुंजी क्यों ?"

"बहू ही तो अब से सब देखे-सुनेगी। एक दिन वही तो इस घर की मालकिन होगी, मैंने अभी से उसे सब सौंप दिया—"

प्रकाश मामा ने कहा, "ठीक है। उससे कुंजी लेकर तुम रुपये निकालकर रखो। मैं तब तक नहा-खा लेता हूं···"

प्रकाश मामा कुएं की तरफ चला गया। उसके जाने के बाद नयनतारा सास के कमरे में आई। बोली, "मां—"

"क्या है बहू ?"

"इस समय आप कैसी हैं ?"

प्रीति ने इसका जवाब न देकर कहा, "सुना बहू, मुन्ने का पता चल गया है। अभी-अभी प्रकाश बता गया। असल में नाहक ही उसे पकड़ ले गए हैं, सन्देह पर। डकैत जो थे, वे लोग कालीगंज के उस टूटहे मकान में छिपे हुए

। मुन्ना भी वहां गया था। पुलिस के लोगों ने समझा, यह भी शायद इन्हीं लोगों का साथी है। बस, पकड़ लिया—"

नयनतारा ने कहा, "मैंने सब कुछ सुना है मां, पर वही कालीगंज के उस टूटहे मकान में क्यों गए थे? डकैत लोग तो माना, छिपने के लिए गए थे, पर ये वहां किसलिए गए थे?"

प्रीति ने कहा, "तुम्हें तो सारी बातें मालूम नहीं हैं बहू, उसके पीछे बहुत बात है। उसी घटना के बाद से तो मुन्ना ऐसा हो गया। उसीकी वजह से वह तो ब्याह ही नहीं करना चाह रहा था।"

"लेकिन कालीगंज की बहू? यह कौन है?"

प्रीति ने कहा, "धीरे-धीरे तुम्हें सब मालूम हो जाएगा बहू, पागल उसे किसे कहते हैं? ज़मींदारी रखने के लिए कितना क्या करना पड़ता है, तुम्हें तो मालूम नहीं है बहू! मेरे पिताजी भी भागलपुर के ज़मींदार थे, बचपन से ही मैं यह सब देखती आई हूं, इन बातों का मुझपर कोई असर नहीं होता। किसीके नहीं होता। लेकिन यह अपना मुन्ना, यह दुनिया से बाहर है—"

इतने में प्रकाश मामा का खाना-पीना हो चुका। कपड़ा-कुरता बदलकर बोला, "दीदी? रुपये निकाल लिए?"

प्रीति ने कहा, "बहू, कुंजी से उस सन्दूक को खोलो तो। खोलकर उसमें से पांचेक सौ रुपये निकाल दो—"

मामा-ससुर को देखकर नयनतारा ने घूंघट काढ़ लिया था। बोली, "मैं दूं?"

"हां, दो न। देने में दोष क्या है? कभी तो यह सब कुछ तुम्हें अकेले ही करना होगा। उस समय मैं तो नहीं रहूंगी।"

प्रकाश मामा ने कहा, "हां, दीदी ठीक कह रही है। अभी से प्रैक्टिस कर रखिए, एक दिन यह सारा कुछ आप ही को मैनेज करना है..."

नयनतारा ने कुंजी से सन्दूक को खोला। खोलकर सन्दूक के अन्दर हाथ डाला। कितना क्या तो हाथ से लगा। नयनतारा को लगा, बहुत रुपये हैं, बहुत सोना, बहुत चांदी, बहुत हीरा, बहुत जवाहरात। स्पर्श से उसका शरीर थर-थर कांपने लगा। ब्याह के पहले जो रोमांचकर सपना उसने देखा था, वह मिला नहीं था। लेकिन उसके बदले दूसरे एक जगत् के और ही तरह के स्वाद की रोमांचकता से उसके अचरज का अन्त नहीं रहा। इतना रुपया इन्हें, इतना ऐश्वर्य। कृष्णनगर में अपनी मां की सन्दूकची कभी-कभी उसने खोली थी, मौके-बेमौके उससे रुपये पैसे भी निकाले थे। लेकिन वह और यह! यह तो अगाध है, अपार है, अनन्त है। इतनी दौलत इस घर में कहां से आई? कभी इस सारी दौलत की वही मालकिन होगी? ये रुपये इन लोगों ने कैसे अर्जित किए? यह क्या वही कालीगंज के जमींदार को ठगकर, वही क... पायरापोड़ा, माणिक घोष और फटिक नाई का शोषण करके इकट्ठा ... गया है? जिसके विरोध से उसका पति आज घर छोड़कर चला गया ...

आने के बाद से ही कानों-कान वह जिनके नाम सुनती रही है? यह सारा कुछ उन्हीं लोगों का है क्या ?

"क्यों, नहीं मिला वह ?"

नयनतारा ने झट एक छोटा-सा डब्बा निकाला। पूरे डिब्बे में चांदी का काम किया हुआ। ढक्कन खोलते ही देखा, उसमें बहुत सारी मुहरें हैं।

"वह नहीं, वह नहीं। बाईं ओर हाथ डालकर देखो, लकड़ी का बक्सा है, उसीमें देखो, नोट हैं···"

चांदी के डिब्बे को रखकर नयनतारा ने अबकी बाईं तरफ हाथ डाला। बाईं ओर एक नहीं, कई बक्से थे। उन्हींमें से एक को उसने निकाला। उसमें भी बहुत रुपये थे, नोटों की गड्डियां।

सास ने कहा, "हां, वही। उसीमें से निकाल दो।"

नयनतारा गिनने लगी। दस, पांच, एक-एक के नोट थे। इतनी जल्दी गिन लेना क्या आसान था! कितने रैयतों का कितना लोहू शोषित लेकर कागज के इन नोटों में बदला है। इन्हीं रुपयों से नयनतारा कभी और जमीन खरीदेगी, उस जमीन को जोत-बोकर जो लोग फसल पैदा करेंगे, उनके लोहू-पसीने पर नयनतारा और भी रुपया जमा करेगी। वे सारे रुपये वह इसी सन्दूक में भरेगी। तब नयनतारा के ससुर भी नहीं होंगे, सास भी नहीं होंगी। वह सास जैसा हीरा-पन्ना—जड़ा सीताहार गढ़वाएगी, बेटे का ब्याह करेगी, घर में नई बहू लाएगी। और फिर सास की तरह वह आप भी बीमार पड़ेगी और इस सन्दूक की कुंजी नई बहू अपने आंचल में बांधेगी। इसी तरह से एक-एक के घर मे रुपयों का पहाड़ खड़ा होगा और कपिल पायरापोड़ा, माणिक घोष, फटिक नाई लोग बरवारी-थान के पीपल के पेड़ में फन्दा लगाकर झूलेंगे, खुदकुशी करेंगे।

"क्यों बहू, पांच सौ रुपये गिनने में इतनी देरी?"

प्रकाश मामा चिल्ला उठा, "सिर्फ पांच सौ। पांच सौ में क्या होगा? पांच सौ रुपये तो सिर्फ पान खिलाने में ही उड़ जाएंगे, फिर जाने-आने का खर्च है, होटल में खाने-रहने का खर्च है। यह क्या कोई रेल-बाजार का दरोगा है कि पांच सौ में हो जाएगा? यह है कलकत्ता की पुलिस। पांच सौ में तो वह बात ही नहीं करेगी···"

सास ने कहा, "ठीक है बहू! पूरा एक हजार ही दे दो। लेकिन तुझे सारे रुपयों का हिसाब देना होगा, कहे देती हूं।"

प्रकाश मामा ने कहा, "हिसाब? हिसाब क्या मैंने तुम्हें कभी दिया नहीं है कि हिसाब की कह रही हो? तुमने मुझे जो भी दिया है, उसकी पाई टु पाई का हिसाब दिया है। तुम्हीं कहो, नहीं दिया है?"

"अच्छा, पूरा एक हजार ही दे दो। देखती हूं, तेरी खातिर मुझे एक दिन तेरे जीजाजी के सामने चोर बनना पड़ेगा—"

नयनतारा ने एक हजार की गड्डी मामा-ससुर के हाथ में दी। प्रकाश ने गड्डी को फौरन जेब के हवाले किया।

दीदी ने कहा, "अरे, गिन ले। रुपये गिने नहीं ?"

प्रकाश को उस समय रुपया लेकर चल पड़ने की पड़ी थी। बोला, गिनकर क्या होगा ? बहूरानी ने अपने से गिना है, वह मुझे ठगेंगी क्या ?"

ह लपककर निकला। रुपये जेब में आ गए तो अब उसकी पूंछ कौन पकड़े ! यहां से सीधे रेल-बाज़ार जाना होगा। वहां पहला काम डाकघर जाना। बीवी के नाम से भागलपुर मनीआर्डर करना होगा। बाल-बच्चों के लिए बहुत दिनों से कुछ भेजा नहीं है। तब से वे हा किए बैठे हैं। कम-से-कम तीन सौ, इससे कम भेजना ठीक नहीं होगा। फिर राणाघाट भी राधा के यहां बहुत दिनों से नहीं गया है। रुपयों के लिए ती वह छिछुआता फिरा है। बहुत दिनों से गुलछर्रे की आत्मा—मैदान की सैर नहीं हुई हैं। थोड़े-बहुत मौज़-मज़े के बिना मन-मिजाज़ ही कैसे ठीक रहे ! ज़िन्दगी में मौज़ का नाम ही न रहा तो जीने का क्या लाभ ? कलकत्ता पहुंचकर सबसे पहले मां काली छाप एक बोतल गले के नीचे उतारनी होगी। उसके बाद कलकत्ता शहर। पल्ले पैसे हों तो जी चाहे जितना मौज़ उड़ा लो, कोई मना करने वाला नहीं।

रुपयों को दोनों बगल टेंट में खोंसकर प्रकाश मामा ने आसमान की ओर देखा। शायद शंखचील पर नज़र पड़ जाए। शंखचील यात्रा में सगुन है। उससे पुलिस के ऐसे मामले हाथ लगते हैं। ऐसे पुलिस-केस बीच-बीच में होते रहें तो रुपयों के दर्शन मिला करें। लेकिन ऐसा समय-काल पड़ा है कि लगता है, रुपया दुनिया से गायब होता जा रहा है।

नः, आसमान में कहीं किसी शंखचील की चुटिया भी नहीं दिखाई दी। सब वही वाहियात मामूली चील। उपाय क्या है। भरा हुआ घड़ा दिख जाता, तो भी काम बनता। वह भी नदारद।

मगर अब देर करने की गुंजाइश न थी। चंडीमंडप के बगल से जाते हुए एकाएक बैठके की ओर नज़र गई। बैठके का किवाड़ खुला पड़ा था। अभी दरवाज़ा खुला कैसे है ? बाबाजी तो कभी दरवाज़ा खुला नहीं रखते।

झांककर देखा तो खटका हुआ। बाबाजी कहां गए ?

प्रकाश मामा को सन्देह और भी बढ़ा। गायब हो गए क्या ! वह भागकर बैठके में गया। मगर बाबाजी कहां ?

उधर कलकत्ता जाने की ट्रेन का वक्त होता आ रहा था। उसे तो भ यह जानने की ख़ाहिश हुई कि माजरा क्या है ? बाबाजी का त्रिशूल प है, खड़ाऊं भी है। लेकिन उनका वह झोला नहीं है, बाबाजी का झो जिसमें गांजे की चिलम आदि रहती थी।

क्या बात हो गई ! सामने से बंशी ढाली जा रहा था। प्रकाश माम उसीसे पूछा, "बंशी, बाबाजी कहां गए रे ?"

बंशी ने कहा, "मैंने तो बाबाजी को सुबह से ही नहीं देखा है बाबू—"

"तो क्या मैदान गए हैं ! किन्तु इस समय तो वे मैदान जाते नहीं। बंशी ही क्यों, किसीको भी पता नहीं था कि बाबाजी कहां गया

करेंगे ?"

...यों बहूरानी हैं ! आपकी लड़की। यह तो आपकी अपनी बेटी का ...ल है। पराया घर थोड़े ही है। समधी जी नहीं रहे तो क्या, मैं भी न ...तो क्या, अपनी लड़की पास आए हैं, चलिए, उन्हींके कमरे में बैठिएगा। ...भेंट कीजिए। नहा-धोकर भोजन कीजिए, आराम कीजिए। मैं ...रानी को खबर किए देता हूं..."

प्रकाश माम अन्दर चला गया।

"दीदी, कृष्णनगर से समधी जी आए हैं।"

नयनतारा भी पास ही खड़ी थी। उसने भी सुना। सुनते ही सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। बोली, "मेरे पिताजी !"

"पिताजी ! पिताजी आए हैं !"

सास ने कहा, "बहू, जाओ। अपने पिताजी को अपने कमरे में ले जाकर बिठाओ। और, गौरी से कह आओ, इन लोगों के भोजन का प्रबन्ध करे।"

प्रकाश मामा ने कहा, "दो आदमी के भोजन का प्रबन्ध करना है। उनके साथ उनका एक छात्र भी आया है। इस बुढ़ापे में अकेले आते भी कैसे ! दीनू से कहे देता हूं, नहाने का पानी भर दे। मैं नहीं रहूंगा, जीजाजी नहीं हैं, अपने पिताजी का आप अपने से जतन कीजिएगा बहूरानी, कोई त्रुटि न हो—"

खुशी के मारे नयनतारा की आंखों में आंसू छलक आए। कोई देख लेगा, इसलिए झटपट आंचल से पोंछ लिया। लेकिन सास ने आखिर देख ही लिया। बोली, "तुम रो रही हो क्या बहू ? क्यों, रो क्यों रही हो ? क्या हो गया ?"

"नहीं, रो तो नहीं रहीं हूं मां !—"

कहकर वह जल्दी से सास के कमरे से अपने कमरे की ओर चली गई ! पिताजी आए हैं। उसके पिताजी। नयनयारा के बिना उनसे रहा नहीं गया, इसीलिए दौड़े आए। खुशी के मारे वह समझ नहीं सकी कि क्या करे। आईन के सामने जाकर अपना चेहरा देखा, सूखे कपड़े से पोंछकर साफ कर लिया।

तब तक बाहर पिताजी का गला सुनाई पड़ा, "नयन—"

कलकत्ता शहर के जनता-विध्वस्त इलाके के एक केन्द्र में उस समय दू... एक आदमी की चिन्ता ने दूसरी तरफ कक्ष-परिवर्तन किया। कहां वह नव... गंज और कहां यह कलकत्ता ! कलकत्ता सदानन्द इसके पहले भी आया... लेकिन पहले आया था अपने पिताजी के साथ यहां का मैदान दे... चिड़ियाखाना देखने। ट्राम-बस-गाड़ी, यहां की भीड़ देखने। कालीघाट ... करने, आदमी के महोत्सव का जी भरकर लुत्फ लेने। उस समय ऐ...

चीजें देखी कि उसकी आंखें भरीं, जी भी भरा।

लेकिन थाने के हाजत की कोठरी में बैठकर सदानन्द ने और ही एक कलकत्ता को देखा। लेकिन देखा भी कितना! देख ही कितना पाया! काली-गंज के उस वीरान मकान से हथकड़ी डालकर पुलिस उसे ले आई। वहां से रेल-बाजार से ट्रेन पर सवार कर दिया। संगीनधारी पुलिस की चौकस निगरानी में स्यालदह स्टेशन से एक गाड़ी पर बिठाकर यहां लाया गया। लाल-बाजार का पुलिस हेडक्वार्टर। उसके बाद से हाथ आए उन लोगों के साथ ही था।

उनमें से एक आदमी अपने से ही उससे बात करने लगा। पूछा, "आप पहले कभी कलकत्ता नहीं आए हैं, क्यों?"

सदानन्द ने कहा, "क्यों आप यह बात क्यों पूछ रहे हैं?"

"आपको देखकर ऐसा ही लग रहा है। बन्द गाड़ी की जालीदार खिड़की से आप जिस तरह से बाहर देख रहे थे। इसीसे पूछ रहा हूं। गंवई आदमी नहीं होने से कोई इस तरह से बाहर की तरफ नहीं ताकता—"

सदानन्द ने कहा, "नहीं। मां-बाबूजी के साथ मैं घूमने के लिए बहुत बार कलकत्ता आ चुका हूं।"

"आप करते क्या हैं?"

"कुछ भी नहीं करता।"

"कुछ भी नहीं करते। कुछ करने की जरूरत ही नहीं होती। शायद बपौती जमींदार हैं?"

सदानन्द ने कहा, "हां।"

उस भले आदमी ने कहा, "सच पूछिए, तो असली गुनहगार आप ही लोग हैं। आप लोगों की वजह से ही देश में सारी अशांति है। आप लोग अंग्रेजों से भी ज्यादा शैतान हैं।"

सदानन्द ने कहा, "आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं।"

वह भलामानस हैरान रह गया। बोला, "ठीक कह रहा हूं!"

"हां, आप ठीक कह रहे हैं। जरा भी गलत नहीं कहा है। इसमें मैं आप लोगों से बिलकुल सहमत हूं।"

वह भला आदमी और भी हैरत में पड़ गया। उसने और कुछ न कहकर बाकी चार से जाने क्या तो जाकर फुसफुसाकर कहा। उसकी बात सुनकर सबके सब सदानन्द के पास आए। नये सिरे से नाम-धाम, घर-परिवार का परिचय जानना चाहा। थोड़ी ही देर में खासा परिचय हो गया। उन लोगों ने इस बात पर दुःख प्रकट किया कि उसे नाहक ही उन लोगों के साथ फंसना पड़ गया। एक ने कहा, "हम लोगों के कारण आपको भी सजा हो जाएगी—"

"सजा?"

सजा की बात को सुनकर सदानन्द को हंसी आई। बोला, "सजा दे दें? यों ही सोच रहा हूं, सरकार मुझे नये सिरे से कौन-सी सजा देगी?"

बातें करने वाले सभी सदानन्द के हमउम्र ही थे। ट्रेन में जब तक रहे

में खास बातचीत नहीं हुई। सिपाही उन्हें घेरे बैठे थे। सबके कमर में बंधी। प्लेटफार्म पर, ट्रेन के डिब्बे में लोग 'हा' किए उन्हें देखते रहे। ी आंखों में कौतूहल-भरी निगाह। जैसे, मनुष्य-समाज में ये कई जने ग जात के हों। व्यतिक्रम हों एक।

एक ने कहा, "देख रहे हैं, लोग किस तरह से हमारी तरफ ताक रहे हैं? े हम लोग डकैत हैं।"

सदानन्द उन सबकी बातें सुन रहा था। उसे लगा, इस किस्म के लोग उसने इसके पहले नहीं देखे। उसके नवाबगंज के केदार, निताई, गोपाल— और भी जाने कितने हैं, जो अड्डे पर बैठकर गप्पे मारते हैं, रात में यात्रा का रिहर्सल करते हैं, दशहरे के समय परदा टांगकर नाटक खेलते हैं, उन लोगों से ये लोग जुदा हैं।

"आप उस टटुहे मकान में किसलिए गए थे?"

सदानन्द ने कहा, "मैं वहां अक्सर जाया करता हूं, वहां जाना मुझे अच्छा लगता है।"

"लेकिन आपका घर तो नवाबगंज में है। आप कालीगंज क्यों जाते हैं? घर में आपके कौन-कौन हैं?"

"सभी हैं! मां, पिताजी, दादाजी, मेरी पत्नी..."

"पत्नी? आपने शादी भी कर ली है?"

सदानन्द बोला, "मैंने शादी की नहीं, मेरी शादी हुई है।"

थोड़ी देर में आपस में बहुत-बहुत बातें हो गईं। सदानन्द ने यह जाना कि डकैती करके ये रुपया लाते हैं और उससे बन्दूक-पिस्तौल खरीदते हैं देश के दुश्मनों को मारने के लिए।

उन्हें जितना ही देख रहा था, उतना ही अवाक् हो रहा था सदानन्द। वे सभी ज्यादातर आपस में ही फुसफुसा कर कुछ बात करते रहते। साथ पकड़े जाने पर भी कैदखाने में वह मानो अजात-सा था, अलग-अलग। वे लोग इसपर विश्वास नहीं कर रहे थे जैसे। फिर भी एक से उसका अच्छा मेल-जोल हो गया। उसका नाम आज भी याद है—प्रियतोष। प्रियतोष सरकार। देखने में कमाल का। जैसे जलती हुई चिनगारी हो। प्रियतोष ने कहा, "ये लोग शायद आपको छोड़ देंगे।"

सदानन्द ने पूछा, "क्यों?"

"पुलिस इंसपेक्टर हम लोगों से आपके बारे में पूछ रहा था। मैंने कह दिया, वह हमारे दल का आदमी नहीं है।"

सदानन्द ने कहा, "आपने ऐसा क्यों कहा? मैं चाहता हूं, आप लो के साथ मुझे भी कैद हो!"

प्रियतोष ने कहा, "कैद ही तो नहीं, फांसी भी हो सकती है। कहा नहीं जा सकता।"

सदानन्द ने कहा, "आप सोच रहे हैं, फांसी की सुनकर मैं जाऊंगा?"

हाजिर

"डरेंगे नहीं ?"

"नहीं। कैद से भी मुझे एतराज नहीं, फांसी से भी नहीं।"

सदानन्द की बात सुनकर प्रियतोष सरकार कुछ देर तक टुकुर-टुकुर उसकी ओर ताकता रह गया। फिर वह अपने साथियों के पास चला गया उसके बाद सभी मिलकर उसके पास आए। अबकी सबने उसे और भी गौर से देखा। उन लोगों का ख्याल था, बहादुरी में उन सबका सानी नहीं। लेकिन एक अनचिन्हे आदमी की हिम्मत देखकर उन्हें उसपर श्रद्धा होने लगी। एक ने कहा, "पहले से जानता होता, तो आपको हम अपनी पार्टी में ले लेते जनाब ! हमें तो आप जैसे हजारों-हजार नौजवानों की जरूरत है। ऐसे नौजवानों की जो जान पर खेलकर देश के दुश्मनों को खत्म कर सकें। मगर आपसे भेंट हुई ही बड़ी देर से—"

सदानन्द ने पूछा, "आप लोग आदमियों का खून करते हैं ?"

प्रियतोष कहा, "और नहीं तो क्या. रुपयों के लिए हमने ट्रेन भी लूटा।"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन मात्र गोरे क्या अकेले दुश्मन हैं ? हम लोगों में भी तो बहुतेरे ऐसे हैं, जिनको मार डालने से देश का कल्याण हो सकता है।"

"बेशक हैं। वैसे लोग मीरजाफर हैं। हम वैसे मीरजाफरों का भी खून करते हैं।"

सदानन्द ने पूछा, "किन्तु यदि वे हमारे शत्रु चले जाएं, मीरजाफर लोग भी चले जाएं, तब किनका खून कीजिएगा ?"

वे सदानन्द की बात का मतलब समझ नहीं सके। बोले, "आप किनके बारे में कह रहे हैं ?"

सदानन्द बोला, "वे लोग तो घर-घर के हैं। दादा बनकर, मां-बाप बनकर, मामा बनकर, जो लोग बेखटके खून कर रहे हैं, उन सबका खून करने का प्रबन्ध आप लोग कर सकेंगे ?"

"इसका मतलब ?"

सदानन्द ने कहा, "कभी-न-कभी ये विदेशी लोग तो चले जाएंगे। पर ये जो लोग हैं, ये तो हमारे आस-पास, घर-घर में रहेंगे। इन सबके अत्याचार को रोक सकेंगे आप ? इन दादाओं, बापों, माओं और मामाओं का ? ये लोग किस तरह का अत्याचार करते हैं, इसकी खबर है आपको ? ये लोग एक-एक करके कालिदास, मंजिर पाल, फटिक नाई, और नयनतारा की बहू का खून करते चले जा रहे हैं। इनको क्या दंड मिलेगा ? आप लोग दंड दे सकेंगे इन्हें ?"

इतने में एक वार्डर आया। बोला, "सदानन्द चौधरी किसका नाम है ?"

सदानन्द ने कहा, "मेरा ? क्यों ? क्या बात है ?"

"पुलिस-सुपर आई० बी० आपको नीचे बुला रहे हैं, चलिए…"

सदानन्द जिस हालत में था, उसी हालत में वार्डर के…

ड़ा।

सदानन्द के चले जाने के बाद प्रियतोष ने साथियों की ओर देखा। बोला, "मैंने तुम लोगों से कहा था कि यह लड़का पागल है। उस समय तुम लोगों ने मेरी बात का यकीन नहीं किया। तुम लोगों ने कहा, 'भेदिया है'—"

औरों ने भी समझा, पागल ही है। हकीकत में शुरू से ही सबने सदानन्द को पागल ही समझ लिया था। उसके जीवन की यह भी एक ट्रेजडी है। लेकिन इस दुनिया में कौन पागल है और कौन पागल नहीं है, इसका विचार करने वाला कोई ढूंढ़े भी मिला क्या उसे? सिर्फ उसकी बदनामी ही हुई। वही शायद पागल है।

खैर, इसे अभी छोड़ें।

उधर एक बहुत बड़ी मेज के सामने खड़े होकर गोरी चमड़ी का आई० बी० अफसर सदानन्द से एक के बाद दूसरा सवाल पूछता जा रहा था, "घर कहां, बाप का नाम क्या, उस दिन तुम उस वीरान पड़े मकान में क्यों गए थे?" आदि-इत्यादि—ढेर सारे प्रश्न। कभी पुचकारकर, कभी धमकाकर उससे भेद ले रहा था साहब। लेकिन उसका वही एक ही जवाब था, 'मुझे जेल से भी इनकार नहीं और फांसी से भी एतराज़ नहीं।"

आखिर साहब की सारी शंकाएं जब जाती रहीं और रिपोर्ट में भी उसके खिलाफ कुछ नहीं मिला, तो उसे हुक्म हुआ, "जाओ। गेट आउट, गेट आउट आफ दिस प्लेस।"

सदानन्द ने पहले समझा नहीं। पूछा, "कहां जाऊं?"

वहां दूसरे कई बंगाली इन्सपेक्टर खड़े थे। उन लोगों ने कहा, "आप बाहर चले जाइए, आपको छूटकारा मिल गया—"

"छुटकारा?"

थाने के बाहर भी सदानन्द को छूटकारा नहीं। लेकिन बाहर के लोगों को इस बात का कैसे पता हो! सदानन्द को जैसे रुलाई छूटने को आई।

"अरे साहब, यों ताक क्या रहे हैं? चले जाइए।"

सदानन्द ने पूछा, "उन लोगों से एक बार मिल ले सकता हूं। उन लोगों में जो प्रियतोष सरकार है, उससे?"

एक बंगाली अफसर डपट उठा, "जो कह रहे हैं, सुनते क्यों नहीं मजाक हो रहा है?"

सदानन्द बिना कुछ बोले निकला। बाहर बहुत बड़ा अहाता। अहाते
लाल पगड़ी, सादी पोशाक वाले बहुतेरे सिपाही, गाड़ियों की भीड़। स
मालूम हो गया, सदानन्द चौधरी नाम को जो लड़का कल पकड़ाकर अ
था, उसे हाजत से छोड़ दिया गया। परन्तु एक बात किसीको भी म
नहीं हो सकी कि उसे वास्तव में छुटकारा नहीं मिला। वह सिर्फ एक
से हाजत से एक बहुत बड़े हाजत-घर में जा पहुंचा, बस, इतना ही। इस
में छत नहीं, आसमान है, दीवालें नहीं हैं, सिर्फ कैदियों की भीड़ है। य

बस। यहां सब उसी जैसे आदमी हैं। सब सोचते हैं कि वे आजाद हैं, लेकिन नहीं, वास्तव में वे बन्दी ही हैं।

सदानन्द रास्ते पर आ खड़ा हुआ। चारों ओर अनगिनती व्यस्तताएं जैसे आदमी के रूप में दौड़ रही थीं। यहां नवाबगंज वाली बात नहीं। वहां सभी व्यस्त होना चाहते हैं, हो नहीं सकते। वहां सारा दिन पड़ा है आपका। जितना चाहिए, कीजिए न काम। और अगर काम नहीं तो केदार की दुकान के चौंतरे पर बैठकर औरों की निन्दा-शिकायत कीजिए। वहां खेत-खलिहानों की इफरात है। जी में आए तो नदी किनारे के एकांत में अपना अकेलापन मिटाइए। यहां उसका ठीक उलटा है। सबके चेहरे की तरफ देखकर सदानन्द को लगा, यहां जैसे कोई किसीका नहीं। सभी अकेले हैं। फिर भी सबको जकड़कर सब एक साथ मारना चाहते हैं।

"सुनिए—"

सदानन्द ने घूमकर देखा। एक आदमी उसकी तरफ हाथ फैलाए था।

"एक पैसा दीजिएगा ?"

सदानन्द समझ गया, भिखमंगा है। अथच बदन पर कुरता है, पहनावे में धोती। पैरों में जूते भी। देखने में लगता ही नहीं कि भिखारी है। सदानन्द ने जेब में हाथ डाला। पता भी नहीं था कि पल्ले कुछ है भी या नहीं। पुलिस ने गिरफ्तार करते वक्त उसकी तलाशी ली थी। एकाएक याद आया, जेब में तो कुछ भी नहीं है। मगर नवाबगंज जाने के लिए रेल का किराया तो चाहिए! कैसे लौटेगा!

सदानन्द ने कहा, "मेरे पास एक पैसा भी नहीं है। मैं कुछ नहीं दे सकूंगा।"

मंगते ने इसपर विश्वास किया या नहीं, कौन जाने! शायद हो कि उसे इसकी कल्पना भी न हो कि सदानन्द अभी-अभी हाजत से छूटा है। कल्पना भी करे कैसे। उसके कपड़ों और चेहरे पर कहीं आसामी लिखा तो नहीं था।

भिखारी चला गया। फिर शायद ऐसे ही और किसीके आगे हाथ फैलाएगा। उसके लिए सभी बड़े आदमी हैं। सभी उससे धनी हैं। लिहाजा मांगने में उसे कोई शरम नहीं। लेकिन इस शहर में सदानन्द किसके पास हाथ पसारेगा? घर लौटने के लिए किराए की भीख किससे मांगेगा?

सारा कलकत्ता इतने में और भी व्यस्त हो उठा था। शहर को किसीके अभाव और गरीबी की ओर ताकने का समय नहीं था। उस निष्ठुर निर्मम कलकत्ता की ओर देखते हुए सदानन्द वहीं चुप खड़ा रहा। समझ नहीं सका, यहां वह किस काम आएगा! इस दुनिया में उसकी क्या जरूरत है!

नयनतारा में लेकिन जीवट है, मानना होगा। बहू के काम-काज देखकर

दंग रह गई। पिताजी आए है। लिहाजा नयनतारा भी मानो और
तारा हो उठी। कभी रसोई-घर में जा रही है, तो कभी अपने पिता के

सास ने आवाज़ दी, "वहू—"

ास सुवह से ही कमरे से नहीं निकली। पिछले दिन रात जो लेटी, सो
ही नहीं। एक वार सिर्फ उठकर वैठी थी। वहू से कहा था कि संदूक
कर प्रकाश को रुपया निकाल दो।

सास ने कहा, "तुम्हारे पिताजी ऐसे वक्त आए कि मैं उठ-वैठ नहीं
ती। तुम अकेली सव देखभाल कर लोगी तो? घर में कोई मर्द भी नहीं कि
का आदर-जतन करे। यह भार तुमपर ही रहा वहू, देखना, तुम्हारी
ुराल की वदनामी न हो।

नयनतारा ने कहा था, "आप कतई न सोचें मां, मैं हूं, सव संभाल लूंगी—"

वहू का चेहरा देखकर सास को भरोसा हुआ। पिता के आने की खवर से
वहू विलकुल और ही हो गई है। होंठों पर हंसी है, पर उद्वेग भी कम नहीं।
वोली, "वहू कह देना, नहाने का इंतजाम कर दे।"

नयनतारा ने कहा, "पिताजी के साथ उनका एक छात्र भी आया है। वूढ़े
आदमी, अकेले आने की हिम्मत नहीं हुई।"

"ठीक ही किया है। तुम गौरी को ज़रा मेरे पास भेज दो और अपने पिताजी
के पास जाकर वैठो? मैं गौरी को सव वता देती हूं कि क्या-क्या रसोई होगी?"

घर में मेहमान आए हैं। ऐसे में घर की मालकिन को ही सव करना चाहिए।
गौरी के आते ही सास ने कहा, "री गौरी, समधी जी वगैरह खाएंगे, देखना, कोई
शिकायत न हो। तेरे भैया भी नहीं हैं। तुझसे हो जाएगा कि मैं चलूं?"

गौरी को वात करने की फुरसत नहीं थी। वोली, "इसके लिए तुम क्यों
परेशान हो रही हो भाभी, तुम चुपचाप लेटी रहो न। मैं हूं, विष्णु की मां है, वह
है—काम करने के लिए आदमी की कमी है?"

सचमुच ही किसीको कोई असुविधा नहीं हुई। नयनतारा ने गजव ढंग से
सव कुछ संभाल लिया था। रसोई-घर में एक-एक वार जाती, "वुआ मैं कुछ
करूं?"

गौरी वोली, "नहीं वहू! तुम जाकर अपने पिताजी से वात करो। समधी
जी वगैरह नहा लें तो मुझे वताना—"

नयनतारा ने कहा, "उनका नहाना तो हो गया।"

"तो तुम जाकर अपने पिताजी के पास वैठो। इधर सव ठीक कर-कराके मैं
कहलाती हूं—"

नयनतारा ने कहा, "अव तक वैठी उन्हींसे तो वात कर रही थी। अभी
सिर्फ यह देखने आई, तुम अकेली सव कर तो लोगी?"

"खूव कर लूंगी, तुम जाओ तो यहां से। यह तो महज दो जने का खाना है।
इसी गौरी ने कभी अकेले सौ जने को खाना वनाकर खिलाया है—"

नयनतारा फिर लपककर पिताजी के पास चली गई।

कालीकांत जी और निखिलेश नहा-धोकर निश्चिन्त वैठे थे। इतने दिनों

बाद नयनतारा से भेंट हुई। बड़े अरमान से उन्होंने नवाबगंज के चौधरी परिवार में बेटी का ब्याह किया था। यहां आते समय बड़ी दुर्भावनाएं मन में लिए चले थे। चिन्ता थी, न जाने बेटी की ससुराल में जाकर क्या देखने को मिले। लेकिन जबसे आए हैं, लड़की उनके आदर-जतन में ही व्यस्त है, बात करने तक की फुरसत नहीं। नयनतारा की ससुराल के भीतर के हिस्से को इसी बार उन्होंने अच्छी तरह से देखा। इस बार बिटिया ने उसे बिलकुल अन्दर लाकर अपने कमरे में बिठाया। पिछली बार बेटी को यहां तक पहुंचाकर ही चले गए थे। इस बार अन्दर आए। वह चारों तरफ देख रहे थे। है तो गांव का ही घर, लेकिन उसीमें कितनी अच्छी व्यवस्था। घर के सदर में आने का रास्ता उत्तर की तरफ से है, उसके बाद बाहर के चंडीमंडप को बाएं छोड़कर सीधे अन्दर का रास्ता। बाएं, दक्खिन की ओर धान-चावल, सरसों-चने बोरियां। और, कतार से कमरे। बैठके से लेकर आए-गए लोगों के ठहरने तक इंतजाम। अंतिम छोर पर दुतल्ले पर जाने की सीढ़ी। दुतल्ले पर जो एक-डेढ़ कमरे हैं, सब बूढ़े चौधरी जी के लिए। वह इलाका उन्हींके कब्जे का है। उसके बाद एक ऊंची दीवाल। उसीके बीच में दरवाजा। उस दरवाजे से अन्दर के आंगन में जाया जाता है।

कुएं पर नहाते समय कालीकांत जी सब देख रहे थे। पश्चिम की ओर कितना बड़ा बगीचा है। बगीचे के दक्खिन हवेली का पोखरा। पक्के का घाट, उसपर सीमेंट की बेंच। नयनतारा वहीं नहाती है क्या?

नयनतारा ने बताया, "नहीं बाबूजी, मैं कुएं के पास घिरा हुआ नहानघर है, वहां नहाती हूं। सासजी मुझे पोखरे में नहीं उतरने देतीं। कहती हैं, 'तुम तैरना नहीं जानती हो बहू, पोखरे में मत नहाओ।' "

कालीकांत जी ने कहा, "तब तो कहना होगा कि तेरी सास तो बड़ी भली है?"

"हां। बड़ी भली है बाबूजी! गहना-गुरिया, रुपये-पैसे के संदूक की भी कुंजी मुझे दे दी है, यह देखिए न—"

पिताजी ने ही नहीं, निखिलेश ने भी देखा। नयनतारा ने कुंजियों का गुच्छा हाथ में लेकर दिखाया।

कालीकांत जी बोले, "मैंने तुमसे क्या कहा था निखिलेश, देख लिया न, बिटिया का पति भाग्य अच्छा है। हां रे नयन, सदानन्द को छुड़ाने का उपाय तेरे मामा-ससुर कर कर लेंगे न?"

नयनतारा ने कहा, "आप मेरे मामा-ससुर को शायद पहचानते ही नहीं। वह बड़े पक्के आदमी हैं—"

"मगर पुलिस वाले न छोड़ें तो?"

नयनतारा ने कहा, "उसीके लिए तो एक हजार रुपया ले गए, मैंने ही तो अपने हाथों संदूक से निकालकर रुपया दिया।"

सुनकर कालीकांत जी मानो खूब खुश हुए। बोले, "तब तो रुपये-पैसे भी तेरे ही हाथ में है। तू ही रुपये-पैसे रखती है क्या?"

नयनतारा ने कहा, "वाह, संदूक की कुंजी मेरे जिम्मे और पैसा-कौड़ी

ई और दूसरा छुए-छपाएगा ? आप क्या जो कहते हैं ।"

"यानी घर की मालकिन एक तरह से तुम्हीं हो ।"

नयनतारा हंसी । बोली, "मेरी सासजी तो कल से अस्वस्थ हैं । घर-गिरस्ती मैं न देखूं तो कौन देखे ! ससुर जी मुकदमे के सिलसिले में राणाघाट गए हैं, ऊपर बूढ़े मालिक बेहोश पड़े हैं, मामा-ससुर पुलिस की पैरवी के लिए कलकत्ता गए और इधर सासजी बीमार—मगर खाने के समय ढेरों आदमी—"

खाते हुए कालीकांत जी बेटी की बात सुन रहे थे । बोले, "यह तो खाने में बड़ा अच्छा हुआ है रे, किसने बनाया ? मछली का माथा मिलाकर चने की दाल ?"

"और कौन बनाएगा, मैंने ही बनाया है ।"

बगल में ही बैठकर निखिलेश खा रहा था । वह बोला, "हां । सारी ही चीजें बेहतरीन बनी हैं ।"

नयनतारा का उत्साह बढ़ा । बोली, "तो दाल थोड़ी-सी और ले आऊं ?"

कालीकांत जी ने मना किया, "अरे, नहीं-नहीं । एक ही तो पेट है, इतना सब उसमें आएगा कैसे ? मगर मैं यह सोच रहा हूं, तूने इतना सारा सीखा कब ? तेरी मां भी ऐसी दाल बहुत अच्छा बनाती थीं । अपनी मां से ही यह सब सीखा था, क्यों ? विपिन भी जाकर यहां की रसोई की बड़ी तारीफ कर रहा था ।"

नयनतारा ने कहा, "मां के अलावा और किससे सीखती ? यहां तो अभी-अभी आई ही हूं—"

कालीकांत जी बोले, "तो यहां तुझे खाना-वाना पकाना पड़ता है क्या ?"

आप भी कैसी बात कर रहे हैं बाबूजी ! यहां क्या रसोई बनाने वाली की कमी है ? विष्णु की मां है, गौरी बुआ हैं, लेकिन मेरी सास चाहती हैं, मैं बनाऊं । मेरे हाथ की रसोई सास-ससुर को बहुत अच्छी लगती है ।"

"और सदानन्द ? उसे तेरी रसोई पसन्द है ?"

नयनतारा हंसी । बोली, "असल में उन्हींके लिए तो मुझे रसोई में जान पड़ता है । मेरे हाथ की रसोई के बिना उन्हें खाना रुचता नहीं ।"

बेटी की बातों से पिता बहुत ही खुश हुए । नयनतारा ने कहा, "आप थोड़ा-सा दही और दूं ?"

कालीकांत जी तब तक उठ चुके थे । बोले, "इससे ज्यादा खाने से तबीयत खराब हो जाएगी । खाने की क्या अब उमर रही मेरी ? ब निखिलेश को दो, इन लोगों की उम्र है, खा सकेगा—"

निखिलेश भी उठ गया । बोला, "अब मुझसे भी नहीं चलने का—"

खा-पी चुकने के बाद कालीकांत जी बोले, "तू मेरे साथ कृ चलेगी ? समधिन जी से जरा पूछ आ न । कहना, बाबूजी ले जाना हैं—"

प्रीति अपने कमरे में लेटी हुई थी । बहू को देखकर पूछा, "तुम्हा

का भोजन हो गया ? कोई असुविधा तो नहीं हुई ? मैं तो देख ही नहीं पाई कि चीजें कैसी बनीं, तुमने किस तरह से परोसा—"

"नहीं मां, खाने में कोई असुविधा नहीं हुई। बाबूजी मुझे कृष्णनगर ले जाना चाह रहे थे। जाऊं मैं ?"

सास ने कहा, "जाओ। दो दिन घूम आओ। तुम तो जाने की कह ही रही थी। जब तुम्हारे बाबूजी आ ही गए हैं, तो जाओ। इस हालत में यहां रहने में तुम्हें तकलीफ ही तकलीफ होगी। कुछ दिनों के लिए हो आओ—"

नयनतारा ने कहा, "लेकिन आपकी तबीयत ऐसी है मां—"

सास ने कहा, "सो हो। मेरी तबीयत अगर बराबर ऐसी ही रहे, तो क्या तुम एक बार नैहर नहीं जाओगी ? मेरे लिए तुम नाहक ही क्यों कष्ट झेलोगी बहू ? तुम यहां किस सुख से पड़ी रहोगी ? तुम्हारे बाबूजी आ गए हैं, ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा, तुम बल्कि चली ही जाओ।"

नयनतारा ने जरा सोचकर कहा, "मैं जाऊं ? बाबूजी भी घर पर नहीं हैं, लौटने पर वह अगर कुछ बोलें ?"

सास ने कहा, "वह न सोचो तुम। वह कुछ बोलेंगे भी तो मैं उन्हें समझा दूंगी। तुम यहां रहोगी ही किसके लिए बहू ? यहां तुम्हारा है कौन ? मेरा लड़का तुम्हारा मुंह भी देखता है ? जिसका पति ऐसा हो, वह किस उमंग से गिरस्ती करे ?"

नयनतारा इसका क्या जवाब दे। बोली, "तो मैं पिताजी से ऐसा ही कहती हूं ?"

"हां बहू, मैं कहती हूं, तुम जाओ। जानती हो, तुम जो यहां दुःखी रहती हो, उससे मुझे और तकलीफ होती है। सच पूछो तो, तुम्हारी सोच-सोचकर मैं ऐसी बीमार पड़ गई हूं, नहीं तो मेरे बीमार पड़ने की तो और कोई वजह नहीं है।"

"अच्छा तो पिताजी से जाकर मैं ऐसा ही कहती हूं—"

कहकर नयनतारा पिता के पास गई। बोली, "नहीं बाबूजी मां की राय नहीं हुई। बोलीं, 'ससुर जी घर पर नहीं हैं, वो भी नहीं है, ऐसे में मेरा जाना ठीक नहीं होगा।' और, मैंने भी सोचकर देखा, ऐसे में चले जाने से यहां बड़ी असुविधा होगी। संदूक-भंडार की कुंजियां तो मेरे ही जिम्मे है। सास का जी अच्छा नहीं है। जाने की तो मेरी बड़ी इच्छा थी। जाती तो कुछ दिन फिर भी आपकी देखभाल करती, मगर ऐसे में मैं क्या करूं ?"

कालीकांत जी ने कहा, "न-न, तुम्हारी सासजी ने तो ठीक ही कहा। मेरी चिन्ता मत कर। मुझे कोई असुविधा नहीं होगी। तुम यहां सुखी हो, इसीमें मेरा सुख है। मुझे यही दुःख है कि तुम्हारा इतना सुख, इतना ऐश्वर्य तुम्हारी मां नहीं देख सकी। तो मैं चलूं बेटी, अपनी सास-ससुर से कह देना, मैं रुक नहीं सका, कल मेरा कालेज है। खैर, मैं चलता हूं—सदानन्द के आने-न-आने की खबर मुझे किसी तरह देना—"

पिता के पैर छूकर नयनतारा ने हाथ माथे से लगाया। बेटी के माथे पर हाथ

रखकर पिता ने आशीर्वाद दिया, "जीती रहो वेटी, पति के घर लक्ष्मी वनकर विराजो—मैं यही प्रार्थना करता हूं।"

वेटी से विदा होकर वह वाहर निकले। निखिलेश भी पीछे-पीछे चला। पहले से ही सव किया-कराया था। रजवअली उन्हें स्टेशन छोड़ आएगा।

नयनतारा वाहरी दालान के किनारे तक आकर खिड़की से झांककर देखने लगी। पिताजी गाड़ी पर सवार हुए। निखिलेश भी। गाड़ी चल पड़ी। अहाते से निकलकर गाड़ी रास्ते पर जा पहुंची। उसके वाद कुछ दीखने नहीं लगा।

नयनतारा की आंखें छलछला उठीं। उसने खिड़की के पल्ले उढका दिए।

गाड़ी वरवारी-थान होकर जाने लगी। कालीकांत जी का मन वड़ा भारी-भारी लग रहा था। वेटी का सुख और ऐश्वर्य देखकर जैसे प्रसन्न हुए थे, उसे छोड़कर जाते हुए उन्हें वैसी ही कष्ट हो रही थी। निखिलेश चुप था।

कालीकांत जी वोले, "क्यों निखिलेश, चुप वैठे हो? कैसा देखा? मैंने तुमसे कहा था न, नयन का व्याह अच्छे घर में हुआ है। मकान कितना वड़ा देखा? और नयन की हाथ की रसोई कितनी अच्छी वनी, यह सव उसने अपनी मां से सीखा है, समझे? मछली का माथा मिलाकर चने की ऐसी दाल नयन की मां भी वनाया करती थी—"

निखिलेश ने माना। वोला, "जी रसोई वहुत अच्छी वनी थी—"

रास्ते में विहारी पाल का मोदीखाना पड़ता था। वैलगाड़ी के अन्दर अनचीन्ही शक्लें देखकर विहारी पाल को कुछ कौतूहल हुआ। रजवअली को देखकर यह तो समझ ही गया, गाड़ी चौधरी जी की है। मगर गाड़ी के अन्दर ये कौन लोग हैं?

विहारी पाल ने वहीं से खड़े होकर पीछे से पूछा, "कहां से पधार रहे हैं आप लोग?"

कालीकांत जी की नजर उधर गई। लेकिन जवाव रजवअली ने ही दिया। कहा, "हमारे समधी जी हैं, वेटी से मिलने आए थे।"

विहारी पाल ने हाथ जोड़कर कपाल से लगाया, "ब्राह्मण हैं? प्रणाम करता हूं।"

कालीकांत जी ने भी प्रतिनमस्कार किया। वोले, "आप?"

"जी, मेरा नाम विहारी पाल है। नमक-मसाले की दूकान है अपनी। जी, वेटी का व्याह तो आपने किया, मगर कुटुंव अच्छा नहीं किया—"

सुनकर कालीकांत जी काठ के मारे-से रह गए। कहां का यह विहारी पाल वह यह भी नहीं समझ सके कि उसे ऐसा कहने का हक भी क्या है! वह यह भी नहीं समझ सके कि यक-व-यक वह ऐसा क्यों वोल उठा! सुनकर कुछ देर तक वह हतवाक् हो उसकी तरफ ताकते रह गए।

रजवअली ने तव तक गाड़ी वढ़ा दी थी। गाड़ी जव विहारी पाल की दुकान से वहुत आगे निकल गई, तव कालीकांत जी के मुंह से वात निकली। वोले, "निखिलेश, इस भले-आदमी की वात सुनी? इसने ऐसा क्यों कहा, यह तो कहो?"

निखिलेश ने कहा, "गांव-घर का है न, ये लोग दूसरों के सुख से ऐसा ही जलते हैं पंडित जी—आप इसके लिए परेशान न हों?"

बात कालीकांत जी को मनपसंद हुई। बोले, "तुमने ठीक ही कहा निखिलेश, ठीक ही कहा। यह औरों से जलन की बात है। गंवई गांव में कोई किसीको बरदाश्त नहीं कर सकते। अथच तुमने तो सब अपनी आंखों देखा, अपने कानों सब सुना। मैंने कुटुंब क्या कुछ बुरा किया है? तुम्हीं कहो। मेरी बेटी अच्छे घर में नहीं गई है? गलती से डकैत समझकर जामाता को पकड़ ले गया, तो जमाना क्या करेगा? उनका तो कोई दोष नहीं है—"

निखिलेश ने कहा, "कौन क्या बोले, गया, आप उसके लिए इतना परेशान क्यों हो रहे हैं? कोई किसीके ऐश्वर्य को सह सकता है? आपकी लड़की अच्छे घर में ब्याही, उन्हें इसीकी ईर्ष्या हो रही है। उन्हें इसका मलाल है कि इतनी रूपवती बहू चौधरी परिवार में क्यों आई! यही असली बात है—"

कालीकांत जी ने भी निखिलेश की ताईद की। बोले, "तुम विलक्षण हो निखिलेश, तुमने बिलकुल ठीक कहा, यह सब ईर्ष्या है। मैं इसके लिए अब दिमाग खर्च नहीं करूंगा। लो, मैं चुप हो जाता हूं—"

और वह चुप रह गए।

रजबअली गांव की धूल-भरी सड़क से गाड़ी हांकता चला गया।

सदानन्द के पीछे से कौन तो अचानक बोल उठा, "अरे! सदा? तू यहां? और मैं तेरे लिए खाक छानता फिर रहा हूं—"

सदानन्द ने उलटकर देखा, "प्रकाश मामा!"

प्रकाश पूछने लगा, "किस वक्त छूटे तुम?"

सदानन्द ने कहा, "बस, ज़रा देर पहले।"

"ज़रा देर पहले? और मैं पूरे थाने का चक्कर काटता रहा। यह बड़ा दरोगा जो है न, पक्का बदमाश है, समझा? बात ही नहीं करना चाहता। आखिर जब मैंने पूरा एक हजार रुपया थमाया, तो उसने तुम्हें छोड़ देने का हुक्म दिया। मुझसे बड़े दरोगा ने कहा, छोड़ दिया। पर छोड़ देने से तो मैं देख ही पाता—और वहीं तब से मैं एक बार अन्दर तो एक बार बाहर करता रहा। और देख रहा हूं, तू यहां खड़ा है।"

सदानन्द ने कहा, "तुमने घूस दी?"

प्रकाश मामा ने कहा, "घूस नहीं देता? घूस नहीं देता तो तू यहां खड़ा बदन में हवा लगा पाता, हाजत ही में सड़कर मरना नहीं पड़ता? खैर, चल मेरे साथ चल। ओह, ऐसी सरदी पड़ रही है। अब शरीर को ज़रा गरम किए बगैर नहीं चलने का। चल—"

ानन्द ने फिर भी पूछा, "कहां ?"

काश मामा ने सदानन्द का एक हाथ पकड़कर खींचा, "चल। अव तो ंज लौटने की ट्रेन नहीं है, रात तो कलकत्ता में ही वितानी होगी। तुझे एक जगह ले चलूं—"

इतना कहकर प्रकाश मामा उसे खींचते हुए कहां जो ले जाने लगा, वह क नहीं सका। प्रकाश राय। नवावगंज के चौधरी परिवार में वास्तव में वह चर होकर ही आया था। नहीं तो कहां नवावगंज के चौधरी परिवार का का, उसे कालीघाट की मानदा मौसी के वस्तीवाले घर में ले गया! क्यों खिर! सो मानदा की वात वाद में कहूंगा। उसके पूर्व नवावगंज की वातें हले कुछ कहनी होंगी।

नवावगंज के चौधरी परिवार में भीतर से घुन लगना शुरू हो गया था, मगर वाहर से यह समझने की ज़रा भी गुंजाइश नहीं थी। वाहर उस समय भी विधू डंडीदार का लड़का शशी वैसी ही वान-चावल वज़न करता जा रहा था। अनाज गोले में भरा जाता। परमेश मौलिक नित्य सवेरे चंडीमंडप में आकर काठवाले वक्से को सामने रखकर वैठता। और फिर वही निकालकर हिसाव के उलझे आंकड़े को मिलाते हुए पानी की तरह तरल-सरल करते हुए आय-व्यय का समान मीजान मिलाया करता। लेकिन आमद से खर्च ज्यादा होते ही उसका दिमाग ठनकता।

परन्तु परमेश के ऊपर था कैलाश गुमाश्ता। वह एक ही काइयां। वह उन वहियों को देखता और मंजूर कर लेता। खर्च कहीं जोड़ता और उसके वाद उसे पक्की वही में उतार देता।

वूढ़े मालिक जव तक स्वस्थ थे, खोद-खोदकर पूछा करते थे। कहते, "यहां पर यह क्या लिखा है कैलास? यह दो पैसा काहे में खर्च हुआ?"

कैलाश कहता, "जी, दो पैसे की वीड़ी—"

"वीड़ी?"

वीड़ी के नाम से वूढ़े चौधरी चौंक जाते। कहते, "वीड़ी किसने पी? इस घर में वीड़ी कौन पीता है?"

कैलास ने कहा, "जी कंचन सुनार आया था न, उसीने वीड़ी मांगी, सो—"

वूढ़े हुजूर रंज हो जाते। कहते, "कंचन सुनार? कंचन ने वीड़ी पी?"

"जी हां।"

"मगर वह वीड़ी पिए चाहे गांजा, उसके लिए मैं पैसा दूं? उसके नशे का खर्च देने की मुझे क्या गरज पड़ी है?"

कैलास गुमाश्ता, 'किन्तु-परन्तु' करता। कहता, "जी उसने वीड़ी मांगी थी न—"

वूढ़े मालिक कहते, "नहीं। मेरे पास यह सव नहीं चलने का। वीड़ी पीनी हो, तो वह अपने पैसे से पिए। तुम एक काम करो, उसके नाम से एक सौ रुपये पेशगी है न? वहां पर काट कर लिख दो, एक सौ रुपया दो पैसा। औ

मु-

आइंदे वह बीड़ी पीना चाहे, तो पैसा तहविल से हरगिज मत देना। पान-बीड़ी की दूकान तो है, तुम उसे वही दिखा देना।"

सिर झुकाकर कैलास कसूर मान लेता। कहता, "जी, ऐसा ही होगा।"

बूढ़े चौधरी ने कभी कालीगंज के हर्षनाथ चक्रवर्ती के यहां गुमाश्तागिरी की थी। इसलिए उन्हें पता था कि गुमाश्ते हिसाब में किस तरह से चालबाजी करते हैं। आज उनका गुमाश्ता उन्हींसे वैसी चालबाजी करे, यह उन्हें बरदाश्त नहीं।

महज दो ही पैसे। मगर उन्हीं दो पैसों की फिजूलखर्ची वह नहीं सह सकते थे। अब वह चित पड़ गए हैं, जान भी नहीं पाते कि कैलास गुमाश्ता वैसे कितने दो पैसे की चाल खेल रहा है।

मगर बाहर से फिर भी सब ठीक ही है। नोनी डाक्टर नियम से आता है, नियम से दवा भी चल रही है। दीनू भी रात-दिन खिदमत करता चला जा रहा है। खिदमत जैसे खिदमत। कोई पत्नी भी अपने पति की ऐसी सेवा नहीं करती।

और दीनू का काम भी क्या! समधियाने से कोई आया सौगात लेकर, उसके नहाने के लिए कुएं से पानी भरना होगा। विश्वास करने योग्य, निर्भर करने योग्य एक वही दीनू ही तो है। दीनू कब जगता है, कब खाता है, कब सोता है, कोई नहीं देख पाता। आवाज दीजिए कि दीनू हाजिर—"जी, मुझे पुकार रहे थे?"

ऐसे ही समय छोटे चौधरी उस दिन दौड़ते हुए-से राणाघाट से लौटे। उनको सब्र नहीं था जैसे। चंडीमंडप में परमेश मौलिक अपना काम कर रहा था। छोटे बाबू को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ।

"क्यों परमेश, सबेर तो सब अच्छी है? प्राणकृष्ण साह के यहां से पाट का रुपया आ गया?"

परमेश ने कहा, "जी, कहां? नहीं तो।"

"और भुवन बसाक? भुवन बसाक फिर आया था?"

"जी नहीं।"

चौधरी जी नाराज हो गए। बोले, "देख लिया, मैं नहीं हूं तो सबने मांन के पांच पांव देख लिए।"

बीच में ही परमेश मौलिक बोल उठा, "जी, परसों दरोगा बाबू आए थे।"

"दरोगा बाबू? रेल-बाजार का दरोगा बाबू? क्यों, पावना-वादना?"

"जी नहीं, नन्हे बाबू गिरफ्तार हो गए हैं।"

"नन्हे बाबू? अपना सदा? गिरफ्तार हो गया? मतलब?"

"जी, मतलब कि पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया।"

"क्यों, सदा को क्यों पकड़ा? उसने क्या किया था?"

इतनी बड़ी घटना से पहले तो चौधरी जी को घबराना [illegible] घर से गैरहाजिर रहे और इसी बीच इतनी दुर्घटना घट गई [illegible]

के कमरे का दरवाज़ा मुंह वाए हुए था। ... वहां कोई नह
फिर वहां नहीं खड़े रहे। सीधे वैठके में गए। वहां कोई नह
ओर के सामान जैसे के तैसे पड़े थे, सिर्फ वावाजी का पता नहीं था।
त्रिशूल, खड़ाऊं, गेरुआ कपड़ा तक गायव था।
कैसा तो संदेह हुआ। हवेली के दरवाज़े के अन्दर पांव रखकर आवाज़,
'गौरी, गौरी—अरी, सव गए कहां ?"

प्रीति अपने कमरे में विस्तर पर लेटी थी। वगल में वैठी नयनतारा झल रही थी। उतनी सरदी में भी सास के पसीना आ रहा था। नयनतारा को वड़ा डर लग रहा था। महज कई दिन पहले एकाएक उसकी चल वसी। अथच उसके व्याह के दिन भी किसीको सपने में भी नहीं समझ में आया कि वह इतनी जल्दी गुज़र जाएगी। इन कई दिनों से उसके जीवन में आंधियां उठीं। पिता की भी याद आई। वह शायद अव रेलगाड़ी पर सवार हो चुके होंगे।

कि सास वोल उठी, "वहू—"

सास के मुंह के पास मुंह ले जाकर नयनतारा ने कहा, "कुछ कहेंगी मां ?"

सास ने कहा, "तुम खामखा क्यों तकलीफ कर रही हो वहू, तुम जाकर अपने कमरे में सो रहो। गौरी आ रही होगी। तुम्हें कष्ट हो रहा है—"

नयनतारा ने कहा, "मुझे कैसा कष्ट मां ! मुझे तो कोई कष्ट नहीं हो रहा है।"

सास को सुनकर अच्छा लगा। वोली, "मुझे वड़ी साध थी वहू कि वेटे का व्याह करके मैं वहू का सेवा-जतन लूंगी, पर मेरे नसीव में वह वदा नहीं है।"

नयनतारा ने कहा, "आप ऐसा क्यों कह रही हैं मां ! आपकी सेवा करना मुझे अच्छा लग रहा है।"

सास ने कहा, "तुम मेरा एक काम कर सकोगी वहू ?"

"क्या करना है, कहिए ? पानी पीजिएगा ?"

सास ने कहा, "नहीं। पानी नहीं पिऊंगी। मुन्ना जव घर लौट आए, तो तुम्हें एक काम करना होगा वहू ! कर सकोगी ?"

नयनतारा डर गई। वोली, "आप कहेंगी तो ज़रूर करूंगी। क्या करना होगा ?"

सास ने कहा, "देखो वहू, किसी वात की कमी नहीं है, यह तो तुम देख ही रही हो। एक औरत जो-जो चाहती है, मुझे वह सव कुछ मिला है। मेरी यह भरी-पूरी गिरस्ती, पति, पुत्र, गहना-गुरिया, जगह-जायदाद, रुपया-पैसा—भगवान ने किसी वात की कमी नहीं रहने दी है। लेकिन एक चीज़ मुझे नहीं मिली है वहू ! तुम्हारे ससुर जी को भी उसी एक चीज की कमी है। वह चीज़ तुम मुझे दोगी वहू? दे सकोगी ?"

सास की वात सुनकर नयनतारा अवाक् रह गई। पूछा, "मैं ?"

"हां वहू ! वह चीज़ सिर्फ तुम्हीं दे सकती हो, और कोई नहीं। मेरे

लांगड़ ससुर कब से उसकी उम्मीद किए बैठे हैं। मगर लगता है, उनकी वह आशा अब पूरी नहीं हो सकी।"

नयनतारा ने कहा, "कहिए मुझे क्या करना होगा मां—"

"मगर तुमसे न बन पाए तो फिर क्या होगा? बीमार पड़ने से पहले हमारे ससुर जी ने कंचन सुनार को बीस तोले का एक हार तक बनाने को दे दिया है।"

फिर भी नयनतारा नहीं समझ सकी कि असली मंशा क्या है! या हो सकता है, कुछ-कुछ अंदाज लगा सकी हो।

सास ने कहा, "मगर मुन्ने की हरकत से मैं बहुत डर गई हूं बहू, मेरी वह साध शायद पूरी नहीं हो सकेगी।"

नयनतारा ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। वह जैसे झल रही थी, पंखा झलती रही। लेकिन सास को जैसे पंखे की वह हवा लग नहीं रही थी, "क्यों बहू, कुछ बोल नहीं रही हो?"

नयनतारा ने सिर झुकाकर कहा, "मैं क्या कहूं, कहिए?"

सास ने कहा, "तुम चुप रहोगी, तो मैं किसके भरोसे जिन्दा रहूं, कहो। मेरे और कौन है? देख रही हो न, मेरे होंठों पर हंसी आने के लिए तुम्हारे ससुर एक बाबाजी से टोटका, पूजा-पाठ, जाग-यज्ञ करा रहे हैं। यह भी ढोंग ही है। एक पाखंडी के पाले पड़कर ढेरों रुपये ही पानी में गए, कोई नतीजा नहीं निकला। उलटे और मुन्ना पुलिस द्वारा पकड़ा गया। अब क्या होगा, यह भगवान को ही मालूम। कहां रहा मुन्ना और कहां रही तुम—"

नयनतारा ने कहा, "आप बेकार इतना सोच रही हैं मां, उन्हें छुड़ाने के लिए तो मामाजी गए ही हैं।"

सास ने कहा, "प्रकाश की कह रही हो? बस, हो गया। इतने दिन इस घर में हो गए और तुमने प्रकाश को नहीं पहचाना? उसका कहा भी पतियाया जा सकता है?"

"लेकिन वह तो हजार रुपये ले गए। मैंने अपने हाथों संदूक से निकालकर उन्हें रुपया दिया है—उन्होंने कहा, 'पुलिस को घूस देना होगा।' मैंने तो अपने पिताजी से कहा और यही सुनकर पिताजी भी निश्चिन्त होकर चले गए—"

सास ने कहा, "सो मुन्ना छूट जाए तो ठीक ही है, उसके बाद मेरी और तुम्हारी तकदीर। लेकिन मैंने तुमसे जो कहा, उसका जवाब नहीं दिया बहू?"

"किस बात का जवाब मां?"

सास ने कहा, "वही, जो कही। मुझे बड़ी साध थी कि पोते का मुंह देखूंगी—गोदी को उजाला कर देने वाला पोता। तुम मुझे पोता दे सकोगी बहू? मैं उसे गोदी में लेकर दुलारूंगी, चूमूंगी, उससे खेलूंगी—दोगी, दोगी बहू?"

तब तक नयनतारा के हाथ से पंखा छूट गया। सास की गोदी में मुंह

कर रुलाई से टूट पड़ी वह।

"तुम रो रही हो वहू ? तुमसे नहीं होगा ? एक ही तो साध है अपनी, वह भी पूरा नहीं कर सकोगी ?"

सास की छाती पर मुंह रखकर ही नयनतारा कहने लगी, "आप वहू वनाकर मुझको क्यों ले आई मां ? आपके मन में अगर यही था तो दूसरी लड़की को अपनी वहू वनाकर क्यों नहीं ले आई ? वह शायद आपकी सारे साध पूरा कर पातीं..."

सास दोनों हाथों से नयनतारा का सिर सहलाते हुए कहने लगी, "नहीं वहू, तुम मेरी वड़ी लक्ष्मी हो, तुम कर सकोगी, जरा कोशिश करो, कर लोगी..."

नयनतारा ने कहा, "मैं कैसे कर लूंगी। मुझमें उतनी क्षमता है ?"

सास वोल उठी, "क्यों नहीं कर सकोगी ? तुम्हारा यह रूप देखकर ही तो तुमको वहू वनाकर ले आई हूं। तुम्हें भगवान ने इतना रूप दिया है और तुम कह रही हो, तुम नहीं कर सकोगी ? और कुछ न सही, अपने रूप से भी तो तुम उसे पकड़कर रख सकती हो। यह नहीं कर सकोगी, तो मैं क्या लेकर जिऊंगी ? मेरा लड़का ही अगर वैरागी हो गया, तो मैं किसे लेकर यह घर चलाऊंगी ?"

नयनतारा ने सिर उठाया। वोली, "मगर मैं करूं क्या, कहिए ! मुझे देखते ही तो वह मुंह फेरकर चले जाते हैं—"

"वह मुंह फेरकर तुम्हारा अपमान करेगा और तुम गूंगी वनकर सव सहोगी ? तुम वोलना नहीं जानती हो ? तुम भी उसका अपमान नहीं कर सकतीं ?"

नयनतारा को वात समझ में नहीं आई। वोली, "मैं पराए घर की लड़की और इस घर के वंशधर का अपमान करूंगी ?"

"किसने कहा कि तुम पराए घर की लड़की हो ? पराए घर की लड़की तुम जव थी, तव थी, अव तो तुम इस घर की वहू हो, इस घर पर मेरे लड़के का जितना अधिकार है, उतना ही अधिकार तुम्हारा भी है। तुम यह मत भूलो वहू, मेरा वेटा अगर तुम्हारा अपमान करे, तो वह अपमान मुझपर भी लगता है। मेरा वेटा तुम्हारा अपमान करेगा, मैं यह वरदाश्त नहीं करूंगी। तुम्हारी जगह अगर मैं होती वहू, तो मैं तो मुंह सीकर यह अपमान नहीं सहती। मैं इसका कोई-न-कोई किनारा करके ही दम लेती।"

नतनतारा ने कहा, "मगर मैं इसका किनारा कैसी करूंगी ?"

सास ने कहा, "मैं वही तो कह रही हूं, वही कहने के लिए तो तुम्हें अ[...] पास वुलाया है। तुम जोर-जवरदस्ती करना। मुन्ना अगर जवरन तुम[...] कमरे से निकल आना चाहे, तो तुम भी जवरन ही उसे रोक रखना। इ[...] भी नहीं वनेगा ?"

"उस दिन तो आपने वाहर से सांकल चढ़ा दी थी, फिर भी तो [...] मेरी ओर से लापरवाही की, सारी रात मुंह फेरे वैठे रहे—"

सास ने कहा, "अवकी अगर ऐसा करे तो, तुम अपने हाथ से उस[...]

अपनी तरफ फेर लेना। देखो तो क्या करता है वह। तुमपर इसके लिए वह हाथ तो नहीं उठा सकता। फिर तो मैं हूं—"

"आप कह क्या रही हैं मां, मैं उनका हाथ पकड़ूंगी? उनकी इच्छा के खिलाफ करूंगी? इससे तो मेरा मरना अच्छा। स्त्री होकर इतना नीचे उतरूं?"

सास ने कहा, "इसे तुम नीचे उतरना कहती हो। ऊंच-नीच का अगर तुम्हें इतना ख्याल है, तो मरने के लिए स्त्री होकर क्यों पैदा हुई थीं। पुरुष होकर नहीं पैदा हो सकीं। फिर न तो तुम्हें यह अपमान ही सहना पड़ता और न बहू होकर दूसरे के घर ही जाना पड़ता। और, तुम अपमान की कहती हो? पड़े-पड़े पिटते रहना अपमान नहीं है? इस अपमान से तो वह अपमान फिर भी बढ़कर है। उससे तुम्हारे बदन पर कौन-सा फफोला पड़ जाएगा!"

नयनतारा ने बेबस की नाईं सास की ओर देखा। बोली, "तो आप मुझे क्या करने को कह रही हैं? आप जो कहेंगी, मैं वही करूंगी, कहिए—"

सास ने नयनतारा की ठोड़ी पकड़कर दुलारा। जैसे, वह बड़ी खुश हो गई। बोली, "हां, यह हुई लक्ष्मी बहू जैसी बात। लेकिन एक बात सुन लो, प्रकाश आज या कल, जब भी मुन्ने को लेकर आएगा, मैं उससे कह दूंगी कि बहू को उसके पिताजी कृष्णनगर ले गए। मैं तुम्हारे ससुर और मामा-ससुर को भी यही कहूंगी। ये लोग भी समझेंगे कि तुम्हारे पिताजी ले गए, समझे?"

नयनतारा को अचंभा लगा। बोली, "लेकिन मुझे सभी देखेंगे जो—"

सास ने कहा, "मैं ऐसा उपाय करूंगी कि तुम्हें देखने नहीं पाए।"

"क्या उपाय करेंगी आप?"

"मैं तुम्हें एक कमरे में छिपाकर रखूंगी, जिसमें कोई देख न पाए—"

नयनतारा ने पूछा, "कोई नहीं देखेगा मुझे?"

सास ने कहा, "देख तो तुम्हें नहीं ही पाएंगे, जान भी नहीं पाएंगे कि तुम इस घर में हो। गौरी, विष्णु की मां, ये सब तो मेरी मुट्ठी की हैं, उन्हें मैं कह दूंगी, तो गला दबाकर मार डालने पर भी वे नहीं बोलेंगी।"

नयनतारा ने कहा, "लेकिन मामाजी? वह तो अन्दर आएंगे, कहीं उनको दिख जाऊं?"

सास ने कहा, "मैं कह तो रही हूं, उसका इंतजाम मैं करूंगी, तुम्हें फिक्र नहीं करनी है। तुम्हारे कमरे के पास जो कमरा है, मैं तुम्हें उसमें बन्द करके बाहर से ताला डाल दूंगी। पर तुम कहो, मैं जो कह रही हूं, तू वह करोगी?"

नयनतारा को कैसा डर-सा लगने लगा। अपना रूप दिखाकर जोर-जबरदस्ती पति का प्रेम छीनना होगा, अपने को अपमानित करने का इससे गिरा हुआ तरीका और क्या हो सकता है?

सास ने कहा, "सोच क्या रही हो बहू? पति को वश में करने के लिए इससे कितना छोटा-नीचा काम स्त्री को करना पड़ता है, यह तुम नहीं जानतीं? रामायण-महाभारत नहीं पढ़ा है? मेरे घर की खातिर, तुम्हारे मेरे सबके भले

। खातिर तुम इतना भी नहीं कर सकोगी ?"

नयनतारा ने कहा, "मैं कोशिश करूंगी मां, कामयाबी की कोशिश करूंगी—"

इसी बीच बाहर चौधरी जी का गला सुनाई पड़ा, "गौरी-गौरी—"

सास झटपट उठ बैठी। बोली, "चलो बहू, जल्दी चलो, तुम्हारे ससुर आ गए, देख लेंगे।"

और, उसे ले जाकर नयनतारा ने बरामदे के उस पार कोने के एक कमरे में बन्द कर दिया। बाहर से ताला डाल दिया।

तब तक चौधरी जी का गला सुनकर गौरी सामने आ गई।

चौधरी जी ने उसे देखते ही कहा, "क्यों री गौरी, किसीका पता नहीं चल रहा है? बाबाजी का कमरा एकदम खुला पड़ा है—सब गए कहां? सुना, मुन्ने को पुलिस ने पकड़ लिया है? मैं दो दिन घर में नहीं रहा और इसी बीच इतना कुछ हो गया?"

गौरी ने कहा, "भाभी के तबीयत खराब है।"

"तबीयत खराब? सो क्या, क्या हो गया? कब खराब हुई तबीयत?"

कहते-कहते चौधरी जी अपने कमरे में चले गए। प्रीति इसी बीच कमरे में आकर चादर ओढ़कर लेट गई थी।

चौधरी जी पूछा, "क्या हुआ है? सुना तुम्हारी तबीयत खराब है?"

प्रीति ने कहा, "हां, खराब है—"

चौधरी जी ने कहा, "ऐसे समय में तुम्हारी तबीयत खराब हुई? मेरी ग्रहदशा बुरी चल रही है, देख रहा हूं। उधर मुन्ने को शायद पुलिस पकड़ ले गई है। माजरा क्या है? मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूं। और बाबाजी ही कहां हैं?"

प्रीति ने कहा, "यही सब सोच-सोचकर तो मेरी तबीयत खराब हुई है। तुम पहले हाथ-मुंह धो आओ, बताती हूं—"

"मगर मुन्ने को पुलिस ने क्यों पकड़ा? समझ नहीं पाता। प्रकाश कहां गया?"

प्रीति ने कहा, "वह कलकत्ता गया है।"

"कलकत्ता किसलिए?"

"मुन्ने को थाने से छुड़ा लाने के लिए। पुलिस उसे पकड़कर कलकत्ता ले गई है। इतनी दूर से आए हो, हाथ-मुंह धोकर ठंडे हो लो, फिर सब बताती हूं।"

चौधरी जी ने कहा, "उससे पहले मैं ऊपर से एक बार पिताजी को देख आऊं—"

चौधरी जी बाहर चले गए। उनके जाते ही गौरी कमरे में आई। प्रीति ने कहा, "गौरी, इधर आ। एक बात सुन। लेकिन किसीसे कहना नहीं। बहू को मैंने उत्तर के उस कोने वाले कमरे में ताला बन्द करके रखा है, समझी? किसीको जिसमें पता नहीं चले। छोटे बाबू या और कोई पूछे, तो कहना,

वहू को उसके पिताजी कृष्णनगर लिवा गए। समझीं ? विष्णु की मां को भी यही कह देना—"

गौरी ने कहा, "क्यों भाभी, क्या बात है ?"

प्रीति ने कहा, "तुझे इस छः-पांच से क्या मतलब ? मैं जो कह रही हूं, वही करना, समझ गई ?"

सुबह आंखें खुलते ही सदानन्द ने चारों ओर निहारा। यह कहां आ गया वह ? कहां रात बिताई ? किसका घर है ?

क्षण ही भर में पिछले दिन की पूरी घटना याद आ गई। उस समय नवाबगंज के लिए कोई ट्रेन नहीं थी, इसीलिए हाजत से निकलने के बाद प्रकाश मामा उसे यहां ले आया। प्रकाश मामा ने कहा था, "फिकर मत कर, कलकत्ता में रात बिताने की जगह की कमी नहीं है। भात छोटो तो कौओं की कमी। मेरे टेंट में रुपये हैं, चिन्ता किस बात की ?"

और, उसे यहां ले आया था। याद है, चारों ओर की आबहवा देखकर सदानन्द को कैसा सन्देह-सा हुआ था। पूछा था, "यह कहां ले आए हो तुम ?"

प्रकाश मामा ने कहा था, "इस जगह का नाम है कालीघाट—"

टिन के छप्पर वाले एक मकान में उसे ले गया। चारों ओर टिन के छप्पर वाले छोटे-छोटे मकान। बीच से पतली-पतली गलियों का रास्ता। चारों ओर लोगों की भरमार। कई औरतें भी इधर-उधर घूम रही थीं। सिर झुकाकर अन्दर जाना पड़ता। अन्दर सजा-संवरा। एक डबल खाट, बड़ा-सा एक आईना।

प्रकाश मामा ने कहा, "ठहर, पहले खाने का इंतजाम कर आऊं।"

उसे वहीं बिठाकर प्रकाश मामा कहां चला गया ! फिर जाने कहां से एक आदमी को पकड़ लाया ! उसके हाथों में भात-तरकारी की थालियां।

प्रकाश ने कहा, "आ जा, सबसे पहले पेट की आग बुझा लें।"

कहकर वह खुद जमीन पर बैठ गया। बगल में सदानन्द भी बैठ गया। कुछ खाना तो पड़ेगा। लेकिन कौर मुंह में डालते ही पल में सारी भूख भाग गई। जितना ही तीता, उतना ही ठंडा। बहुत दिनों के बाद कालीघाट की बस्ती में यह रात बिताने की बात सदानन्द को बहुत बार याद आई। जीवन में आगे चलकर जिसे आगामी होकर अपना दिन बिताना पड़ेगा, उसके लिए इस अनुभव की शायद जरूरत थी। जरूरत थी इस कृच्छ्र साधन की। धनी का लाड़ला होने के बावजूद कभी उसे उस दौलत पर कोई अधिकार नहीं रहेगा, यही शायद उसके सृष्टिकर्ता का विधान था। इसीलिए कोई गुनाह किए बगैर जैसे कालीगंज की वहू को जान से हाथ धोना पड़ा, कोई पाप किए बिना ही जैसे कपिल पायरापोड़ा को पेड़ में फन्दा लगाकर झूल जाना पड़ा, वैसे ही बिना किसी अपराध के उसे एक दिन हाजत में बिताना पड़ा। पैदा होने से

जैसे आदमी को मरना पड़ता है, वैसे ही मरने के लिए मरने के पहले आदमी को बहुत बार मरना पड़ता है। बार-बार मरकर आदमी को मरने का अभ्यास करना पड़ता है। यह भी वैसी ही शिक्षा-नवीसी है। इस शिक्षा-नवीसी के बिना ठीक से मरना कैसे होगा ? अच्छी तरह से जीने के लिए जैसा अनुभव मरने के लिए भी चाहिए। मानता हूं, तुम्हें बपौती दौलत बहुत ज्यादा है, लेकिन वह दौलत, वह ऐश्वर्य क्या तुम्हें मौत के चंगुल से बचा सकेगा ? उससे बेहतर है कि पहले से ही तैयार हो लो ताकि मरते समय होठों पर हंसी निखार सको।

जो सदानन्द आज रसिक पाल के टुकड़ों पर उसके कचहरी-घर में पलता है, उस समय भी वह ऐसा ही था। दूसरों के अन्न पर ही पलता था। घर उसका घर नहीं, पिता उसके पिता नहीं, मां मां नहीं, पत्नी भी उसकी पत्नी नहीं। अथच सभी उसके अपने हैं, सबके सब अपने।

प्रकाश मामा अचानक बोल उठा, "खा क्यों नहीं रहा है ? और एक टुकड़ी मछली लेगा ?"

प्रकाश मामा जब खाने के लिए बैठता, तो सारी दुनिया को भूल जाता। दुनिया में बाज-बाज ऐसे लोग होते हैं, जो शायद खाने के लिए ही जीते हैं। और, ऐसे भी लोग हैं, जो जीने के लिए खाते हैं। प्रकाश मामा केवल खाने के लिए ही खाता था। सिर्फ अपने ही नहीं खाएगा, औरों को भी खिलाएगा। बीबी—बेटा-बेटी को खिलाएगा, राणाघाट की राधा को खिलाएगा। जिसे भी सामने पा लेगा, उसीके साथ मिल-जुलकर खाएगा। सदानन्द की मां नहीं रही होती, तो प्रकाश शायद खाना न पाने से ही मरता।

खा-पी चुकने के बाद सदानन्द को सोने के लिए कहकर वह जाने कहां चला गया ! जाते-जाते कहता गया, "तू इस खाट पर सो जा। मैं बगल के कमरे में जाता हूं।"

सदानन्द तीन रात से नहीं सोया था। तिसपर ब्याह वाले दिन से ही उसके मन में उथल-पुथल चल रही थी। थकावट से आंखें झिपती आ रही थीं। एकाएक जाने कहां से हारमोनियम पर गाने का सुर सुनाई पड़ा। यह कहां ले आया प्रकाश मामा उसे ! किसका घर है यह ! प्रकाश मामा से इन लोगों का नाता ही क्या है !

तब तक कौन तो कमरे में आया। सदानन्द की आंखों में तन्द्रा-सी लग आई थी। सिर्फ पैरों की आहट कानों में गई।

धुंधले अंधेरे में सदानन्द ने आंखें खोलकर देखा, कोई औरत है। वह खाट पर सोने जा रही थी कि हड़बड़ाकर सदानन्द के पैरों पर गिर पड़ी। गिरते ही चीख उठी, "हाय राम, मेरी खाट पर कौन सोया है, कौन ?"

वह ऐसी चौंकी जैसे गेंहुअन सांप पर पांव पड़ गया हो। उठने की कोशिश करने लगी कि फिर धप्प से उसके बदन पर गिर पड़ी। चिल्ला उठी, "मौ... देखो तो, यहां मेरी खाट पर कौन तो सोया हुआ है—"

उसकी पुकार पर बाहर से किसीका गला सुनाई पड़ा, "क्या बात ...

बतासी, क्या हुआ ? किसने तुमको पकड़ा है ? कौन हरामजादा है ?"

कहते-कहते हाथ में ढिबरी लिए मौसी कमरे में आई। लेकिन तब तक बतासी अपने को सम्भालकर उठ खड़ी हुई थी। ढिबरी की रोशनी से कमरा उजाला हो गया। मौसी ने गौर से सदानन्द को देखा। बतासी ने भी देखा। बिलकुल अचीन्हा आदमी।

खूब अच्छी तरह से देखने के बाद भी मौसी सदानन्द को नहीं पहचान सकी। अजाना आदमी, बात नहीं, चीत नहीं, जाने कहां से आकर कमरे में छिप-छिपाकर सो गया।

मौसी ने कहा, "कौन हो जी तुम ? इस कमरे में तुम्हें कौन ले आया ? निकलो यहां से—निकलो—"

सदानन्द तब तक उठ बैठा था। दोनों की शक्ल-सूरत देखकर उसे सन्देह हुआ। बोला, "एक भला आदमी मुझे ले आए हैं। मुझे यहां सोने को कह कर बाहर गए हैं।"

"भला आदमी ? भला आदमी हमारे यहां आते हैं कि भले आदमी की बात कह रहे हो ? कहां का कौन ले आकर तुम्हें सुला गया और तुम भी सो पड़े ? यह क्या सोने की जगह है। यहां कोई सोने को आता है ?"

शोरगुल सुनकर और भी दो-चार औरतें आ पहुंचीं। वह सब भी सदानन्द को देखकर ताज्जुब में आ गई। बोलीं, "कौन है यह मौसी ? किसका आदमी है ?"

मौसी ने कहा, "क्या पता। कमरा खाली देखकर सो पड़ा है। अभी हो कहीं बड़े बाबू आ पड़ें—"

सुनकर सभी खिलखिला पड़ीं। सोने की बात से सबको हंसी आ गई। इतने बड़े कलकत्ता शहर में सोने की और कहीं जगह नहीं मिली ? सोने को कहां आया, तो यहां।

सदानन्द को बरदाश्त से बाहर हो गया था। आबहवा से ही वह भांप गया कि प्रकाश मामा उसे कहां ले आया है। बोला, "मैं जिसके साथ यहां आया था, वह कहां गया ?"

मौसी ने पूछा, "किसके साथ आए थे तुम ? किसकी कह रहे हो··· ?"

सदानन्द ने कहा, "अपने मामा के साथ।"

मौसी ने कहा, "मामा ? तुम्हारा मामा किस कमरे में है, मैं क्या जानूं ? इस घर में क्या एक आदमी है ? किस-किस कमरे में कौन-कौन है, इसका लेखा रखना क्या आसान है ? तो, तुम क्या बतासी के कमरे में रहोगे ? रहना चाहो तो रह जाओ, मुझे कोई एतराज नहीं है।"

सदानन्द ने उसकी बात का जवाब न देकर कहा, "मेरे पास रुपया नहीं है। रुपया रहा भी होता, तो मैं यहां नहीं रहता। मैं सिर्फ एक बार अपने मामा से बात करना चाहता हूं—"

मौसी ने कहा, "तुम्हारा मामा किसके कमरे में है, मैं क्या जानूं ?"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन मामा तो मुझे कह गया, बगल के ··· —"

...सी ने कहा, "जैसे तुम्हारे मामा, वैसे तुम। मगर तुम लोग खाली जब ...ते क्यों हो?"

...दानन्द ने कहा, "खैर। मुझे जाने दीजिए, मैं चला जाता हूं।"

मौसी ने कहा, "चले जाओगे? इसका मतलब? यों ही चले गए, हो? कमरे का किराया कौन देगा? अपने कमरे का किराया बतासी अपनी ...से देगी क्या? मैं तुमसे किराया वसूल लूंगी, तब पिंड छोड़ूंगी। नहीं अभी पुलिस बुलवाऊंगी—"

और उसने पास खड़ी एक औरत से कहा, "जा तो पुंटी, गिरधारी को ज़रा ...ला तो ला—"

सदानन्द अब सीधे दरवाज़े की ओर बढ़ा। बोला, "आप मुझे पुलिस का हौआ मत दिखाइए, मैं पुलिस से नहीं डरता। मेरे पास रुपया नहीं है, आप मुझे जाने दीजिए—"

बतासी डर गई। वह चीख-सी उठी, "ऐ मौसी, यह तुम्हें पीटेगा, हट जाओ—"

"हुंह, पीटेगा। पीट लिया और क्या! रुपया दिए बिना जाने से मैं मुहल्ले वालों को नहीं जुटा लूंगी। तू इतना डर क्यों रही है? बड़े बाबू को खबर कर देने से अभी इसे कमर में रस्सी लगाकर खींच ले जाएगा—"

हो-हल्ला से और भी लोग आ जुटे। क्या पता, रात कितनी हुई थी। किलबिलाती हुई औरतें वहां हाज़िर हो गईं, "क्या हुआ मौसी? क्या किया इसने?"

मौसी ने कहा, "देख न रे! छोटी, यह बतासी के कमरे में बैठा, अब तक शराब पीता रहा और अब चुपचाप भागा जा रहा है। कहता है, रुपया नहीं है। रुपया नहीं है तो मज़ा उड़ाने के लिए यहां आया क्यों था? मौज़-मज़ा कर लिया, अब कहे रुपया नहीं है, तो मैं छोड़ कैसे दूं? यह क्या कोई ब्याही हुई बहू है?"

सदानन्द से और बरदाश्त नहीं हुआ। सबको ढकेलते हुए वह कमरे से बाहर निकलकर खड़ा हो गया। बोला, "आपको पुलिस बुलाने की ज़रूरत नहीं, उससे पहले मैं ही पुलिस को बुलाता हूं।"

तब तक गिरधारी आ पहुंचा था। उसे आगे कुछ कहने की नौबत नहीं आई। गिरधारी ने आते ही उसका गला धर दबाया, "चुप रह साले नशेबाज़—"

उसकी बात पूरी होने के पहले ही सदानन्द ने उसे एक धक्का दिया। गिरधारी औंधे मुंह आंगन में गिर पड़ा। गिरना था कि उन औरतों ने मुहल्ले को कंपाते हुए रोना शुरू कर दिया। अगल-बगल के कमरों में जितनी औरतें थीं, सब आ पहुंचीं, "क्या हो गया री, तेरे कमरे में क्या हो गया?"

सदानन्द चिल्ला उठा, "देखो, जो भी मेरे सामने आओगी, सबकी ...गत करूंगा। छोड़ो, रास्ता छोड़ दो—"

गिरधारी को चारों खाने चित देखकर सब डर गई थीं। लेकिन उ...

का काम नहीं चलता। ये झमेले वह बहुत झेल चुकी है। कोई उपाय न देखकर उसने आसमान सिर पर उठा लिया, "अजी ओ, कौन हो, देख लो जरा, यह आदमी इस बेचारी का रुपया न देकर भागा जा रहा है।"

सदानन्द यों चला भी जाता, पर जाते-जाते भी ठिठक गया। बोला, "ठीक है। आने दो सबको। मैं यहीं खड़ा हूं—"

और यह लोगों के आने के इंतजार में खड़ा रह गया। बोला, "कहां? कोई था क्यों नहीं रहा है?"

तब तक गुंडा किस्म के दो-चार आदमी आ गए। बोले, "क्या बात है मौसी, कौन साला भाग रहा है? कहां है?"

मौसी को दिखाना नहीं पड़ा। सदानन्द ने खुद ही कहा, "यह रहा, मैं।"

गुंडों में से एक सदानन्द का गला पकड़ने के लिए बढ़ा। पीछे भी बाकी तीन जने।

सदानन्द ने कहा, "खबरदार, आगे मत बढ़ो। कहना हो सो वहीं से कहो—"

"अबे साले…"

सहलका-सा मच गया। एक ओर औरतों की रुलाई, दूसरी ओर मर्दों की कहा-सुनी। जरा ही देर में खून-खराबी हो जाती। लेकिन उसी समय प्रकाश मामा आ पहुंचा। अंधेरे में सदानन्द ने प्रकाश मामा को ठीक से पहचाना नहीं। पहनावे में लुंगी और गंजी। सिर के बाल अस्त-व्यस्त। उसके पांव भी ठीक-ठीक जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। बातें भी साफ नहीं निकल रही थीं। उसी हालत में लड़खड़ाते हुए वह हाजिर हो गया। हो-हल्ला सुनकर वह कमरे से बाहर निकला था। वहां से सदानन्द पर नजर पड़ी। आते ही उसने घूसा तानकर चिल्लाते हुए कहा, "देखें तो कौन साला मेरे भांजे को मारता है, आ जा, लड़ ले—"

और यह शून्य में ही घूसा चलाने लगा।

प्रकाश मामा को देखकर सदानन्द भी आवाक्। अब तक जो लोग चिल्ल-पों मचा रहे थे, वह सब भी चुप हो गए। मौसी आगे आई। बोली, "यही तुम्हारा भांजा है। मगर इसने तो पहले यह नहीं बताया।"

प्रकाश मामा ने कहा, "किसने मेरे भांजे पर हाथ उठाया, मैं उस साले का नाम जानना चाहता हूं—"

सदानन्द बोल उठा, "मैं अब यहां नहीं ठहरूंगा प्रकाश मामा—"

सुनकर प्रकाश मामा चिल्ला उठा, "मतलब? क्यों नहीं रहोगे? मैंने क्या रुपया नहीं दिया है? जरूर रहोगे। रहने का हक है। चले जाने के लिए मैंने कमरे का किराया दिया है? मैंने अपना किराया दिया है, तेरा किराया चुकाया है, मुफ्त में थोड़े ही है।"

उसके बाद वह मौसी की तरफ मुखातिब होकर बोला, "क्यों मौसी, बोल नहीं रही हो। जबान पर ताला क्यों? मैंने रुपये दिए हैं या नहीं, कहो? अपनी छाती पर हाथ रखकर कहो। किराए और माल के रुपये मैंने तुम्हें पेशगी नहीं

दिए ?"

तब तक सारी आबहवा उलट चुकी थी। घटना ज्यादा दूर तक नहीं बढ़ी, इसलिए मायूस-सी होकर सब अपनी-अपनी राह लगीं। गुण्डे भी जाने कब अंधेरे में गायब हो गए। लेकिन प्रकाश मामा का गुस्सा फिर भी ठंडा नहीं हुआ। भांजे का अपमान जैसे उसे भी लगा। बोला, "अब मैं भी नहीं रहूंगा। मैं भी चला जाता हूं, चल सदानन्द, अब जीवन-भर यहां कभी नहीं आऊंगा। चल, सदा! भात छींटने से कौए की कमी है। बाज़ार में औरतों का अकाल पड़ गया है क्या ?"

और वह वहीं खड़ा चिल्लाने लगा, "राधा, तू भी चली आ। अभी यहां से चले चलेंगे। यह कलकत्ता है। रुपया पास में रहे तो मौज करने की जगह की कमी पड़ी है ?"

राधा ! उधर से किस कमरे से निकलकर घूंघट काढ़े एक औरत प्रकाश मामा के सामने आ खड़ी हुई। सदानन्द ने गौर से देखा। उसने राधा को पहचाना। वही राधा, जो राणाघाट के सदर बाज़ार में रहती थी। प्रकाश मामा उसे उसके यहां ले गया था। वह राधा यहां कैसे आई ?

मौसी ने कहा, "तुम खफा क्यों हो रहे हो भैया, मैं क्या जानती थी कि वह तुम्हारा भांजा है।"

प्रकाश मामा ने कहा, "पहचाना नहीं, तो तुम उसका अपमान करोगी। जानती हो, वह कितने बड़े आदमी का लड़का है ? तुम जैसे हज़ार मौसी को वह पाल सकता है, यह पता है ?"

मौसी ने कहा, "नहीं पहचान सकी, तो मैं क्या करूं ! तुमने उसे बतासी के यहां रक्खा ही क्यों ? जानते हो, वह बड़े बाबू की खास है। बड़े बाबू ने खुद से लाकर उसे यहां रक्खा है—"

प्रकाश मामा ने कहा, "मुझे क्या पता कि उस कमरे में कोई रहती है ? पहले जब आया था, वह कमरा खाली ही पड़ा रहता था। मैं क्या तुम्हारे यहां यह पहली ही बार आया हूं ? मैं सब कुछ बरदाश्त कर सकता हूं, अपमान हरगिज़ नहीं। तुमने मेरे भांजे का अपमान किया है, यह मैं नहीं बरदाश्त करूंगा। चल राधा, मेरा कपड़ा ला, अब यहां नहीं रहूंगा—"

मौसी से रहा नहीं गया। उसने झट प्रकाश मामा के दोनों हाथ पकड़ लिए। बोली, "मुझसे कसूर हो गया भैया, बुरा न मानो। तुम रहो—"

प्रकाश मामा ने कहा, "नहीं। मैं हरगिज़ नहीं रह सकता। तुम्हें मेरा गुस्सा नहीं मालूम है। गुस्सा होने पर मैं किसीका नहीं—"

राधा ने कहा, "मौसी जब इतना कह रही है, तो रह जाओ न। मैंने तुमसे कहा था कि कालीघाट के मन्दिर में पूजा करूंगी, गंगा नहाऊंगी—"

"तू रुक भी दईमारी ! तुम्हारा गंगा नहाना पहले कि मेरा भांजा पहले ? देख नहीं रही है, मौसी ने मेरे भांजे का अपमान किया है, और तुझे गंगा नहाने की सूझी है। तू बाज़ारू औरत है, तेरा गंगा नहाना क्या ? तेरे पाप कभी धुल सकते हैं ?

मगर मौसी ने छोड़ा नहीं। प्रकाश मामा के हाथ पकड़कर कहने लगी, "नाराज न होओ भैया, मैं बूढ़ी ठहरी, गलती से क्या कह गई। तुम जाओ मत। मैं तुम्हारे भांजे को भी नहीं जाने दूंगी। बतासी से कहती हूं, वह उसे अपने कमरे में बिठाएगी। पहले तो यह कमरा खाली ही पड़ा रहता था—कई महीने हुए, बड़े बाबू ने बतासी को लाकर रखा है—"

प्रकाश मामा ने सदानन्द की ओर देखा। बोला, "क्यों रे, रहेगा? इतना कह रही हैं सब।"

सदानन्द ने कहा, "नहीं, मैं यहां नहीं रहता—"

मौसी ने कहा, "इतनी रात गए जाओगे कहां? गाड़ी-घोड़ा, बस-ट्राम—सब तो बन्द है। कम-से-कम रात मेरे यहां बिता लो। तुम्हारे मामा मेरे पुराने ग्राहक हैं। ग्राहक लक्ष्मी होता है। तुम लोगों के चले जाने से मेरा क्या भला होगा? तुम क्या यही चाहते हो कि मेरा बुरा हो?"

प्रकाश मामा ने कहा, "अरे जाने दे, जो हो गया सो हो गया, रह जा। एक रात की बात है। कल सवेरे की ट्रेन से हम नवाबगंज चले जाएंगे।"

तब तक बाधा पड़ गई। बाहर कुछ लोग आए। मौसी भीतर से बोल उठी, "कौन? कौन हो वहां?"

तब तक दौड़ता हुआ गिरधारी आया, "मौसी, बड़े बाबू आए हैं—"

बड़े बाबू का नाम सुनते ही मौसी कैसी चंचल हो गई। बोली, "ओ बड़े बाबू आए हैं? लिवा लाओ, अन्दर लिवा आओ उन्हें—"

साथ-ही-साथ एक भला आदमी अन्दर आया। काफी लम्बा-तगड़ा शरीर। जूतों में मसमसाहट। कोट-पतलून धारी सम्प-सा आदमी। होंठ पर सिगरेट। मुंह से शराब की महक आ रही थी।

मौसी उसके सामने भीगी बिल्ली-सी बन गई। बोली, "आइए बड़े बाबू, अहोभाग्य कि मेरे यहां आपके चरणों की धूल पड़ी। पता नहीं, आज किसका मुंह देखकर जगी थी—"

बड़े बाबू भी किसी तरफ बिना देखे पूछा, "बतासी है?"

मौसी ने कहा, "बेशक। वह आपकी चीज है, जाएगी कहां? आइए, आइए—"

मौसी ने जोर से आवाज दी, "कहां गई रे बतासी, तेरे बाबू आए हैं—"

सदानन्द, प्रकाश, राधा—सबसे कतराकर बड़े बाबू बतासी के कमरे की तरफ बढ़े। सामने से जाते समय भले आदमी की शक्ल देखकर सदानन्द चौंक उठा। यह वही पुलिस इन्सपेक्टर है न? इसीने तो थाने के हाजत में उससे बार-बार जिरह की थी। जिरह करते-करते इसीने कभी उसे डांटा था, डराया था, फुसलाया था, कभी मीठी-मीठी बातें की थीं। तो सब लोग क्या इसी तरह के हैं? ऐसे ही लोग चोर-डकैत-गुंडों को पकड़ेंगे? रेल-बाजार या नवाबगंज से फिर तो कलकत्ता शहर का ज्यादा कुछ फर्क नहीं है।

हठात् प्रकाश मामा का गला सुनाई पड़ा, "क्यों रे, क्या देख रहा है? देखा न, यहां कितने बड़े-बड़े लोग आते हैं? टिन की छोनी का घर है तो क्या,

जो लोग आते हैं, हम लोगों जैसे भले घर के लड़के ही होते हैं। यह मत
च कि मैं तुझे वाहियात जगह में ले आया हूं—खानदानी घर है—"

लेकिन सदानन्द के कानों ये शब्द नहीं घुसे। उसके दिमाग में उस मय दूसरी बात चक्कर काट रही थी। पहले प्रकाश मामा से उसे नफरत हो रही थी। लेकिन प्रकाश मामा उसे यहां नहीं ले आया होता, तो शहर का एक दूसरा पहलू तो वह नहीं देख पाता। उसे खाक भी जानकारी नहीं होती कि दिन को जिन्हें देखकर लोगों को श्रद्धा होती है, डर लगता है, गण्य-मान्य के नाते समाज में जो सिर ऊंचा किए चलते हैं—रात के अंधेरे में उनका और ही चेहरा होता है, और ही रूप। दूसरी ही एक प्रवृत्ति।

उत्तर के कोने वाले कमरे में नयनतारा चुपचाप बैठी थी। यह एक बढ़ती का कमरा था। इसमें कभी कोई रहता नहीं। रहने की ज़रूरत भी नहीं पड़ती। उस समय, जब बूढ़े हुज़ूर ने यह मकान बनाया था, तो सोचा था, बेटा-बेटी, नाती-पोते से उनका घर भर जाएगा। लेकिन अपनी संतान में उन्हें बस एक लड़का ही हुआ। मगर एक ही क्या कम! उसी एक की बेटा-बेटियों से ही तो घर भर जाएगा। लेकिन वह भी न हुआ। पोता भी एक ही हुआ। सदानन्द जब हुआ, तो उसके अन्नप्राशन में उन्होंने बड़ी धूम-धाम की। कई साल और गुज़रे। साल के बाद साल निकलता गया। बेटे को और कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ। बूढ़े मालिक का मकान पहले जैसा ही सूना-सूना रहा।

सांझ को एक बार सास चुपचाप दरवाजा खोलकर अन्दर आई। बोली, "डर तो नहीं लग रहा है बहू!"

नयनतारा ने कहा, "नहीं—"

सास ने कहा, "डरना मत। बाहर मैं हूं, मुन्ना तो अभी तक नहीं आया। प्रकाश का भी कोई पता नहीं।"

नयनतारा ने पूछा, "आप कैसी हैं?"

"मेरी छोड़ो बहू! अपनी अब मैं नहीं सोचती। तुम्हारे ससुर राणाघाट से लौटने पर तुम्हारे बारे में पूछ रहे थे। मैंने कह दिया, बहू समधी जी के साथ कृष्णनगर चली गई—"

फिर ज़रा रुककर बोली, "तो मैं चलती हूं। कोई जान लेगा। आज तुम्हें ज़रा पहले ही खिला दूंगी। फिर तुम अपने कमरे में जाकर सो रहना। बाहर से तुम्हारे कमरे में मैं ताला डाल दूंगी। कोई नहीं जान पाएगा। सवेरा होते न होते फिर दरवाज़ा खोल दूंगी—"

वैसा ही हुआ। तीसरा पहर हुआ, शाम हुई, फिर भी न तो मुन्ना आया, न प्रकाश।

चौधरी जी ने कहा, "कहां, प्रकाश तो नहीं आया। मैं खुद एक बार जाऊं क्या कलकत्ता?"

प्रीति ने कहा, "तुम जाकर करोगे भी क्या? वह सब काम प्रकाश ही ठीक करेगा। तुम भी चले जाओगे, तो इधर कौन संभालेगा? बूढ़े मालिक बीमार हैं। किसी मर्द के नहीं रहने से काम कैसे चले?"

ठीक है। चौधरी जी ने समझा। लेकिन उनके समझने से क्या हुआ, मन तो नहीं मानता। एक ही दिन में उनके मन का सारा छोर ही खो गया। एक ही दिन में उनके सारे काम मानो बिखर गए। रोजमर्रे के कामों की भी तो एक कड़ी होती है। वह कड़ी टूट जाती है, तो मन बड़ी मुसीबत में पड़ जाता है। मगर जिन्होंने बड़ी साध से घर-संसार करना चाहा था, उनको अब किसी भी तरफ का कोई ख्याल नहीं। वह अचल-अटल से पड़े हैं। उन्हें पता भी नहीं चल रहा है कि उनके इतनी साध के संसार की दीवार में दरार पड़ गई है। कैलास गुमाश्ता और दीनू ही सिर्फ उनको सम्भाल रहा है। पहले, लड़का जब राणाघाट से लौटता था, तो वह खोद-खोदकर उससे मुकदमे की धाराओं के बारे में पूछा करते थे। मुकदमा लड़ते-लड़ते अन्त तक बूढ़े चौधरी मुकदमों का घुन ही गए थे। वकील तक को वह मुकदमे का सूत्र सुझा देते थे। वही बूढ़े चौधरी आज यह नहीं जानना चाहते हैं कि मुकदमे का क्या हुआ! नहीं जानना चाहते हैं कि उनका उतना दुलरुआ पोता कहां गया। वह चंगे रहे होते तो बहू की ऐसी हालत में नैहर जाने देते।

दूसरे दिन रात रहते ही सास ने नयनतारा को जगा दिया।

"रात को डर तो नहीं लगा बहू?"

नयनतारा ने कहा, "नहीं मा—"

सास ने कहा, "अभी भोर नहीं हुई है। तुम्हारे ससुर सो रहे हैं। तुम जल्दी से तैयार हो लो। तुम्हें फिर उत्तर वाले कमरे में बन्द कर दूंगी।"

नयनतारा बोल उठी, "मा—"

सास ने कहा, "क्या बहू?"

"वे लोग अगर आज भी न लौटें?"

सास बोली, "न लौटें तो तुम्हारा नसीब। कल सारी रात तो मैं भगवान को ही पुकारती रही। तुम भी भगवान को पुकारो बहू! वह जरूर नजर उठाकर देखेंगे। मन से पुकारने पर भगवान भला मुंह फेरकर रह सकते हैं? बिहुला की कहानी जानती हो न? सुना ही होगा कि बिहुला ने अपने मरे हुए पति को किस तरह से जिलाया था। तुम भी कर सकोगी बहू! भगवान सहायक हों तो आदमी के लिए कोई भी काम असम्भव नहीं है। तुम सब समय उन्हें हृदय से पुकारो, मुन्ना जरूर लौट आएगा—"

उस समय नयनतारा सचमुच ही भगवान पर विश्वास करती थी। उसके बाद चोट पर चोट खाते-खाते उसके उस विश्वास की कब जो सलिल-समाधि हो गई थी, वह उसे सदा याद रहेगी। लेकिन उसका विश्वास क्यों टूट गया? उसने आस्था क्यों खो दी? और सिर्फ भगवान पर से ही क्या आस्था को खो बैठी? आस्था वह जीवन से, अपने सास-ससुर, सबसे खो बैठी। जो विश्वास खोकर सदानन्द आखिरकार आसामी हो गया, नयनतारा भी तो वही आस्था

जो लोग आते हैं, हम लोगों जैसे भले घर के लड़के ही होते हैं। यह मत
व कि मैं तुझे वाहियात जगह में ले आया हूं—खानदानी घर है—"

लेकिन सदानन्द के कानों ये शब्द नहीं घुसे। उसके दिमाग में उस
मय दूसरी बात चक्कर काट रही थी। पहले प्रकाश मामा से उसे नफरत
ी रही थी। लेकिन प्रकाश मामा उसे यहां नहीं ले आया होता, तो शहर का
एक दूसरा पहलू तो वह नहीं देख पाता। उसे खाक भी जानकारी नहीं होती
कि दिन को जिन्हें देखकर लोगों को श्रद्धा होती है, डर लगता है, गण्य-मान्य
के नाते समाज में जो सिर ऊंचा किए चलते हैं—रात के अंधेरे में उनका
और ही चेहरा होता है, और ही रूप। दूसरी ही एक प्रवृत्ति।

उत्तर के कोने वाले कमरे में नयनतारा चुपचाप बैठी थी। यह एक
बढ़ती का कमरा था। इसमें कभी कोई रहता नहीं। रहने की ज़रूरत भी नहीं
पड़ती। उस समय, जब बूढ़े हुज़ूर ने यह मकान बनाया था, तो सोचा था,
बेटा-बेटी, नाती-पोते से उनका घर भर जाएगा। लेकिन अपनी संतान में उन्हें
बस एक लड़का ही हुआ। मगर एक ही क्या कम! उसी एक की बेटा-बेटियों
ही तो घर भर जाएगा। लेकिन वह भी न हुआ। पोता भी एक ही हुआ।
ानन्द जब हुआ, तो उसके अन्नप्राशन में उन्होंने बड़ी धूम-धाम की। कई
ाल और गुज़रे। साल के बाद साल निकलता गया। बेटे को और कोई बाल-
च्चा नहीं हुआ। बूढ़े मालिक का मकान पहले जैसा ही सूना-सूना रहा।

सांझ को एक बार सास चुपचाप दरवाज़ा खोलकर अन्दर आई। बोली,
"डर तो नहीं लग रहा है बहू!"

नयनतारा ने कहा, "नहीं—"

सास ने कहा, "डरना मत। बाहर मैं हूं, मुन्ना तो अभी तक नहीं आया।
प्रकाश का भी कोई पता नहीं।"

नयनतारा ने पूछा, "आप कैसी हैं?"

"मेरी छोड़ो बहू! अपनी अब मैं नहीं सोचती। तुम्हारे ससुर राणाघाट से
लौटने पर तुम्हारे बारे में पूछ रहे थे। मैंने कह दिया, बहू समधी जी के साथ
कृष्णनगर चली गई—"

फिर ज़रा रुककर बोली, "तो मैं चलती हूं। कोई जान लेगा। आज तुम्हें
ज़रा पहले ही खिला दूंगी। फिर तुम अपने कमरे में जाकर सो रहना। बाहर
से तुम्हारे कमरे में मैं ताला डाल दूंगी। कोई नहीं जान पाएगा। सवेरा होते न
होते फिर दरवाज़ा खोल दूंगी—"

वैसा ही हुआ। तीसरा पहर हुआ, शाम हुई, फिर भी न तो मुन्ना आया
न प्रकाश।

चौधरी जी ने कहा, "कहां, प्रकाश तो नहीं आया। मैं खुद एक बार जा
क्या कलकत्ता?"

कर एक दिन आत्महत्या करने पर उतारू हुई थी ।

लेकिन वह बात अभी रहने दीजिए ।

दूसरे दिन सांझ बीती, रात हुई ।

सास फिर कमरे का ताला खोलकर अन्दर गई । बोली, "बहू, खा लो । खाना ले आई हूं—"

खाने बैठी तो नयनतारा की आंखों से टप-टप आंसू टपकने लगे ।

सास ने कहा, "रोओ मत बहू, रोना नहीं चाहिए । रोना तो मुझे चाहिए, पर मैं कहां रो रही हूं ? मैं अगर रोती, तो मेरा यह गिरस्ती करना कब का चुक गया होता बहू, जानती हो ? रोने के दिन बहुत मिलेंगे । इतने जल्दी आंखों का सारा पानी खत्म मत कर दो । अन्त में एक के बाद दूसरा शोक-ताप जब आएगा, तो रोने के लिए आंखों में इतना पानी कहां से लाओगी ? अभी-अभी तो तुमने दुनिया में कदम रखा है, अभी ही यदि इतनी रुलाई छूटेगी तो जीवन के अन्तिम दिनों में क्या करोगी ?"

सास की बात पर आंखें पोंछकर नयनतारा ने जरा सख्त होने की कोशिश की । किसी तरह से खाना खाया । नियम का पालन हो जैसे ।

सास ने कहा, "ऐसे उपवास करने से तो तुम्हारा काम नहीं चलेगा बहू, नहीं खाने से तुम और कमजोर हो जाओगी । वैसे मैं अपने अपमान का बदला कैसे लोगी ?"

कि बाहर प्रकाश का गला सुनाई पड़ा, "दीदी—दीदी—सदा को ले आया दीदी—"

चौधरी जी बूढ़े चौधरी के पास ऊपर के कमरे में थे । आवाज उनके भी कानों में गई । सुनते ही वह लपककर सीढ़ियों से उतर आए ।

"कहां है, मुन्ना कहां है ?"

प्रकाश के पीछे ही सदानन्द सूखा चेहरा लिए खड़ा था । चौधरी जी ने पूछा, "क्या हुआ ? पुलिस से छुटकारा मिल गया ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "आसानी से छोड़ने को था जीजाजी ? कहावत है, पुलिस छुए तो अठारह घाव । फिर यह तो पुलिस का भी बाप । कलकत्ता की पुलिस । हजार से कम पर तो चूं करने को भी राजी नहीं । आखिर हाथ-पांव पड़ने पर राजी हुई ।

चौधरी जी ने पूछा, "फिर तो बड़ा कष्ट हुआ ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "कष्ट जैसा कष्ट । पल्ले ज्यादा रुपये तो थे नहीं सब तो पुलिस के पेट में डालना पड़ा । किसी तरह से गाड़ी-किराया- बनाकर यहां तक आया, नहीं तो कलकत्ता की सड़क पर ही हमें रात बित पड़ती ।"

प्रकाश मामा वहां और नहीं रुका । बोला, "चलता हूं, दीदी से क वह बड़ी चिन्ता में होगी ।"

चौधरी जी ने कहा, "तुम्हारी दीदी की तबीयत तो फिर खूब ख गई है ।"

प्रकाश ने कहा, "वह तो मैं जाते समय ही देख गया था। मुन्ने के लौट आने की खबर सुनते ही दीदी चंगी हो उठेगी।"

वह भीतर के बरामदे पर गया। आवाज दी, "दीदी—"

प्रीति ने उसका गला जो सुना, सो तुरन्त बहू को सोने के कमरे में दाखिल करके बाहर से ताला बन्द कर दिया। नयनतारा से बोली, "मैंने जो कहा है, याद है तो बहू ?"

नयनतारा ने गरदन हिलाई।

"हां, याद रखना, भूल मत जाना। मुन्ने को जिसमें पता नहीं चले कि तुम कमरे में हो। मैं उन लोगों से कह दूंगी कि तुम मैके चली गई हो, समझी ? आज मुन्ने को यह बता देना ही है कि अपमान का बदला तुम भी ले सकती हो; उसे अच्छी तरह से समझा देना होगा कि औरत हो तो क्या, तुम भी आखिर मनुष्य हो; बता देना होगा कि मान-अपमान, लज्जा-संभ्रम नाम की चीज तुम्हें भी है; साथ ही यह भी बता देना है कि इस घर पर उसका जैसा अधिकार है, वैसा ही अधिकार तुम्हारा भी है। समझ गई ? जो-जो बता रही हूं, ठीक वही-वही करनी। डर मत जाना। फिर मैं तो हूं, वह यदि तुम पर कुछ जुल्म करे तो मैं तुम्हारी तरफ हूं, मुझे पुकार लेना। जोर से पुकारते ही मैं दौड़ी आऊंगी, हां ? अभी मैं जाती हूं—"

कमरे में ताला बन्द करके प्रीति झटपट अपने कमरे में चली गई।

बाहर से पुकारता हुआ प्रकाश अन्दर गया। बोला, "कहां गई दीदी, तुम्हारे मुन्ने को तो मैं ले आया। उफ्, पूछो मत, कलकत्ता में मेरी कम गत हुई ? मैं नहीं गया होता, तो सदा को छुड़ाकर लाया ही नहीं जा सकता था।"

उसके बाद बहू के कमरे की ओर निगाह डालकर बोला, "बहूरानी कहां है ?"

प्रीति ने कहा, "उसके पिताजी आए थे, उसे कृष्णनगर ले गए।"

"हाय राम ! इस समय तुमने बहू को नैहर जाने दिया ? इतनी-इतनी मुसीबत के बाद सदा को हाजत से छुड़ाकर ले आया और ठीक उसी समय तुमने बहू को उसके मैके भेज दिया ? अभी-अभी उसी दिन तो वह मैके से लौटी है, इसी बीच फिर ?"

दीदी ने इसका जवाब नहीं दिया। पूछा, "कहां है, मुन्ना कहां है ? वह मेरे पास नहीं आया ?"

प्रकाश ने कहा, "मैं बुला लाता हूं—"

मुन्ना आ गया, एक रोगी के चंगा होने के लिए यही काफी है। प्रीति का मिजाज पल में ही जैसे हलका हो गया।

प्रकाश मामा ने फिर कहा, "सदा के लिए जो झंझट झेली, वह तुमसे मैं क्या बताऊं दीदी ! कहते हैं, पुलिस छुए तो अठारह घाव, तिसपर कलकत्ता की पुलिस। सीधी उंगली से तो वहां घी नहीं निकलता। इसीलिए मैं भी टेढ़ी राह चला। मैंने कहा, 'सदा को छोड़ना ही पड़ेगा। इसके लिए जो

भी खर्च लगे, मेरे जीजाजी करने को तैयार हैं।' रुपये की बात सुनते ही उनके चेहरे का भाव बदल गया। मेरे हाथ में नकद नोट थे। देखकर पूछा, 'कितने रुपये हैं?' मैंने कहा, 'पांच सौ—'।"

दीदी ने पूछा, "पांच सौ में राजी हो गया?"

प्रकाश मामा ने कहा, "पागल हुई हो? ऐसे बन्दे ही नहीं हैं वे—"

"फिर?"

"आखिर सात सौ पर सौदा तै पाया। रुपये दिए कि रिहाई का हुक्म हो गया। देखा, रोते-रोते सदा आ रहा है। भूख-उनींदे उसका चेहरा सूखकर सोंठ हो गया है। रोते-रोते आंखें सूज गई हैं।"

दीदी ने कहा, "हाय रे, बच्चे को खाने के लिए भी नहीं दिया। दिन-भर भूखा ही रहा?"

प्रकाश मामा ने कहा, "उसकी न सोचो, तुम। पुलिस ने नहीं खिलाया, मैंने तुम्हारे मुन्ने को भर पेट खिला दिया। क्या-क्या खिलाया था, बताऊं? बड़ा-बड़ा राजभोग, रसगुल्ला, सन्देश, रबड़ी। उससे भी उसका पेट नहीं भरा। आखिर तुम्हारे बेटे ने कहा, 'भात खाऊंगा।' ले गया तुम्हारे बेटे को होटल में। वहां मछली का कलिया और महीन बालम चावल का भात खिलाया। कहा, जितना खाना हो, खा। मेरे पास तब भी तीन सौ रुपये बच रहे थे।"

प्रीति को लेकिन उस समय यह सब सुनने में अच्छा नहीं लग रहा था। बोली, "खाने की बात रहने भी दे, मुन्ना अभी तक आ क्यों नहीं रहा है? उसे बुला दे न।"

चौधरी जी मुन्ने से सब पूछ-ताछ कर रहे थे। सुन-सुनाकर बोले, "मगर तुम कालीगंज के उस टुटहे मकान में गए ही क्यों थे? वहां तुम्हारा क्या पड़ा है? कौन है वहां?"

सदानन्द ने कहा, "कोई नहीं।"

"कोई नहीं है तो तुम्हें वहां जाने की क्या पड़ी थी? अपने घर में मन नहीं टिकता है? घर में कोई काम न हो, तो चंडीमंडप में सरिश्ते का कागज-पत्तर भी तो देख सकते हो? उनके देखने से भी मेरा लाभ है। यह भी तुमसे नहीं हो सकता?"

सदानन्द ने इसका जवाब देने की कोई जरूरत नहीं समझी।

"मैं पूछता हूं, जवाब क्यों नहीं दे रहे हो? मैं जो कह रहा हूं, वह तुम सुन नहीं रहे हो कि उसकी तुम्हें परवाह ही नहीं? सोचते हो कि यह सब मैं अपने भले के लिए कह रहा हूं, तुम्हारे भले के लिए नहीं? इतना कष्ट करके इतनी जो सम्पत्ति रखते जा रहा हूं, वह क्या मैं अपने भोगने के लिए? मरते समय अपने साथ ले जाने के लिए? उस समय तो यह सारा कुछ तुम अकेले ही भोगोगे। सब तो तुम्हारा ही होगा। हम लोग अब कितने दिन के मेहमान हैं? मैं भी नहीं रहूंगा, तुम्हारी मां भी नहीं रहेगी। सारी दौलत तुम और बहू मिलकर पाओगे। हम तो यह देखने भी नहीं आएंगे कि तुम

लोगों ने यह सब फूंक दिया कि बेचकर रास्ते के भिखारी बन गए। जब तक मैं जिन्दा हूं, तब तक बाप का फर्ज तो अदा करना होगा।"

सदानन्द ने अबकी भी कोई जवाब नहीं दिया।

चौधरी जी रंज हो गए। बोले, "तुमने क्या तै कर लिया है कि मेरी किसी भी बात का जवाब नहीं दोगे? मुझसे बोलोगे ही नहीं। यही अगर सोच लिया हो, तो वही कहो। मैं वैसे ही व्यवस्था करूं? तुम जैसे बेअदब लड़के को कैसे दुरुस्त किया जाता है, मैं यह भी जानता हूं।"

नयनतारा को खिला-पिलाकर उसकी सास ने उसे उसके सोने के कमरे में बन्द कर दिया था। अंधेरा कमरा। नयनतारा का कलेजा कांप रहा था। ससुर से पति की जो बात हो रही थी, वह सब सुन पा रही थी। ध्यान से सुनने लगी। सबको यह मालूम था कि नयनतारा नैहर चली गई है। चूं तक नहीं करना, नहीं तो पता चल जाएगा कि यहीं है।

इधर सास से उसके मामा-ससुर बात कर रहे थे। वह भी सुनाई पड़ रही थी। और उधर ससुर का गला।

कैदी की तरह उसने कल रात भी बिताई, आज का दिन भी काटा। और कब तक ऐसे काटना होगा, कौन जाने! जरा देर बाद खा-पीकर उसके पति जब यहां सोने के लिए आएंगे, तब?

जैसे चिड़िया को रटाते हैं, सास ने उसे सब रटा दिया था। बहुत कुछ सिखा दिया था। वह सब याद आते ही उसका शरीर काठ-सा हो आया। एक विपदा आने के पहले ही वह भय से घड़ियां गिनने लगी। बिहुला अपने पति को यम के चंगुल से छुड़ा लाई थी। उसे भी क्या बिहुला बनना पड़ेगा।

अदृश्य ईश्वर को स्मरण करके नयनतारा प्रार्थना करने लगी—'भगवान, तुम आज मेरा मुंह रखना। मेरा ही नहीं, सबका मुंह रखने का भार तुम्हारा ही है। मैं जिसमें सफल हो सकूं। अपने पति का मन फेरने में मैं सफल हो सकूं। मुझे साहस देना, शक्ति देना, सामर्थ्य देना—मैं जिसमें हार न जाऊं—'

इतने में सास का गला सुनाई पड़ा, "आ गया मुन्ने?"

लेकिन पति का गला नहीं सुनाई पड़ा। फिर भी नयनतारा ने समझा कि उसका पति अन्दर आया है।

वह उधर कान लगाए रही। घर की क्षीण से क्षीण आवाज भी जिसमें उसके कान से परे न रहे। इतने में प्रकाश मामा का गला सुनाई पड़ा।

प्रकाश मामा ने कहा, "मां की तकलीफ क्या लड़का समझता है दीदी, कोई भी लड़का नहीं समझता। मैंने ही तो मां को कितना कष्ट दिया है। तब समझता नहीं था। अब मां नहीं है, तो समझता हूं—"

सास ने इसपर कुछ नहीं कहा। लड़के से पूछा, "तू हम लोगों की बात क्यों नहीं सुनता बेटे, यह तो बता? हम लोगों की सुनता तो तेरी यह इतनी दुर्गत नहीं होती। अपना इतना अच्छा घर रहते हुए तू कालीगंज

उस टुटहे मकान में क्यों गया था? मान लो डकैत नहीं होते, सांप-विच्छू हो सकते थे। वैसे घर में जाना क्या ठीक है? यह तो खैर पुलिस वात थी, रुपये पैसे देकर छुड़ा लाया। सांप-विच्छू काटता तो क्या ता? क्या होता तव?"

अब चौधरी जी भी अन्दर आए। वोले, "यह हम लोगों की नहीं सुनेगा। म हज़ार कहो, इसके कान में पहुंचेगा ही नहीं। तुम जो कुछ कह रही हो, ने इसे वह सब कहा, वहुत कहा। वह क्या जो सोचता है, क्या करता है, शा क्या है उसकी—मैं कुछ भी नहीं समझ पाता हूं—"

सास ने कहा, "तुम यहां क्यों चले आए? इसे जो कहना है, मैं ही कह रही हूं, तुम जाकर अपना काम करो।"

ववका खाकर चौधरी जी फिर वाहर चले गए। ज़रा ही देर में डाक्टर के आने की वात थी। वह डाक्टर का ही इंतज़ार कर रहे थे। थक गए और जव डाक्टर नहीं आया, तो अन्दर आए थे। पत्नी की वात से फिर वाहर चले गए। दीनू ने आकर कहा, "छोटे वावू, डाक्टर आए हैं, चलिए—"

वहुत दिन पहले, एक वार सदानन्द जव वीमार पड़ा था, तो उसे यही डाक्टर देख गया था। यही नोनी डाक्टर। मामूली-सी वीमारी। वूढ़े मालिक उस समय भले-चंगे थे। उन्होंने पूछा था, "डाक्टर ने कितना रुपया लिया कैलास?"

कैलास गुमाश्ता ही सदा हिसाव-पत्तर रखता था। उसने वही देखकर वताया, "जी, दवा और फीस मिलाकर सत्रह रुपये—"

सत्रह रुपये? रुपये का अंक सुनकर वूढ़े चौधरी इस तरह से चौंक उठे थे, जैसे सांप के आगे पैर वढ़ गया हो। नाहक की फिज़ूलखर्ची जैसे पसन्द नहीं थी उन्हें, वैसे ही डाक्टर के खर्च को वह फिज़ूलखर्च ही समझते थे।

लेकिन आज उन्हें पता भी नहीं चल रहा था कि उनके उतने अरमान के रुपये उनकी अपनी वीमारी में ही पानी की तरह वहे जा रहे हैं। एक दिन महज़ दो पैसे के नुकसान के लिए उन्होंने कपिल पायरापोड़ा को आत्महत्या के लिए मजवूर किया था। एक दिन दोपहर को खेत से आकर माणिक घोष खाने के लिए वैठा था और वंशी ढाली वगैरह ने जाकर लात से उसकी थाली को उलट-कर फेंक दिया था। उसके वाद उसके टिन के छप्पर को उजाड़कर परिवार सहित उसे रास्ते पर निकाल दिया था। कसूर उसका? कसूर यही कि कर्ज लिए रुपये का सूद वह समय पर नहीं चुका सका था। वहुत वाकी रह गया था। और फटिक नाई। उसके वारे में भी सभी जानते हैं। फटिक नाई के दो गाय-गोरु ने वूढ़े चौधरी के खेत में मुंह डाला था। इस कसूर में एक दिन एकाएक उसके घर में आग लग गई थी। उस आग में फटिक की पत्नी तो मर ही गई थी, शोक में एक दिन फटिक भी पागल हो गया था।

उसी नुकसान का मुआवजा चुकाने के लिए शायद उनके बेटे का साला
घाट की राधा को गंगास्नान कराने के लिए कालीघाट ले आता है;
डाक्टर पर हजारों-हजार खर्च हो जाते हैं। और पोता, जो पोता उनके
नदान में चिराग जलाएगा, इसलिए कंचन सुनार को तीन तोला सोने का
र बनाने के लिए दिया कि उनके होने वाले लड़के के अन्नप्राशन में उपहार
—वह पोता अपनी नई-नई आई पत्नी की तरफ उलटकर ताकता भी नहीं।
गर आज यह सब कुछ भी उनकी नजर में नहीं आता। वह जैसे पत्थर हुए-
ल मांस-पिंड हो गए हैं। उन्हें पकड़ करके करवट कराना पड़ता है, उनका
मुंह खोलकर दवा देनी पड़ती है।

चौधरी जी ने डाक्टर से पूछा, "इस तरह से ये और कितना दिन जिएंगे
डाक्टर साहब?"

नोनी डाक्टर ने कहा, "इसका कुछ कहा जा सकता है? कितने लोग इस
हालत में बरसों जिन्दा रह जाते हैं।"

"लेकिन अगर बचना नहीं ही है, तो इलाज से क्या लाभ?"

नोनी डाक्टर ने कहा, "तो क्या अपने बाप को कोई मार डालेगा?"

चौधरी जी ने कहा, "लेकिन उनकी यह हालत तो अब देखी नहीं जाती।
कुछ न कुछ कीजिए न?"

"क्या करूं?"

नोनी डाक्टर क्या करे और कौन-सा प्रस्ताव चौधरी जी करना चाहते हैं,
दोनों में से कोई भी नहीं खुलते। दोनों कुछ समझ ही नहीं पाते। दोनों ही
शायद यह समझते थे कि मरीज को मार डालने के सिवाय दूसरा और कोई
उपाय नहीं है। समझते थे, इसलिए यह बोलकर दो में से कोई भी अपराध का
भागी नहीं बनना चाहते।

लेकिन चौधरी जी ने राणाघाट में बैठे-बैठे ही संकल्प कर लिया था।
संकल्प कर लिया था, न, अब नहीं। रोज-रोज इतने रुपये का खर्च। रुपयों
का लेखा लगाते ही चौधरी जी को आतंक हो आता। इतने रुपये! इस खर्च का
क्या अन्त नहीं है। अब उनके चंगा होने की कोई उम्मीद ही नहीं तो इतने
खर्च का क्या फल? इसका प्रतिकार तो उन्हीं के हाथों है। तो?

इस 'तो' का उत्तर ढूंढने के लिए ही वह कई दिनों से छटपट कर रहे
थे। यदि इतने खर्च का कोई नतीजा ही नहीं निकलना है, फिर तो बूढ़े हुजूर
को जिन्दा रखना भी बेकार है। अथच इसी बेकार चीज को सिर्फ कर्तव्
और मनुष्यता-बोध की दुहाई से ही चलाए चले जा रहे थे। लेकिन कब तक
और कब तक यह बरदाश्त करना संभव होगा?

डाक्टर बाबू ने उस दिन भी नियम से रोगी की जांच की। स्टेथिसको
लगाकर जैसे छाती की जांच की जाती है, वैसे ही जांच की। जैसा द
है, दो-एक बातें भी पूछीं। जैसा कि रोज पूछा करते थे।

हाथ बढ़ाकर फीस के रुपये लेकर वह चले ही जा रहे थे। रात होती
रही थी। दवाखाने में और भी मरीज थे। घर के बाहर भी बहुत-से

ा इंतज़ार कर रहे थे ।

चौधरी जी डाक्टर के साथ ही नीचे उतरे । पीछे से पुकारा, "डाक्टर बू !"

डाक्टर ने उलटकर देखा ।

चौधरी जी ने पूछा, "आज कैसा देखा ?"

नोनी डाक्टर ने कहा, "वैसे ही हैं, जैसे थे ।"

चौधरी जी ने कहा, "रोज़ ही अगर ऐसे ही रहें तो आपके देखने आने की ही क्या ज़रूरत है और दवा-दारू की ही क्या ज़रूरत है ? दवा लेनें में भी तो रुपये लगते हैं ।"

नोनी डाक्टर ने कहा, "सो तो लगेंगे । वह अगर आपको फिज़ूलखर्ची लगती हो, तो आप दवा मत दीजिए ।"

"हां । मैं वही सोच रहा हूं । दवा से कोई लाभ तो हो नहीं रहा है—'

नोनी डाक्टर ने कहा, "नहीं, लाभ अब होगा भी नहीं ।"

"फिर ? दवा न देकर क्या करूं ?"

"तकलीफ बढ़े तो थोड़ी-थोड़ी अफीम दिया कीजिए । रुपये भी कम खर्च होंगे और तकलीफ भी कम होगी ?"

डाक्टर और नहीं ठहरे ? आंगन से निकलकर बाहर साइकिल पर सवार हो गए और घंटी बजाकर रास्ते के उस पार ओझल हो गए ।

चौधरी जी उस अंधेरे बरामदे पर ही चुपचाप कुछ देर खड़े रहे । अफीम ? लेकिन अफीम ही क्यों खरीदें ? उसमें भी तो पैसे लगेंगे । फिर आज रात अफीम ही कहां से लाएंगे ? कल दिन से पहले तो रेल-बाज़ार की आबकारी दूकान खुलेगी नहीं । और, अफीम खरीदो, तो एक सबूत भी तो रह जाएगा ? सबूत रह जाएगा कि चौधरी जी का आदमी बूढ़े मालिक के मरने के पहले रेल-बाज़ार की आबकारी दूकान से अफीम खरीदकर ले गया था । इतने झमेले की ज़रूरत भी क्या है ? उससे सीधे रास्ते तो बहुतेरे हैं ।

चौधरी जी ने तय कर लिया कि क्या करना है ! बिलकुल निश्चिन्त । वह सीधे ऊपर चले गए । बूढ़े चौधरी की वही हालत । निढाल-से पड़े थे ।

कैलास गुमाश्ता बूढ़े मालिक को पिलाने के लिए दवा ठीक कर रहा था

चौधरी जी ने पूछा, "किसके लिए दवा तैयार कर रहे हो ?"

कैलास ने कहा, "जी, डाक्टर साहब कह जो गए ?"

चौधरी जी ने कहा, "नहीं, डाक्टर बाबू मुझे दूसरी बात कह गए । अ
से अब दवा नहीं देनी है—"

"दवा नहीं देनी होगी ?"

"नहीं ।"

इतने दिनों में घर में शीशी-बोतलों का पहाड़ लग गया था । उसकी
चौधरी जी ने देखा । उन शीशी-बोतलों से सौ गुना ज्यादा रुपये खर्च हुए
दिनों तक राख में घी ढाला जाता रहा । लेकिन जो हो चुका सो हो चुक
ं । अब छोड़ो । बूढ़े मालिक जिन्दा होते होश में, तो वह भी इतने

ज करते । उनके लिए भी जीवन में रुपयों का दाम ज्यादा था । वह जानते , तो यह अनाचार हरगिज नहीं होने देते । इतनी वेहिसाबी वह कभी दाश्त नहीं करते ।

चौधरी जी बोले, "कल इन शीशी-बोतलों को उठाकर चंडीमंडप के पास ी ढाली के कमरे के निकट रख देना । फिर उन्हें रेल-बाजार की पुरानी शियों की दूकान में बेचने का इंतजाम करना, समझे ?"

कैलाश गुमाश्ता ने सिर तो हिलाया, पर एक अजाना आतंक उसके मन समा गया । तो क्या, बूढ़े मालिक के जाने का समय आ गया । उसकी ौकरी ? बूढ़े मालिक के साथ-साथ उसकी नौकरी भी चली जाएगी । ोला, "डाक्टर साहब क्या कह गए छोटे बाबू ? बड़े मालिक अब नहीं बचेंगे ?"

चौधरी जी बिगड़ उठे । बोले, "मैं जो कह रहा हूं, पहले वही करो । बूढ़े मालिक बचेंगे या नहीं, इसके लिए तुम इतना दिमाग क्यों लगा रहे हो ?" फिर बोले, "हां, और एक बात । तुम तो रात में यहीं सोते हो ?"

"जी हां । आपने ही तो यहां सोने के लिए कहा था ।"

"हां, मैंने ही कहा था । मगर अब से यहां सोने की जरूरत नहीं । आज से तुम अपने घर ही सोना ।"

"जी, वैसा ही करूंगा ।"

चौधरी जी दीनू की तरफ मुड़े, "और तू ?"

दीनू ने कहा, "जी मैं तो सब दिन बाहर के बरामदे में ही सोता हूं—"

"ठीक है, वहीं सोना । आज से इनके कमरे में मैं सोया करूंगा ।"

कहकर वह नीचे उतर गए । उनके दिमाग में सारी झंझटें जैसे किल-बिलाने लगीं । यों चौधरी जी धीर-स्थिर आदमी थे । सहज ही झुक नहीं जाते । लेकिन उस दिन कलेजे में कैसा तो आतंक होने लगा । अभी तक उन्होंने बहुत बरदाश्त किया । सहने की सीमा अब पार कर गई थी । अब कोई किनारा कर लेने का वक्त आ गया था ।

मौका जीवन में एक ही बार आता है । ऐन उसी वक्त निर्णय कर लेना चाहिए । बूढ़े चौधरी भी बहुत दिन पहले एक चरम निर्णय लिया था । बंशी ढाली को बुलाकर उन्होंने कालीगंज की बहू का काम तमाम करने का हुक्म दिया था । उसके बाद उन्होंने यह देखा कि पोते की सारी शरारतें बन्द हो गईं । पोते की सारी बातें सुहागरात में ही ठंडी पड़ गईं । खूबसूरत बीवी का मुखड़ा देखते ही जवान लड़के का दिमाग घूम गया । उसके बाद से वह कालीगंज की बहू को दस हजार रुपये देने की बात जबान पर ही नहीं लाया । बेटे को बुला-कर बूढ़े चौधरी ने कहा था, "क्यों, क्या हुआ ? मैंने जो कहा था, ठीक वही हुआ न ?"

सब जानते हुए भी चौधरी जी झूठ कह गए, "हां वही हुआ—"

"दस हजार रुपये देने के लिए अब चूं भी करता है ?"

चौधरी जी ने कहा था, "नहीं ।"

बूढ़े चौधरी ने कहा, "अब चूं करेगा भी नहीं। देख लेना। वह अब कभी सा बिलल्लापन नहीं करेगा। तुम्हीं लोग डर गए थे। कहा था, 'कालीगंज वहू का रुपया देना ही अच्छा है।' अब देख लिया न, तुम लोगों ने जो कहा ा, वह अच्छा था कि मैंने जो कहा था, वह अच्छा था। आखिर सुहागरात मुन्ना वहू के कमरे में सोया न ? वोलो, सोया कि नहीं ?"

चौधरी जी ने कहा, "हां, सोया। आपने जो कहा था, वही हुआ।"

"तो ? उस समय तुम लोगों की मानता तो खामखा मेरे दस हज़ार रुपये पानी में चले जाते।"

"जी हां, जाते।"

"तुम लोग बच्चे हो। इसीलिए अभी भी कुछ नहीं समझते। जगह-ज़मीन रखने के लिए ऐसी अक्ल लड़ानी पड़ती है। यह जितना कुछ देख रहे हो, सब मैंने इसी तरह से किया है, समझ गए ? जायदाद बचाने के लिए दया-माया रखने से काम नहीं चलता। दया-माया की कि गए जहन्नुम में।"

चौधरी जी को खास करके बूढ़े का 'दया-माया' शब्द ही याद आया। दया-माया करने से जगह-जायदाद, पूंजी-पट्टा। सब चला जाएगा। कुछ भी नहीं रहेगा। न, अब दया-माया नहीं करेंगे वह। यहां तक कि बूढ़े मालिक पर भी दया-माया नहीं। आज रात ही गला दबाकर दया-माया का खातमा कर देंगे।

नीचे उतरकर अन्दर गए। रसोई-घर के बरामदे पर गृहिणी अकेली बैठी थी।

चौधरी जी ने करीब जाकर पूछा, "क्या हुआ ? तुम्हारी तबीयत खराब है, तुम सरदी में यहां क्यों बैठी हो ? मुन्ना कहां है ?"

"वह हाथ-मुंह धोने के लिए गया है। उसे खाना देना है ?"

चौधरी जी ने पूछा, "मुन्ने ने क्या कहा ?"

प्रीति ने कहा, "कहेगा क्या, खूब तकलीफ हुई—यही सब कह रहा था—"

"वह नहीं, बहू मैके चली गई, यह सुनकर कुछ बोला क्या ?"

प्रीति ने कहा, "नहीं।"

"पूछा नहीं कि मैके क्यों गई ? कौन ले गया ?"

"नहीं।"

चौधरी जी ने प्रसंग को बदल दिया, "आज मैं जरा सवेरे-सवेरे खा लूंगा। आज से मैं बूढ़े मालिक के कमरे में सोया करूंगा—"

प्रीति ने कहा, "सो क्यों ? गुमाश्ता जी तो वहां रहते हैं ?"

चौधरी जी ने कहा, "आज से उसे मैंने मना कर दिया है। कह दिया, आज से वह अपने घर सोया करे—"

"तुम जो वहां सोओगे तो, बिछौना ?"

"दीनू से बिछौना तैयार करने को कह दिया है। तुम गौरी से कह दो, मेरा खाना परोस देगी। खा-पीकर सो रहूं जाकर। मुझे आज कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। बूढ़े मालिक की यह बीमारी ठीक नहीं होगी, मेरे भी झमेले का

अंत नहीं होगा। नोनी डाक्टर कह गया, ये अभी ऐसे ही जीते रहेंगे।"

प्रीति ने कहा, "आदमी जीता रहे तो तुम क्या करोगे? गला दबाकर किसीको मार तो नहीं डाला जा सकता। नसीब में जब तक भोग लिखा है, भोगना ही है।"

चौधरी जी ने कहा, "कह क्या रही हो तुम। बरदाश्त भी करूं और दवा भी खिलाता जाऊं। दवा में रुपये नहीं लगते क्या? इन कई दिनों में मुबलक कितने रुपये पानी में गए, कहो तो। उन रुपयों से पांच सौ बीघा जमीन हो जाती। फिर भी अगर यह जानता कि इससे ये चंगे हो जाएंगे, तो बात भी थी। यह तो न देवाय, न धर्माय···"

इतने में गौरी बरामदे पर थाली दे गई। चौधरी जी खाने बैठे। लेकिन खाते-खाते भी बूढ़े मालिक की बातें उनके दिमाग में घुमड़ती रहीं—जायदाद रखनी हो, तो दया-माया से काम नहीं चलने का। दया-माया की कि गए जहन्नुम में!

ठीक ही है। दया-माया अब नहीं। ज्यादा दया-माया की कि जहन्नुम में गए। जैसे-तैसे खाकर उठे। वहां से सीधे ऊपर फिर बूढ़े चौधरी के कमरे में गए। कैलाश गुमाश्ता तब तक अपने घर जा चुका था। आज से उसे राहत मिली। उस बदबू में रात नहीं बितानी होगी।

दीनू खड़ा था। चौधरी जी ने कहा, "तू खामखा क्यों खड़ा है? जा, गौरी से मांगकर खा ले—"

दीनू चला गया। चौधरी जी बूढ़े मालिक के निकट गए। सच तो, बूढ़े मालिक एक अचल मांस-पिण्ड के सिवा कुछ नहीं रह गए थे। जरा भी होश नहीं। बिस्तर से इतनी बदबू आती है, फिर भी उन्हें कोई गम नहीं। पांचों इन्द्रियां लुप्त हो गई हैं, फिर भी जिन्दा कैसे हैं, क्या जानें! अथच कभी इन्हींको कितना बुद्धि-विवेक था। बुद्धि-विवेक ही नहीं, कूट-बुद्धि। इनकी कूट-बुद्धि से कोर्ट के हाकिम-पेशकार, वकील-मुहर्रिर, मुख्तार सबकी अक्ल गुम हो जाती थी। इन्होंने एक दिन कहा था—"जायदाद रखनी हो तो दया-माया से काम नहीं चलेगा। दया-माया की कि गए जहन्नुम में।" जायदाद रखने के लिए मैं भी अगर दया-माया न करूं? मैं दया-माया करूं, तो यह सब सम्पत्ति जहन्नुम में जाएगी। तो?

चौधरी जी ने अपने दोनों हाथों के अंगूठे को परखा। दवा की जरूरत नहीं, जहर की जरूरत नहीं, छुरा-लाठी, कुछ की नहीं—सिर्फ इन दो अंगूठों से ही सब समाप्त कर दिया जा सकता है।

"कौन? कौन हो तुम?"

चौधरी जी चौंके। बूढ़े मालिक को होश है? सब जान रहे हैं?

"कौन हो तुम? बोलते क्यों नहीं? जवाब दो। तुमको तो मरवाकर फेंक दिया है, फिर तुम यहां कैसे आई? याद है, तुमने मुझे शाप दिया था। तुमने कहा था कि मैं निर्वंश हूंगा। तुम ब्राह्मण हो, ब्राह्मण का शाप व्यर्थ नहीं जाएगा। याद है?"

और, बूढ़े चौधरी ने हंसी से घर को कंपा दिया।

"लेकिन वह शाप फला? मेरे पोते ने तुम्हारी बात सुनी! सुन्दर पत्नी को पाकर वह सब कुछ भूल गया कालीगंज की बहू, सब कुछ भूल गया। वह अब रोज़ अपनी पत्नी के कमरे में सोता है, पता है? मैं परपोते का मुंह देखूंगा, इसके लिए कंचन सुनार को सोने का हार बनाने के लिए कह रक्खा है। तुम जाओ, मैं तुम्हारी शक्ल नहीं देखना चाहता, चली जाओ—"

कि लालटेन लेकर दीनू आया। तब तक सब चुप।

चौधरी जी ने पूछा, "खा चुका तू?"

"जी हां।"

"तो बरामदे में सो जा। मैं यहीं सोऊंगा।"

दीनू ने बरामदे में अपना बिस्तर बिछाया। चौधरी जी एकटक बूढ़े चौधरी की ओर देख ही रहे थे। कहां, कुछ भी तो नहीं। यह तो पहले जैसा ही मांस का एक लोथड़ा-सा पड़ा है। इसमें तो बोलने की क्षमता भी नहीं। तो फिर अभी बोल कौन रहा था? न-न, दया-माया करने से अब चौधरी परिवार जहन्नुम में चला जाएगा—अब दया-माया नहीं।

बाहर दीनू की नाक बजने लगी थी। चौधरी जी ने देर न की। दबे पांवों वह बूढ़े चौधरी की तरफ बढ़े।

बूढ़े चौधरी फिर चीख उठे, "कौन? कौन हो तुम? तुमको तो मरवा-कर फेंक दिया है, फिर तुम यहां कैसे आईं? कौन ले आया तुम्हें? कैलास··· कैलास···"

दीनू की नींद खुल गई। वह हड़बड़ा कर अन्दर आया। बोला, "आप बुला रहे थे छोटे बाबू?"

दीनू को देखकर छोटे बाबू ने अपने को सम्भाल लिया। बोले, "नहीं तो। मैंने नहीं बुलाया—"

दीनू निश्चिन्त होकर चला गया। उसके जाते ही चौधरी जी फिर उठे। न, दया-माया नहीं। दया-माया करने से चौधरी परिवार जहन्नुम में चला जाएगा—वह दबे पांवों फिर बूढ़े चौधरी की तरफ बढ़ने लगे।

कालीगंज की बहू का दिया हुआ शाप व्यर्थ हो जाने को नहीं था, इसका प्रमाण उसी दिन रात को मिल गया। सदानन्द और नयनतारा के जीवन की वह एक स्मरणीय रात थी। नयनतारा सांस रोके अपने कमरे में ही पड़ी थी। अब उसने मानो अपनी अन्तरात्मा का आर्तनाद सुना। आर्तनाद करके उसकी अंतरात्मा जैसे कह रही हो—मुन्ने तुम्हारा अपमान करे तो तुम उसका अपमान नहीं कर सकती हो? तुम्हारे शरीर में शक्ति नहीं है?

नयनतारा को लगा, उसका दम अटक जाएगा, वह बेहोश हो जाएगी, "तुम पराए घर की लड़की जब थी, तब थी। अब तुम इस घर की बहू हो। इस घर पर जितना अधिकार मुन्ना का है, उतना ही अधिकार तुम्हारा भी है। किसी कदर ज़रा भी कम नहीं। फिर डर किस बात का? मुन्ना यदि तुम्हारे ऊपर हाथ उठाए—तुम भी हाथ उठाना। मैं तो साथ के ही कमरे में

मुझे पुकारना। मैं पुकारते ही दौड़ी आऊंगी। तुम डरना मत बहू, होकर जन्म लिया है, इसलिए क्या सब कुछ मुंह सीकर सहना ?"

दरवाजे का ताला खुलने की आवाज हुई।

बाहर सास का गला सुनाई पड़ा। सास ने कहा, "रोशनी की जरूरत, तू जाकर सो जा। गौरी ने तेरा बिस्तर ठीक कर दिया है।"

नयनतारा ने देखा, उस आदमी ने अन्दर आकर दरवाजे की छिटकिनी लगाई। लगाकर सीधे बिस्तर पर आकर लुढ़क गया। शायद बहुत ही थका था। लेटने भर की देर, लेटते ही लम्बा निश्वास निकलने लगा।

इतनी नजदीक, इतनी घनिष्ठ वह इस आदमी के और कभी नहीं रही। यथ जहां तक बना, उसने अपने को बिस्तर के एक किनारे छिपाए रखा। इस आदमी को खबर तक नहीं कि जिससे वह सबसे ज्यादा बचकर चलना चाहता है, वह उसीके साथ एक कमरे में, एक ही छत के नीचे, एक ही बिस्तर पर अगल-बगल सोई है।

यों सांस रोककर अपनी छाती की धड़कन कब तक सुनी जा सकती है ? मगर सुननी ही पड़ेगी; एक ही कमरे में, एक ही बिस्तर पर रोज रात को सोना पड़ेगा। यही विधान है। सो चाहे तुम्हारा शय्यासंगी तुमसे घृणा ही क्यों न करे, उपेक्षा ही क्यों न करे।

असावधानी से नयनतारा की चूड़ियां खनकते ही वह चौंककर बिस्तर पर उठ बैठा।

"कौन ?"

उसके बाद अंधेरे में कुछ अस्पष्ट अनुमान करके वह बिस्तर पर बैठा नहीं रह सका। उठा, और सीधे दरवाजे की ओर गया। छिटकिनी खोलकर बाहर निकल जाना चाहा। लेकिन तब तक नयनतारा ने जाकर उसका हाथ पकड़ लिया। बोली, "कहां जा रहे हो ?"

नयनतारा के इस अप्रत्याशित व्यवहार की सदानन्द ने कल्पना भी नहीं की थी। इसलिए पहले तो वह भौंचक्का-सा रह गया। फिर कोई जवाब सोच नहीं पाकर वह चुप रह गया।

नयनतारा ने कहा, "मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि तुम चले जा रहे हो ?"

अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश करते हुए सदानन्द ने कहा, "छोड़ दो मुझे, मेरा हाथ छोड़ो, मैं बाहर जाऊंगा—"

नयनतारा ने मगर हाथ नहीं छोड़ा। बदन की सारी ताकत लगाकर सदानन्द के हाथ को पकड़े हुए वह बोली, "पहले यह कह लो कि मैंने तुमसे ऐसा कौन-सा दोष किया है कि तुम मेरे कमरे में नहीं रहोगे ? मुझसे तुमको इतनी घृणा क्यों है ?"

ऐसी स्थिति के लिए सदानन्द तैयार नहीं था। ब्याह के इतने दिन बीत गए, कभी इस मुकाबिले के झमेले में उसकी पत्नी ही उसके सामने तनकर

होगी, उसके इस व्यवहार की कैफियत तलब करेगी, यह उसे मालूम न था।
न रहा होता, तो जवाबदेही के लिए वह तैयार रहता। और फिर,
अगर मालूम होता कि नयनतारा कमरे में ही सोई हुई है, तो वह यहां
ही आता।

चूंकि जवाब तैयार नहीं था, इसलिए बोला, "हाथ छोड़ो, छोड़ दो…"

नयनतारा ने कहा, "हाथ छोड़ने से तुम मेरी बात का जवाब दोगे?"

नयनतारा से इतनी दृढ़ता की उसे आशा नहीं थी। बोला, "मैंने ऐसा कोई अन्याय नहीं किया है कि मुझे तुमको उसकी सफाई देनी पड़ेगी। मैं कहता हूं, तुम मेरा हाथ छोड़ दो—"

नयनतारा ने फिर भी हाथ नहीं छोड़ा। सदानन्द के हाथ को वैसे ही पकड़े-पकड़े बोली, "न्याय-अन्याय की बात क्यों ले आए? मैंने तो न्याय-अन्याय की नहीं कही है। मैंने तो सिर्फ तुम्हारे ऐसे रुख का कारण जानना चाहा।"

सदानन्द ने कहा, "मैंने तुम्हारे साथ कौन-सा बुरा रुख अख्तयार किया है? मैंने तुम्हें कोई तकलीफ नहीं दी, इस घर में तुम्हारे आदर-जतन में कोई कमी हुई हो, ऐसी भी बात नहीं।"

नयनतारा ने कहा, "मैंने तो तुमसे यह भी नहीं कहा। मैंने कभी कहा भी है कि ससुराल में मेरे आदर-जतन में कमी हुई है। लेकिन मेरी शादी तुमसे हुई है, यह भी तो सत्य है? इससे तो तुम इनकार नहीं कर सकते? अग्नि को साक्षी रखकर ब्याह किया है। फिर भी क्या मेरे लिए तुम्हारा कोई कर्तव्य नहीं है?"

"कर्तव्य?" सदानन्द ने इस शब्द को मानो मन में दुहराया।

"हां, कर्तव्य। मेरे लिए तुम्हारा कोई कर्तव्य तो है—पत्नी के लिए पति का जैसा कर्तव्य होता है।"

सदानन्द ने कहा, "कर्तव्य के लिए मैं तुमसे झगड़ा नहीं करना चाहता। झगड़ा करने का यह समय भी नहीं।"

"झगड़ा?"

नयनतारा अवाक् रह गई। बोली, "मैंने झगड़ा तुमसे कब किया? झगड़े की कोई बात भी कही है मैंने? मगर बात अगर अभी न करूं तो फिर कब करूंगी? तुमसे मेरी भेंट ही कब होती है? तुम तो मुझे देखते ही मुंह फेर लेते हो—"

सदानन्द बोल उठा, "देखो, मैंने तुमसे ब्याह ज़रूर किया है, परन्तु तुमने अगर यह सोच रखा हो कि मैं तुम्हारे साथ पति जैसा व्यवहार करूंगा, पति-पत्नी की तरह हम दोनों साथ रहेंगे, तो उसे भूल जाओ। भरसक तुमसे मेरी भेंट नहीं होगी।"

सदानन्द की इस स्पष्ट बात से नयनतारा स्तंभित हो गई। ज़रा देर तक उसकी जबान से कोई बात ही नहीं फूटी।

उसके बाद पूछा, "यही क्या तुम्हारी अन्तिम बात है?"

मदानन्द ने कहा, "हां, यही मेरी अन्तिम बात है। मगर इसके बाद ही तुम शायद यह पूछो कि मैंने तुमसे ब्याह क्यों किया! उसके जवाब में कह दूं, मैंने गलती की थी। दूसरे की बात पर विश्वास करके मैंने गलती की थी। लोगों ने मुझे झूठा वचन दिया था। उनकी बात पर विश्वास करना ही मेरी भूल थी। उस विश्वास करने में जो भूल हुई है, उसे मैं स्वीकार करता हूं, मान लेता हूं कि मैंने अन्याय किया है। इसके लिए तुम मुझे जो भी दंड दोगी, सिर झुकाकर झेलने को तैयार हूं—"

नयनतारा की आंखों में आंसू उमड़ आने को हुआ। बड़े कष्ट से उसे रोककर वह बोली, "दंड? मैं तुम्हें दंड दूंगी? पत्नी होकर दंड दूंगी तुम्हें?"

"अन्याय जब किया है, तो दंड मैं कैसे अस्वीकार करूं?"

नयनतारा ने कहा, "अन्याय जब किया था, उस समय तो तुम्हें दंड की बात याद नहीं आई? उस समय दंड की बात याद आई होती, तो मेरा जीवन इस तरह से नष्ट नहीं होता, शायद हो कि इस पीड़ा से मुझे मुक्ति मिलती।"

मदानन्द ने जरा देर क्या सोचा। फिर बोला, "तुम दंड भी नहीं दोगी और पीड़ा भी झेलोगी—इसका प्रतिकार मैं कैसे करूं, कहो?"

नयनतारा बोली, "तो तुम्हीं कहो, मैं तुम्हें क्या दंड दूं?"

मदानन्द ने कहा, "जो दंड तुम्हारे जी में आए, वही दो, मैं सिर झुकाकर उठा लूंगा। मगर एक बात जो कही मैंने, भरसक तुमसे मेरी भेंट नहीं होगी—"

"लेकिन मैं यदि वही दंड दूं? मैं यदि यह कहूं कि तुम्हें रोज रात को मेरे कमरे में, मेरे ही बिछावन पर सोना पड़ेगा?"

मदानन्द कुछ दुविधा में पड़ा। बोला, "मैं तुम्हारा सब दंड सिर-आंखों पर उठा लूंगा, बस, सिर्फ एक को छोड़कर—"

"मगर मेरी ओर देखकर कहो कि तुम्हारे लिए यह दंड है?"

मदानन्द ने कहा, "हां।"

: नयनतारा ने मदानन्द का हाथ छोड़ दिया। हाथ छोड़कर वह और नजदीक जाकर उसके आमने-सामने खड़ी हो गई। पूछा, "तो मैं क्या करूंगी?"

"तुम क्या करोगी, यह तुम्हीं जानो। मैं क्या बताऊं?"

"मगर मैं तो तुम्हारी पत्नी हूं। पत्नी की सहायता करना भी तो पति का एक धर्म है। तुम न करो, तो मेरी सहायता कौन करेगा? मेरा यहां और कौन है?"

मदानन्द ने कहा, "क्यों, तुम्हारी सास हैं, ससुर हैं, तुम्हारे पिताजी हैं। कौन नहीं है तुम्हें? कमी किस बात की है तुम्हें? जिसके पति नहीं हैं, वह क्या जिन्दा नहीं रहती? समझ लो, मैं नहीं हूं। मान लो, ब्याह के बाद ही तुम्हारे पति चल बसे, मैं मर गया हूं। ऐसा क्या होता नहीं है? दुनिया में

कितनी ही स्त्रियों के जीवन में तो ऐसा होता है। और वे ज़िन्दा हैं—"

नयनतारा ने कहा, "यह सब क्या कह रहे हो तुम ?"

सदानन्द ने कहा, "जो कह रहा हूं, ठीक ही कह रहा हूं, अब मुझे जाने दो—"

दरवाज़े की ओर पीठ किए नयनतारा सदानन्द की ओर ताकती रही। बोली, "मैं तुम्हें जाने नहीं दूंगी। इतने दिनों के बाद तुमसे बात करने का एक मौका मिला है, यह मौका मैं हाथ से जाने नहीं दूंगी। आज तुम्हें मेरे पास रहना ही होगा।"

"इसका मतलब हुआ कि तुम यह कहना चाहती हो, मुझे तुम्हारे हुक्म पर चलना होगा ?"

"हुक्म कहने से तुम्हारे पौरुष को यदि चोट लगती हो तो अनुरोध कह लो। मेरा यह अनुरोध मान ही लिया तो क्या !"

सदानन्द ने कहा, "जो अनुरोध मानना मेरे लिए सम्भव नहीं, ऐसा अनुरोध तुम न करो। मैं तुमसे विनती करता हूं, तुम्हारा यह अनुरोध मैं नहीं मान सकूंगा।"

"लेकिन क्यों? मेरा अनुरोध तुम क्यों नहीं मान सकोगे? मैं क्या पसन्द नहीं आई? देखने में मैं क्या कुरूप हूं? मेरे मां-बाप या मैंने क्या तुमसे कोई बुरा व्यवहार किया है ?"

"नहीं।"

"तो ?"

सदानन्द ने कहा, "मैं कह तो रहा हूं, तुम सुन्दरी हो। तुम जैसी रूपवती पत्नी बहुत कम लोगों को है। लेकिन उससे क्या ? मैं तो तुम्हें कोई दोष नहीं दे रहा हूं।"

"फिर दोष किसका है ?"

सदानन्द ने कहा, "दोष जिसने किया है, उसीको दण्ड देने के लिए मैं तुम्हारे अनुरोध को नहीं रख पा रहा हूं। तुम्हें पता नहीं है कि उनका कितना दोष है ! तुम्हें नहीं मालूम कि वे कितने निष्ठुर हैं, कितने नीच हैं ! सुनोगी तो तुमको भी उनपर घृणा होगी। जान जाओ तो तुम्हें मेरे लिए भी दुःख होगा नयन ! फिर तुम मुझे यहां सोने का अनुरोध नहीं करोगी—"

"मैं जानती हूं।"

सदानन्द अवाक् हो गया। पूछा, "तुम जानती हो ? तुमने सब सुना है ?"

"सुना है।"

"कालीगंज की बहू का हमारे यहां खून किया गया, सुना है तुमने ? जानती हो कि उसका कोई अपराध नहीं था ? हमारी यह जो सम्पत्ति है, सब उसीके रुपयों की है। मां के संदूक में जो रुपया-पैसा, गहना-गांठी, हीरा-मोती है, सब कालीगंज की बहू के रुपयों से ख़रीदा हुआ है।"

नयनतारा ने कहा, "जानती हूं।"

"यह सब जानती हो तुम ? और यह भी जानती हो कि उस कालीगंज क

हो गए ? जवाब दो। बताओ कि मैं क्या लेकर रहूंगी ? किसका सहारा लेकर जिऊंगी ? मेरा जीवन सार्थक कैसे होगा ? तुम्हारे पुरखों के पाप की भागी मैं क्यों बनूंगी ? इसका जवाब दिए बिना मैं तुम्हें नहीं छोड़ती। जवाब तुम्हें देना ही पड़ेगा—"

सदानन्द से न बना। नयनतारा के दोनों हाथ हटाकर बोल उठा, "पागलपन मत करो। रास्ता छोड़ो, हटो, मुझे जाने दो—"

नयनतारा चिल्ला उठी, "पागलपन मैं कर रही कि तुम ? मैंने कहा तो, मेरी बात का जवाब दिए बिना मैं तुम्हें हरगिज नहीं जाने दूंगी।"

सदानन्द ने कहा, "इस रात के समय तुम झमेला किए बिना नहीं मानोगी ?"

नयनतारा ने कहा, "झमेले का बाकी ही क्या रह गया है कि तुम मुझे उससे डरा रहे हो ? मैं जो अभी भी तुमसे बोल रही हूं, अभी तक जो आत्म-हत्या नहीं की है, मेरे लिए यही बहुत है।"

सदानन्द अब कठोर हो गया। बोला, "मैं वह सब नहीं सुनना चाहता। तुम मुझे जाने देती हो या नहीं, यह कहो ?"

नयनतारा बोली, "मेरी बात का जवाब नहीं देने से मैं नहीं जाने दूंगी।"

"काहे का जवाब मांगती हो तुम ? किस बात का ?"

"वही, जो कहा। तुम अगर मुझसे नाता ही नहीं रक्खोगे तो मैं क्या लेकर रहूंगी ? किसके सहारे जिऊंगी ?"

सदानन्द ने कहा, "तुम क्या लेकर रहोगी, इसकी जवाबदेही क्या मेरी है ?"

नयनतारा बोली, "मैं तुम्हारी पत्नी हूं। तुम्हारी जवाबदेही नहीं तो किसकी है ?"

"फिर वही बात। मैं कहता हूं, मुझे जाने दो, हटो—"

बन्द दरवाजे पर पीठ टिकाकर नयनतारा ने कहा, "नहीं, आज मैं तुम्हें हरगिज नहीं जाने दूंगी। तुम्हारे जो जी में आए, करो।"

"तो नहीं जाने दोगी ?"

और जवाब से पहले ही सदानन्द एक अद्भुत कांड कर बैठा। उससे कुछ सोचा। उसके बाद वहां से जाकर अपनी टेबल के पास खड़ा हुआ। टेबल पर कुछ खोजने लगा। अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। सामने जो मिल गया, सदानन्द ने वही उठा लिया। नयनतारा को लगा, कांच की बड़ी-सी दावातदानी है। उसीसे वह अपने कपाल पर ठाईं-ठाईं मारने लगा।

इस अनसोची घटना से नयनतारा जरा देर के लिए स्तब्ध-सी रह गई। नयनतारा ने सामने जाकर रोकने की कोशिश की। बोली, "यह क्या कर रहे हो, क्या कर रहे हो ?"

लेकिन सदानन्द को उस समय रोके, ऐसी ताकत किसमें थी ! उसके हाथ पकड़कर नयनतारा ने विपत्ति को बचाना चाहा। लेकिन सदानन्द के बदन में उस समय असुर की शक्ति उतर आई थी। वह उस दावातदानी से बार-बार

अपने कपाल पर मारता चला गया। चोटों से अपने को क्षत-विक्षत करके वह मानो दुनिया के सारे लोगों के पापों के प्रायश्चित्त का रास्ता अपना चुका था—

अंधेरे के धुंधलके में ही नयनतारा ने देखा, उसके कपाल से झर-झर करके उसके चेहरे पर लहू बह रहा है।

देखते-देखते नयनतारा का सिर चकरा गया। अंधेरे कमरे में लहू के सामने खड़ी होकर वह जी-जान से चीख उठी, "मां-मां-मां—"

आधी रात होगी। आधी रात का शायद एक जादू है। खास करके सर्दियों की आधी रात का। कई दिनों से प्रीति के शरीर और मन पर से बहुत झमेला गुजरा। उसने बस उसी दिन जरा आंखें बन्द की थीं। रात के अन्तिम पहर की ओर वह उठी। सभी उस समय बेखबर सो रहे थे। कहीं भी कोई आहट नहीं किसीकी। प्रीति की जब शादी हुई थी, तो वह सास के साथ नहाने के लिए नदी जाया करती थी। कैसी करारी ठंड। गर्मियों में उतनी तकलीफ नहीं होती थी। लेकिन सर्दियों में नींद जल्दी टूटना नहीं चाहती थी।

सास कहती, "डरने की बात नहीं बहू, देखना नदी का पानी गरम है। एक डुबकी लगाई नहीं कि सारी सर्दी हवा।"

बात सही थी। नदी में एक डुबकी लगाने के बाद फिर जाड़ा नहीं लगता। नदी घर से ज्यादा दूर नहीं थी। रास्ते के दोनों ओर चौधरियों की बंसवारी। कहीं कोई नहीं। छोटे बाबू बड़े मालिक के पास सोए थे। वह बाहर आंगन में जा खड़ी हुई। आसमान में तारे टिमटिमा रहे थे। कहीं धुआं नहीं। कुहरा नहीं। जाने उसे हठात् क्या ख्याल हो आया, उसी नदी में जाकर नहाना ठीक होगा।

बगल में रसोई-घर। रसोई-घर के उधर गौरी रहती है। वहां जाकर प्रीति ने आवाज दी, "गौरी—गौरी—"

भाभी का गला सुनकर गौरी हड़बड़ा कर उठ बैठी। कोई मुसीबत आई क्या! दरवाजा खोलकर निकली। पूछा, "क्यों, क्या बात है भाभी?"

प्रीति ने पूछा, "क्यों री नदी चलेगी?"

"नदी?"

"हां। तेरे छोटे बाबू आज बड़े मालिक के कमरे में सोए हैं। मेरी नींद अचानक खुल गई। याद आया, आज तो शुक्ला षष्ठी है, आज नदी में नहाना चाहिए। चल। मुन्ना भी आ गया है। बहू के कमरे में सोया है।"

गौरी भी ना करने वाली नहीं। वह भी तैयार होकर साथ गई। सूना रास्ता। नदी में एक डुबकी लगाकर निकली कि देखा, एक साधु है। साधु को देखते ही प्रीति ने घूंघट काढ़ा।

साधु ने आकर पूछा, "इतनी रात को नहाने आ गई बिटिया?"

प्रीति ने कहा, "मन्नत थी बाबा, आज शुक्ला षष्ठी है, मेरा लड़का आज

ाए ? जवाब दो। बताओ कि मैं क्या लेकर रहूंगी ? किसका सहारा लेकर ऊंगी ? मेरा जीवन सार्थक कैसे होगा ? तुम्हारे पुरखों के पाप की भागी मैं ां बनूंगी ? इसका जवाब दिए बिना मैं तुम्हें नहीं छोड़ती। जवाब तुम्हें देना पड़ेगा—"

सदानन्द से न बना। नयनतारा के दोनों हाथ हटाकर बोल उठा, "पागलपन मत करो। रास्ता छोड़ो, हटो, मुझे जाने दो—"

नयनतारा चिल्ला उठी, "पागलपन मैं कर रही कि तुम ? मैंने कहा तो, मेरी बात का जवाब दिए बिना मैं तुम्हें हरगिज नहीं जाने दूंगी।"

सदानन्द ने कहा, "इस रात के समय तुम झमेला किए बिना नहीं मानोगी ?"

नयनतारा ने कहा, "झमेले का बाकी ही क्या रह गया है कि तुम मुझे उससे डरा रहे हो ? मैं जो अभी भी तुमसे बोल रही हूं, अभी तक जो आत्म-हत्या नहीं की है, मेरे लिए यही बहुत है।"

सदानन्द अब कठोर हो गया। बोला, "मैं वह सब नहीं सुनना चाहता। तुम मुझे जाने देती हो या नहीं, यह कहो ?"

नयनतारा बोली, "मेरी बात का जवाब नहीं देने से मैं नहीं जाने दूंगी।"

"काहे का जवाब मांगती हो तुम ? किस बात का ?"

"वही, जो कहा। तुम अगर मुझसे नाता ही नहीं रक्खोगे तो मैं क्या लेकर रहूंगी ? किसके सहारे जिऊंगी ?"

सदानन्द ने कहा, "तुम क्या लेकर रहोगी, इसकी जवाबदेही क्या मेरी है ?"

नयनतारा बोली, "मैं तुम्हारी पत्नी हूं। तुम्हारी जवाबदेही नहीं तो किसकी है ?"

"फिर वही बात। मैं कहता हूं, मुझे जाने दो, हटो—"

बन्द दरवाजे पर पीठ टिकाकर नयनतारा ने कहा, "नहीं, आज मैं तुम्हें हरगिज नहीं जाने दूंगी। तुम्हारे जो जी में आए, करो।"

"तो नहीं जाने दोगी ?"

और जवाब से पहले ही सदानन्द एक अद्भुत कांड कर बैठा। उससे कुछ सोचा। उसके बाद वहां से जाकर अपनी टेबल के पास खड़ा हुआ। टेबल पर कुछ खोजने लगा। अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। सामने जो मिल गया, सदानन्द ने वही उठा लिया। नयनतारा को लगा, कांच की बड़ी-सी दावातदानी है। उसीसे वह अपने कपाल पर ठाईं-ठाईं मारने लगा।

इस अनसोची घटना से नयनतारा जरा देर के लिए स्तब्ध-सी रह गई। नयनतारा ने सामने जाकर रोकने की कोशिश की। बोली, "यह क्या कर रहे हो क्या कर रहे हो ?"

लेकिन सदानन्द को उस समय रोके, ऐसी ताकत किसमें थी ! उसके ह पकड़कर नयनतारा ने विपत्ति को बचाना चाहा। लेकिन सदानन्द के बदन उस समय असुर की शक्ति उतर आई थी। वह उस दावातदानी से बार-

अपने कपाल पर मारता चला गया। चोटों से अपने को क्षत-विक्षत करके वह मानो दुनिया के सारे लोगों के पापों के प्रायश्चित का रास्ता अपना चुका था—

अंधेरे के धुंधलके में ही नयनतारा ने देखा, उसके कपाल से झर-झर करके उसके चेहरे पर लहू बह रहा है।

देखते-देखते नयनतारा का सिर चकरा गया। अंधेरे कमरे में लहू के सामने खड़ी होकर वह जी-जान से चीख उठी, "मां-मां-मां—"

आधी रात होगी। आधी रात का शायद एक जादू है। खास करके सर्दियों की आधी रात का। कई दिनों से प्रीति के शरीर और मन पर से बहुत झमेला गुज़रा। उसने जरा उसी दिन ज़रा आंखें बन्द की थीं। रात के अन्तिम पहर की ओर वह उठी। सभी उस समय बेखबर सो रहे थे। कहीं भी कोई आहट नहीं किसीकी। प्रीति की जब शादी हुई थी, तो वह सास के साथ नहाने के लिए नदी जाया करती थी। कैसी करारी ठंड। गर्मियों में उतनी तकलीफ नहीं होती थी। लेकिन सर्दियों में नींद जल्दी टूटना नहीं चाहती थी।

सास कहती, "डरने की बात नहीं बहू, देखना नदी का पानी गरम है। एक डुबकी लगाई नहीं कि सारी सर्दी हवा।"

बात सही थी। नदी में एक डुबकी लगाने के बाद फिर जाड़ा नहीं लगता। नदी घर से ज्यादा दूर नहीं थी। रास्ते के दोनों ओर चौधरियों की बंसवारी। कहीं कोई नहीं। छोटे बाबू बड़े मालिक के पास सोए थे। वह बाहर आंगन में जा खड़ी हुई। आसमान में तारे टिमटिमा रहे थे। कहीं धुआं नहीं। कुहरा नहीं। जाने उसे हठात् क्या ख्याल हो आया, उसी नदी में जाकर नहाना ठीक होगा।

बगल में रसोई-घर। रसोई-घर के उधर गौरी रहती है। वहां जाकर प्रीति ने आवाज़ दी, "गौरी–गौरी—"

भाभी का गला सुनकर गौरी हड़बड़ा कर उठ बैठी। कोई मुसीबत आई क्या! दरवाज़ा खोलकर निकली। पूछा, "क्यों, क्या बात है भाभी?"

प्रीति ने पूछा, "क्यों री नदी चलेगी?"

"नदी?"

"हां। तेरे छोटे बाबू आज बड़े मालिक के कमरे में सोए हैं। मेरी नींद अचानक खुल गई। याद आया, आज तो शुक्ला षष्ठी है, आज नदी में नहाना चाहिए। चल। मुन्ना भी आ गया है। बहू के कमरे में सोया है।"

गौरी भी ना करने वाली नहीं। वह भी तैयार होकर साथ गई। सूना रास्ता। नदी में एक डुबकी लगाकर निकली कि देखा, एक साधु है। साधु को देखते ही प्रीति ने घूंघट काढ़ा।

साधु ने आकर पूछा, "इतनी रात को नहाने आ गई बिटिया?"

प्रीति ने कहा, "मन्नत थी बाबा, आज शुक्ला षष्ठी है, मेरा लड़का आज

र लौट आया है, इसीलिए नहाने आई हूं—"

साधु ने क्या सोचा, क्या जाने। फिर बोला, "तुझपर बड़ी विपदा आ रही है बेटी, खूब सावधान—"

प्रीति का कलेजा ज़ोरों से धड़कने लगा। बोली, "कैसी विपदा बाबा? मेरे लड़के का तो कुछ बुरा नहीं होगा?"

साधु ने कहा, "हां होगा, बुरा होगा। तूने अपने घर से मेरे भक्त को निकाल दिया, तेरा बुरा नहीं होगा, तो किसका होगा?"

प्रीति साधु के पैर पकड़ने गई—कहने गई, "आप मेरे मुन्न को कोई अमंगल न कीजिए बाबा, आप जो चाहें, मैं वही दूंगी, अपना सब कुछ आपको दूंगी—मुझे जो होना हो हो, पर मेरे मुन्ने का कोई अमंगल न हो।"

और नदी किनारे ही साधु के दोनों पांव पकड़कर प्रीति ज़ोर-ज़ोर से रं पड़ी। लेकिन लाख किए भी उसके गले से रुलाई की आवाज नहीं निकली। कि एक असह्य पीड़ा से एकाएक उसकी नींद खुल गई। आंख खुलते ही प्रीति ने चारों ओर निहार कर देखा। कहां साधु और कहां गौरी। वह तो अपने बिस्तर पर ही सोई हुई है। कहीं तो कोई नहीं। तो?

अंधेरे में अच्छी तरह से आंखें खोलकर उस अजीब सपने को फिर से याद करने की कोशिश की उसने। ऐसा सपना उसने क्यों देखा? कैसी विपत्ती आएगी उसपर? साधु का उसने कब अपमान किया? साधु बाबा तो एक दिन आप ही घर छोड़कर चले गए।

न, सपना सपना ही है। सपना कभी सच नहीं होता। विपत्ति क्यों आने लगी। इतने दिनों के बाद मुन्ना लौट आया है। इतने दिनों के बाद आज वह बहू के कमरे में सोया है। मुन्ने का अमंगल क्यों होगा?

अदृश्य विधाता को स्मरण करके प्रीति प्रार्थना करने लगी, "भगवान मेरे मुन्ने का कुछ बुरा मत करना। वह सानन्द रहे। एक ही लड़का है मेरा, उसे तुम कुशल से रखना, उसका भला करना—"

अचानक तेज आवाज़ से वह चौंक उठी।

बहू का गला है न? बहू जैसे ज़ोर-ज़ोर से मुन्ना से बोल रही है। तो क्या दोनों झगड़ रहे हैं?

उसके बाद ही कलेजा कंपाने वाला आर्तनाद, "मां-मां-मां—"

प्रीति धड़फड़ करके उठी। रोशनी जलाकर मुन्ने के कमरे के पास जाकर आवाज दी, "मुन्ने, मुन्ने—"

कोई आवाज़ नहीं।

प्रीति ने फिर पुकारा, "बहू, बहू! क्या हुआ? चीख क्यों उठीं तुम दरवाज़ा खोलो, दरवाज़ा। मुन्ने, दरवाज़ा खोल—" कहकर प्रीति दरवाज़े प धक्का देने लगी।

धक्का देते ही दरवाज़ा अन्दर से खुल गया। लालटेन की रोशनी में प्री ने देखा, मुन्ना सामने खड़ा है। उसके कपाल से लहू बहकर शरीर, कपड़ा— शराबोर हो गया है।

मुन्ना का चेहरा देखते ही डर से वह सकपका गई। बोली, "हाय, यह क्या! ना लहू कहां से आया मुन्ने? क्या किया तूने? किसने मारा तुझे? यह कैसे आ बेटे? बहू कहां है?"

सदानन्द के जवाब देने से पहले ही प्रीति ने देखा, टेबल के नीचे बहू का रीर लुढ़का पड़ा है।

रोशनी लेकर प्रीति अन्दर गई। बहू के कपाल पर हाथ रखकर देखा, रीर में कोई चेतना नहीं है। मुंह के पास मुंह ले जाकर प्रीति पुकारने लगी, 'बहू, बहू, क्या हो गया? क्या हो गया तुम्हें?"

फर्श के आसपास भी नजर डाली। सारी जगह लहू से भरी हुई थी। इतना लहू कहां से आया? किसने किसको मारा? तो क्या बहू ने मुन्ने को मारा?

"मुन्ना!"

प्रीति ने पलटकर देखा, "मुन्ना कहां? कहां चला गया? मुन्ना-मुन्ना—"

वह चिल्ला उठी, "मुन्ना, ओ मुन्ना, कहां, गया, मुन्ना—"

फिर भी कोई जवाब नहीं मिला। कमरे से बाहर आकर पुकारा, "मुन्ना—"

फिर भी जवाब नहीं। प्रीति बरामदे पर गई। मुन्ना वहां भी नहीं था। बरामदे से वह बाहर के दालान में गई। पुकारा, "मुन्ना, मुन्ना—"

मुन्ने का कोई जवाब नहीं। वहीं नहीं था वह।

लालटेन लिए वह आंगन में ही जरा देर खड़ी रही। बाहर दालान का कुत्ता मालकिन को देखकर लाड़ में पूंछ हिलाने लगा।

तब तक गौरी पीछे आ खड़ी हुई थी। प्रीति की चीख से उसकी नींद खुल गई थी। गौरी को देखकर प्रीति फुक्का फाड़कर रो पड़ी, "गौरी, सर्वनाश हो गया ..."

"कैसा सर्वनाश मामी? क्या हुआ?"

"मुन्ने ने खूना-खूनी की है।"

गौरी कुछ समझ नहीं सकी। पूछा, "मुन्ना कहां है मामी? वह तो कमरे में जाकर सोया था, फिर क्या हुआ?"

प्रीति ने रोकर कहा, "मुन्ना भाग गया रे गौरी, भाग गया—"

गौरी ने पूछा, "बहू तो कमरे में थी। वह कहां है?"

प्रीति बोली, "बेचारी बहू का मैंने ही सर्वनाश किया रे गौरी, वह वहां बेहोश पड़ी है। मेरा हाथ-पांव कांप रहा है। तू जाकर जरा छोटे बाबू को ऊपर से बुला ला, वह आज बड़े मालिक के कमरे में सोए हैं—जा, जल्दी जा। मैं आ-कर बहू के पास बैठती हूं।"

नयनतारा बेहोश ही पड़ी थी।

प्रीति फिर मुन्ने के कमरे में आई। बहू के पास बैठी। कान के पास मुंह ले जाकर पुकारने लगी, "बहू, क्या हो गया तुम्हें? बोलो, बात करो। मुन्ने ने क्या किया?"

नयनतारा की तरफ से कोई जवाब नहीं।

गौरी दौड़ती हुई वापस आई। बोली, "छोटे बाबू को कहा। वे आ रहे हैं—"

प्रीति ने कहा, "तू एक काम कर गौरी, लोटे में थोड़ा ठंड़ा पानी ले आ। वहू के आंख-मुंह में छिड़कूं ज़रा। इसे होश नहीं आ रहा है। मेरी बात का जवाब भी नहीं दे रही है—"

तब तक चौधरी जी आ पहुंचे। बोले, "क्या हुआ? तुमने तो कहा, वहू नैहर चली गई है, तो फिर आ कहां से गई? मुन्ना कहां है? इतना लहू कहां से आया? यह दावातदान किसने फेंका?"

प्रीति ने कहा, "यह सब मुन्ने ने किया है—"

"अरे, वहू का सिर फोड़ दिया क्या? मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूं। तुमने कल ही कहा, वहू नैहर चली गई है, और अभी कह रही हो; मुन्ना ने वहू का सिर फोड़ दिया है।..."

लोटे में पानी लेकर गौरी पहुंच गई।

अंजुरी में ठंडा पानी लेकर प्रीति नयनतारा के सिर पर छींटें देने लगी। और मुंह नीचे करके पुकारने लगी, "वहूरानी, वहू—बोलो। बोलो कि क्या हुआ है? वहू...ओ वहू, बोलो..."

० ० ०

'मुजरिम हाज़िर' के सम्बन्ध में

'मुजरिम हाज़िर' 1971 के नवम्बर से साप्ताहिक 'देश' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होता रहा। तब से 1973 के मार्च तक मैं आदि से अन्त तक इस उपन्यास का नियमित पाठक रहा। पढ़ते-पढ़ते यह देखकर मैं मुग्ध हो गया कि विमल मित्र की कलम से एक सक्रिय भला आदमी (positive good man) किस सहजता से जीवन्त हो उठा है। उनके हाथों इस तरह का यह चरित्र पहला अवश्य नहीं है। उनके यश की जययात्रा शुरू होती है, भूतनाथ चरित्र से। तब से लेकर उनके हरेक उपन्यास में विभिन्न नाम, विभिन्न रूप में इस सक्रिय भले आदमी का आवागमन हम देखते रहे हैं। सच तो यह है कि लेखक में आशावाद का यह सबल स्वर सदा ही मुखर रहा है। हताशा, ग्लानि, अन्याय को वह निर्ममता के साथ हमारी निगाहों के सामने ला रखते हैं; आँखों में उंगली गड़ाकर यह हमें दिखा देते हैं कि हमारे समाज-जीवन, राष्ट्र के रंध्र-रंध्र में कितनी दुर्नीति, कितना दुराचार फैला हुआ है। लेकिन वह मात्र उस दिशा को दिखाकर ही चुप नहीं बैठ जाते। उनकी दृष्टि प्रकाश की ओर भी है। सब लोग जब बिना किसी शर्त के अंधकार के आगे आत्मसमर्पण कर रहे हैं, उन्होंने प्रकाश के लिए अपने दोनों हाथ फैला रखे हैं। इस घोर निराशा में भी वह विश्वास के दीए को इस तरह से जला कर देते हैं कि उसी क्षण यह प्रतीत हो जाता है, यह मनुष्य के सत्ता के अपराजित पथ है। अभी तो जनता से उन्होंने लोकप्रियता का सिरोपा इस आसानी से पा लिया है।

आज जब दूसरे-दूसरे साहित्यसेवीगण अंधकार को ही हमारी अनिवार्य नियति बना रहे हैं—विमल मित्र की यह प्रकाश की ओर, विश्वास की ओर फैली हुई अटूट दृष्टि क्रमशः और भी प्रखर हो रही है। हम देख रहे हैं कि जो 'भले मानुस' चरित्र अब तक असहाय, भटक रहे लोगों के अगल-बगल हाथ में दीया लिए रोशनी दिखाते चल रहे थे, वही सब सीमित और खंडित चरित्र क्रमशः प्रखर और सम्पूर्ण होने के क्रम में उनके उपन्यासों में नायक की भूमिका लिये खड़े हैं। मसलन 'राजा बदल' का पतित जी, 'अन्तिम पन्ने पर देखिए' का सोमनाथ और आलोच्य उपन्यास का सदानन्द।

सक्रिय भले आदमी (positive good man) को नायक बनाकर उपन्यास लिखना, दॉस्तोएव्स्की ने कहा है, सबसे कठिन काम है। इस काम में जो सफल होता है, वही श्रेष्ठ कलाकार है। कलाकार की इस चेष्टा को समझना आसान नहीं है। "On the Modern Element in Literature" पत्र में Mathew Arnold ने कहा है

"And everywhere there is connexion, everywhere there is

no single event. no single literature is adequately
ıstration; no single event. no single literature is adequately
mprehended except in relation to other events to other
erature.

'मुजरिम हाजिर' को पढ़ते हुए मैंने मैथ्यू आर्नल्ड की इस उक्ति के
ात्पर्य को हृदय से समझा है। मुझे ऐसा लगा कि positive good man
के बारे में यदि पाठक को थोड़ी-बहुत धारणा पहले से नहीं हो तो 'मुजरिम
हाजिर' के नायक को ठीक से समझ सकना सम्भव नहीं होगा। एक सीधा-
सादा, बेवकूफ, पगला-सा आदमी—बहुत ज्यादा तो वह एक न्यायनिष्ठ
आदमी-सा प्रतीत होगा। इस बिखरे-बिखरे-से चरित्र में जो एक grotesque
beauty. एक रहस्यमय ख्याली सौंदर्य है, वह अनसमझा ही रह जाएगा।
वैसे में उपन्यास के दूसरे चरित्र ही मन पर सदानन्द से ज्यादा छाप छोड़ेंगे :
पाठक के पल्ले ऐसे दुरुह शिल्पकृतित्व का कुछ भी नहीं पड़ेगा।

Positive good man को बहुतेरे लेखक सम्यक् रूप से आयत्त नहीं कर
सके। Positive good man कहने से हमें सबसे पहले चैतन्य महाप्रभु या
रामकृष्ण परमहंस की याद आएगी। यूरोप का ईसाई जगत् सीधे ईसा मसीह
को स्मरण करेगा। परन्तु वैसे महामानवों के अनुरूप चरित्र-चित्रण करना
चाहें तो वह उपन्यास महामानव पर आधारित उपन्यास होगा, वह रस-
साहित्य नहीं रहेगा। दॉस्तॉयव्स्की का कहना है, रस-साहित्य का काम है,
साधारण मनुष्यों में से ऐसे एक मनुष्य को उपस्थित करना, जो 'साधारण
नहीं' है। वह होगा शिशु जैसा सरल, पवित्र और स्वाभावतः सत्, लेकिन वह
(चूंकि महामानव नहीं है) रहेगा 'screened with human weakness'।
पाठक उसके सम्बन्ध में जितना ही जानेंगे, उतना ही उसके आत्मीय हो उठेंगे
और उतना ही यह अनुभव करेंगे कि यह आदमी उनकी जात का नहीं है,
उससे घनिष्ठ नहीं हुआ जा सकता, यह कैसा तो अलग-थलग, निःसंग, अकेला-
सा है। इसे मित्र, समाज, मां-बाप, यहां तक कि आखिरकार उसकी अपनी
पत्नी भी छोड़कर चली जाती है। वह किसीके भी साथ सह-अवस्थान नहीं
कर सकता, समझौते पर नहीं आ सकता। यह समझौता नाम की जो चीज
है, वह गोया उसके अभिधान में है ही नहीं।

लेकिन ऐसे जटिल चरित्र की शुरू में ही किसी लेखक ने कल्पना नहीं
की। पहले उनकी कल्पना में positive good man के नाते एक सरल
विश्वास का अटल आदमी ही आया था। संसार के साहित्य के इतिहास में
उससे हमारी पहली मुलाकात सोलहवीं सदी में हुई। लेखक थे एक स्पेनिश।
कवि, नाटककार, औपन्यासिक सार्वांते अपनी अनवद्य सृष्टि, 'डॉन क्विक्जॉट'
के लिए अमर हो गए। दॉस्तॉयव्स्की ने लिखा—"···of all the good
characters in Christian Literature, Don Quixote stands as the
most finished of all. But he is good solely, because he is
ludicrous at the same time comical." Comical होने से चरित्र
का वजन बेहिसाब कम हो गया है। उसकी सत्यता, सरलता और निष्ठा

पाठक पर अपना प्रभाव-विस्तार नहीं कर सकी। तथाकथित हीरोइज्म के प्रति श्लेष के रूप में ही पाठकों ने चरित्र को प्यार किया, लेकिन उसकी 'पाजिटिव गुडनेस' किसीकी नजर में नहीं आई। Tom Jones को भी उसी क्लाउन की ही लोकप्रियता नसीब हुई। नाम-चरित्र के उस उपन्यास के लेखक हैं हेनरी फील्डिंग। सन् 1740 के आस-पास प्रकाशित इस पुस्तक में एक सरल आदमी के सहज विश्वास के क्रिया-कलाप पर ऐसा व्यंग्य-कौतुक किया गया है कि उस भंड़ैती के नीचे एक विशुद्ध सत्चरित्र एकबारगी दब गया है। दूसरी ओर डिकेन्स का 'पिकविक' अनुपम चरित्र होते हुए भी डॉन क्विक्ज़ॉट के मुकाबले बहुत कमज़ोर है। फिर भी मोटा-मोटी इन चरित्रों ने अपनी चारित्रिक विशुद्धता के कारण पाठकों के हृदय को छीना है। सत् और सरल मनुष्य को सभी प्यार करते हैं। सब लोग जिसकी खिल्ली उड़ाते हैं या ह्यूगो के 'ला मिज़रेबल' के नायक जाँ वालजाँ की नाईं जो बदकिस्मती से केवल अत्याचार ही बटोरता है, किसीसे ज़रा भी स्नेह-ममता नहीं पाता, स्वभावतया उस अनन्योपाय आदमी के लिए पाठक का मन करुणा से भर उठता है। उस युग के ह्यूमर का छिपा लक्ष्य भी यही था—"to arouse compassion," यानी पाठकों के मन में करुणा जगाना।

लेकिन दॉस्तॉयव्स्की ने असहायों के प्रति इस करुणा को बड़े भय की नज़रों से देखा है, "नायक के प्रति पाठक में करुणा का उद्रेक होने से उसका अंतर्निहित सत्य स्वरूप करुणा के नीचे दब जाता है। पाठक लक्ष्यभ्रष्ट होते हैं और वैसे में सारा आयोजन ही चौपट हो जाता है। इसलिए ह्यूगो की 'horrible beauty', येट्स की 'terrible beauty' की अपेक्षा 'grotesque beauty' में ही दॉस्तॉयव्स्की ने 'avenue to spiritual reality in art' को देखा।

Positive good man के सिलसिले में जब कला में यथार्थवाद का प्रश्न आया, तभी इस good man के चरित्र में जटिलता आई। चरित्रों से बुद्धूपना और भंड़ैती का अंश छूट गया और उसकी जगह मानविक दुर्बलता और accentricity जुड़ गई। उन्नीसवीं शताब्दी में इस जटिल positive good man के चरित्र का सफल चित्र जिन्होंने हमें सबसे पहले दिया, वह है दॉस्तॉयव्स्की। और चरित्र है 'ईडियट' का प्रिंस मिसकिन। तब से इस पाजिटिव चरित्र में बहुतों ने हाथ लगाया, कोई-कोई लेखक कामयाब भी हुए, परन्तु तब तक साहित्य ने भी अपना केन्द्र-बिंदु बदल दिया। युद्ध और एटम बम की मार से मनुष्य का विश्वास चूर-चूर हो गया है, अवलंबहीन मनुष्य का जीवन ज़बरदस्ती लादा गया अनचाहा बोझ हो उठा है और जीना हो उठा है एक हास्यकर अवास्तव व्यायाम। इस चिंतन के प्रतिफलन वाले साहित्य में जीवन ने नीतिवाद के अंधेरे में अपना निजस्व चरित्र खो दिया है। फिर भी इसी अवस्था में क्षणप्रभा की तरह दो-एक पाजिटिव चरित्र हमारी आंखों के सामने उजागर हो आते हैं। ऐसा ही एक चरित्र है, 1959 में लिखे इयोनेस्को के नाटक 'राइनोसेरस' का नायक बेरेंजेर। मित्र, समाज, अंत तक पत्नी भी

उसे छोड़कर चली गई, फिर भी बेरेंजेर ने आत्मसमर्पण नहीं किया। असमान होने के खिलाफ अंतिम दम तक लड़ता गया है। अकेला। अकेले की लड़ाई में झांकी की गुंजाइश नहीं रहती। इसीलिए पाजिटिव चरित्र में झांकी देने का मौका नहीं है। और रियलिज्म में उसकी गुंजाइश भी कहां!

पाजिटिव चरित्र की ओर भी विस्तृत आलोचना से पहले जरा यह देख लेने की जरूरत है कि यह रियलिज्म है क्या! पाठक ने यह जरूर ही गौर किया होगा कि 'राजा बदल' का पंडित जी, 'अंतिम पन्ने पर देखिए' का लोकनाथ और 'मुजरिम हाजिर' का सदानन्द—इन चरित्रों ने विभिन्न कोणों से हमारे हृदय पर जो छाप छोड़ी है, वह छाप हकीकत में एक मनुष्य की ही छाप है; वह मनुष्य 'a positive good man' है। साधारण मनुष्यों में से यह जो एक अन्य साधारण मनुष्य को खोज लेता है, जो हर तरह से साधारण होते हुए भी उत्केंद्रिकतावशतः असाधारण है—दॉस्तॉयव्स्की के शब्दों में—यही कला में 'realism in a higher sense' है। यानी 'to find the man in a man' है।

प्रसिद्ध समालोचक कंस्टैंटिन मोचुल्स्की ने रियलिज्म की व्याख्या के प्रसंग में कहा है "....the new reality created by the artist of genius, is real, because, it reveals the very essence of existence."

यहां यह कह देना जरूरी है कि 'रियलिस्टिक' और 'रियलिज्म' में फर्क है। रियलिस्टिक रचना वास्तव की फोटोग्राफी है (कार्बन कापी)। और कला में रियलिटी दूसरी चीज है। इसमें लेखक महज उन्हीं घटनाओं का विवरण नहीं देते, जो दुनिया में, समाज में नित्य घटती हैं, बल्कि वह वैसी घटनाएं गढ़ते भी हैं। उस घटना के भाष्य में से एक चरित्र क्रमशः विशिष्ट होकर उभरता आता है। अंत तक वह एक निर्दिष्ट अपार्थिव वास्तविकता के राज्य में पहुंच जाता है। लेकिन उस राज्य में पहुंच जाने की बात जिस आसानी से कही गई, वह व्यापार उतना आसान नहीं है। इसके साथ कला-शिल्प की सभी संभाव्य दिशाएं जुड़ी हुई हैं। विशेष रूप से सोचना पड़ेगा कि किस तरह से कहें। जिस ढंग से कहने से आइडिया, घटनाओं के घात-प्रतिघात से, वास्तव तथा युक्तिसंगत हो उठे, कहानी के अंत में नायक के बदन पर से घटनाओं की नामावली हटाकर निःसंग वह निरावरण आदमी पाठकों के मन की दीवाल पर तसवीर होकर झूलता रहे—उसीको सार्थक रचना कहेंगे। लेकिन यह उतना आसान काम नहीं है। अपनी पुस्तक 'War and Peace' को समाप्त करके तॉलस्तॉय ने अपनी डायरी में लिखा था :

"I cannot call my composition a tale, because, I do not know how to make my characters act only for the sake of proving or clarifying anyone idea or series of ideas."

तॉलस्तॉय ने जो नहीं कर सकने की बात कही है, 'मुजरिम हाजिर' के लेखक वह कर सके हैं। इन्होंने अपनी प्रत्येक घटना को एक सूत्र घट

में केंद्रीभूत किया है और एक प्रत्यय को प्रमाण अथवा प्रांजल करने के लिए सभी चरित्रों एवं घटनाओं को उसी ओर सक्रिय कर दिया है। बहुतेरी शाखा-प्रशाखाओं में फैलती हुई घटनाएं चारों ओर से आकर अंत में उद्दिष्ट केंद्र-बिंदु में मिल गई हैं। इसीको 'Proust and Rilke' गवेषणा-ग्रंथ के लेखक Jephcott ने Plot कहा है और कहा है—"an essential requirement of the novel, that is a unified narrative, a chain of significant incident. This in turn implies character, for in the words of Henry James : What is character but the determination of incident ? What is incident but the illustration of character ?...Plot, incident and characters will be taken as necessary criteria for a novel." इस सम्बन्ध में आलोच्य लेखक के कृतित्व का अंत नहीं है। उनका "···composition satisfies all of the rules of classical poetics (exposition, complication, rising action culmination, catastrophe, denouement, epilogue)." इस 'classical poetics' की दक्षता का हस्ताक्षर तो उनके प्रत्येक उपन्यास में है, और तिसपर उसे वह अपनी एक निजी विशेषता तक भी ले जा सके हैं, उस उत्कर्ष की विदग्धता और निजी पैटर्न तथा टेक्सचर के चढ़ाव-उतार से। 'मुजरिम हाज़िर' में भी उन्होंने अपना 'फिक्शनल युनिवर्स' यानी कहानी का विशाल जगत् तैयार कर दिया है। इस बात में बालज़क, डिकेंस, गोगोल, दॉस्तॉयव्स्की से इनकी तुलना की जा सकती है। खास करके grotesque beauty के मामले में तो दॉस्तॉयव्स्की से अवश्य ही। पॉजिटिव गुड मैन के चरित्र से व्यंगात्मक अंश को जब बाद देकर उत्केंद्रिकता को जोड़ा गया, तभी व्यंगात्मक उपस्थापना के सूने स्थान को अनैसर्गिक उपस्थापना ने पूरा कर दिया है। जैसे 'अंतिम पन्ने पर देखिए' का नायक लोकनाथ ईश्वर के साथ तर्क करता है। जैसे 'मुजरिम हाज़िर' के सदानंद ने अपनी दूसरी सत्ता का खून किया। इन्हीं अनैसर्गिक घटनाओं के समावेश से तब के दॉस्तॉयवस्की और आज के विमल मित्र को बहुतेरे समालोचकों ने अतिरंजना दोष का दोषी ठहराया है। लेकिन यह जो दोष नहीं, बल्कि एक विशेष प्रकार का गुण है, अपने जीते-जी दॉस्तॉयव्स्की ही इसका जवाब दे गए हैं। जिन्हें इसकी याद नहीं है या जो नहीं जानते हैं, उनकी जानकारी के लिए वह बात यहां उद्धृत किए दे रहा हूं। उन्होंने कहा है :

"All art consist in a certain portion of exaggeration provided...one does not exceed certain bounds."

इस सीमा-रेखा का निर्देश करना बड़ा कठिन है। लेकिन सीमा का लंघन हुआ है या नहीं, लेखक की निर्दिष्ट अपार्थिव वास्तविकता के लक्ष्य का अनुधावन करने से यह समझ में आ जाता है। यदि यह देखने में आता है कि लेखक अपने उस लक्ष्य पर पहुंच सके हैं, तो अतिरंजना अतिरंजना नहीं रह जाती।

पाठक और समालोचक के स्मरण के लिए कह दूं, अतिरंजना की ज़रूरत तभी होती है, जब परिवर्तनशील ऊपरी सतह के नीचे के अपेक्षाकृत स्थिर और स्थितिशील मानविक अस्तित्व को दिखाना आवश्यक हो उठता है—केवल अपेक्षाकृत सूक्ष्म अथवा धुंधली वस्तु नजरों के सामने लाने के लिए उसे मैगनिफाइ या बड़े आकार में करना ही पड़ता है। डिकेंस ने कहा है, "What is exaggeration to one class of mind perception, is plain truth to another." दॉस्तॉयव्स्की ने कहा है—"The important thing is not in the object, but in the eye. If you have an eye, the object will be found. If you don't have an eye—if you are blind—you wo'nt find anything in any object."

जिन्हें विषय के अंतर्निहित इस गुण को देखने की आंखें हैं, वही रियलिज्म के शिल्पी हैं। उन्हींके हाथों युग-युग तक positive good man मूर्त होता रहेगा। विमल मित्र ने निस्संदेह यह प्रमाणित किया है कि सत्य-दर्शन की वह दूरासद दृष्टि उन्हें है।

कलाकार की इस दूरासद दृष्टि में आने वाले positive good man के सम्बन्ध में Mochulskey ने कहा है—"In the 'world of darkness' comes a man not of this world...He is not an active fighter contending in the struggle in the evil forces, not a tragic hero challenging fate to combat, he does not judge and does not accuse, but his very appearance provokes a tragic conflict. One personality is set in opposition to the entire world."

उपर्युक्त आलोचना के परिप्रेक्ष्य में अगर हम 'मुजरिम हाज़िर' के नायक सदानन्द की ओर देखें तो उसके तीनों ही डाइमेंशन (स्तर) एक साथ हमें दिखाई पड़ेंगे। एक ही अवयव में हम तीन सदानन्द को देखेंगे। आंखें फैलाते ही जो दिखाई पड़ेगा, वह उसका साधारण चेहरा है। दूसरे दस हमउम्रों जैसा आचार-आचरण। वह पढ़ता-लिखता है, स्कूल जाता है। कुदरती नियम से औरों की तरह उसकी भी उम्र बढ़ती है। लेकिन ऊपर की इस परत के नीचे का सदानन्द दरअसल और ही है। उसका सवाल साधारण का सवाल नहीं है, उसकी देखने की नजर भी साधारण की नजर नहीं है। उसकी निगाहों में और भी कुछ, ऐसा कुछ नजर आ जाता है, जो औरों की निगाहों में नहीं नजर आता। और आता भी है तो उसका मतलब कोई नहीं समझता। अंतिम स्तर के सदानन्द का यह जो तीव्र बोध और द्रष्टता के सम्बन्ध में यह जो तीखी सचेतनता है, उसीसे उसके अहं का उत्तरण होता है। किन्तु सदानन्द के ये तीनों स्तर आपस में अलग-अलग नहीं हैं, इन तीनों स्तरों को मिलाकर ही सदानन्द एक पूर्ण मनुष्य है। कैसे जाना ? क्या विमल मित्र ने सदानन्द के बारे में दार्शनिक व्याख्यान दिया है ? नहीं। तो ? हां, इसी बात में विमल मित्र की कला-विदग्धता है। वह व्याख्यान नहीं देते। मोपासां के शब्दों में—"To produce the effect he seeks, that is, the feeling of simple

reality, and to bring out the lesson he would draw from it, that is the revelation of what contemporary man really is to him, he will have to employ facts of constant and unimpeachable veracity...the achievement of such a good consists, then in giving the complete illusion of reality following the ordinary logic of facts, and not in transcribing slavishly in the pell mell of their occurance. (Preface to 'Pierre et Jean') अर्थात् विमल मित्र रोज़मर्रे की ज़िन्दगी की घटनेवाली सीधी-सादी घटनाओं द्वारा ही अपने चरित्रों को उपस्थित करते हैं, परन्तु वे सीधी-सादी घटनाएं भी हकीकत में मोपासां के शब्दों में—वास्तव का भ्रम (illusion of reality) तथा बिलकुल कुछ विशृंखल व्यापार-मात्र नहीं होतीं। विमल मित्र द्वारा उद्भावित घटनाएं या सिचुएशन वास्तव में घटना नहीं, इलस्ट्रेशन यानी उदाहरण हैं। और उनके भी सदा तीन स्तर होते हैं—प्रतिक्रिया, तात्पर्य और प्रभाव।

मसलन, कपिल पायरापोड़ा की घटना को ही लें। पांच साल की उम्र का सदानन्द कैलास गुमाश्ता के साथ हाट गया। वहां कपिल बैलून बेच रहा था। सदानन्द ने बैलून मांगा। उसने यों ही उसे एक बैलून दे दिया, उसकी कीमत नहीं ली। लेकिन कैलास गुमाश्ता ने रोकड़ में चार पैसे का खर्च लिख दिया, वे चार पैसे उसने रख लिए। दो दिन के बाद वह बैलून पिचक गया, तो सदानन्द दूसरे बैलून के लिए मचला। कुल के एक ही चिराग की ज़िद के सामने कंजूस जमींदार नरनारायण चौधरी के मन में कंजूसी का नाम भी नहीं रह जाता। फौरन नौकर को रेल-बाज़ार भेजा गया। नौकर दो पैसे में एक बैलून खरीदकर ले आया। बैलून का दाम दो पैसा है, यह सुनते ही नरनारायण चौधरी आग-बबूला हो उठे। उन्होंने फिर से रोकड़-बही को देखा। हां, कपिल पायरापोड़ा ने उनके पीछे से दो पैसे के बैलून का चार पैसा लिया। कपिल ठग है, वह धूर्त है। कपिल को पकड़ लाने का हुक्म हुआ। सेंत में मिले बैलून की कीमत रोकड़ में लिखकर जिसने चार पैसे की चोरी की थी, वही कैलास गुमाश्ता ही उसे पकड़ लाने के लिए दौड़ा।

फिर? कपिल की चीख सुनकर सदानन्द दौड़ता हुआ वहां गया था, परन्तु उसकी बात पर, उसके प्रतिवाद पर, किसीने कान ही नहीं दिया, एक नाबालिग लड़के की बात को किसीने सुनना ही नहीं चाहा। उसे कमरे से खींचकर बाहर ले आया गया। कपिल पायरापोड़ा सिर्फ पिटा ही नहीं, तीन बीघा मात्र जो जमीन उसकी थी, वह भी छिन गई। जमींदार के बेरहम गुस्से ने उसे बेघरबार का बना दिया। एक दल बच्चों का बाप कपिल बेचारा निरुपाय होकर आखिर फांसी लगाकर मर गया। वह नज़ारा दो दिन के बाद सब लोग भूल गए। रोज़मर्रे की ये घटनाएं लोगों के लिए ऐसी आम हो गई हैं कि उस घटना को किसीने याद नहीं रखा। लेकिन सदानन्द ने कहा, "देखो प्रकाश मामा, उसकी बात आज सब भूल गए।···बरवारी-थान में पेड़ में फांसी लगाकर जब वह आत्महत्या करके मरा, तो सबने देखा, देखकर सभी

सिहर उठे, पर आज यह बात किसीको भी याद नहीं।"

सुनकर प्रकाश मामा ठठाकर हंस पड़ा। बोला, "तू तो बिलकुल पागल है। अरे, इतनी बात याद रखने से आदमी का चल सकता है भला! तूने तो मुझे अवाक् कर दिया, सदा!"

सदा ने कहा, "लेकिन मैं कुछ भी भूल क्यों नहीं सकता हूं मामा? मुझे क्यों सब कुछ याद आ जाता है?"

सदानन्द को सिर्फ याद ही नहीं आता। उसके तीव्र बोध के निकट, पैनी दृष्टि के निकट चौधरी परिवार के पाप का इतिहास सांझ की धुंधली छाया में पोखरे के पानी से निकलकर उसके सामने आ खड़ा होता। उसे उस परिवार के पाप का इतिहास सुनाता।

कपिल पावरापोड़ा की इस प्रासंगिक बात में, मैंने ऊपर जिनका उल्लेख किया है, वे तीन स्तर क्रम से इस तरह सजे हुए हैं—(1) जमींदार के सरिश्ते के लोग इतने ही गिरे हुए हैं कि चार पैसे की चोरी से भी बाज नहीं आते, (2) जमींदार का क्रोध कितनी छोटी-सी बात पर चरम पर पहुंच जाता है और (3) उसके फलस्वरूप एक नन्हे बच्चे के सामने इस जगत् और जीवन के ऊपर का पलस्तर किस तरह से उखड़ जाता है, किस तरह से अन्दर का घिनौना चेहरा बाहर निकल आता है। यों विमल मित्र नाहक ही किसी घटना का जिक्र तो नहीं ही करते, बल्कि तीन डाइमेन्शन नहीं रहने से उसकी अवतारणा भी नहीं करते। उनकी निगाह सदा उन घटनाओं की ओर होती है, जिनसे बंगाली-मन की पीड़ा प्रतिफलित होती है, प्रतिफलित होता है उसका नैतिक संकट। अंधकार जितना ही गहरा होता है, प्रकाश के लिए ललक उतनी ही ऐकांतिक होती है। लिहाजा उनके द्वारा उद्भावित घटनाओं से अंत तक प्रकाश का एक आभास भी झलक उठता है।

सदानन्द के ऊलजलूल मनोभाव और छितरे-बिखरे आचार-आचरण को नियन्त्रित रास्ते पर स्वस्थ करने के लिए एक ओर तो प्रकाश मामा उसके मां-बाप से सदानन्द के ब्याह की सिफारिश करता है और दूसरी ओर उसे लायक बनाने के लिए यात्रा, कविगान, रूप-कीर्तन सुनाने के लिए ले जाता है, ले जाता है, बाजारू औरतों के घर। कभी जिसके हाथों आठ-दस लाख रुपये की सम्पत्ति आएगी, उसे आखिर उन रुपयों का उपभोग करना तो सीखना होगा। और उस समय उसे भी क्या लाख-दो लाख रुपया हाथ नहीं लगेगा। दुनिया का हर दलाल ऐसा ही एक-एक प्रकाश मामा होता है।

सदानन्द की अंतर्दृष्टि ने प्रकाश मामा को पहचानने में भूल नहीं की—प्रकाश मामा भी एक आदमी है। सदानन्द सोचता, प्रकाश मामा को आदमी के सिवाय कोई जानवर नहीं कहेगा। उसे आदमी जैसे ही दो हाथ, पांव, आंख, कान हैं। आदमियों जैसी ही भाषा है उसकी। दुनिया में लोग ऐसों को आदमी ही समझते हैं। मगर प्रकाश मामा क्या वास्तव में आदमी है!

वास्तविक आदमी तो उसका दादा नरनारायण चौधरी भी नहीं, और उसका बाप भी नहीं। नरनारायण चौधरी कालीगंज के जमींदार हर्षनाथ

चक्रवर्ती के पन्द्रह रुपये माहवार के नायब थे। जीवन के अंतिम दिनों में हर्षनाथ चक्रवर्ती में चैतन्य का उदय हुआ, उन्होंने होश रहते ही गंगा में अपना शरीर छोड़ा और नरनारायण चौधरी की खुशकिस्मती से कुछ दिनों में ही हर्षनाथ के उत्तराधिकारियों की भी मृत्यु हो गई। रह गई अकेली उनकी विधवा—कालीगंज की बहू। उस विधवा का तिल-तिल करके सर्वस्व हड़पकर नरनारायण चौधरी कालीगंज और नवाबगंज—इन दो जमींदारियों के एकछत्र जमींदार बन बैठे। जीवन के अंतिम दिनों में नरनारायण चौधरी अपंग हो गए थे, फिर भी रुपयों के संदूक को—चुन्नी-पन्ना-हीरा-जवाहरात-भरे संदूक को अगोरे रहते थे। अपने एकमात्र वंशधर सदानन्द का ब्याह कराकर यह विशाल सम्पत्ति और वह भारी संदूक अब उसके कंधे पर चढ़ा दे सकें, तो वह निश्चिन्त हों। पर, पाप का बीज इधर जो एक विशाल महीरुह बन गया है, उसे उन्होंने मानना ही नहीं चाहा। लेकिन सदानन्द ने नहीं छोड़ा। उसे जब यह मालूम हुआ कि दादाजी ने चूंकि दस हजार नकद देने का वचन दिया, इसलिए कालीगंज की बहू ने मुकदमा उठा लिया, तो उसने दादाजी को धर दबाया—तुम्हारे संदूक में तो रुपया ही रुपया है, फिर तुम उस बेचारी बुढ़िया को क्यों टरकाया करते हो, उसके रुपये दे दो।

मगर दादाजी की दलील यह कि दे दो कहते ही क्या दिया जा सकता है? मैं यह थोड़े ही कह रहा हूं कि नहीं, दूंगा, दूंगा, जरूर ही दूंगा। तू ब्याह कर आ'''

पर, जिसके लिए हिसाब ही धर्म हो, हिसाब ही मोक्ष हो, स्वर्ग भी जिसके लिए रुपया ही हो, वह भला कभी आसानी से रुपया दे सकता है। अथच मुट्ठी-मुट्ठी वही रुपया पुलिस को खिलाना पड़ा। एक खून को छिपाने के लिए और भी पांच खून करने पड़े, क्योंकि आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक स्वार्थ क्रमशः आदमी को एक निदारुण भंवर में खींचे लिए जा रहा है, फलस्वरूप मनुष्य अपने ऊपर अपना वश खो बैठा है। वह अपने को जितना ही बेबस समझता है, उतना ही वह पापियों की जमात बढ़ाता है, उस दल को पुष्ट करता है। एक तरफ इस तरह से प्रतिक्रियाशील शक्ति प्रबल हो रही है और दूसरी तरफ बेसहारे लोग उसीके शिकार होकर आत्म-विसर्जन कर रहे हैं, या नहीं तो उनके ही दलाल बनकर उस दल को भरकम बना रहे हैं। इस परिप्रेक्ष्य में 'पाज़िटिव गुड मैन' धीरे-धीरे दूर हटता जा रहा है, हटता जा रहा है 'निगेशन' की ओर, वैराग्य की ओर इसीलिए सुहागरात के मीठे क्षणों में ही एक निष्पाप नवेली बहू के जीवन में अंधेरा उतर आया।

शोषण की नींव पर खड़े समाज में जो शोषण नहीं करता, वह शोषित होता है। और जो इस शोषण को पाप कहकर उसका विरोध करता है और शोषितों के लिए दुखी होता है—समाज उसे अपनी मुट्ठी में करना चाहता है। अगर इसमें कामयाब नहीं होता, तो उसे वहां टिकने नहीं देता। असल में उसका अपना विवेक ही उसे समाज से दूर हटा ले जाता है। हुआ भी ऐसा ही था। नरनारायण चौधरी यह सोचकर खुश हुए थे कि उन्होंने सदानन्द को

अपनी मुट्ठी में कर लिया। वह अपनी नई दुल्हिन के कमरे में गया और अंदर से उसने दरवाजा बंद कर लिया। अब चिंता किस बात की? अब बेटा-पोता की परंपरा में वह अमर रहेंगे, अपने रक्त की धारा में अनंत काल तक अखंड परमायु लाभ करेंगे। लेकिन उन्हें खबर नहीं रही कि उन्हीं लोगों के पापों का प्रतिवाद और प्रायश्चित्त करने के लिए वह सुहागरात की फूलों की सेज से उतरकर सबकी नजरों की ओट में आसमान के नीचे कांटों का बिस्तर बिछाने के लिए निकल पड़ा। लेकिन पाप के खिलाफ जिहाद बोलकर किसीके घर से निकल पड़ने से ही तो विश्व-ब्रह्माण्ड का सभी काम रुक नहीं जाता। नरनारायण चौधरी के लायक बेटे हरनारायण चौधरी ने रुक जाने देना भी नहीं चाहा। इसीलिए उन्होंने स्वयं ही पतोहू के पेट से संतान पैदा करने की ठान ली। यहां पर लेखक के संयम और शिल्प-निपुणता को देखकर दंग रह जाना पड़ता है। सुपरिचित और संपर्कयुक्त शब्दों के माध्यम से वह साधारण-ग्राह्य युक्ति का रास्ता अपनाकर अनायास ही एक कठिन संकट को पार कर गए।

सत्य को देखने एवं उस सत्य को सामाजिक तथा व्यक्तिगत वास्तव रूप देने की क्षमता श्रेष्ठ शिल्पि का लक्षण है, इसमें संदेह नहीं, पर, संकट के सत्य को टुकड़ा-टुकड़ा करके देखने में जैसे संकट का पूरा चेहरा नहीं दिखाई देता, वैसे ही, 'पाज़िटिव गुड मैन' को भी पूर्णतया नहीं पाया जा सकता, जिसको केंद्र बनाकर संकट प्रकट होता है। लेखक की श्रेष्ठता का और एक प्रमाण यह है कि यह तात्विक सत्य न सिर्फ उन्हें मालूम है, बल्कि उसका स्वरूप भी अनायास उनके आयत्त में है। जभी तो वह सदानन्द के माध्यम से स्तर-स्तर में विन्यस्त सामाजिक संकट के जटिल रूप को सामाजिक रूप से निखार सके हैं। और, सामाजिक संकट के सामग्रिक भाव से निखर आने के कारण सदानन्द का चरित्र भी स्वच्छंदता से स्वतः ही पूर्णरूप से विकसित हो सका है।

चित्र और चरित्र का यह जो युगपत अंकन है, यह एक दुर्लभ गुण है। लेखक युग-संकट को हमारे सामने लाना चाहते हैं, लेकिन किस तरह से? युग-संकट को हम स्वयं देखना भी चाहते हैं कि कोई दिखाए और हम देखें? दैनंदिन जीवन में हम असंख्य अन्यायों को देख और भोग रहे हैं कि हमारी बोधशक्ति ही भोथरी हो गई है, नजरों की जोत जाती रही है। अब कोई असंगति ही हमें दिखाई नहीं पड़ती, कोई भी मार्मिक घटना हमारे दिल पर दाग नहीं छोड़ती। लिहाजा लेखक को ऐसे एक आदमी को लाना पड़ा है, जो इस समाज-संसार में आगंतुक है। आगंतुक की निगाहों में सब कुछ आता है। परन्तु चुनांचे आगंतुक समाज-संसार के सुख-दुःख में शरीक नहीं, इसलिए वह सब कुछ को खुली दृष्टि और सादे मन से, निरपेक्ष आंखों से देखेगा। इसीलिए, उसके इस देखने में कहीं गांभीर्य या गुरुत्व नहीं है। हो भी तो चूंकि 'पाज़िटिव गुड मैन' राजनीति नहीं समझता, इसलिए आंखों देखे दुरूह व्यापार भी भारी नहीं होते। कौतुक-श्लेष मिल-जुलकर वह एक उपादेय रसवस्तु बन जाता है, जिसे कहते हैं grotesque beauty। पाठक गौर करके देखें, यह श्लेष और कौतुक मिली रचना की grotesque

beauty न सिर्फ नायक सदानन्द में, बल्कि उपन्यास में तमाम, सभी चरित्रों और घटनाओं में सूक्ष्म रूप से मौजूद है।

तो क्या सिर्फ कौतुक-विद्रूप से इस युग-संकट के अंधकार को दिखाने के लिए ही 'पाज़िटिव गुड मैन' के माध्यम का उपयोग किया जाता है ? नहीं। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'—उपनिषद् की यह प्रार्थना ही लेखक की शिल्प-प्रेरणा है। 'पाज़िटिव गुड मैन' इसी प्रकार का प्रदीप है। युग-संकट में ही इनका आविर्भाव होता है। ये आते हैं, तभी संकट का सामग्रिक रूप हमारे सामने प्रकट होता है, हम सिहर उठते हैं, प्रकाश में पहुंचने की प्रार्थना में हम घुटना टेक देते हैं। वही तो हमारा परित्राण है।

ससुर की लालसा को धिक्कारकर, उनकी मर्यादा के मुखौटे को खींचकर जनता के सामने पैरों से रौंदकर नयनतारा सदा के लिए अपने पति को घर छोड़कर चली जरूर आई थी, पर तभी से उसे दो परस्पर विरोधी प्रवणता का शिकार होना पड़ा था। बीमार सदानन्द को रास्ते से उठा लाकर उसने जी-जान देकर उसकी सेवा-सुश्रूषा की और उसके चलते मिलनेवाली लांछनाओं को सहकर भी उसे भला-चंगा किया, अथच उस समय वह निखिलेश की पत्नी थी। निखिलेश ने इतने दिनों में उसे पढ़ाया-लिखाया, दफ्तर में उसे नौकरी दिलाई। निखिलेश ने उसे आड़े वक्त में बचाया था। इसीलिए वह निखिलेश को चाहती थी। परन्तु सदानन्द को?

सदानन्द ने अप्रत्याशित रूप से नयनतारा को बहुत बड़ी रकम जो दी थी, क्या इसलिए कि उसने बीमारी में उसको तीमारदारी की थी ? या कि इसलिए कि उसने नयनतारा को बिना कसूर के छोड़ दिया था ? या कि···

ईश्वर ने शैतान के सामने फाउस्ट की बाजी रक्खी थी। शैतान ने कहा था, "धरती को मैंने घर-द्वार, धन-दौलत, नारी-संपद और खिताब-खैरात देकर दखल कर लिया है। व्यभिचार, युद्ध और महामारी फैलाकर सबको ऐसा काबू कर रखा है कि सभी षोड़शोपचार से मेरी पूजा कर रहे हैं। लिहाजा यह दुनियादारी मेरी है।" ईश्वर ने कहा, "तुम अगर पवित्र-प्राण फाउस्ट की आत्मा को भी कब्जा कर ले सको, उसके कलेजे में जलनेवाली आत्मा को भी कब्जा कर ले सको, उसके कलेजे में जलने वाली प्रेम की दीप-शिखा को बुझा दे सको, मैं तभी मानूंगा कि यह पृथ्वी तुम्हारी है।" शैतान ने फाउस्ट की आत्मा को खरीद लिया था, उन्हें भोग-सुख तथा दुनिया के सारे विलास-व्यसनों में डुबाकर रख सका था। मगर फाउस्ट ने अपने प्राणों की उस प्रेम-शिखा को हरगिज बुझने नहीं दिया। इसीलिए अंत में फाउस्ट की ही जीत हुई। शैतान इस दुनिया का एकछत्र अधिपति नहीं बन सका।

शायद हो कि फाउस्ट के पवित्र प्रेम की उसी शिखा को दोनों आंखों के दृष्टि-प्रदीप में रखकर दुनिया के अंधेरे को पा-पा करके पार करके सदानन्द भी अपनी मंजिल की ओर जा रहा था। और उधर, कलकत्ता के अभिजात मुहल्ले में, थिएटर रोड के एक सुरम्य सौध में यों ही मिल गए विपुल अर्थ से खरीदे हुए सुख की कुष्ठव्याधि से ग्रस्त थी नयनतारा।

दिव्य प्रेम की पावन जोत लिए आज से एक हजार नौ सौ तिहत्तर साल पहले संसार में पहला 'पाजिटिव गुड मैन' आया था। वह भी सदानन्द की ही तरह दुनिया के रास्तों पर पैदल चला था। उसने भी मनुष्यों का भला ही चाहा था। मनुष्यों के कल्याण के लिए उसने अपनी सारी जिन्दगी की तपस्या का फल मनुष्यों को उत्सर्ग कर दिया था। तपस्या के उस फल ने मनुष्यों का क्या-क्या मंगल किया, सदानन्द की नाईं वह भी उस समय यह देखने के लिए निकला था। चलते-चलते एक दिन वह भले सज्जन उस समय के थिएटर रोड के एक सुरम्य सौध में पहुंचे। उस समय वहां राजकीय उत्सव में सभी फरिशीय पुरोहित उपस्थित थे...'दीयतां भुज्यतां' का शोर मचा था चारों ओर। उस माहौल में एकाएक एक फटेहाल आदमी की मौजूदगी ने सहसा सब गुड़-गोबर कर दिया। कोई उन्हें बरदाश्त नहीं कर सका, किसीने उन्हें मानना भी नहीं चाहा। यहां तक कि नयनतारा ने भी नहीं। सिर्फ समवेत पाप का हिंसक क्रोध उनकी ओर मुट्ठी तानकर बढ़ आया—उनको लहू-लुहान कर छोड़ा। मरे हुए उस आदमी के लहू से नहाकर उस समय नयनतारा पवित्र हुई। नयनतारा के मुख का कोढ़ झूठ की केंचुल-सा उसी क्षण उसके तन से उतर गया। वह प्रेम से ज्योतिष्मती हो उठी। पत्थर से दबा पाप का सत्य कंठ में मुक्त हुआ—नयनतारा ने बेखटके सबके सामने यह घोषणा की कि "ये मेरे पति हैं।"

लेकिन इस युग का ईसा उस समय भी चीखा जा रहा था, "मैं तुम लोगों जैसा नहीं हो सका, तुम लोग मेरी उस अक्षमता का विचार करो, मैं तुम लोगों के आगे आत्मसमर्पण नहीं कर सका, मेरे इस कसूर का विचार करो। मैं मुजरिम हूं...मैं हाजिर हूं।"

ऐसा ही एक सुर हम इयोनेस्को के 'गंडार' (गैंडा) के नायक के मुंह से सुनते हैं... "I am the last man left, and I am staying that way untill the end. I am not capitulating."

विमल मित्र ने अपने इस उपन्यास में जिस विशाल जगत् की सृष्टि की है, उसका प्रत्येक घटना, उसका प्रत्येक चरित्र ऐसा ही विश्वास योग्य और हृदयग्राही है कि हम अपने अनजाने ही इस जगत् में शामिल हो जाते हैं या कि कहें तो, कैसे तो मानो यह जगत् हमारा ही जगत् बन जाता है। यहां के सब दुःख में हम अपने आप ही देख पाते हैं, अवहित हो उठते हैं। और इस तरह से जो हमें अपने आपसे परिचित करा देते हैं, निस्संदेह वह हमारे ही लेखक हैं, हमारे प्रिय लेखक।

9 अप्रैल, 1973

—यज्ञेश्वर राय

"मैं एक अति साधारण आदमी हूं। आज के अधिकतर लोभी लोग इस साधारण आदमी की बात सुनेंगे भी या नहीं, नहीं जानता। आज जब क्षमता पाने के लोभ से आदमी कोई भी गलत काम करने को तैयार है, ऐसे में मुझ जैसे साधारण आदमी की कहानी सुननेवाला कोई नहीं होगा, यह जानते हुए भी मैं अपनी जीवनी लिखने बैठा हूं। अविश्वास के इस युग में भी मेरा यह विश्वास है कि दुनिया में कहीं-न-कहीं कोई प्राणी ऐसा अवश्य है जिसके मन में विश्वास है। वह आदमी अभी भी सत्ता और सत्यवादिता का विश्वास करता है। वह विश्वास करता है धर्म का, विश्वास करता है प्रेम का एवं विश्वास करता है ईश्वर का। इन तीन शक्तियों का जो विश्वास नहीं करता, मेरी यह कहानी उसके लिए नहीं है। ऐसे लोग मेरी यह कहानी न भी पढ़ें, तो, मुझे दुःख नहीं होगा। ईश्वर यदि एक ईसा के लिए हज़ारों-हज़ार साल इंतजार कर सकते हैं, तो मेरे जैसा निरा तुच्छ आदमी एक भले पाठक के लिए लाख-लाख बरस सहज ही प्रतीक्षा कर सकेगा। मेरी उम्र इस समय..."

इतना ही लिखकर सदानन्द बाबू रुक गए। उम्र का लेखा लगाना होगा। क्या उम्र हुई उनकी? यह सोचते-सोचते सदानन्द बाबू चिंता में डूब गए। दिन कुछ कम तो नहीं हुए। उतने दिनों की सारी बातें याद रखना क्या आसान काम है। लेकिन याद करनी ही होंगी। याद नहीं कर सकने से यह जीवनी लिखना बेकार होगा। उन्हें सारी बातें खोलकर लिखनी हैं। कोई भी बात छिपानी नहीं है। अपने जिस जीवन से अलग हटकर वह इस चौबेड़िया में निर्वासन दण्ड भोग रहे हैं उसे छोड़कर आए हुए जीवन की एक-एक बात उन्हें कुरेद-कुरेदकर याद करनी ही पड़ेगी। अपने छोड़े हुए जीवन की उन्हें फिर से परिक्रमा करनी पड़ेगी।

उन्होंने अपने उसी बचपन की बात याद करने की कोशिश की। और वे लिखने लगे, "उस बचपन से ही मुझे यों कोई भी अभाव नहीं था। दुनियादार लोग जिसे अभाव कहते हैं, वह मुझे नहीं था। मैं नवाबगंज के प्रबल प्रतापी जमींदार नरनारायण चौधरी का एकमात्र पोता और हरनारायण चौधरी का इकलौता बेटा सदानन्द चौधरी, जो भी चाहता, वही पाता था। चाहने पर न पाने का दुःख कितना दुस्सह होता है, यह समझने की नौबत मुझे कभी नहीं आई। मगर मुझ जैसे उसी खुशकिस्मत के ही नसीब में बिना मांगे सब कुछ पाने का विषय ऐसा मार्मिक दुःखांत हो उठेगा, इसे मैं उस छोटी उम्र में नहीं समझ सका।"

लिखते-लिखते सोचने में सदानन्द बाबू को बड़ा अच्छा लगा। नवाबगंज का वह मकान, पेड़-पौधा-पोखरा, वह सार्वजनिक जगह और वह

ये बातें जैसे भुलाई नहीं जा सकतीं। अथच उन्होंने तो सब कुछ भूलना ही चाहा था। भूलने के लिए ही तो वे उस चौबेड़िया गांव में आए हैं।

कमरे में एक छोटी-सी चौकी। चौबेड़िया के बाज़ार से तेरह रुपये में खरीदकर ले आए थे। उसपर पड़ी एक चटाई। जब वे यहां आए थे तब अपने साथ कुछ भी नहीं लाए थे। कुछ रहा भी होता, जब तो साथ लाते। नवाबगंज से ट्रेन पर सवार होकर वे एक बार सिर्फ सुलतानपुर गए थे। वहां से कृष्णनगर। कृष्णनगर से नैहाटी। और वहां से बिलकुल कलकत्ता होते हुए एकबारगी यहीं। यहां उस समय था भी कौन! यह जैसे एकदम दुनिया की परली पीठ हो। न तो कोई हाट है, न ही कोई स्कूल।

प्रथम आश्रय पाया पाल की आढ़त में। रसिक पाल धार्मिक आदमी थे। गौर से एक बार एड़ी चोटी तक उन्होंने देखा। पूछा, "आपका नाम?"

"सदानन्द चौधरी।"

"ब्राह्मण हैं कि कायस्थ?"

"ब्राह्मण।"

ब्राह्मण सुनकर बड़ी खातिरदारी के साथ बैठने को कहा। फिर बहुत तरह की पूछताछ की—घर कहां है, पिता का नाम क्या है, चौबेड़िया किस मतलब से आए, पढ़ाई-लिखाई कहां तक की है। सब कुछ सुन लेने के बाद बोले, "खैर, ठीक है। आप जब यहां आ ही गए हैं तो फिक्र न कीजिए, आप यहीं रहिए...।"

रसिक पाल चौबेड़िया के खानदानी व्यापारी हैं। तिल, तीसी, पाट आदि के कारबार से धनी बने। बहुत बड़ी आढ़त थी उनकी। उसी आढ़त में बैठकर वह कारबार करते और महाजनी के नाम पर बहुतों की मदद भी किया करते थे। चौबेड़िया गांव के साधारण लोग पाल बाबू को छोड़कर अपने गुज़र-बसर की बात की कल्पना तक नहीं कर सकते थे। घर में कोई उत्सव-आयोजन हो—ब्याह, श्राद्ध, अन्नप्राशन, पौष संक्रान्ति—हर मौके पर वे रसिक पाल के यहां पहुंचते। कहते—"दया करके आइएगा पाल बाबू, एक बार आकर अपने चरणों की धूल दीजिएगा..."

उन्हीं रसिक पाल की बड़ी हार्दिक इच्छा थी कि चौबेड़िया में एक स्कूल हो। लिखने-पढ़ने के लिए गांव के बच्चों को आन गांव जाना पड़ता था, यह उन्हें अच्छा नहीं लगता था। खुद उन्हें पढ़ाई-लिखाई से कोई वास्ता नहीं था। लेकिन इस बात का उन्हें अफसोस था। अपने लड़कों को उन्होंने सदा होस्टल में रखकर कलकत्ता में पढ़ाया-लिखाया। लेकिन गांव में स्कूल खोलने के लिए मास्टर चाहिए था, ऐसा मास्टर, जिसे लड़कों को पढ़ाने का समय हो। ऐसा बेकार आदमी कहां मिलता? मास्टरी करने को राजी कौन होगा?

खैर, आखिर उन्हें यह सदानन्द चौधरी मिल गए। रसिक पाल की आढ़त में बहुतेरे लोग खाया-पिया करते थे। काम-कारबार से जो व्यापारी आढ़त आते, उन लोगों के खाने-सोने का इंतजाम रखना ही पड़ता था। सदानन्द नहीं रहे।

लेकिन सदानन्द ने हाथ जोड़ दिए। कहा, "उससे तो बल्कि मैं अपनी रसोई आप ही करूं पाल बाबू। आप मेरे लिए सिर्फ चावल-दाल, नून-तेल का इंतजाम करा दीजिए। मैं कोई तनखा हो नहीं लूंगा।"

सुनकर रसिक पाल अवाक् हो गए। बोले, "तनखा नहीं लोगे?"

सदानन्द ने कहा, "नहीं।"

"तो फिर तुम्हारा खर्च-वर्च कैसे चलेगा?"

सदानन्द ने कहा, "खर्च की तो मुझे कोई जरूरत नहीं है। मैं किसी तरह का नशा नहीं करता, चाय नहीं पीता, पान-बीड़ी-तम्बाकू किसी चीज की जरूरत नहीं मुझे। मछली-मांस की तो मनाही ही है। दोनों जून दो मुट्ठी भात और आलू के भुरते से ही मेरा काम चल जाएगा..."

बहुतेरे लोगों को बहुत दिनों तक चराकर रसिक पाल बूढ़े हुए हैं। उन्होंने ऐसी बात आज तक किसीके मुंह से नहीं सुनी। उन्होंने फिर एक बार अच्छी तरह से सदानन्द को एड़ी-चोटी तक देख लिया। लगा, उन्हें अभी भी देखने और सुनने को बहुत कुछ बाकी है।

बोले, "खैर, आज रात-भर तो आढ़त में रह लो, कल जैसा होगा, किया जाएगा।"

कहकर वह सोने के लिए घर चले गए। आढ़त के कैश-बक्स में ताला लग गया। कुंजी लेने से पहले उन्होंने हरि मुहर्रिर से कहा, "सुनो, इस आदमी का जरा ठीक से जतन करना हरि। लगता है, आदमी यह अच्छा है।"

हरि मुहर्रिर ने सदानन्द की सारी व्यवस्था कर दी। दूसरे दिन रसिकपाल ने हरि मुहर्रिर से पूछा, "कल रात उस छोकरे को कोई असुविधा तो नहीं हुई?"

पाल की आढ़त का पुराना आदमी है हरि। उसने आढ़त में बहुतों को आते-जाते देखा है, बहुतों की देख-भाल की है। बोला, "जी, असुविधा काहे की होगी? असुविधा होने की तो कोई वजह नहीं।"

"खाने को क्या दिया था?"

"जी, ये सज्जन तो कुछ खाते ही नहीं। उपवास ही कहिए। जी हां, एक तरह से उपवास ही।"

"सो कैसे?"

"जी। सिर्फ एक रोटी और पाव कटोरी दाल। और कुछ नहीं लिया।"

"कल मछली नहीं बनी थी?"

"जी बनी तो थी। किन्तु वे मछली-मांस-अंडा, कुछ भी नहीं छूते।"

"सोने में तो कोई असुविधा नहीं हुई न? आखिर नई जगह है।"

"जी, असुविधा होती तो क्या वे गीत गाते?"

"गीत?" रसिक पाल अवाक् हो गए। फिर पूछा, "गीत? कैसा गीत?"

हरि मुहर्रिर ने कहा, "सोते-सोते बहुतों को गीत गाने की जैसी आदत होती है, वैसा ही, और क्या!"

"कैसा? कौन-सा गीत?"

हरि मुहर्रिर ने कहा, "कवि-गान[1] सरकार। छुटपन में होरु ठाकुर का कवि-गान सुना था वहीं..."

"होरु ठाकुर का कौन-सा गीत ?"

हरि मुहर्रिर ने कड़ियां बताईं :

"काश, सखी मैं जान जो पाती।
प्रेम श्याम का गरल मिला है
कानों में यह बात जो आती।
कुल की बाला, मन की सरला
तो क्या वह विष भूले खाती।"

रसिक पाल सीधे-सादे आदमी। कवि नहीं, कुछ नहीं। सहज-साधारण आदमी के गीत की बात सुनकर वे अवाक् हो गए। "सोते-सोते गीत गाता है। पागल है क्या ?"

हरि मुहर्रिर ने कहा, "जी, गीत भी गाने लगे और बोलने भी लगे। उनके गीत और बातों के मारे सारी रात हममें से कोई सो नहीं सका मालिक !"

"गीत तो खैर हुआ, समझा। मगर बात ? बात कैसी ?"

हरि मुहर्रिर ने कहा, "कुछ न पूछिए, बहुत-सी बातें हैं। पर मतलब खाक भी समझ में नहीं आया। कभी एक औरत का नाम लेकर पुकारते, और कभी..."

"औरत ? मतलब ? इसका चाल-चलन खराब है क्या ?"

हरि मुहर्रिर ने कहा, "जी, सो तो नहीं बता सकता, लेकिन जिस औरत को पुकार रहे थे, उसका नाम बड़ा नया-सा है..."

"नया-सा कैसा ?"

हरि मुहर्रिर ने कहा, "जी, नयन। कभी नयन कहते थे और कभी नयन-तारा। लगा, जरूर किसी औरत का नाम होगा। रात को सोए-सोए औरत को पुकारना, प्रेम का गीत गाना—यह तो अच्छे लक्षण नहीं हैं सरकार ! आपने ऐसे आदमी को आढ़त में क्यों जगह दी, समझ में नहीं आता। यह कुछ अच्छा हुआ ?"

उस समय रसिक पाल ने और कुछ नहीं कहा। मन-ही-मन सोचने लगे। इतने दिनों तक इस दुनिया में रहकर, इतने लोगों को चराकर अंत में उन्होंने गलती की क्या। उन्होंने हरि मुहर्रिर की बात का कोई सीधा उत्तर नहीं दिया। इतना ही कहा, "ठीक है, तुम उन्हें मेरी गद्दी पर जरा भेज तो देना..."

---

1. बंगाल में गांवों में कवि-गान की महफिलें होती थीं। बहुतेरे गंवई आशु-कवियों की प्रतियोगिता होती थी। ये गा-बजाकर आपस में सवाल-जवाब करते थे, जैसा आजकल कव्वाली में होता है। ये कवि-गान कहाते थे। होरु ठाकुर, एंटोनी फिरंगी आदि इनों में बड़े नामी हुए।

रसिक पाल रोज सवेरे गद्दी पर कुछ घंटे बैठा करते हैं। उसी समय कर्जदार पावना वाले, पड़ोसी, तरह-तरह के लोग किस्म-किस्म की अर्जी लिए उनके पास आते हैं। कोई खैरात मांगने आता है और कोई सिर्फ अपनी शक्ल दिखाने के लिए। इनके अलावा व्यापारी लोग आते हैं। काम-काज और लेन-देन की बात होती है। उस समय जाप की थैली में हाथ डालकर पाल बाबू माला जपते हैं और मुंह से बात करते हैं। उनका हर काम घड़ी के कांटे के हिसाब से होता है। सवेरे जगने के बाद ही गंगा नहाना। उस समय घड़ी में छः बजता होता है। पाल बाबू को नहाने जाते देखकर ही लोग समझ जाते हैं कि घड़ी में छः बजे हैं। क्या गर्मी और क्या बरसात, उनके इस नियम में कभी इधर-उधर नहीं होने का। इसके बाद जब गद्दी में आकर बैठते हैं, तो घड़ी में छोटी सुई आठ पर और बड़ी ठीक बारह पर होती है। और जब घड़ी में ठीक नौ बजता है, तो वह एक बार छींकते हैं।

घड़ी के कांटे से मिलाकर यों काम करना बहुत कम देखा जाता है। लेकिन उन्हींको एक दिन सवेरे ठीक नौ बजे छींक नहीं आई।

यह एक आश्चर्यजनक घटना हो गई। सभी लोग अवाक् हो गए। सभी परस्पर एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। हो क्या गया यह! ऐसा तो कभी नहीं होता! सबने समझ लिया, हो न हो, कोई आफत आनेवाली है।

रसिक पाल एकाएक जोर से पुकार उठे, "हरि···"

एक ही पुकार में हरि मुहर्रिर सामने आ खड़ा हुआ। पाल बाबू ने कहा, "हरि, जरा बलाई डाक्टर को तो बुला लाओ। कहना, मेरी तबियत खराब है। मैं तुरंत अन्दर जा रहा हूं···"

डाक्टर आया। पाल बाबू की जांच की। शायद हो कि दवा-अवा भी दी। उसने कौन-सी दवा दी, यह कोई क्या जाने। ठीक नौ बजे उन्हें छींक क्यों नहीं आई, डाक्टरी शास्त्र में इसका कोई निदान है या नहीं, किसीने यह भी नहीं पूछा। लेकिन दो ही दिन बाद लोगों ने देखा, घड़ी में जब ठीक छः बजे हैं, तो वह गंगा नहाने जा रहे हैं। उसके बाद ठीक आठ बजे गद्दी पर आ बैठे। और ठीक जब नौ बजे, तो 'आछी' करके उन्हें छींक आई। तब निश्चिन्त हुए।

सदानन्द के दादा नरनारायण चौधरी का काम भी ठीक इसी तरह घड़ी के कांटे के हिसाब से चलता था। नदी में नहाकर वह अपनी कचहरी में आकर बैठ जाते थे। बैठने के बाद कर्जदार, पावनादार, किसान, गांव के दूसरे दस-पांच जाने-माने लोग आकर बैठा करते। कचहरीघर बहुत बड़ा था। पीछे की तरफ बरामदा। उसी बरामदे की सीढ़ी से नरनारायण चौधरी दुमंजिले पर पर जाया करते थे। उनके सोने का कमरा दुतल्ले पर ही था। और उसी सोने के कमरे में था उनका लोहे का सदूक।

सदानन्द ने एक दिन कहा था, "दादा जी, आपके पास कितना ढेर-सा रुपया है!"

रुपया! सिर्फ रुपया नहीं। गड्डी के गड्डी नोट। उन्हीके पास हीरा,

पन्ना, गन्नी, मोती ! और भी जानें कितनी वेशकीमती चीजें ।

नरनारायण ने जब संदूक को खोला था, तो उन्हें खाक भी पता नहीं था, कि उनका पोता कब चुपचाप आकर बगल में खड़ा हो गया है ।

उस समय सदानन्द की उम्र पांच या छः साल की होगी । पांच ही छः साल की उम्र से पोता मानो सब चीज पर कैसा तो गौर किया करता । हर चीज को बड़े ध्यान से उलट-पुलटकर देखता, सभी चीज़ों के वारे में उसे कौतुहल होता । पूछता, "आपकी दाढ़ी सफेद क्यों है दादाजी ?"

चौधरी जी कहते, "इसे लेकर तो मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया । अरे ओ, कौन है ? कहां गए सब..."

दीनू चौधरी परिवार का बड़ा पुराना नौकर था । दीनू याने दीनानाथ । सुनते ही वह आता और सदानन्द को खींचकर अन्दर लिवा जाता ।

मालिक कहते, "इसे पोखरे में वतखें दिखा दीनू, ले जा ।"

वास्तव में उस समय नरनारायण चौधरी को वेहद काम रहता । कचहरी में ढेरों लोग । लेनदारों से रुपये-पैसे की बात, सूद की पाई-पाई का दूध-पानी के विलगाव-सा हिसाब । ज़रा भी अनमने हों कि दादाजी का बड़ा नुकसान हो जाएगा । रुपयों के मामले में नरनारायण चौधरी के आगे बाकी सब कुछ कौड़ी काम का नहीं । दूसरे समय दादाजी में अगाव प्यारा और उस समय पोता के नहीं होने से दादाजी का काम नहीं चलता । बात-बात में पूछते, "सदा कहां गया ? उसे देख नहीं रहा हूं ।"

रसिक पाल को देखकर सदानन्द को केवल दादाजी की ही याद आती । ठीक वैसा ही कारवार, ठीक वैसा ही व्यवहार ।

दूसरे दिन हरि मुहर्रिर आया ।

पूछा, "क्या खबर है बाबू, रात नींद तो आई ?"

सदानन्द ने कहा, "हां ।"

"मालिक ने आपको एक बार गद्दी में जाने को कहा है ।"

सुना और सदानन्द गद्दी की तरफ चलने को तैयार हो गया ।

हरि मुहर्रिर ने कहा, "नहीं, नहीं, अभी मत जाइए । अभी नहीं..."

सदानन्द ने कहा, "क्यों, अभी क्यों नहीं ? अभी भी शायद जगे नहीं हैं ?"

हरि मुहर्रिर ने कहा, "जगे नहीं हैं ! जग तो वह भोर चार ही बजे गए हैं । फिर छः बजे गंगा नहाया है, उसके बाद पूजा-पाठ करके आठ बजे गद्दी पर आकर बैठे हैं ।"

सदानन्द ने कहा, "तो, साढ़े आठ तो बज गए, अब जाता हूं..."

"नहीं, अभी नहीं । नौ बजने दीजिए । नौ बजे मालिक छींकेंगे ।"

"छींकेंगे ?"

"हां ।"

"छींकेंगे, मतलब ?"

इस युद्ध से साबका पड़ जाने से हरि मुहर्रिर बड़ी मुश्किल में पड़ा। बोला, "अजी साहब, आप बंगला भाषा भी नहीं समझते—अजी छींक, छींक। सर्दी-जुकाम होने से आदमी जो छींक छींकता है, वही छींक। आप क्या कभी छींकते नहीं हैं ?"

सदानन्द ने कहा, "छींकता क्यों नहीं हूं ?"

"बस, मालिक भी वही छींक छींकते हैं। घड़ी में ठीक जब नौ बजता है, तभी वह छींकते हैं।"

सदानन्द नया-नया चौबेड़िया आया था। इसीलिए सुनकर अवाक् हो गया था। अचरज से पूछा था, "घड़ी देखकर ठीक नौ बजे ?"

हरि मुहर्रिर को उस समय बहुत सारा काम था। इस बात का जवाब देने का समय उसके पास नहीं था। वह आढ़त छोड़कर अपने काम में निकल गया। आढ़त की घड़ी में टन-टन करके जब नौ बजे और सदानन्द जाने के लिए उठने लगा कि इतने में बगल की गद्दी से छींकने की एक विकट आवाज आई। घर तोड़ने वाली, कान फाड़ने वाली छींक। सदानन्द ने छींक के समय को फिर एक बार घड़ी से मिलाकर देख लिया। उसके बाद उसने गद्दी की तरफ कदम बढ़ाया।

पाल बाबू उस समय जाप की थैली में दायां हाथ डालकर जाप में मशगूल थे। बाएं हाथ से कागज-पत्तर देख रहे थे और सामने जो लोग बैठे थे, उनसे बातें कर रहे थे। इतने में सदानन्द पर नजर पड़ी। उन्होंने बाएं हाथ की बही को खिसकाकर बगल में रख दिया।

बोले, "अरे, आओ-आओ। बैठो।"

चौकी पर बिछी हुई चटाई पर सदानन्द पांव समेटकर बैठ गया। जो लोग अब तक सामने थे, वे सब जरा खिसक गए।

"मैं पूछता हूं, तुम जो संगीत-साधना करते हो, यह तो मुझे पहले नहीं बताया था। तुम्हारा घर कहां है, घर में कौन-कहां है, कौन नहीं है—यह सब बताया, मगर असल बात नहीं बताई। फिर तुम संगीत की भी चर्चा करते हो न क्या ?"

"संगीत ?" बोलते हुए सदानन्द जरा सहम गया।

"हां-हां! संगीत! हरि मुहर्रिर ने मुझे सब कुछ बताया है। आढ़त में सोते-सोते तुमने गीत गाया, नयनतारा से बातें कीं, और क्या-क्या, उसने मुझे सब बताया है। तुम क्या कविगान के दल में थे ?"

सदानन्द शरमा गया। क्या जवाब दे, समझ नहीं सका।

पाल बाबू ने फिर कहा, "तुम्हारे चेहरे से लेकिन मैं समझ नहीं सका कि तुम गीत गा सकते हो। मैंने सोचा था, अभाव के मारे यहां आए हो, तुम्हें आश्रय चाहिए, इसीलिए मैंने तुमसे स्कूल का जिक्र किया था। गांव के बच्चे पढ़ नहीं पाते हैं'''खैर, नयनतारा तुम्हारी कौन है ?"

सदानन्द ने कहा, "नयनतारा ? मैंने कहा है ?"

'हां गीत गाया, नयनतारा का नाम लेकर वात की। सोए-सोए ...
...की तुम्हें आदत है, क्यों?"

सदानन्द ने कोई भी जवाब नहीं दिया। और, जवाव दे भी क्या? ...व देने लायक कुछ हो, जब तो जवाव दे।

"हरि मुहर्रिर ने कौन-सा गीत तो वताया। ठहरो, याद करता हूं। ...पन में वह गीत मैंने भी सुना है—

'काश, सखी मैं जान जो पाती।
प्रेम श्याम का गरल मिला है
कानों में यह वात जो आती।
कुल की वाला, मन की सरला
तो क्या वह विष भूले खाती।' "

शरम के मारे सदानन्द तो गड़-सा गया। पाल वावू गीत की कड़ियां कह रहे थे और आस-पास बैठे सभी सुन रहे थे।

रसिक पाल फिर कहने लगे, "लेकिन भैया, मैं तुम्हें यह वता दूं कि यों गाना-वाना गाने से तो मेरा काम नहीं चलेगा। यदि गाने-वाने की इच्छा हो, तो कहीं और देखो। मैं गाना-वाना पसंद नहीं करता। और गाना भी अगर भक्ति का हो, तो कोई वात भी हुई। यह सव गाना तो वाहियात है, क्यों जी, तुम लोगों का क्या ख्याल है?

रसिक पाल ने सबकी ओर ताककर उनकी राय जाननी चाही, तो सबने एक स्वर से कहा, "जी आपने विलकुल दुरुस्त कहा है···।"

"सुन लो, सबने मेरी वात की ताईद की। जानते हो, मैं गैरवाजिव कभी नहीं वोलता?

उसके वाद उन्होंने वाएं हाथ से फिर हिसाव की वही खींच ली। सदानन्द ...ए लिए खोलकर यह कहना अन्याय था कि आपके ये लेनदार लोग तो आपकी गैरवाजिव वात को भी गर्ज की खातिर ताईद करने को मजवूर हैं।

वही के लेखे पर ध्यान देते हुए रसिक पाल ने कहा, "अच्छा, तुम जाओ।"

सदानन्द वहां और नहीं बैठा। चौकी पर से उठकर गद्दी से सीधे निकल पड़ा। रसिक पाल को उस समय यह सब सोचने का समय नहीं था। पल में ही लेखे के गोरखधन्धे में डूब गए। रसिक पाल और नरनारायण चौधरी के लिए हिसाव ही सब कुछ था। हिसाव ही धर्म, हिसाव ही कर्म-अर्थ, हिसाव ही मोक्ष और काम, सव कुछ था। हिसाव करते-करते ही एक दिन वे पक्षाघात से पंगु हो गए। फिर वह उठ भी नहीं पाते थे।

याद है, उस समय भी पालकी पर चढ़कर कालीगंज की वहू दादाजी के पास आया करती थीं। नजर पड़ते ही सदानन्द दौड़कर पालकी के पास जाता। गोरी ... और गोरी औरत। पहनावे में सफेद कोर की सादी धोती। वैसी गोरी औरत सदानन्द ने जिन्दगी में दूसरी नहीं देखी थी। सदानन्द की मां—नरनारायण चौधरी की स्त्री भी गोरी थीं। नयनतारा भी गोरी थी

लेकिन कालीगंज की बहू सिर्फ गोरी नहीं थी—दूध-महावर मिला रंग। रंग को और देखने से देखते ही रहने को जी चाहता। पालकी प्रांगण में रुकती कि कालीगंज की बहू उतरतीं। हाथ-भर घूंघट काढ़कर अन्दर के बरामदे में आतीं। साथ में एक दाई। दाई आगे-आगे चलती, कालीगंज की बहू पीछे-पीछे। वह सीढ़ियों से सीधे दुतल्ले पर दादाजी के पास चली जातीं।

नरनारायण उस समय बिछौने पर लेटे-लेटे लेखा-बही देखते होते। सिर के पास वही लोहे का संदूक। संदूक को वह हरगिज कभी अलग नहीं करते।

"कौन ?"

और उसके बाद अंदाज करते ही वह मानो विचलित हो पड़ते।

"मैं हूं नायब जी, मैं। कालीगंज की बहू।"

"ओ !"

और कहते ही मानो परेशान-से हो जाते। जरा हिल-डुलकर लेटने की कोशिश करते। कहते, "मगर आपने नाहक ही आने की तकलीफ क्यों की बहू जी ! मैंने तो कहा था कि आपको अब आना नहीं पड़ेगा।"

कालीगंज की बहू कहती, "मगर मैं तो अब और इंतजार नहीं कर पाती नायब जी ! आखिर कब तक इंतजार करूं ? आप तो दस साल से एक ही बात कहते जा रहे हैं, मुझे नहीं आना पड़ेगा—नहीं आना पड़ेगा। आखिर रुपये क्या आप मेरे मरने के बाद देंगे ? तो फिर मेरा यह रुपया खाएगा कौन ? उन रुपयों से क्या मेरा पिंडदान किया जाएगा ?"

"ओ, आप तो बहुत नाराज हुई जा रही हैं बहू जी ! मैंने जब कहा है कि आपके रुपये दूंगा तो जरूर दूंगा।"

लेकिन कब दीजिएगा ! सो बताइए। रुपये आज ही देने होंगे। बस मैं बैठ गई धरना देकर। जब तक मेरे दस हजार रुपये मिल नहीं जाते, मैं यहां से नहीं हिलती···"

और कालीगंज की बहू वहीं फर्श पर बैठ गईं।

इतने में अचानक दादाजी की नजर पड़ गई। वह चिल्ला उठे, "ऐ, मुन्ने, यहां क्यों, ? कौन है रे, मुन्ने को यहां से ले जा। अरे ओ दीनू···"

कहीं से दौड़ता हुआ दीनानाथ आता, हाथ पकड़कर मुन्ने को वहां से खींच ले जाता। सदानन्द कालीगंज की बहू को फिर देख नहीं पाता। पर इस दृश्य को वह अपने मन से हटा नहीं पाता। रह-रहकर आंखों में कालीगंज की बहू का चेहरा नाच जाता। नींद में भी एकाएक उसे लगता, शायद कालीगंज की बहू आई।

एक दिन उसने दीनू से पूछा था, "वह बहू कौन है दीनू मामा ?"

दीनू ने कहा था, "अरे चुप, यह बात नहीं पूछनी चाहिए।"

सदानन्द ने फिर भी पीछा नहीं छोड़ा ? पूछा, "वह दादाजी से रुपये क्यों मांगती है ? काहे के रुपये ? दादाजी उसे रुपये देते क्यों नहीं ? कौन है वह ?"

दीनू ने कहा, "यह सब तुम्हें नहीं जानना चाहिए। वह कालीगंज की

वह है…"

इससे ज्यादा दीनू कुछ नहीं बताता। सिर्फ दीनू ही नहीं, कालीगंज की वहू के आते ही घर के सारे ही लोग कैसे तो गंभीर हो जाते। दादाजी से लेकर मां, बाबूजी, सभी कैसे चुप से हो जाते। इस समय किसीके मुंह से कोई बात नहीं फूटती। मानो वह कालीगंज की वहू नहीं, यम है। मानो चौधरी परिवार का सर्वनाश करने के लिए नवाबगंज के चौधरी के यहां साक्षात् यम का आगमन हुआ है। उसके चले जाने से ही जैसे सब जी जाएं!

लेकिन रसिक पाल के यहां की बात और तरह की है। ये चौबेड़िया के गुनी आदमी हैं। धर्मभीरु हैं। सबको दया-दान देते हैं। लड़के-लड़कियां बड़े हो चुके हैं। उनकी आढ़त में यों बहुत-से लोग खाते-पीते, सोते हैं—मगर वह सूद की एक पाई भी नहीं छोड़ते। कहते, "नहीं भई, यह मुझसे नहीं होने का। दान करने को कहो, करता हूं, परंतु सूद के हिसाब में जरा भी इधर-उधर नहीं कर सकता—वह पाप है…"

रसिक पाल आदमी सचमुच ही रसिक हैं। एकाएक ही उन्हें बहुत कुछ याद हो आता है। उस दिन भी वैसा ही हुआ। काम करते-करते अचानक पुकार उठे, "हरि…"

बगल की आढ़त से हरि मुहर्रिर दौड़ता आया, "जी, मुझे बुलाते हैं?"

पाल बाबू बोले, "अरे हां, वह जो आदमी है, क्या नाम है उसका।"

"जी, किसको कह रहे हैं?"

"अरे वही, कल तीसरी पहर जो गद्दी में आया था। रात में सोए-सोए गीत गा रहा था? मैंने बुलाकर उससे सब पूछा। मेरा क्या ख्याल है, पता है? आदमी दरअसल वह बुरा नहीं है, समझे? लेटे-लेटे नींद में गीत गाने में उसका क्या दोष है? नींद में तो किसीको होश नहीं रहता। सोया कि मुर्दा।"

हरि मुहर्रिर ने कहा, "जी, सो तो सही है।"

"तो तुमने जो कहा कि छोकरा भला नहीं है। सोते में प्रेम का गीत गाता है, नाम लेकर औरत को पुकारता है?"

हरि मुहर्रिर ने कहा, "जी, जो हुआ है, मैंने वही आपसे कहा है।"

"नो… नहीं, मैंने सोचकर देखा, उसका कोई दोष नहीं है। उसके कारण यदि तुम लोगों की नींद में खलल पड़ती है, तो न हो तो, उसका बिस्तर दूसरे कमरे में कर दो।"

हरि मुहर्रिर बोला, "लेकिन मालिक, वे तो चले गए…"

"चले गए? मतलब?"

"जी, उन्होंने कहा कि आपने उनको यहां से चले जाने को कहा है।"

"मैंने? मैंने उसे चले जाने को कहा?"

"जी, उन्होंने तो यही कहा और वे आढ़त घर से चले गए।"

रसिक पाल बिगड़ उठे। बोले, "तुम लोगों को क्या अक्ल नाम की कोई चीज ही नहीं है? उन्होंने कहा और तुम लोगों ने भी उन्हें जाने दिया? कहां जाएंगे वे? तुम लोग जानते हो उन्हें कोई भी जगह नहीं है जाने की?

उनसे पूछा भी कि आखिर वे कहां जाएंगे ? किसी चूल्हे में उनका कोई है भी कि वह वहां जाएंगे ?"

हरि मुहर्रिर वहां और खड़ा नहीं रहा। वह सीधे रास्ते की ओर भागा। सामने का बड़ा रास्ता सीधे गंगा तक गया है। सदानन्द उस समय तक भी कुछ तै नहीं कर पाया था कि कहां जाएगा। गंज के पास कई दुकानें थीं। वहां पहुंचकर वह सोच रहा था कि कहां जाया जाए। कहां तो नवाबगंज, कहां नैहाटी और कहां सुलतानपुर—सबको छोड़कर भटकता हुआ वह इस गंवई गांव चौबेड़िया में आकर हाजिर हुआ था। अब यहां से भी जाना पड़ गया।

इतने में पीछे से हरि मुहर्रिर का गला सुनाई पड़ा, "अजी ओ साहब, सुनिए···"

पुकारते-पुकारते सामने आकर वह बूढ़ा आदमी हांफने लगा।

बोला, "आप तो खूब आदमी हैं साहब ! मालिक से बिना कुछ कहे-सुने चल दिए और इधर मेरी परेशानी का अंत नहीं रहा। चलिए···"

सदानन्द फिर भी साफ-साफ समझ नहीं सका कि बात क्या है !

हरि मुहर्रिर ने लपक से सदानन्द का हाथ थाम लिया। चलते हुए बोला, "इसमें समझने-बूझने की कोई बात नहीं, चलिए, मालिक आपको बुला रहे हैं।" और, सदानन्द को खींचते हुए ले जाकर मालिक के सामने हाजिर कर दिया।

रसिक पाल ने कहा, "तुम चले जा रहे थे, क्यों ?"

सदानन्द ने कहा, "जी, आपने जो चले जाने को कहा···"

"कह क्या रहे हो तुम ? मैंने तुमको चले जाने को कहा है ? यहां इतने सारे लोग तो हैं, इन लोगों ने भी तो सुना है, कोई कहे तो कि मैंने तुमसे चले जाने को कहा ? कहें ये लोग···"

मगर उसकी जरूरत नहीं पड़ी। सदानन्द फिर चौबेड़िया में ही रह गया। उसके लिए एक अलग कमरे का इंतजाम किया गया। स्कूल खोला गया। अंत तक प्राइमरी स्कूल के लिए सरकार की ओर से रुपये भी मिलने लगे। रसिक पाल ने ही यह सब कुछ कर करा दिया था।

लेकिन हाय, कहां गए वे रसिक पाल और कहां रहा उनका स्कूल। अब वह सब कुछ जाता रहा। वह नरनारायण चौधरी, वह हरनारायण चौधरी, वह नयनतारा, निखिलेश, कालीगंज की बहू, ये सब कौन कहां गए, यह जानने की जरूरत भी नहीं रही आज। रसिक पाल के दिए हुए उस कमरे में ही उनके दिन कटते हैं और उन्हीं के इस्टेट से ही उनके गुजारे का सामान आ जाता है। सुबह से रात और रात से सुबह तक कैसे, किस तरह से जो कट जाता है, इसका भी ख्याल सदानन्द बाबू को नहीं रहता। रसिक पाल के इस्टेट के पैसों से उनकी जिन्दगी चलती है। अकेले उन्हीं की नहीं, बहुतों की जिन्दगी चलती है। बहुत कुछ धर्मशाला जैसा। कभी के मास्टर साहब सदानन्द बाबू, यहां के बहुतेरों के मास्टर साहब हैं, सभी उन्हें मानते हैं। अतिथिशाला

जन आ जाता है और वे बंधे-बंधाए नियम पर चलते ह... अपने इसी जीवन की कहानी वह लिख जाएंगे। काफी पन्ने लिखे भी चुके। उस दिन वे फिर कापी निकालकर लिखने को बैठे।

लिखने लगे, "अब मैं घर में भी नहीं हूं, घर से बाहर भी नहीं। घर ही लिए पराया है, पराया ही अपना। मुझे कुछ चाहना नहीं, लिहाजा मेरा ने का पर्व भी सदा के लिए खत्म हो गया। आज, इतनी दूर से बचपन के नों की ओर देखकर दीर्घनिश्वास फेंकने के सिवाय करने को कुछ भी नहीं। न जीवन में जो कुछ किया, अच्छा करने के ख्याल से ही किया। दूसरों की लाई के अलावा और कुछ सोचा ही नहीं, लेकिन..."

इतने में दरवाजे पर दस्तक पड़ी।

लिखते-लिखते सदानन्द बाबू रुक गए। पूछा, "कौन ?"

बाहर से किसीने जवाब नहीं दिया। उन्होंने फिर पूछा, "कौन ?"

फिर भी कोई जवाब नहीं। सदानन्द बाबू अबकी उठे। उठकर दरवाजा खोलते ही उन्होंने देखा कि एक वृद्ध सज्जन खड़े हैं। प्रायः उन्हींके समवयस्क हाथ में एक पोटली।

आखिर सदानन्द बाबू ने पूछा, "किसे ढूंढ़ रहे हैं आप ?"

"आपका नाम सदानन्द चौधरी है ?"

सदानन्द बाबू ने कहा, "हां।"

"आपके पिता का नाम क्या हरनारायण चौधरी है ?"

सदानन्द बाबू ने फिर कहा, "हां !"

"आपका घर नवाबगंज है ?"

"जी हां।"

इसके बाद बिना कुछ बोले ही वह भला आदमी अंदर चला आया। बोला, "अजी महाशय, आपको मैं पिछले पन्द्रह वर्षों से खोजता फिर रहा हूं और आप यहां छिपे पड़े हैं..." कहते हुए वह चौकी पर बैठकर रूमाल से चेहरे का पसीना पोंछने लगा।

सदानन्द बाबू तब भी कुछ समझ नहीं पा रहे थे। बोले, "मैं तो आपकी बात कुछ समझ नहीं पा रहा हूं..."

"अजी महाशय, मेरा नाम हजारी बेलिफ है। मैं फौजदारी कचहरी से आ रहा हूं। आपके नाम से वारंट है। खून करके आप यहां आकर दुबक गए हैं, सोच रखा है कि किसीको पता ही नहीं चलेगा।"

सदानन्द बाबू तो अवाक् हो गए। बोले, "मैंने खून किया है ? आप कह क्या रहे हैं ! किसका खून ?"

वह आदमी जोर से हंस पड़ा। उसे जैसे सदानन्द बाबू की बातों में कोई बड़े मजे की चीज मिल गई।

बोला, "रुकिए भी। मैं आज इतने वर्षों से आपकी तलाश में हूं। आपके चलते तो मेरी नौकरी पर आ बनी है।"

उस आदमी के रंग-ढंग से सदानन्द बाबू कैसी बेचैनी-सी महसूस करने

लगे। बोले, "सुनिए मैं ठीक-ठाक समझ नहीं रहा हूं कि आप कह क्या रहे हैं..."

उसने कहा, "क्यों, मैं तो साफ-सीधे बंगला में ही बोल रहा हूं, आप खुद भी तो बंगाली ही हैं जनाब। आपका घर नदिया जिले के नवाबगंज गांव में है, आपके दादा का नाम नरनारायण चौधरी है, पिता का नाम हरनारायण चौधरी है। आप लोग नवाबगंज के जमींदार हैं, आप क्या समझते हैं कि मैं कुछ जानता नहीं हूं?"

सदानन्द बाबू उस समय तक भी अवाक् होकर उस भले आदमी का मुंह देख रहे थे। लगा, इस आदमी को जैसे उन्होंने पहले कहीं देखा है। वह आदमी मोटे झाड़न जैसे एक रुमाल से रगड़-रगड़कर पसीना पोंछ रहा था। ऐसा लगा कि यह बड़ी दूर से पैदल चलकर आया है।

उसे जैसे अचानक ही नजर आया। बोला, "अरे, आप खड़े क्यों हैं, बैठिए न। आपको तो कोई काम-काज नहीं है, खाते-सोते हैं और खुर्राटे भरते हैं। रसिक पाल का दत्तक बनकर मजे में बेफिक्र पड़े हैं..."

उसकी बातें सदानन्द बाबू को अच्छी नहीं लगीं। लेकिन उसे वह पी गए और बोले, "आपको मैंने जैसे कहीं देखा है, कहां भला?"

"मुझको और कहां देखिएगा, कचहरी में ही देखा होगा।"

"कचहरी में? कचहरी तो मैं कभी गया नहीं।"

"तो फिर कलक्टरी में देखा होगा। मैं कोर्ट में जाता हूं, कलक्टरी में जाता हूं, मुझे तो दुनिया में तमाम जगहें जाना पड़ता है जनाब! दुनिया में जिसने थोड़ी-बहुत जायदाद की है, मुझे उन सबके पास जाना पड़ता है। मेरा तो काम ही आसामी को कचहरी में हाजिर कराना है। जैसे आप। आप आसामी हैं, इसीलिए आपके पास आया हूं..."

फिर जरा रुककर बोला, "एक गिलास पानी पिलाएंगे, बड़ी प्यास लगी है..."

सदानन्द बाबू ने कहा, "आप बैठिए, मैं पानी लाता हूं..."

रसिक पाल के इस्टेट की सब व्यवस्था पक्की है। पहले और भी पक्की थी। उस समय रसिक पाल जीवित थे। कचहरी की पक्की बही में सबका नाम लिखा रहता था। आज कौन भोजन करेगा, उसका नाम क्या है, कितने आदमी भोजन करेंगे, ये लोग किस काम से चौबेड़िया आए हैं—हरि मुहर्रिर का आदमी यह सारा कुछ बही में लिखकर रखता था। रसिक पाल का पैसा जैसा था, उसका सदुपयोग भी वैसा ही होता था। स्कूल जिस दिन बंद हो गया, उस दिन रसिक पाल को मन में गहरा दुःख हुआ। लेकिन स्कूल के बंद हो जाने की वजह भी थी। इसमें कोई सन्देह ही नहीं कि रसिक पाल आदमी पक्का सूदखोर था, लेकिन उस आदमी को जिसने ठीक-ठीक पहचाना नहीं, वह उसे समझने में जरूर गलती

से भोजन आ जाता है और वे बंधे-बंधाए नियम पर चलते हैं। शांति से ही हैं। अपने इसी जीवन की कहानी वह लिख जाएंगे। काफी पन्ने लिखे भी जा चुके। उस दिन वे फिर कापी निकालकर लिखने को बैठे।

लिखने लगे, "अब मैं घर में भी नहीं हूं, घर से बाहर भी नहीं। घर ही मेरे लिए पराया है, पराया ही अपना। मुझे कुछ चाहना नहीं, लिहाजा मेरा पाने का पर्व भी सदा के लिए खत्म हो गया। आज, इतनी दूर से बचपन के दिनों की ओर देखकर दीर्घनिश्वास फेंकने के सिवाय करने को कुछ भी नहीं। इस जीवन में जो कुछ किया, अच्छा करने के ख्याल से ही किया। दूसरों की भलाई के अलावा और कुछ सोचा ही नहीं, लेकिन…"

इतने में दरवाजे पर दस्तक पड़ी।

लिखते-लिखते सदानन्द बाबू रुक गए। पूछा, "कौन ?"

बाहर से किसीने जवाब नहीं दिया। उन्होंने फिर पूछा, "कौन ?"

फिर भी कोई जवाब नहीं। सदानन्द बाबू अबकी उठे। उठकर दरवाजा खोलते ही उन्होंने देखा कि एक वृद्ध सज्जन खड़े हैं। प्रायः उन्हींके समवयस्क हाथ में एक पोटली।

आखिर सदानन्द बाबू ने पूछा, "किसे ढूंढ़ रहे हैं आप"

"आपका नाम सदानन्द चौधरी है ?"

सदानन्द बाबू ने कहा, "हां।"

"आपके पिता का नाम क्या हरनारायण चौधरी है ?"

सदानन्द बाबू ने फिर कहा, "हां !"

"आपका घर नवाबगंज है ?"

"जी हां।"

इसके बाद बिना कुछ बोले ही वह भला आदमी अंदर चला आया। बोला, "अजी महाशय, आपको मैं पिछले पन्द्रह वर्षों से खोजता फिर रहा हूं और आप यहां छिपे पड़े हैं…" कहते हुए वह चौकी पर बैठकर रुमाल से चेहरे का पसीना पोंछने लगा।

सदानन्द बाबू तब भी कुछ समझ नहीं पा रहे थे। बोले, "मैं तो आपकी बात कुछ समझ नहीं पा रहा हूं…"

"अजी महाशय, मेरा नाम हजारी बेलिफ है। मैं फौजदारी कचहरी से आ रहा हूं। आपके नाम से वारंट है। खून करके आप यहां आकर दुबक गए हैं, सोच रखा है कि किसीको पता ही नहीं चलेगा।"

सदानन्द बाबू तो अवाक् हो गए। बोले, "मैंने खून किया है ? आप कह क्या रहे हैं ! किसका खून ?"

वह आदमी जोर से हंस पड़ा। उसे जैसे सदानन्द बाबू की बातों में कोई बड़े मजे की चीज मिल गई।

बोला, "हकीम भी। मैं आज इतने वर्षों से आपकी तलाश में हूं। आपके चलते तो मेरी नौकरी पर आ बनी है।"

उस आदमी के रंग-ढंग से सदानन्द बाबू कैसी बेचैनी-सी महसूस करने

लगे। बोले, "सुनिए मैं ठीक-ठाक समझ नहीं रहा हूं कि आप यह क्या रहे हैं..."

उसने कहा, "क्यों, मैं तो साफ-सीधे बंगला में ही बोल रहा हूं, आप खुद भी तो बंगाली ही हैं जनाब। आपका घर नदिया जिले के नवाबगंज गांव में है, आपके दादा का नाम नरनारायण चौधरी है, पिता का नाम हरनारायण चौधरी है। आप लोग नवाबगंज के जमींदार हैं, आप क्या समझते हैं कि मैं कुछ जानता नहीं हूं?"

सदानन्द बाबू उस समय तक भी अवाक् होकर उस भले आदमी का मुंह देख रहे थे। लगा, इस आदमी को जैसे उन्होंने पहले कहीं देखा है। वह आदमी मोटे खाड़न जैसे एक रुमाल से रगड़-रगड़कर पसीना पोंछ रहा था। ऐसा लगा कि यह बड़ी दूर से पैदल चलकर आया है।

उसे जैसे अचानक ही नजर आया। बोला, "अरे, आप खड़े क्यों हैं, बैठिए न। आपको तो कोई काम-काज नहीं है, खाते-पीते हैं और खुर्राटे भरते हैं। रसिक पाल का दत्तक बनकर मज़े में बेफिक्र पड़े हैं..."

उसकी बातें सदानन्द बाबू को अच्छी नहीं लगीं। लेकिन उसे वह पी गए और बोले, "आपको मैंने जैसे कहीं देखा है, कहां भला?"

"मुझको और कहां देखिएगा, कचहरी में ही देखा होगा।"

"कचहरी में? कचहरी तो मैं कभी गया नहीं।"

"तो फिर कलक्टरी में देखा होगा। मैं कोर्ट में जाता हूं, कलक्टरी में जाता हूं, मुझे तो दुनिया में तमाम जगहें जाना पड़ता है जनाब! दुनिया में जिसने थोड़ी-बहुत जायदाद की है, मुझे उन सबके पास जाना पड़ता है। मेरा तो काम ही आसामी को कचहरी में हाजिर कराना है। जैसे आप। आप आसामी हैं, इसीलिए आपके पास आया हूं..."

फिर जरा रुककर बोला, "एक गिलास पानी पिलाएंगे, बड़ी प्यास लगी है..."

सदानन्द बाबू ने कहा, "आप बैठिए, मैं पानी लाता हूं..."

रसिक पाल के इस्टेट की सब व्यवस्था पक्की है। पहले और भी पक्की थी। उस समय रसिक पाल जीवित थे। कचहरी की पक्की बही में सबका नाम लिखा रहता था। आज कौन भोजन करेगा, उसका नाम क्या है, कितने आदमी भोजन करेंगे, ये लोग किस काम से चौबेड़िया आए हैं—हरि मुहर्रिर का आदमी यह सारा कुछ बही में लिखकर रखता था। रसिक पाल का पैसा जैसा था, उसका सदुपयोग भी वैसा ही होता था। स्कूल जिस दिन बंद हो गया, उस दिन रसिक पाल को मन में गहरा दुख हुआ। लेकिन स्कूल के बंद हो जाने की वजह भी थी। इसमें कोई सन्देह ही नहीं कि रसिक पाल आदमी पक्का सूदखोर था, लेकिन उस आदमी को जिसने ठीक-ठीक पहचाना नहीं, वह उसे समझने में जरूर गलती

ता ही जा रहा हूं, देख लेना, एक दिन सब ठीक हो जाएगा···"
लेकिन अंत तक ठीक नहीं हो सका। जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, छिप-छिप
कौन लोग तो गांव में आने लगे। अनपहचानी शक्लें। रात के अंधेरे में वे
ग गंग के किनारे गंज के होटल में व्यापारी बने रहे। उसके बाद एक दिन
नाएक रसिक पाल के यहां से एक ही साथ एक चीख उठी।.
रात काफी हो चुकी थी।
उसके बाद पुलिस आई। तहकीकात हुई। कई दिनों तक चौबेड़िया में
काफी हलचल रही। लोगों को पकड़-पकड़कर पूछताछ की गई। कई आदमियों
को गिरफ्तार भी किया गया। लेकिन अंत तक कोई किनारा नहीं हुआ।
जिस आदमी ने मामूली हालत से अपनी आर्थिक अवस्था की तरक्की करके दस
आदमियों के गुजारे का इंतजाम किया था, उसका खात्मा करके देश को पाप
से मुक्त किया गया।
स्कूल उसके बाद भी कुछ दिनों तक चला था। लेकिन पड़ोस के ही
गांव में एक दूसरा स्कूल खुल गया। एक दिन वे लोग सारे लड़कों को बहका-
कर ले गए।
रसिक पाल के लड़के फकीर पाल ने कहा, "मास्टर साहब, तो अब
क्या करें?"
सदानन्द बाबू ने कहा, "अब क्या करोगे! अब स्कूल को बन्द कर दो और
मुझे भी अब छुट्टी दो···"
फकीर ने कहा, "मगर आप जाएंगे कहां?"
सदानन्द बाबू ने कहा, "मैं और कहां जाऊंगा, जिधर ये दोनों आंखें
जाएंगी, उधर ही जाऊंगा। आखिर तुम्हारे कंधे पर बैठा-बैठा कब तक टुकड़े
तोड़ता रहूंगा?"
फकीर ने कहा, "सो नहीं होने का मास्टर साहब! मुझे मालूम है कि
जाने के लिए आपकी कोई जगह नहीं है···"
सदानन्द बाबू ने कहा, "ऐसा न कहो फकीर, मनुष्य समाज में चाहे जगह
न हो, जंगल में जानवरों के समाज में तो जगह होगी ही।"
फिर भी फकीर ने सारी व्यवस्था कर दी थी। रसिक पाल के किए सभी
कामों को फकीर चलाए ही जा रहा है। बाहरी मकान की परली तरफ
अतिथिशाला तो पहले से थी ही। कभी वहां कोई रहता था, कभी नहीं भी
रहता था। तीर्थ के गुरु-पंडे आते तो उन्हें अतिथिशाला के ही महल में ठहराया
जाता था। उनके लिए जैसा इंतजाम होता, मास्टर साहब के लिए भी वैसा
ही इंतजाम किया गया।
सदानन्द बाबू तभी से और कहीं नहीं जा सके। चौबेड़िया में ही रह गए।
हरि मुहर्रिर पहले ही दिन समझ गया था। पूछा था, "अच्छा, मास्टर
साहब, यह नयनतारा कौन है?"
पहले तो सदानन्द बाबू जरा अवाक् से हो गए थे। बोले, "क्या बात
मुहर्रिर जी, नयनतारा के बारे में आपने कैसे जाना?"

ही होता था। जोकि घर में बस वही चार ही जने थे। नरनारायण
धरी, पिताजी, मां और सदानन्द। बहुत-से लोग नाम को संक्षिप्त करके
कारा करते थे—सदा!

चौधरी परिवार में नई बहू आई है। रेल-बाजार से पालकी आ रही है।
वर-वधू को रेलगाड़ी से उतारकर पालकी पर सवार कराया गया। छः कोस
का रास्ता। ऊंचा-नीचा, ऊबड़-खाबड़।

चौधरी जी का साला साथ था। दुल्हा-दुल्हिन को वही अपने साथ ले
आ रहा था। उसके साथ आ रहा था नरनारायण चौधरी का गुमाश्ता—
बिलकुल सामनेवाली पालकी पर। और सबसे आगे था—दीनू।

गुमाश्ता आगे-आगे चल रहा था। दूर से ही लोग कैलास गुमाश्ता को
नमस्ते कर रहे थे। वे सब एक-एक बस्ती में पहुंचते कि वहां की बहू-बेटियां,
लड़के-बूढ़े सब लपककर गोड़ लगा देते, "गुमाश्ता जी, ज़रा हम बहूरानी को
देखते।"

कैलास गुमाश्ता कहता, "अरे ना बाबा, अभी नहीं। कल चौधरी-भवन
में बहूरानी को सजा-गुजाकर तुम लोगों को दिखाएंगे।"

"हाय राम, तो क्या अभी सजी-संवरी नहीं हैं?"

"हैं क्यों नहीं? मगर वह कृष्णनगर से रेल पर आई हैं, पसीने से नहा
गई हैं, ऐसे में भी कोई देखता है भला! कल ढंग से सजी-संवरी रहेगी,
बहूरानी को आकर देखना..."

रास्ते-भर यही हाल। सबको समझाते-समझाते ही कैलास गुमाश्ता की
नाक में दम।

पीछे की पालकी से मुंह निकालकर प्रकाश मामा चिल्लाया, "कदम बढ़ाके
—दीनू, ज़रा कदम बढ़ाके..."

ब्याह जैसे प्रकाश मामा का ही हो। उसकी साज-पोशाक की बहार दूल्हे
को भी मात कर रही थी। ब्याह की इस धूमधाम में कई दिनों से जैसे उसकी
खटनी का ठिकाना नहीं था, वैसे ही उत्साह की भी कमी नहीं थी। बड़ी
चहल-पहल के साथ आखिर वर-वधू की पालकी नवाबगंज के चौधरी के
प्रांगण में पहुंची। सारी बस्ती के लोगों ने आकर भीड़ लगा दी।

कैलास गुमाश्ता चिल्लाने लगा, "अरे बाबा हटो भी, हट जाओ। ऐसे
तो बहू का दम ही घुट जाएगा, हवा लगने दो..."

प्रकाश मामा की भी न पूछिए। चूनटदार धोती और ढीले कुरते में वह
भी पसीने-पसीने। वह भी बोल उठा, "अरे भाई, उधर जाओ, उधर। यहां
पर भीड़ मत लगाओ।"

गौरी बुआ को और धीरज नहीं रहा। उसने किसीकी एक न सुनी
वह दौड़कर पालकी के सामने जा खड़ी हुई और ज़रा झुककर घूंघट हटा
बहू का मुखड़ा देखा।

नयनतारा भी चौंकी। यह फिर कौन आई? सास?

बहू को देखकर गौरी बुआ की खुशी का इंतहा नहीं। वह ज़ोर से चि

उठी, "अरी ओ, सब ज़ोर-ज़ोर से उलू-लू कर, ज़ोर से···"

नयनतारा के रूप की बहार देखकर सचमुच ही सारे गांव के लोग अवाक् रह गए। ऐसा भी रूप होता है। गज़ब ! दुतल्ले के कमरे में नरनारायण चौधरी उस समय लकवा से लाचार पड़े थे। उनके एकमात्र पोते की बहू आई है। पहले उन्हींको प्रणाम करेगी।

"बहूरानी, चलो, पहले बड़े मालिक को प्रणाम कर लो···"

नरनारायण चौधरी के बहुत दिनों का अरमान पूरा होने जा रहा था। उन्होंने अभिशाप बहुत चुने। जाते-जाते अपने पोते की बहू का मुंह देखना नसीब हुआ। अब उनकी वंश-परम्परा युगों तक चलती रहे। नवाबगंज के चौधरी परिवार के गौरव में और भी चार चांद लगें। अनागत काल के लोग यह कहें कि इस वंश के प्रतिष्ठाता नरनारायण चौधरी मनुष्य समाज में सचमुच ही एक नरनारायण थे। वह दानवीर थे, कर्मवीर थे, देवता-ब्राह्मण में भक्ति रखनेवाले थे, महापुरुष थे। यही उनका पोता है। इस सदानन्द चौधरी के भी एक दिन संतान होगी, उस संतान के भी संतान होगी। इसी तरह से संतान के बाद संतान के जन्म से शाखा-प्रशाखा फैलेगी और पुरुषानुक्रम से उस वंशावली से ही वे अमर रहेंगे। इस उम्र में, इस पक्षाघातग्रस्त अवस्था में यही उनकी एकमात्र कामना है, यही उनकी एकमात्र सांत्वना है —यही उनका एकमात्र सुख है !

इतने में कैलाश गुमाश्ता आया। आकर उसने खबर दी, "मालिक, कालीगंज की बहू आई है···"

"कौन आई है ?"

"जी कालीगंज की बहू।"

"लेकिन कालीगंज की बहू आज अचानक क्यों आई ? तुम लोगों ने क्या उसे न्योता दिया था ?"

जी नहीं ! उसे न्योता क्यों भेजने लगा ? आपने तो न्योता भेजने को मना किया था।"

"तो उसे पता कैसे चला कि आज मेरे पोते का ब्याह है ?"

"सो तो नहीं जानता, मगर नई बहू का मुंह देखने के लिए एक साड़ी और मिठाई भी लेती आई है। नई बहू को देखना चाह रही है···"

उस समय सारे घर में धूमधाम की आबहवा थी। विशुद्ध गाय के घी में पूरियां निकाली जा रही थीं। सारा घर घी की खुशबू से महक रहा था। दूर-दराज के सगे-सम्बन्धी लोग पहुंच गए थे। और ऐसे समय में भला कालीगंज की बहू को आना चाहिए !

नरनारायण चौधरी ने पूछा, "बंशी ढाली कहां है ?"

"बुला दूं ?"

"हां, बुला दो। और देखो, इस समय मेरे कमरे में कोई नहीं आए। तुम दरवाज़े पर मुस्तैदी से निगरानी रखना। जाओ···"

बंशी ढाली आया। मालिक के घर में शादी, उसने पहनावे के कपड़े

वा लिए थे। सिर के बालों को तेल चुपड़कर चकमक करके बड़े यत्न
संवारा था।

वंशी के सामने आते ही बूढ़े मालिक ने कैलास गुमाश्ता की ओर निगाह फेर के कहा, "कालीगंज की बहू जो कुछ भी ले आई है, साड़ी, मिठाई सब लेना, बड़े आदर से लेना। समझ गए?"

"उसे बहू दिखाएंगे?"

"जरूर। और देखो, उसकी खातिरदारी में कोई कमी न रहे। घर के सगे-सम्बन्धियों, मेहमानों की जैसी खातिर की जाती है, कालीगंज की बहू की भी वैसी ही खातिर करना। कहीं भी कोई कोर-कसर नहीं हो। समझे?"

"जी, बहुत खूब।"

"तो तुम बाहर जाओ। बाहर ही खड़े रहना। देखना, इधर कोई न आए।"

कैलास गुमाश्ता के जाते ही नरनारायण चौधरी ने वंशी ढाली की तरफ देखा। कहा, "वंशी, तूने तो पहले बहुत बार मेरी इज्जत बचाई है। एक बार और बचा सकेगा?"

"बेशक हुजूर। आप जब जो हुक्म देंगे, बजा लाऊंगा। आप कहिए तो सही, किसकी गरदन से सिर उतार लाना है..."

मालिक ने कहा, "तो कमरे का दरवाजा बन्द कर दे, आज तुझपर एक जिम्मेदारी सौंपूंगा..."

वंशी ढाली ने किवाड़ के पल्ले भिड़काकर हुड़का बन्द कर दिया। वं[...] करना था कि नवाबगंज के चौधरी परिवार के झाड़-फानूस की सारी बत्तियां मानो एक ही फूंक से बुझ गईं और चारों ओर घुप्प अंधेरा हो गया। मालिक नरनारायण चौधरी का एकमात्र पोता, उनके इकलौते बेटे हरनारायण चौधरी का इकलौता बेटा सदानन्द चौधरी उस समय उत्सव-अनुष्ठान, धूमधाम के घटाटोप से बिलकुल अलग हट आया था। एक दिन पहले कृष्णनगर के एक मकान में एक अनचीन्ही लड़की से उसका ब्याह हुआ, आमंत्रित अतिथि-अभ्यागत लोग भूरिभोज से तृप्ति की डकार लेते हुए अपने-अपने घर लौट गए। कोहबर की चारदीवारी के अंदर उसने नई बहू के मुंह की ओर एकटक देखा। सोचा, यह मैं जिसे बहू बनाकर अपने घर लिए जा रहा हूं। यह भी क्या दुनिया के दूसरे दस लोगों की तरह यांत्रिक मानसिकता का एक अति साधारण प्रतीक है। यह भी क्या मशीनी खिलौने की तरह धागा खींचते ही हाथ-पांव-सर हिलाएगी, बटन दबाने पर खाएगी-सोएगी और मशीनी तरीके से केवल बच्चों को जन्म देकर चौधरी वंश की जनसंख्या बढ़ जाएगी।

उस रोज कालरात्रि थी। गांव के लोग बहू को देखकर दलों में अपने-अपने घर की ओर जा रहे थे। सदानन्द बाहरी दालान के अंगने के पास से नंदीमंडप की ओर जा रहा था। बड़ी ही एकांत और सुनसान जगह। उसे एकाएक लगा, सामने के नंदीमंडप के पीछे की चोर-कोठरी के भीतर से कोई जैसे आर्तनाद कर उठा, "आह..."

गला किसी औरत का लगा। एक दबी हुई चीख। लेकिन गले को फाड़कर निकली हुई वह चीख अचानक ही बीच रास्ते में जैसे रुक गई। ऐसा लगा किसीने मानो उसका गला दबा दिया है।

सदानन्द काठ मारा-सा कुछ देर वहां खड़ा रहा। उसके बाद चोर-कोठरी से ऐसी आवाज आई, जैसे दो आदमी लड़-से रहे हैं। सदानन्द को कैसा तो संदेह हुआ। वह दौड़ता हुआ चोर-कोठरी की तरफ गया। देखा, सामने के गहरे अंधेरे से कोन तो निकला आ रहा है।

सदानन्द उस आदमी को पहचान नहीं सका। बोला, "कौन? कौन है तू? कौन? चोर-कोठरी में से कौन उठा?"

पहले तो किसीने जवाब नहीं दिया। चारों ओर अंधेरा। उधर, विवाहोत्सव वाले घर की रोशनी से पश्चिमी हिस्सा झलमल कर रहा था। पूरब-उत्तर कोने में ही अंधेरा ज्यादा था। चंडीमंडप पूरब की ओर है। नरनारायण चौधरी ने जिन दिनों नवाबगंज में जमींदारी की स्थापना कर ली, उनके हाथों बेशुमार रुपये आने लगे। लेकिन रुपया आने से क्या होता है, उस आदमी का व्यवहार वही पहले वाला रह गया। कभी, जब वह काली-गंज में गुमाश्तागिरी करते थे, तब जैसे थे, अपनी जमींदारी की स्थापना करने के बाद भी वैसे ही रहे। यह नवाबगंज कभी कालीगंज के ही अंदर था। उस समय नरनारायण चौधरी यहां एक इकमंजिले मकान के बैठक में बैठकर गुमाश्तागिरी करते थे। लेकिन धीरे-धीरे नवाबगंज के उस इकतल्ले मकान के सामने एक विशाल दुमंजिला मकान खड़ा हो गया। और तब, वह जो इकतल्ला मकान था, वही चंडीमंडप बन गया। आधे में रहा चंडीमंडप और आधा हिस्सा बन गया चोर-कोठरी। उस चौथाई हिस्से का कभी कोई व्यवहार ही नहीं होता था। साल में ज्यादा समय उसमें ताला ही पड़ा रहता था। सामने एक खूब घना गाब का पेड़ था, जो दिन में भी उस घर को अंधेरा किए रहता था। रात को अंधेरे में मिलकर उसका चेहरा एकबारगी एकाकार हो जाता।

वह आदमी तब तक बिलकुल सामने आ गया।

सदानन्द अपना मुह उस आदमी के मुह के बिलकुल करीब ले गया। बोला, "कौन? कौन है रे तू? बोलता क्यों नहीं है?"

"जी, मैं हूं!"

गले की आवाज से सदानन्द ने पहचान लिया। बंशी ढाली।

"बंशी ढाली?"

"जी हां, नन्हे बाबू!"

"यहां इस अंधेरे में अकेले क्या कर रहा था तू? सो गया?"

बंशी ढाली ने कहा, "जी, कच्ची रसोई खा चुका हूं। जरा देर बाद पक्की खाऊंगा।"

वाजिब है। बड़े मालिक के यहां उत्सव, सब लोग तीन-चार दिनों तक रोज चार-चार बार भर-भर पेट खाएंगे। ऐसा ही रिवाज है। जमीन-जायदाद

दखल के मामले में जब कहीं कोई झमेला होता है, तो वैसे में भार बंशी ढाली को ही पड़ता है। बदमाश रैयत को सबक सिखाने की जिम्मेदारी भी बंशी ढाली को ही दी जाती है।

सदानन्द ने कहा, "पक्की रसोई की भी पंगत बैठ गई, जा…"

बंशी ढाली उस बात का जवाब न देकर दूसरी ही बात पर चला गया। भरमुंह हंसकर बोला, "आपकी बहू देखने में बहुत ही सुन्दर हुई हैं नन्हे बाबू, बिलकुल मां दुर्गा जैसी…"

लेकिन बंशी ढाली की हंसी से सदानन्द का मन नहीं बहला, "होगी, तू लेकिन जाकर।"

बंशी ढाली तो चला गया, मगर सदानन्द के मन का संदेह नहीं गया। बंशी ढाली के जाते ही वह चोर-कोठरी की तरफ और जरा बढ़ गया। बाहर से कोठरी के दरवाजे पर ताला झूल रहा था। तो फिर चीख किधर से आई? चीखकर रोई कौन?

मानव-इतिहास में इस तरह से कितनी ही बार कितने बंशी ढाली चुपचाप कितने जमींदारों की चोर-कोठरी में दाखिल हुए हैं और बिना दाग का मुखौटा लिए कितनी ही बार चोर-कोठरी से बाहर निकल आए हैं—इसका लेखा किसी भाषा के इतिहास में लिखा नहीं होता। लेकिन हिसाब की बहि बाघ खा गया, ऐसी बात जैसे कहीं लिखी नहीं होती, असली आसामी के पकड़े जाने की नजीर भी वैसे ही किसी भी अदालत के नत्थी-पत्तर में नहीं है। इसलिए कि असली आसामी पकड़ में नहीं आता। नकली आसामी को सामने ठेलकर असली आसामी सदा ही ओट में छिपे रहते हैं। उनको कभी सजा नहीं होती। ऐसे लोग रायबहादुर होते हैं, रायसाहब होते हैं, संगमर्मर की मूर्ति बनकर रास्तों के मोड़ों पर स्थापित होकर वे शहर की शोभा बढ़ाते हैं। संभवत: कभी एक दिन नवाबगंज के नरनारायण चौधरी भी ऐसी शोभा हो उठते, रायबहादुर होते, रायसाहब होते, पद्मभूषण होते, पद्मश्री होते। इस युग में पैदा हुए होते तो होने की कोशिश भी शायद करते। लेकिन भाग्य देवता के जाने किस एक अलक्ष्य नियम से अचानक एक दिन आसामी पकड़ा गया। और चूंकि पकड़ा गया, इसीलिए रात जग-जगकर उनके वंशधर पर यह उपाख्यान लिखने की जरूरत मेरे लिए अनिवार्य हो गई।

यह संदेह और मजबूत हुआ उसके बहुत देर बाद। उत्तर-पूरब से घूम कर फिर पूरब की ओर से भीतर महल में आना होता है। कल यह सारा मकान मेहमानों से भर जाएगा। कल से ही भीड़ शुरू हो गई है। बीच सिर्फ एक दिन…कालरात्रि। उसके बाद फूलशय्या।*

---

*सुहागरात—उस रात उधर कमरा, सेज, वधू—सबको फूलों से सज

हठात् गौरी बुआ ने सदानन्द को देख लिया। बोली, "हाँ रे, तू यहाँ है? और उधर जो सभी तुझे ढूंढ रहे हैं, बेटे। रात-बिरात में अंधेरे में क्यों घूमता फिर रहा है? गाब-गाछ के नीचे क्या कर रहा था?"

उधर दुतल्ले के कमरे में हरनारायण अपने पिताजी के पास खड़े थे। पिताजी से पूछा, "बहू कैसी लगी?"

बूढ़े मालिक ने कहा, "ये बातें अभी रहने दो। तुम्हारे समधी-समधिन को लाने के लिए कौन जाएगा?"

लड़के ने कहा, "प्रकाश को जाने के लिए कहा है।"

"प्रकाश? प्रकाश कौन है?"

"मेरा साला।"

"तुम्हारा साला? तुम्हें फिर साला कब हुआ? साला तो तुम्हें था नहीं। बहूरानी ही तो समधी जी की इकलौती बेटी है।"

हरनारायण ने कहा, "जी मेरा अपना साला नहीं। आपकी बहूरानी का ममेरा भाई। मामा का लड़का···"

"ओ!"

बूढ़े चौधरी ने जैसे राहत की सांस ली। लड़के के साले की सुनकर ही चौंक उठे थे। चौंक उठने की ही बात थी। महज एक ही नीयत से उन्होंने इतना सोच-विचार कर बेटे का ब्याह किया था। नीयत यह कि घर में सिर्फ बहू ही न आए, उसके साथ आधा राज भी आवे। नहीं-नहीं, आधा राज कहना गलत होगा। उन्होंने जब ब्याह बेटे का किया, तो यह जान-सुनकर ही किया कि उसे काफी सम्पत्ति मिलेगी।

"चक्रवर्ती बाबू कब आ रहे हैं?"

"कल आने की बात है। रजबअली से कह रखा है, रेल-बाजार गाड़ी ले जाएगा, वहां मौजूद रहेगा।"

भागलपुर में बहूरानी के बाप की जो जायदाद है, वह कुछ नहीं तो पांच-छः लाख की है। फिर चौधरी जी की अपनी सम्पत्ति नवाबगंज की कुल मिलाकर और भी कई लाख। जब वह इस संसार से विदा होंगे, तो यह सोचकर ही निश्चित होकर जाएंगे कि उनकी वंशधारा और उनके वंश का ऐश्वर्य, जब तक चांद सूरज है, अक्षय, अव्यय होकर रहेंगे। जब उनका लड़का भी इस संसार में नहीं रहेगा, तो पोता रहेगा। वही पोता नरनारायण चौधरी के खानदान की विजय पताका को सदा-सदा आसमान में ऊंचे उड़ाता रहेगा।

दुमंजिले के एक मकान में पंगु होकर वह पड़े हैं तो क्या हुआ, उनकी नजर हर ओर है। आरम्भिक जीवन उन्होंने एक जमींदार के यहां गुमाश्ते की नौकरी करके बिताया। पैसा किसे कहते हैं, यह उन्होंने तभी से समझा। पैसे की क्या कीमत है, यह उन्होंने उसी समय से पहचानना सीखा था। उन्होंने उसी समय समझ लिया था, इफरात पैसा न हो, तो जिन्दा रहने का कोई मजा नहीं। इसीलिए उन्होंने उसी समय से पैसे की साधना में मन

ही सदानन्द की दोनों आंखें पत्थर हो जातीं। दादाजी के पास जितने लोग आते, अपना सर्वस्व उसीमें डाल देते। धीरे-धीरे वह सब जमा होकर दादाजी के संदूक में पहाड़ हो जाता। और दादाजी उलटा ही कहा करते, "रुपया कहां है मुझे? कहां है रुपया? मुझे क्या रुपयों का पेड़ है? मैं क्या रुपयों की खेती करता हूं?"

कालीगंज की बहू कहती, "लेकिन मेरे रुपये तो बकाए के हैं नारायण!"

"बकाए के हों, मगर कहते ही क्या देने होंगे?"

"लेकिन तुमने तो मुझे आज आने को कहा था?"

"आने को कहा था, सोचा था, रुपये होंगे। अभी देख रहा हूं, रुपये नहीं हैं।"

अचानक पास से सदानन्द बोल उठा, "नहीं दादाजी, रुपये आपके पास हैं। मैंने देखा है, आपके संदूक में तो बहुत रुपया है।"

बूढ़े चौधरी ने उलटकर देखा, उनका पोता जाने कहां कब से आकर उन लोगों की बातें सुन रहा था। बोले, "अरे ऐ दीनू, तू कहां गया? इसे यहां क्यों आने दिया? दीनू···"

दीनू आकर झटपट सदा को हाथ पकड़कर खींच ले जाता। सदा लेकिन जाना नहीं चाहता। दीनू की खींचातानी से बाहर जाते-जाते भी कहता, "आप झूठ कह रहे हैं दादाजी, आप झूठे हैं झूठे···"

और किसी वक्त कालीगंज की बहू जैसे आती, वैसे ही लौट जाती।

सदानन्द पालकी के पीछे-पीछे दौड़ता, "ओ कालीगंज की बहू, कालीगंज की बहू, मेरे दादाजी झूठे हैं, तुमसे उन्होंने झूठ कहा, दादाजी के बहुत रुपया है, संदूक में बहुत पैसा है···"

दौड़ते-दौड़ते वह लेकिन ज्यादा दूर नहीं जा पाता। दौड़कर दीनू उसे पकड़कर हवेली में ले जाता। और, पालकी रास्ते से नदी के घाट की ओर चली जाती। फिर नदी पार करके कोसों दूर—सीधे कालीगंज।

बहुत दिन पहले की बातें हैं ये। मिडिल पास करके सदानन्द किशनगंज के रेल-बाजार के स्कूल में पढ़ने गया। वहां से पास भी किया। उसके बाद कालेज। कालेज से बी० ए० पास भी किया। उसके बाद ब्याह। यह उसी ब्याह के दूसरे दिन की घटना है।

गौरी बुआ ने कहा, "इधर सब लोग खुशी मना रहे हैं। घर में नई बहू आई है, और तू क्या तो यहां अंधेरे में घूम रहा है। आ, इधर आ···"

यह कहकर सदानन्द को खींचती हुई वह भीतर आंगन की ओर ले चली। वहां उस समय वास्तव में बड़घराने घर की धूमधाम चल रही थी। रोशनी के मारे दिन-सा हो गया था वहां। इस-उस गांव के खेत-मजूरे पकौड़े खाने बैठे थे। असली आनंद तो उन्हीं लोगों का था। मालिक के इकलौते पोते

...दाह तो दरअसल उन्हीं लोगों का जश्न था । ये लोग कई दिनों तक ...गे, उनके घर में कई दिनों तक रसोई-पानी बंद रहेगा । दिन में खाएंगे, ... रात को भी खाएंगे । प्रकाश मामा खुद सबको दही परोस रहे थे । ...े पर तौलिया, कमर में गमछा । मुंह में लावा फूट रहा था । कह रहे ... "खाओ-खाओ, पेट भर कर खाओ सभी..."

हठात् उनकी नजर सदानन्द पर पड़ी और बोल उठे, "अरे ! लहू कैसा ? ...री गंजी में लोहू क्यों...।"

—लहू—

बाकी लोगों ने भी देखा । बोले, "सच तो ! लहू कहां से आया ? इतना लहू आया कहां से ?"

सदानन्द ने भी देखा, उसकी गंजी में सचमुच ही लहू लगा था । इतना लहू आया कहां से ? उसके हाथ में भी लहू लगा था ।

अब गौरी बुआ ने भी गौर किया, "अरे ! लहू कैसे लगा ?"

एकाएक मानो चारों ओर से प्रश्न उठा, लहू ! यह कैसा लहू ! आकाश-वातास, अंतरिक्ष, सब जगह से एक साथ ही आंधी की तरह प्रश्न आने लगा, लहू, लहू ! दुतल्ले से नरनारायण चौधरी ने पूछा, "लहू ! लहू !" हरनारायण चौधरी ने उसके करीब में खड़े होकर देखा । बोले, "इतना लहू कहां से आया ?" दीनू दौड़ता हुआ आया, "यह क्या नन्हे बाबू, यह लहू काहे का है ?" कैलास गुमाश्ता ने भी अच्छी तरह से देखा, "वही तो ! लहू कैसा ?" रजबअली खाने में मशगूल था । वह भी बोल उठा, "लहू !" सदानन्द के अतीत ने पूछा, "लहू !" सदानन्द के वर्तमान ने पूछा, "लहू !" सदानन्द के भविष्य ने पूछा, "लहू !" सदानन्द की शिक्षा-दीक्षा, अस्तित्व तक ने पूछा, "लहू !" इतिहास, भूगोल, समाज—परलोकगत पूर्वज और इहलोक के उत्तर पुरुष सबने एक ही साथ आंधी-सी उठा दी—"लहू-लहू-लहू !!!"

एकाएक गणेश की नजर मास्टर साहब पर पड़ गई ।

"...अरे, मास्टर साहब ! आप यहां ? और ये आपके लिए मारे सोच के मरे जा रहे हैं । आप उन्हें घर में बिठा गए थे..."

सदानन्द ने हजारी बेनिफ की तरफ देखा । अब मानो उन्हें सब याद आया । बोले, "मैं आपके लिए पानी लेने आया था, मगर गिलास नहीं पा रहा था..."

गणेश ने कहा, "आप ढूंढ़कर गिलास कैसे पाएंगे ? आपने क्या कभी अपने हाथ से ढालकर पानी पिया है ? जाइए, आप कमरे में जाइए, मैं पानी ला देता हूं..."

जो गिलास ढूंढ़ने में सदानन्द बाबू की रात बीत गई, वही गिलास ढूंढ़कर पानी ला देने में गणेश को एक मिनट भी नहीं लगा ।

पानी पीकर हजारी मानो जरा शीतल हुआ। बोला, "खैर, अब देर नहीं। चलिए जनाब! पांच कोस रास्ता चलना है। समय रहते ही चल पड़िए…"

सदानन्द बाबू ने कहा, "आज ही जाना पड़ेगा?"

हजारी बेलिफ ने कहा, "और नहीं तो क्या! मेरे पास पंद्रह साल से आपके नाम वारंट पड़ा है और आप पूछ रहे हैं, आज ही जाना पड़ेगा? अजी साहब, हाकिम को खबर कर दूं तो लोग हथकड़ी पहनाकर ले जाएंगे, यह अच्छा लगेगा? उससे अच्छा है कि चले-चलो मेरे साथ चलिए, ज्यादा झमेला नहीं होगा। मैं फिजूल का झमेला पसंद नहीं करता।"

सदानन्द बाबू ने पूछा, "मगर मैंने कसूर कौन-सा किया है कि मेरा वारंट निकला है? वादी कौन है?"

हजारी ने कहा, "वादी और कौन होगा? पुलिस!"

"और मेरा अपराध?"

"अपराध की बात पूछते हैं? हरनारायण चौधरी का नाम सुना है?"

"क्यों नहीं? वह तो मेरे पिता हैं!"

"आपने उनका खून नहीं किया है?"

"खून? मैंने? मैंने अपने पिता का खून किया है?"

"जी हां जनाब, हां! और सिर्फ इतना ही? आपने तहविल से आठ लाख रुपये का गबन किया है, कोर्ट के पास इसका भी सबूत है…"

"आठ लाख रुपये का गबन। कह क्या रहे हैं आप?"

"और नयनतारा? नयनतारा को पहचानते हैं?"

"हां।"

हजारी बेलिफ ने कहा, "उसका सत्यानाश किसने किया है?"

"उसका सत्यानाश हुआ है? किसने सत्यानाश किया उसका? क्या सत्यानाश हुआ है?"

हजारी ने कहा, "आपके अनजानापन बने रहने से क्या होगा, मुंह से सिर्फ पानी डालकर नहीं पी सकते, लेकिन साहब, कोर्ट को आपकी हरकतें मालूम हैं। आज पंद्रह साल से आपका वारंट घूम रहा है और आप यहां साधु बने बैठे हैं छिपकर। कैसी हरकत है कहिए तो भला!"

सदानन्द बाबू कुछ देर स्तब्ध रहे, जैसे उनके मुंह से अब बोली ही नहीं। बोले, "तो मैं आसामी हूं?"

हजारी ने कहा, "आसामी नहीं होते, तो आपके नाम वारंट क्यों निकला? कहा, और किसीके नाम तो वारंट नहीं निकलता। आपने सोच रखा है, आप डूबकर पानी पीते रहेंगे, किसीको इसकी खबर तक नहीं होगी। तो फिर आप ही कहिए, आखिर यह कोर्ट-कचहरी काहे को बनी है? और फिर अभी हुआ क्या है! यह तो महज शुरुआत है…"

"यानी?"

हजारी ने कहा, "कवि-गान नहीं सुना है? पहले होती है शुरुआत,

कहते हैं 'महड़ा' । 'महड़ा' से शुरू और उसके बाद 'चितेन' ।
'चितेन' में ही तो मजा है । उसके बाद 'पर-चितेन' । इसमें और भी
। और अंत में होता है 'अंतरा' । पहले छोटे कोर्ट में मामले की शुरुआत
। उसके बाद वह मामला बड़े कोर्ट में जाएगा । उसी समय तो मजा
एगा ।"

सदानन्द बाबू ने जरा सोचकर कहा, "आप मेरी एक बात रखेंगे ?"

"कौन-सी बात ?"

"मुझे दो-चार दिन का समय दीजिएगा ?"

"दो-चार दिन ?"

"हां ! मैं जरा सुलतानपुर जाकर देख आऊंगा कि वास्तव में मैंने हरनारायण चौधरी का खून किया है या नहीं । देख आऊंगा कि मैंने आठ हजार रुपये का गबन किया है या नहीं । उसके बाद एक बार ज़रा मैं नवाबगंज जाऊंगा । आपने नयनतारा की बात कही न । लेकिन मैंने तो उसका कोई नुकसान नहीं किया है । मैंने तो सदा उसका भला करने की ही कोशिश की है । मैं उसको देखने के लिए भी एक बार नैहाटी जाऊंगा ।"

"और मैं ? मैं क्या यहां बैठकर जम्हाई लेता रहूंगा ? आप कहीं भाग निकलें ? आपपर अब साहब मुझे विश्वास नहीं है ।"

सदानन्द बाबू ने कहा, "भागना चाहता, तब तो पहले ही भाग जाता [illegible] बाबू ! और यह देखिए न, मैं घर-गिरस्ती छोड़कर चौबेड़िया भाग आया हूं, लेकिन जिन्दगी की जिल्लतों से रिहाई मिली क्या ? यह भी तो एक जेलखाना ही है । यह जिन्दगी ही तो मेरे लिए एक जेलखाना है । इस जेलखाने से दूसरे एक जेलखाने में जाऊंगा, बस न ! मैं जेलखाने से नहीं डरता । मगर मैं यह जानना चाहता हूं कि मैंने अपराध क्या किया है ! समझना चाहता हूं कि कौन-सा पाप किया है ! देखना चाहता हूं कि मैंने किसका क्या नुकसान किया है, किसका क्या सत्यानाश किया है ! मैं अपनी आंखों यह जांच लेना चाहता हूं, अच्छी तरह से कि मेरी इतनी चेष्टा, इतना अध्यवसाय, इतना त्याग क्यों इस तरह से झूठा हो गया, किसने मेरी सारी इच्छाओं को इस तरह से विफल कर दिया ? असल में बात क्या है ?"

"और मैं ?"

"आप भी मेरे साथ चलिए । मेरे पीछे आपने पंद्रह साल बरबाद किया है, अब और दो दिन बरबाद नहीं कर सकेंगे ?"

साथ लेने लायक कुछ था नहीं । फिर भी यह-वह कुछ लेना पड़ा । सदानन्द बाबू निकले । उनके पीछे वह भला आदमी भी चला । बोला, "[illegible] गणेश, आपने मुझे यह किस झमेले में डाला साहब ! चलिए-चलिए, कदम बढ़ाकर चलिए ।"

गणेश की नजर पड़ी, तो वह दौड़ा आया । पूछा, "कहां जा रहे हैं मास्टर साहब ? जा कहां रहे हैं ?"

सदानन्द बाबू ने कहा, "तुम हरि मुहर्रिर जी को कह देना गणेश कि दो

दिनों के लिए मैं जरा बाहर जा रहा हूं।"

"दो दिन के बाद फिर आ रहे हैं न ?"

सदानन्द बाबू बोले, "उसका क्या ठिकाना ! तमाम जिन्दगी इतने हिसाब से चलने के बाद भी जब एक दिन सभी हिसाब बेहिसाब हो गया, तो निश्चित रूप से कुछ कहने का भरोसा नहीं होता। मगर लौट आया, तो तुम लोग तो देख ही पाओगे…"

इतना कहकर उन्होंने गंगा के घाट की ओर कदम बढ़ा दिए। चलते-चलते उनके जी में होने लगा, मानो आकाश-पाताल-अंतरिक्ष—सब एक ही साथ आंधी की तरह पूछता जा रहा है, यह लोहू काहे का है ? इतने पर से नरनारायण चौधरी पूछ रहे हैं। पूछ रहे हैं हरनारायण चौधरी। पूछ रहा है दीनू, कैलाश गुमाश्ता, गौरी बुआ, रजबअली—सभी। सदानन्द बाबू का भूत-वर्तमान-भविष्य भी मानो एक ही प्रश्न पूछ रहा है। एक ही प्रश्न पूछ रही है सदानन्द बाबू की शिक्षा-दीक्षा, उनका अस्तित्व। पूछ रहा है सदानन्द बाबू का इतिहास-भूगोल-समाज। पूछ रहे हैं सदानन्द बाबू के परलोकगत पूर्वज, इहलोक के उत्तरपुरुष ! सभी के प्रश्न ने एक साथ ही उनके मन में आंधी उठा दी है—"यह काहे का लोहू है ?"

और, उन सबके साथ सुर मिलाकर मानो नयनतारा भी उनसे पूछ रही है, 'यह लोहू कैसा है ?'

रेल-बाजार से नवाबगंज पांच कोस है। पांच कोस हुआ, तो क्या, इतना फासला लोग पैदल ही तै कर लेते। अब बेशक बस चलने लगी है। सिर्फ बीस पैसे में यह एकबारगी नवाबगंज के पहले की बस्ती तक पहुंचा देगी। वहां से डेढ़ मील की दूरी पांव-सवारी चल दीजिए। सीधे नवाबगंज पहुंच जाएंगे।

सो रेल-बाजार के उस स्टेशन से एक दिन ट्रेन से एक सज्जन उतरे। चुस्त-दुरुस्त चेहरा। हाथ में एक सूटकेस। सूटकेस पर सफेद रंग से अंग्रेजी में लिखा—पी० सी० राय। ट्रेन जब खुल गई तो वह भला आदमी और किसी तरफ न ताककर सीढ़ियों से सीधे बाजार के रास्ते पर उतरा। वहां से बाएं मुड़कर एक मिठाई की दुकान में गया। दुकानदार उसकी तरफ मुखातिब हुआ, "कहिए, क्या दूं ?"

भले आदमी ने पूछा, "संदेश क्या भाव ?"

"जी, साढ़े सात रुपये।"

"बाप रे, एकबारगी साढ़े सात रुपये ! एकदम गरदन काट लेने वाला भाव कर दिया। पहले आपकी दुकान से संदेश-रसगुल्ला, राजभोग कितना खाया है। उस समय तो ढाई रुपये सेर का भाव था।"

दुकानदार ने नम्रता के साथ कहा, "जी, उन दिनों की बात अब भूल

जाइए। उस समय दूध सात रुपये मन मिलता था।"

भले आदमी को ये बातें अच्छी न लगीं। बोला, "नहीं साहब, यह तो गरदन पर छुरी चलानेवाली दर कर रखी है। अच्छा, समोसा ?"

"तीन आने में एक।"

भले आदमी ने कहा, "मगर समोसे से तो दूध का कोई वास्ता नहीं साहब ! इसकी कीमत इतनी ज्यादा क्यों रखी है ? आप क्या समझ रहे हैं, मैं यहां कुछ नया आया हूं ? बीस-तीस बरस से आ रहा हूं। मुझे यह भी याद है कि आपकी दूकान में मैंने रुपया सेर संदेश खाया है।"

अब दूकानदार जरा पिघला। पूछा, "आपका घर इधर ही है ?"

भले आदमी ने कहा, "मेरा अपना घर नहीं, मेरे जीजा जी नवाबगंज के ज़मींदार है…"

"नवाबगंज के ज़मींदार ?"

"अरे हां साहब, बचपन से ही दीदी के यहां आया करता था और यहीं से रसगुल्ले खरीदकर ले जाता था। कभी यहां रोज़ ही आया करता था।"

"आपका घर ?"

"भागलपुर। यहां नवाबगंज में मेरे जीजा जी का घर है। ज़मींदार हरनारायण चौधरी का नाम सुना है ? वही मेरे जीजा जी थे।"

"मगर वह तो ज़मीन-जायदाद बेच-खोंचकर नवाबगंज से चले गए। अभी तो भागलपुर में हैं…"

भले आदमी ने कहा, "तब तो आप सब जानते हैं, देखता हूं। मेरे उन्हीं जीजाजी का देहांत हो गया है।"

"वह गुज़र गए ?"

भले आदमी ने कहा, "हां। वह एक भयानक घटना है। हम सब लोग उसीमें परेशान हैं। अभी अपने भानजे की खोज में नवाबगंज जा रहा हूं।"

"भानजा, यानी ? वही सदा ! सदानन्द !"

"हां, सदानन्द। उसे इधर देखा है क्या ? उसीको ढूंढ़ने के लिए तो जा रहा हूं। खैर, अब तो आपका संदेश खाना नसीब नहीं हुआ। साढ़े सात रुपये सेर का संदेश खाने की औकात अपनी नहीं है।"

दुकानदार ने कहा, "तो समोसा खाइए। तीन आने से कम में बेचने की गुंजाइश नहीं। आलू का दाम इतना बढ़ गया है कि…"

"अजी, दो आना रखिए न…"

पता नहीं, दुकानदार ने क्या सोचा। कहा, "ठीक है। आप चाय तो पीजिएगा न ? दो आना प्याला। चाय पीने से दो आने में एक समोसा दे सकता हूं। आप हमारे पुराने गाहक हैं, अपने जवार के हैं और इतने दिनों बाद आए हैं। अरे ए, बाबू को एक प्याला चाय और एक गरम समोसा दो…"

खैर, वही सही। ज्यादा दर-मोल ठीक नहीं। लेकिन संदेश कुछ सस्ता कर देता, तो ठीक था। आखिर एक समोसा और एक प्याला चाय ही भले आदमी ने ली। कहा, "तो चाय में चीनी जरा ज्यादा दीजिएगा, मैं चीनी

जरा ज्यादा पीता हूँ…"

चाय-समोसे का दाम चुकाकर नया आदमी उठ खड़ा हुआ। सुबह ही ट्रेन से उतरा। अब थोड़ी धूप निकल आई है। अभी पांच कोस की मंजिल मारनी है। रेल-बाजार के रास्ते पर लोगों का आना-जाना बाकायदा शुरू हो गया…

रास्ते पर उतरने से पहले उसने दुकानदार से कहा, "लौटते हुए फिर आऊंगा। उस समय लेकिन कुछ खिदमत करनी होगी, समझा…"

यह था प्रकाश राय। सदानन्द का प्रकाश मामा। सगा मामा नहीं। न हो चाहे, मगर सगे मामा से भी अपना। मां के एक मामा का लड़का। बचपन से ही नवाबगंज आया-जाया करता था। यानी बहनोई। दूर के नाते के ही सही, आखिर तो बहनोई ही हुए। आखिर नाता तो है, वह नाता कितना ही दूर का क्यों न हो। उस दूर के नाते को लगातार मेल-मुलाकात और आना-जाना से उसने बदस्तूर घनिष्ठ बना लिया था। कहा नहीं, सुना नहीं, अचानक ही अचानक आ पहुंचता था प्रकाश। धनी दीदी। खाने-पीने का भरपूर इंतजाम। प्रकाश आता कि लोग कहते, "चौधरी जी के साले साहब आ गए…"

आदर से लोग मामा बाबू भी कहते थे।

मामा बाबू आते कि नवाबगंज के लोग उन्हें घेर लेते, "मामा बाबू, बरवारी-थान में यात्रा[1] होगी। चंदा दीजिए…"

मामा बाबू ने चंदा देने में कभी कंजूसी नहीं की। कहता, "ठीक तो है, कितना देना पड़ेगा मुझे, कहो…"

"आपसे दस रुपये लेंगे।"

मामा बाबू को दस रुपये देने में एतराज नहीं होता। नवाबगंज के जमींदार का साला, सुनरा गांव के सबका मामा। उसके जैसे आदमी से दस रुपये चंदा मांगने का वाजिब हक तो है ही लोगों का। बढ़िया धुला कुरता, चुन्नटदार धोती और लहरदार बाल—यह सब देखकर कोई भी यह समझ सकता था कि मामा बाबू पैसे वाले आदमी हैं। लेकिन हकीकत में पैसा उसे दीदी दिया करती थी। मामा बाबू दीदी के पास जाकर कहता, "दीदी, अब तुम्हारा सम्मान नहीं रहेगा…"

दीदी समझ नहीं पाती। पूछती, "क्यों रे, क्या हुआ?"

"नवाबगंज क्लब के लड़के फिर चंदा मांग रहे हैं। मेरे नाम उन लोगों ने पूरा दस रुपया रखा है।"

दीदी कहती, "क्यों, फिर काहे का चंदा? अभी उसी दिन तो यात्रा का चंदा देने के लिए तू दस रुपये मांग ले गया। तुरन्त ही फिर कैसा चंदा?"

मामा बाबू ने कहा, "मैंने भी तो उनसे यही पूछा, "फिर यह किस बात का?" इसपर उन लोगों ने कहा, 'अबकी बरवारी-थान[2] में कवि-गान होगा'—कवि-गान! इन लोगों को और कोई काम-धंधा नहीं है, बस, यात्रा, नाटक, गीत!"

---

1. बिना परदे वाले मंच पर खेला जाने वाला नाटक।
2. बरवारी-थान—गांव की सार्वजनिक जगह।

साला बाबू ने कहा, "दे दो दस रुपए। दस रुपये तुम्हारे लिए कोई चीज़ नहीं। लेकिन वे लोग मुझे साला बाबू कहकर आदर-खातिर करते हैं, रुपया नहीं देने से वह भी नहीं करेंगे। वैसे में तुम्हारा भी सम्मान नहीं रहेगा। वे कहेंगे, चौधरी बाबू कंजूस हैं, उनकी बीवी भी कंजूस है और साला भी कंजूस है।"

भाई की बात पर दीदी हंस पड़ती। कहती, "तुझे अक्ल तो खूब है, प्रकाश..."

दीदी के मुंह से अपनी प्रशंसा सुनकर प्रकाश घमंड से और भी फूल उठता। कहता, "तुमने अभी मेरी अक्ल देखी ही कितनी है दीदी! पता है मैं जो इतनी बार भागलपुर से आता-जाता हूं, तुम क्या सोचती हो कि मैं रेल का टिकट कटाता हूं?"

"टिकट नहीं कटाता है?"

गर्व से छाती फुलाकर दीदी की ओर देखते हुए प्रकाश ने कहा, "नहीं! टिकट आखिर किसलिए कटाऊं, कहो तो। मैं रेल पर चढ़ूं, तो भी रेल चलेगी और न चढ़ूं, तो भी रेल चलेगी। मैं गाड़ी पर चढ़ता हूं तो क्या इंजन में कोयला ज्यादा जलता है?"

दीदी तो अवाक्। बोली, "मगर तू तो मुझसे टिकट का पैसा लेता है, सो?"

प्रकाश ने कहा, "लगता है, तुम्हें अक्ल-वक्ल कुछ नहीं है। तुमसे टिकट के पैसे लेता हूं तो क्या सचमुच ही टिकट कटाना पड़ेगा? कहती क्या हो तुम? वैसा बुद्धू हुआ तो चला काम। दुनिया में लोगों से जहां ज़रा भलमन-साहत की कि सब तुम्हें पीसकर पिसान बनाकर मार डालेंगे। देश के लोगों को तुमने पहचाना तो नहीं है? जभी ऐसी बात कह रही हो। खबरदार, खबरदार, ऐसी बेवकूफी हरगिज़ मत करना दीदी, रेल पर चढ़ो, तो भूलकर भी कभी टिकट मत कटाओ। रेलगाड़ी के माने क्या है, जानती हो न?"

"क्या?"

"छिछोरे के घर का फलाहार। मिले तो छोड़ना नहीं चाहिए।"

"तो फिर तू उन रुपयों का क्या करता है?"

"खिलाता हूं।"

"खिलाता हूं? मतलब? किसे खिलाता है?"

प्रकाश ने कहा, "टिकट चेकरों को। कभी-कभी जब पकड़ लेता है, तो उन्हें चाय-सिगरेट नहीं पिलानी पड़ेगी? आखिर सभी तो मेरी बीवी के भा[illegible] नहीं हैं कि मेरी शक्ल देखकर छोड़ देंगे। और फिर दो-एक जने धर्मपु[illegible] युधिष्ठिर भी हैं, जो मीठी बातों में नहीं आते, चाय-सिगरेट भी नहीं पीते अ[illegible] घूस भी नहीं लेते। ऐसे ही वाहियात लोगों के चलते मुश्किल में पड़ना पड़[illegible] है।"

"वैसे में क्या करना है?"

"करना क्या, दण्ड-दंड देना पड़ता है।"

उस समय बातचीत के सिलसिले में दीदी जितना हंसती, प्रकाश भी उतना ही हंसता। भाई की बहादुरी से दीदी अवाक् भी हो जाती। प्रकाश जब नवाबगंज आता है, तो बहुत बार रेल-बाजार की दुकान से एक हांड़ी रसगुल्ला भी ले आता है। दीदी कहती, "यह क्या रे प्रकाश, तू कुटुम्ब की तरह मिठाई क्यों ले आता है? तू क्या कुटुम्ब के यहां आता है, क्यों?

प्रकाश कहता, "नहीं दीदी, तुम रसगुल्ला पसंद करती हो, इसलिए ले आता हूं। तीन रुपये सेर! कंबख्तों ने गला काटनेवाला दाम रक्खा है।"

दीदी मिठाई ले जरूर लेती, लेकिन भाई की लाई हुई चीज का दाम भी साथ ही साथ चुका देती। और फिर प्रकाश को रुपया भी कहां से हो? उसे तो अपने जीजाजी की तरह बड़ी जमींदारी नहीं है कि दीदी को रोज-रोज सेर-भर रसगुल्ला खिलाए। और प्रकाश को यह मालूम था कि वह रसगुल्ला जितना दीदी खाएगी, उससे कहीं ज्यादा प्रकाश खुद खाएगा।

सदा का जब जन्म हुआ, तो उसकी छठी के समय जो कुछ करना था, सब कुछ प्रकाश ने ही किया। उस समय अवश्य प्रकाश भी छोटा ही था। उस छुटपन से सदा के ब्याह तक हर काम में प्रकाश। जमींदार के घर का लड़का। आदर करनेवालों की भी कमी नहीं, लड़के का साध-शौक पूरा करने के लिए रुपये की भी कमी नहीं। जो चाहे जितना खर्च करो, लड़का अगर उससे सुखी हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। और भी रुपये लो। नवाबगंज के चौधरी परिवार का कुलतिलक-सदानन्द के लिए नरनारायण चौधरी को जरा भी कंजूसी नहीं।

सदानन्द जिस दिन पैदा हुआ नरनारायण चौधरी मुकदमे की तदबीर के लिए राणाघाट गए हुए थे। वहां उनका अपना मकान था। मामला-मुकदमे के सिलसिले में उन्हें जाना ही पड़ता। वहां जाने पर कुछ दिन उसी मकान में रहते। लोग-बाग थे। कचहरी का काम वहीं होता था। उसके लिए लोक-लश्कर—हर कुछ का इंतजाम था।

उस दिन वकील-मुहर्रिर के साथ अपने कचहरी-घर में वह बहुत ही व्यस्त थे। नब्बे हजार रुपये के एक बिल के मामले की डिग्री हुई थी। उसी के गवाह-साखी के झमेले में बेतरह परेशान थे, ऐसे में नवाबगंज से दौड़ता हुआ दीनू सहसा पहुंचा। खबर दी, "बहूरानी के लड़का हुआ है···"

पहले तो उन्हें लगा कि गलत सुना। उसके बाद वकील-मुहर्रिर की ओर से मुंह फेरकर पूछा, "क्या कहा?"

"जी, बहूरानी के लड़का हुआ है।"

फिर भी उन्हें जैसे यकीन नहीं हुआ। पूछा, "लड़का कि लड़की?"

"जी, लड़का।"

"ठीक जानता है तू, लड़का?"

दीनू ने कहा, "जी हां। मंगला दाई ने खुद मुझसे कहा। इसीलिए छोटे बाबू ने मुझे यहां भेज दिया।"

सुनकर पहले तो वे समझ नहीं सके कि क्या करें। उसके बाद कैलास

को बुलाया । उत्तेजना में उन्हें यह भी ख्याल नहीं रहा कि कैलास गुमाश्ता उनके पास ही बैठा है । फिर भी आवाज़ दी, "कैलास ! कैलास की चुटिया क्यों नहीं दिखाई दे रही है ? वह गया कहां ?"

पास से कैलास बोल उठा, "जी, यहीं तो हूं मैं…"

"हां, तुम यहीं हो । और मैं जो गला फाड़कर जान दे रहा हूं तो जवाब क्यों नहीं देते ? तुम सबने क्या कान में रुई डाल रक्खी है ? हरदम चकमे बाजी ? चकमा देना तुम लोगों का स्वभाव हो गया है ।"

ढेरों नत्थी-पत्तर लिए कैलास उस समय पानी-पानी हो रहा था । तीन दिन-तीन रात सबके उन्हीं कागजातों में गुजरे । एक बार कोर्ट और एक बार अपनी कचहरी करता रहा । जमींदारी सरिश्ते के काम में उसके जैसा आदमी पाना भी बड़े मालिक का भाग्य ही कहिए । मगर फिर भी बकझक सुनने का नसीब है उसका ।

चौधरी जी ने कहा, "वह सब नत्थी-पत्तर अभी रक्खो…"

कैलास ने कहा, "मुनसिफ कोर्ट में कल जो इस मामले की सुनवाई है…"

मालिक ने कहा, "रक्खो तुम्हारी सुनवाई । जिन्दगी में मैंने बहुत मामले किए हैं, तुम मुझे कोर्ट मत दिखाओ । मैं क्या कोर्ट के नाम से डर जाऊंगा । न होगा तो यह बिल जाएगा । जीवन में बहुत सारे बिल देखे और बहुत सारी सम्पत्ति भी गई अपनी । और अगर मैं जिन्दा रहा, तो वैसे और दस बिल मैं नीलाम में ले लूंगा । अभी यह सब रहने दो । सुना तुमने, मेरे पोता हुआ है और तुम अभी मुझे कोर्ट की सुना रहे हो ? जाओ, रख वह सब । मैं आज ही नवाबगंज लौट जाऊंगा, तुम इसका बंदोबस्त करो…"

"इसी वक्त जाएंगे ?"

"इसी वक्त नहीं तो क्या एक दिन के बाद जाऊंगा ? बाद में जाने से देर नहीं होगी ? यह कुछ देर करने का काम है ? जाओ, गाड़ी का इंतजाम करो और दीनू की मदद से मेरा बक्स-बिछौना सहेज दो । रजबअली को बुलाकर कह दो, गाड़ी जोते…"

इसपर क्या कहा जाए । कैलास गुमाश्ता इंतजाम करने के लिए बाहर जा रहा था ।

बड़े मालिक ने फिर आवाज़ दी, "हां, याद आया । उससे पहले और एक काम करो तो । बाजार में सनातन सुनार है, पहचानते हो न ? जाकर उससे कहो, अगर दस तोले का कोई सोने का हार तैयार हो, तो लेकर उसे अभी ही मेरे पास आने को कहो…"

बड़े चौधरी उसी दिन दस तोले का सोने का हार लेकर रजबअली की गाड़ी पर सवार होकर गांव की ओर चल दिए थे । खाना-सोना सब यों ही रह गया । सब कुछ छोड़-छाड़कर वह नवाबगंज पहुंचे और वहीं हार देकर उन्होंने पोते का मुंह देखा । यह पोता उनके कितने अरमान का है, यह और कोई चाहे न जाने, नरनारायण चौधरी को अजाना नहीं था । बेटे का ब्या

उन्होंने कम ही उम्र में किया था। ख्याल था, घर उनका पोता-पोती से भर जाएगा। उनकी दुनिया विलास-वैभव, ऐश्वर्य की रंगीनी से भर उठेगी। लेकिन वैसा नहीं हुआ। बहुत-बहुत खोज-ढूंढ़ के बाद सुलतानपुर के जमींदार कीर्तिपद मुखर्जी की इकलौती बेटी को पसंद करके वे अपने बेटे की बहू बना घर ले आए थे।

ब्याह के बहुत दिन बीते और कोई बाल-बच्चा न हुआ, यह देखकर वह बहुत मायूस हो गए थे।

यह प्रकाश उस समय पैदा हुआ था। मां-बाप के गुजर जाने की वजह से अपनी फूफी के यहां रहता था। चूंकि फूफा कीर्तिपद मुखर्जी के कोई लड़का नहीं था, इसलिए वह वहां लड़के जैसा ही लाड़-प्यार पाता था। ब्याह के बाद प्रीतिलता जब नवाबगंज चली आई, तो छोटे लड़के जैसा वह दीदी के साथ दीदी की ससुराल भी आया।

लेकिन यह सब जटिल-कुटिल वंश-तालिका का रूखा-सूखा ब्योरा न देना ही ठीक है। उससे कहानी अपना दाना नहीं बांध पाती। सगे-सम्बन्धियों के डाल-पत्तों की चोट लगते रहने से कहानी लंगड़ाती हुई चलती है। उससे तो *प्रकाश का जो परिचय दे रहा था, वही ठीक है। क्योंकि जो लोग इस* उपन्यास को पढ़ रहे हैं, उन्हें अभी से यह कह रखना ठीक होगा कि यह प्रकाश राय इस उपन्यास में आगे और भी बहुत बार प्रकट होंगे। पाठक-पाठिकाएं इस चरित्र के विषय में इसलिए जरा खास-तौर से सजग रहें।

इधर सदानन्द जब तक बड़ा हुआ, तब तक प्रकाश राय ने इस घर में अपने को बदस्तूर जमा लिया था। यहां आता, महीने-दो महीने रहता और दीदी से कुछ रुपये हथियाकर फिर कुछ दिनों के लिए गायब हो जाता।

जब नवाबगंज में रहता, तो सदानन्द को लेकर घूमा-फिरा करता। कहां यात्रा हो रही है, कहां कवि-गान की होड़ है, कहां पांचाली हो रही है—अपने भानजे को वहां-वहां ले जाना अनिवार्य था।

हजार काम होते हुए भी नरनारायण चौधरी अपने पोते की खोज-खबर लिया करते। कहते, "मुन्ना कहां गया, मुन्ना? मुन्ने को देख नहीं रहा हूं?"

कैलाश गुमाश्ता कहता, "जी, नन्हे बाबू साला बाबू के साथ गए हैं..."

यह बात बड़े मालिक को पसंद नहीं आती। लेकिन कुछ कह भी नहीं सकते। बहूरानी का भाई है। कुटुम्ब का नाता। सिर्फ कहते, "तुम्हारा यह साला बाबू आदमी अच्छा नहीं लगता, मैंने सिगरेट-विगरेट पीते देखा है..."

मगर प्रकाश को इन बातों की कतई परवाह नहीं। स्टेशन से आते ही सीधे जाकर बूढ़े मालिक के चरणों की धूल लेकर सिर से लगाता।

चौधरी जी हर बार अकचका जाते। कहते, "कौन?"

"जी, मैं ! प्रकाश।"

प्रकाश ! यह नाम देर तक जैसे उनकी पहचान में नहीं आता। फिर बिलकुल ही न पहचानें, यह कुछ अच्छा नहीं लगता, इसलिए कहते, "समधी जी कैसे हैं ? समधिन जी ? सब सानन्द तो हैं ?"

प्रकाश उसके बाद फिर बूढ़े मालिक से भेंट करने की जरूरत ही नहीं महसूस करता। वह सीधे अपनी दीदी के पास चला जाता। सीधे अन्दर महल में जाकर कहता, "दीदी, मैं आ गया…"

कभी-कभी हंसते हुए ही दीदी के कमरे में दाखिल होता। कहता, "सुनती हो दीदी, तुम्हारा बेटा बड़ा इंटेलिजेंट हो गया है…"

दीदी पूछती, "तो क्या ?"

प्रकाश कहता, "उसीसे पूछ देखो।"

दीदी बेटे की ओर मुंह करके पूछती, "क्या बात है मुन्ने ?"

मुन्ना कहता, "मैंने गीत सीखा है मां…"

"अच्छा ! गाओ तो सुनें…"

प्रकाश ने भी भानजे को उत्साह दिया। बोला, "गाओ—अजी गाओ—गाकर मां को सुनाओ।"

मुन्ने ने दोनों हाथ उठाकर आड़े-टेढ़े नाचना शुरू कर दिया। फिर गीत गाने लगा :

"काश, सखी मैं जान जो पाती।
प्रेम श्याम का गरल मिला है
कानों में यह बात जो आती।
कुल की बाला, मन की सरला
तो क्या वह विष भूले खाती।"

गीत सुनकर अन्दर से और कई दौड़ी आईं। लड़के का जेहन देखकर मौसी बुआ से रहा नहीं गया। उसने दोनों हाथों से मुन्ने को एकबारगी उठा लिया और उसे बेतरह चूमने लगी। कहने लगी, "अरे, मेरे मुन्ने का गला कितना अच्छा है। भाभी, बड़े होने पर अपना मुन्ना बहुत बड़ा गवैया होगा।"

और-और भी जो सब देख रही थीं, सब एक स्वर से बेहद तारीफ करने लगीं।

मारे घमण्ड के साला बाबू की छाती उस समय दस हाथ चौड़ी हो गई। बोला, "हां, अब वह गीत सुना दो तो मुन्ने, वही जो मैंने सिखाया है !"

"कौन-सा ?"

"वही, अब नारी पर नहीं रहा प्रत्यय…"

मुन्ना गाने लगा :

"अब नारी पर नहीं रहा प्रत्यय।
नारी को कुछ नहीं धरम का भय।

यह मिलती जैसे भूलती वैरी
दोनों में तत्पर।
अपना करके उलट न ताके
झट बनती पत्थर···"

साला बाबू स्वयं गाने की प्रशंसा करने लगा, "वाह-वाह···" लेकिन एकाएक हरनारायण कमरे में आ पहुंचे। पूछा, "कौन गीत गा रहा था? मुन्ना गा रहा था न?"

साला बाबू ने कहा, "हां जीजाजी! आप सुनेंगे?"

हरनारायण ने कहा, "नहीं! यह सब गीत इसे किसने सिखाया?"

साला बाबू ने कहा, "कवि-गान सुनाने ले गया था। वहीं सीखा है। मुन्ना कितना इंटेलिजेंट हो गया है, देख रहे हैं। महज एक ही बार इसने गीत को सुना और कंठस्थ हो गया। मैंने तो अपने बाप के जन्म में भी ऐसा इंटेलिजेंट लड़का नहीं देखा—वेरी, वेरी इंटेलिजेंट···"

हरनारायण बाबू ने प्रकाश के सामने कुछ कहा नहीं, जरूर, पर रात को अपनी स्त्री के सामने उन्होंने जबान खोली। बोले, "मुन्ने को क्या तुमने प्रकाश के साथ कवियों की लड़ाई सुनने के लिए भेजा था?"

सवाल सुनकर प्रीतिलता जरा अवाक् हो गई। बोली, "क्यों, क्या बात है?"

"यों ही पूछ रहा हूं। जो सब गीत मुन्ना गा रहा था, वे गीत तो कुछ अच्छे नहीं हैं। पिताजी सुनेंगे, तो नाराज होंगे। मुन्ने को अब जिसके-तिसके साथ जहां-तहां घूमने जाने देना ठीक नहीं। आदत बिगड़ जाएगी···"

प्रीतिलता ने पूछा, "काहे की आदत?"

"वही सब वाहियात गीत गाने की आदत।"

प्रीतिलता ने कहा, "बच्चा है, गीत सुना और याद कर लिया। इसमें आदत बिगड़ने की कौन-सी बात हुई? तुम्हारी सब बात में अति है। बच्चा जरा गीत गाए कि दोष हो गया?"

इसके बाद हरनारायण ने उसपर और कोई चर्चा ही न की। और, इस बात पर ज्यादा दिमाग खपाने का समय भी नहीं था उन्हें। परन्तु मन-ही-मन कैसे तो चिंतित-से हुए।

उस रोज प्रकाश ने मुन्ने की बुद्धि का और भी एक अकाट्य प्रमाण दिया। मुन्ने को दीदी के पास लाकर बोला, "पूछो मत दीदी, मैं तुमसे क्या कहूं। मुन्ना बेशक एक जीनियस होगा, तुम देख लेना···"

दीदी समझ नहीं सकी। बोली, "जीनियस! मतलब?"

"मतलब एक धुरन्धर प्रतिभा!"

"क्यों, फिर क्या हुआ?"

"अरे, कैलास गुमाश्ता का हुक्का रखा हुआ था चंडीमंडप में। चिलम में आग थी। मुन्ने ने एक ही दम लगाकर नाक से धुआं निकाल दिया···"

लड़के की बुद्धि पर दीदी भी दंग रह गई। बोली, "अच्छा?"

"हां दीदी ! मैं तो यह करतूत देखकर हैरान रह गया । मैं तुमसे कहे हूं दीदी, यह लड़का तुम्हारे वंश का नाम उज्ज्वल करेगा, ऐसी बुद्धि तो कभी किसीकी देखी ही नहीं, सच !"

दीदी ने मुन्ने से पूछा, "क्यों रे मुन्ने, तुझे खांसी नहीं आई ?"

मुन्ने ने गरदन हिलाई । कहा, "नहीं ।"

"एँ ! कह क्या रहा है ? ज़रा भी खांसी नहीं आई ?"

मुन्ने ने बड़े नाज़ से गरदन हिलाकर फिर कहा, "नहीं ।"

गौरी बुआ भी आकर वहां खड़ी थी । यह सुना तो उसने भी कहा, "नहीं भाभी, मैंने तुमसे कहा था, तुम्हारा यह लड़का कुछ न कुछ होकर ही रहेगा ।"

रात जब हरनारायण कमरे में आए, तो प्रीति ने कहा, "मुन्ने की बुद्धि की सुनी तुमने ?"

हरनारायण ने कहा, "क्या ?"

"आज गुमाश्ता जी के हुक्के में दम लगाकर मुन्ने ने नाक से भक्-भक् धुआं निकाला है—ज़रा भी नहीं खांसा !"

मुन्ना पास ही था । उसने भी पिता की ओर देखकर कहा, "हां बाबूजी, मैं ज़रा भी नहीं खांसा..."

लेकिन हरनारायण इस बात पर हंस नहीं सके । वह और भी गंभीर हो गए । स्त्री की तरफ मुंह करके बोले, "उसे हुक्के में मुंह लगाने के लिए किसने कहा था ?"

स्त्री ने कहा, "कहेगा कौन ? उसने खुद ही लगाया ।"

"उसके साथ कोई था ?"

स्त्री ने कहा, "हां, प्रकाश था । वह गवाह है । उसने अपनी आंखों देखा..."

हरनारायण ने इसका कोई जवाब देने की ज़रूरत नहीं महसूस की । पर वह मानो और भी चिंतित हो गए । दूसरे ही दिन उन्होंने कृष्णनगर स्कूल के हेडमास्टर साहब को अपने यहां बुलावा पठाया ।

यह वही प्रकाश राय है । कभी यह प्रकाश राय अचानक ही जब कभी नवाबगंज आ जाता । आता और नवाबगंज के लोगों के सामने राजा-वज़ीर के ठाठ-बाट काटा करता । भानजे को साथ लेकर यात्रा देखने के लिए जाया करता, कवि-गान सुनकर तारीफ किया करता । भानजे को गीत सिखाता, तंबाकू पीने की तालीम देता । यह सब बहुत पहले की बात है । उसके बाद हरनारायण चौधरी चल बसे । दीदी भी नहीं रहीं । और वह भानजा सदानन्द भी उस समय नहीं था । एक थे जीजाजी, अब वह भी गुजर गए । प्रकाश राय के दिन अभी बुरे आए । उसी बुरे समय को सुसमय बनाने के लिए प्रकाश राय फिर यहां आया है ।

सामने ही बस खड़ी थी । पहले यह दूरी उसने पैदल ही तै की है । पर अब उमर हुई । शरीर भी अब पहले से कहीं भारी हो गया है । उसने सीधे बस के पास जाकर पूछा, "यह बस नवाबगंज जाएगी भाई, नवाबगंज ?"

"नहीं। नवाबगंज नहीं जाएगी। मुबारकपुर से हांसखाली जाएगी।"
"मुबारकपुर का क्या किराया है?"
"बीस पैसा।"
'बीस पैसा। बीस पैसे में एक कप चाय और दो सिगरेट भी हो जाती। खैर, नसीब में पैसे की बरबादी लिखी है, कौन मेटेगा? ठीक है, वह मुबारकपुर ही उतर जाएगा।' सूटकेस लेकर प्रकाश राय बस पर चढ़ गया।

मुबारकपुर में बस से उतरकर प्रकाश राय जब नवाबगंज पहुंचा, तो बेला और बढ़ चुकी थी। उस दिन नवाबगंज की हाट थी। लेकिन हाट जमते-जमते वही दिन का डेढ़ बजेगा। सवेरे के समय वैसी भीड़-भाड़ नहीं रहती। लेकिन जैसे-जैसे बेला बढ़ती है, चारों ओर के गांव-गंज से उतने ही व्यापारी-खेतिहार-खरीदार आ-आकर जुटते हैं। और आते हैं भेंडर लोग। कलकत्ता के कोले मार्केट से सीधे कृष्णनगर चले आते हैं। कोई-कोई मदनपुर में उतरता है, कोई आडंगघाटा में और कोई बगुला में। बैंगन, मूली, परवल, गोभी या आम-कटहल खरीदकर टोकरियों में भर-भरकर गाड़ी से सीधे स्यालदा जाते हैं। वहां से कोले मार्केट।

उस समय हाट में डाकिया आता है। आते हैं मुबारकपुर के डाक्टर कार्तिक बाबू, आते हैं कृष्ण गंज स्कूल के हेडमास्टर। कोई साइकिल से, कोई पैदल और कोई बस से। नवाबगंज की हाट से हफ्ते-भर का सौदा-पाती कर लेते हैं।

हफ्ते का वह दिन सिर्फ हाट-बाजार करने का ही नहीं, आपस में भेंट-मुलाकात का भी दिन होता है। यह हाट नरनारायण चौधरी के आदि अमल से ही चली आ रही है। सच पूछिए तो यहां यह हाट उन्हींकी लगाई हुई है। पहले नवाबगंज के लोग हाट-बाजार के लिए या तो रेल-बाजार जाया करते थे या वाजितपुर। अवश्य उन दिनों हाट का रिवाज इतना नहीं था। रेल-बाजार से आलू खरीद लाया, बस आलू और मिट्टी का तेल। बाकी चीजें —साग-भाजी, मछली—सबको नवाबगंज में घर बैठे ही मिल जाती थीं। मछेरा-टोला से मछली बिकने आती थी और लोगों के घर में ही साग-भाजी, मूली-केला उपजा करता था। उस समय बूढ़े चौधरी ने नया-नया मकान बनवाया था। पक्के का मकान, दो-मंजिला। किसान, लेनदार, व्यापारी, महाजन, मिलनेवाले, जमींदार—तरह-तरह के लोगों का आना-जाना शुरू हो गया था। इलाके में नवाबगंज का नाम फैला। उन्होंने कहा, "यह कैसी बात। नवाबगंज में हाट नहीं लगती, यह तो ठीक नहीं।" उन्होंने दस-बीस गांवों में ढिंढोरा पिटवा दिया, "अबसे हर शनिचर और मंगलवार को नवाबगंज में हाट लगा करेगी। जो लोग यहां खरीद-फरोख्त के लिए आएंगे, जमींदार उनसे कोई वसूली नहीं लेंगे, व्यापारियों को उनके काम-कारबार में हर तरह की सुविधा दी जाएगी।"

बूढ़े चौधरी जब तक जिन्दा रहे, वह देख गए कि नवाबगंज की शनि-मंगल की हाट जमती ही जा रही है। उनके बाद उनके बेटे हरनारायण के अमल में

"हां दीदी ! मैं तो यह करतूत देखकर हैरान रह गया । मैं पुन... ...ता हूं दीदी, यह लड़का तुम्हारे वंश का नाम उज्ज्वल करेगा, ऐसी बुद्धि तो मैंने कभी किसीकी देखी ही नहीं, सच !"

दीदी ने मुन्ने से पूछा, "क्यों रे मुन्ने, तुझे खांसी नहीं आई ?"

मुन्ने ने गरदन हिलाई । कहा, "नहीं ।"

"हैं ! कह क्या रहा है ? जरा भी खांसी नहीं आई ?"

मुन्ने ने बड़े नाज से गरदन हिलाकर फिर कहा, "नहीं ।"

गौरी बुआ भी आकर वहां खड़ी थी । यह सुना तो उसने भी कहा, "नहीं भाभी, मैंने तुमसे कहा था, तुम्हारा यह लड़का कुछ न कुछ होकर ही रहेगा ।"

रात जब हरनारायण कमरे में आए, तो प्रीति ने कहा, "मुन्ने की बुद्धि की सुनी तुमने ?"

हरनारायण ने कहा, "क्या ?"

"आज गुमाश्ता जी के हुक्के में दम लगाकर मुन्ने ने नाक से भक्-भक् धुंआ निकाला है—जरा भी नहीं खांसा !"

मुन्ना पास ही था । उसने भी पिता की ओर देखकर कहा, "हां बाबूजी, मैं जरा भी नहीं खांसा..."

लेकिन हरनारायण इस बात पर हंस नहीं सके । वह और भी गंभीर हो गए । स्त्री की तरफ मुंह करके बोले, "उसे हुक्के में मुंह लगाने के लिए किसने कहा था ?"

स्त्री ने कहा, "कहेगा कौन ? उसने खुद ही लगाया ।"

"उसके साथ कोई था ?"

स्त्री ने कहा, "हां, प्रकाश था । वह गवाह है । उसने अपनी आंखों देखा..."

हरनारायण ने इसका कोई जवाब देने की जरूरत नहीं महसूस की । पर वह मानो और भी चिंतित हो गए । दूसरे ही दिन उन्होंने कृष्णनगर स्कूल के हेडमास्टर साहब को अपने यहां बुलावा पठाया ।

यह वही प्रकाश राय है । कभी यह प्रकाश राय अचानक ही जब कभी नवाबगंज आ जाता । आता और नवाबगंज के लोगों के सामने राजा-वजीर के नाम-धाम बताया करता । भानजे को साथ लेकर यात्रा देखने के लिए जाया करता, नाच-गान सुनकर तारीफ किया करता । भानजे को गीत सिखाता, संवाद गाने की तालीम देता । यह सब बहुत पहले की बात है । उसके बाद हरनारायण नौकरी चल बसे । दीदी भी नहीं रहीं । और वह भानजा सदानन्द भी उस समय नहीं था । एक थे जीजाजी, अब वह भी गुजर गए । प्रकाश राय के दिन अभी बुरे आए । उसी बुरे समय को सुसमय बनाने के लिए प्रकाश राय फिर यहां आया है ।

सामने ही बस खड़ी थी । पहले यह दूरी उसने पैदल ही तै की है । पर अब उमर हुई । शरीर भी अब पहले से कहीं भारी हो गया है । उसने सीधे बस के पास आकर पूछा, "यह बस नवाबगंज जाएगी भाई, नवाबगंज ?"

"नहीं। नवाबगंज नहीं जाएगी। मुबारकपुर से हांसखाली जाएगी।"

"मुबारकपुर का क्या किराया है?"

"बीस पैसा।"

'बीस पैसा। बीस पैसे में एक कप चाय और दो सिगरेट भी हो जाती। खैर, नसीब में पैसे की बरबादी लिखी है, कौन मेटेगा? ठीक है, वह मुबारकपुर ही उतर जाएगा।' सूटकेस लेकर प्रकाश राय बस पर चढ़ गया।

मुबारकपुर में बस से उतरकर प्रकाश राय जब नवाबगंज पहुंचा, तो बेला और बढ़ चुकी थी। उस दिन नवाबगंज की हाट थी। लेकिन हाट जमते-जमते वही दिन का डेढ़ बजेगा। सबेरे के समय वैसी भीड़-भाड़ नहीं रहती। लेकिन जैसे-जैसे बेला बढ़ती है, चारों ओर के गांव-गंज से उतने ही व्यापारी-खेतिहार-खरीदार आ-आकर जुटते हैं। और आते हैं बेंडर लोग। कलकत्ता के कोले मार्केट से सीधे कृष्णनगर चले आते हैं। कोई-कोई मदनपुर में उतरता है, कोई आडंगघाटा में और कोई बगुला में। बैंगन, मूली, परवल, गोभी या आम-कटहल खरीदकर टोकरियों में भर-भरकर गाड़ी से सीधे स्यालदा जाते हैं। वहां से कोले मार्केट।

उस समय हाट में डाकिया आता है। आते हैं मुबारकपुर के डाक्टर कार्तिक बाबू, आते हैं कृष्ण गंज स्कूल के हेडमास्टर। कोई साइकिल से, कोई पैदल और कोई बस से। नवाबगंज की हाट से हफ्ते-भर का सौदा-सुलफ कर लेते हैं।

हफ्ते का वह दिन सिर्फ हाट-बाजार करने का ही नहीं, आपस में भेंट-मुलाकात का भी दिन होता है। यह हाट नरनारायण चौधरी के आदि अमल से ही चली आ रही है। सच पूछिए तो यहां यह हाट उन्हींकी लगाई हुई है। पहले नवाबगंज के लोग हाट-बाजार के लिए या तो रेल-बाजार जाया करते थे या वाजितपुर। अवश्य उन दिनों हाट का रिवाज इतना नहीं था। रेल-बाजार से आलू खरीद लाया, बस आलू और मिट्टी का तेल। बाकी चीजें —साग-भाजी, मछली— सबकी नवाबगंज में घर बैठे ही मिल जाती थीं। मछेरा-टोला से मछली बिकने आती थी और लोगों के घर में ही साग-भाजी, मूली-केला उपजा करता था। उस समय बूढ़े चौधरी ने नया-नया मकान बनवाया था। पक्के का मकान, दो-मंजिला। किसान, लेनदार, व्यापारी, महाजन, मिलनेवाले, अर्जीदार—तरह-तरह के लोगों का आना-जाना शुरू हो गया था। इलाके में नवाबगंज का नाम फैला। उन्होंने कहा, "यह कैसी बात। नवाबगंज में हाट नहीं लगती, यह तो ठीक नहीं।" उन्होंने दस-बीस गांवों में ढिंढोरा पिटवा दिया, "अबसे हर शनिचर और मंगलवार को नवाबगंज में हाट लगा करेगी। जो लोग यहां खरीद-फरोख्त के लिए आएंगे, जमींदार उनसे कोई महसूली नहीं लेंगे, व्यापारियों को उनके काम-कारबार में हर तरह की सुविधा दी जाएगी।"

बूढ़े चौधरी जब तक जिन्दा रहे, वह देख गए कि नवाबगंज की शनि-मंगल की हाट जमती ही जा रही है। उनके बाद उनके बेटे हरनारायण के अमल में

भी हाट खूब ही जम गई। और भी दूर-दूर के व्यापारी-खरीदार हाट में आने लगे। वह बूढ़े चौधरी आज नहीं रहे, उन बूढ़े चौधरी के लड़के हरनारायण चौधरी भी आज नहीं हैं। यहां तक की हरनारायण चौधरी का दुलारा लड़का वह भी आज नवाबगंज में नहीं है। हाट के दिन सदानन्द दीनू के साथ यहां आया करता था। कभी-कभी कैलास गुमाश्ता भी आता। कैलास गुमाश्ता के आने का मतलब स्वयं हरनारायण चौधरी का आना। कैलास गुमाश्ता के आने पर किसीको भी किसी चीज के दर-मोल की जरूरत नहीं पड़ती। बहुत बार बड़े मालिक का पोता होता। सदानन्द जिद पकड़ता, "कैलास काका, बेलून लूंगा…"

कपिल पालरापोड़ा रेल-बाजार से रबर का बेलून लाकर बेच रहा था। उसने यह सुनते ही कहा, "यह लीजिए गुमाश्ता जी, नन्हे बाबू के लिए बेलून लीजिए।"

कैलास गुमाश्ता ने बेलून लिया।

पूछा, "कीमत कितनी है रे कपिल?"

कपिल पालरापोड़ा ने कहा, "कीमत पूछकर मुझे लज्जित न करें गुमाश्ता जी। मैंने नन्हे बाबू को यों ही खेलने के लिए दिया।"

"खेलने के लिए दिया? मतलब? नन्हे बाबू तुमसे भीख लेंगे क्या? नन्हे बाबू को पैसे की कमी है?"

कपिल पालरापोड़ा ने कहा, "जी, बाबुओं का ही खा-पहनकर तो हम सब जी रहे हैं। नन्हे बाबू ने खेलने के लिए मांगा, इसीलिए दिया…"

बेलून पाकर सदानन्द बेहद खुश। बेलून लेकर वह दीनू मामा और कैलास काका के साथ पूरी हाट में घूमने लगा। जहां-जहां सदानन्द जाता, बेलून भी उसके साथ-साथ माथे पर उड़ता चलता। उसी बेलून से कई घंटे कट गए। घर आकर उसने मां को बेलून दिखलाया, चंडीमंडप में जाकर बाबूजी को दिखलाया। जैसे कोई बहुत बड़ी दौलत मिल गई हो उसे। घर-भर में बेलून लिए खेलता फिरा। लेकिन सवेरे जब सोकर उठा, तो देखा, बेलून पिचक गया है। वह रोने लगा।

बूढ़े मालिक के कानों यह रुलाई पहुंची। उन्होंने पूछा, "मुन्ना रो क्यों रहा है? क्या हुआ उसे? किसीने मारा-वारा क्या?"

दीनू ने कहा, "जी नहीं! नन्हे बाबू का बेलून पिचक गया है।"

जीवन के अंतिम दिनों में बूढ़े मालिक पोते के लिए जान देते थे। वह जिस चीज के लिए जिद पकड़ता, वही देते। कभी बेलून, कभी चिड़िया, कभी कलम, कभी साइकिल। सूदखोर आदमी, कभी किसीको सूद का एक पैसा नहीं छोड़ते। लेकिन पोते के लिए जितना भी रुपया खर्च क्यों न हो, उस खर्च को खर्च नहीं गिनते थे। कहते, "अहा, बच्चा है, जिद पकड़ी है, खरीद दो न…"

हरनारायण कहते, "लाड़ से आखिर बड़े मालिक ही इसे चौपट करेंगे।"

मुन्ने के रोने का कारण सुनकर उन्होंने फौरन आदमी को रेल-बाजार

भेजा। दीनू गया। पोते की जिद रखने के लिए एक आदमी पांच कोस रास्ता पैदल गया-आया और दो पैसे का बेलून खरीद लाया। बेलून पाने के बाद पोता जी शांत हुए। उसके होंठों पर फिर हंसी निखरी। बेलून लेकर फिर तमाम घर में दौड़-धूप जारी हो गई।

दीनू जब बूढ़े मालिक के पास गया तो उन्होंने पूछा, "ले आया बेलून?"

"दीनू ने कहा, "जी हां!"

"मुन्ने को दिया?"

"जी हां, दे दिया।"

"कितना दाम लिया?"

"जी, दो पैसा।"

"दो पैसा!"

बेलून की कीमत दो पैसा सुनते ही बूढ़े चौधरी चौंक-से उठे। बोले, "पर उस दिन कपिल पायरापोड़ा ने जो कैलास से चार पैसे लिए थे।"

फिर भी मन में संदेह हुआ। हिसाब-बही निकालकर देख लिया। हाट में जो भी खरीद-बेच होती, उसका हिसाब बूढ़े मालिक को देना पड़ता था। उन सबको अपने हाथों से लिखकर बही को वह संदूक में रख दिया करते थे। उस बही में साफ लिखा था, मुन्ने के लिए कपिल पायरापोड़ा से चार पैसे में बेलून खरीदा गया। आवाज दी, "कैलास? कैलास कहां गया?"

कैलास गुमाश्ता आया। मालिक ने पूछा, "कैलास, उस रोज कपिल पायरापोड़ा से तुमने कै पैसे में बेलून खरीदा था?"

"जी, हिसाब लिखकर तो मैंने आपको दे दिया है।"

वह बोले, "तुमने चार पैसा लिखाया है। मेरी बही में भी वही लिखा है। लेकिन आज दीनू मुन्ने के लिए रेल-बाजार से और एक बेलून खरीदकर लाया है—उसका दो पैसा लिया। यह कम्बख्त कपिल पायरापोड़ा तो चोर है। मुझसे उसने दो पैसा ठग लिया। क्या समझा उसने, अंधेर नगरी है। मेरा पैसा क्या सस्ता है।"

कैलास गुमाश्ता ने झुककर कहा, "आपसे कहें क्या हुजूर, आज की दुनिया में किसीका एतबार नहीं। कम्बख्त सभी चोर हैं।"

बड़े मालिक ने कहा, "सो चोर कहने से तो मैं नहीं सुनने का। चोरी करना हो, तो और किसीके यहां सेंध डालो, उसने समझा क्या है? सोचा कि मैं पकड़ नहीं सकूंगा? मैं बेवकूफ हूं? और मेरा पैसा क्या पैसा नहीं है? मुझे क्या कलेजे का लहू मुंह तक लाकर पैसा नहीं कमाना पड़ा है?"

जरा देर रुककर बोले, "उसके पास अपना जमीन-जमा क्या है?"

कैलास को सारा हिसाब जबानी ही याद रहता है। कहा, "नहर के पास एक ही लगाव में तीन बीघा उसके जिम्मे बटैया पर है और उसके चाचा के हिस्से में बाकी सात बीघा···"

"उसकी और क्या-क्या जायदाद है?"

"जी, जायदाद के नाम पर वही हमारा तीन बीघा ही उसका सहारा

…नसे उसका साल-भर गुजारा नहीं चलता। और षष्ठी देवी[1] की दया …रिवार भी बहुत बड़ा है। पहली बीवी के मर जाने से फिर नई शादी …की है, पहले घर से तेरह अंडे-पिल्ले और इस घर से अभी-अभी एक …ी हुई है…"

मालिक ने कहा, "तब तो बड़ी तकलीफ से गुजर करता है। लगान तो …न-मान ठीक से दे देता है न ?"

"जी, वह कैसे दे सकता है ? किसी-किसी साल बाकी भी रह जाता है। …ब डांट-डपट करने पर गाय-गोरू बेच-खोंचकर जमींदारी का बकाया वसूल …रता है किसी तरह से। इसीलिए तो हाट के दिन कभी बेलून, कभी बिस्कुट- …ामेंज लिए बैठता है, उससे जो दो पैसे मिल जाते हैं।"

बूढ़े मालिक ने कहा, "उससे क्या, वह मुझे ठगेगा ? मेरा ही खाए- …पहनेगा और मुझीको ठगेगा। यह तो ठीक नहीं। तुम उसकी जमीन खास …कर लो।"

"खास कर लूं ?"

"हां-हां, खास कर लो ! मैं वैसा दयावतार नहीं बन सकता। मेरे पास …उतना पैसा नहीं है। आज ही खास कर लेना, समझे ?"

कपिल पागरापोड़ा के पास उसी दिन यह खबर गई। उस समय वह दिन- …भर की मेहनत-मशक्कत के बाद घर में खाने बैठा था। यह सुनते ही खाना …तो उसका गरम हो गया। थाली छोड़कर वह उसी समय जमींदार की …कचहरी की ओर दौड़ा। कैलाश गुमाश्ता ने कहा, "तो मैं क्या करूं, कहो ? …जमीन क्या मेरी है ? जिनकी जमीन है ? वह अगर ऐसा हुक्म करें तो मैं क्य… …कर सकता हूं ? तू मालिक के पास जा और अपनी अर्जी पेश कर।"

कपिल के माथे पर तो उस समय गाज गिरी थी। वह बोला, "गुमाश्त… …जी, आप ही सब कुछ हैं, आप कहें तो मालिक मेरी जमीन वापस कर देंगे। …उतनी-सी जमीन, वह भी चली जाएगी तो मैं बच्चों को पालूंगा-पोसूंगा कैसे ? …मेरे परिवार का गुजर-बसर कैसे होगा ?"

पांच फुट ऊंचा एक मर्द आदमी जो ऐसे दहाड़ें मार कर रो सकता है, …बिना देखे सदानन्द इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। घर के सभी लोगों …को पता चल गया कि कपिल पागरापोड़ा की जमीन बूढ़े मालिक खास किए …ले रहे हैं। लेकिन किसीने भी यह नहीं पूछा कि आखिर खास क्यों किए ले …रहे हैं। सबके लिए मानो यह एक स्वाभाविक-सी चीज थी। यह तो होना …ही है। जमींदार को जमीन खास कर लेने का हक है। सो चाहे कोई कसूर …करे या नहीं करे। लगान दे या न दे। मेरी मर्जी थी, मैंने तुम्हें जोतने के लिए …जमीन दी थी। अब मेरी मर्जी हुई, मैं तुमसे जमीन छीन लूंगा। आखिर …जमीन के मालिक तुम हो कि मैं ?

सदानन्द ने जाकर दीनू मामा से पूछा, "दीनू मामा, कपिल को दादाजी

---

1. षष्ठी देवी—बाल-बच्चे और उनका खैर-कुशल करनेवाली देवी।

पीट क्यों रहे हैं ?"

दीनू मामा ने कहा, "पीटेंगे नहीं ? उसने मालिक को ठगा जो है ।"

"ठगा है ? कैसे ठगा है ?"

"उसने दो पैसे के बेलून का चार पैसा क्यों लिया ? ठीक वही बेलून मैं रेल-बाजार से दो पैसे में खरीदकर लाया हूं ।"

सदानन्द को तो जैसे काठ मार गया । उसने कहा, "गलत । कपिल ने बेलून तो बेचा नहीं । मैं बेलून के लिए जिद कर रहा था, उसने तो बिना पैसा लिए ही दे दिया । दाम कहां लिया ? मैंने तो अपनी नजर के सामने देखा, मैं तो हाट में मौजूद ही था···"

लेकिन उसने समझा, दीनू से इसमें कुछ होने-हवाने वाला नहीं । इसलिए वहां जरा भी न रुका, सीधे जाकर दादाजी के पास हाजिर हो गया । वहां तो एक अजीब ही वाकया हो रहा था । कमरे में अपने लोहे के संदूक के पास दादाजी बैठे थे, उनसे जरा दूर पर कैलास काका खड़ा था और उनके सामने बंशी ढाली कपिल पायरापोड़ा का झोंटा थामे डपटकर पूछ रहा था, "बता, मालिक को तूने ठगा क्यों ?"

लेकिन कपिल क्या कहे ? उसे तो बंशी ढाली कुछ कहने का मौका ही नहीं दे रहा था । उसने एक हाथ से कपिल का झोंटा पकड़ रखा था और दूसरे से वह उसके मुंह पर तमाचा जड़ता चला आ रहा था—और ऊपर से दादाजी उसे और जोश दिला रहे थे, "मार, मार । कम्बख्त को मार ही डाल । मेरे साथ शैतानी···और मार···"

सदानन्द से और रहा नहीं गया । वह कूदकर एकबारगी दादाजी के सामने चला गया । बोला, "दादाजी, इस बेचारे को मार क्यों रहे हैं ? इसने तो बेलून की कोई कीमत नहीं ली है, मुझे यों ही दिया था । कैलास काका तो यहीं हैं, इससे पूछ देखिए न । ऐं कैलास काका, तुम कुछ बोल क्यों नहीं रहे हो कैलास काका···?"

दादाजी लेकिन पोते की हरकत से खीज उठे । शुरू में वह जरा अकचका-से गए थे मानो । उसके बाद सम्भले, तो बोले, "अरे, तू यहां क्यों आया ? अरे ओ दीनू, कहां है तू ? दीनू ? मुन्ने को तूने यहां क्यों आने दिया···अरे ओ दीनू, ले जा, इसे यहां से ले जा···"

सदानन्द लेकिन नाछोड़ बंदा । वह बोला, "मैं यहां से हरगिज नहीं जाने का । पहले आप मेरी बात का जवाब दीजिए···"

सदानन्द भी नहीं जाने का और दादाजी भी नहीं छोड़ने के । तब तक दीनू आ पहुंचा । उसने सदानन्द को पकड़कर उठा लिया और जबरदस्ती ही लेकर बाहर चला गया । लेकिन उस समय तक भी कपिल का रोना उसके कानों में सुनाई पड़ रहा था ।

ये बातें कभी कितने पहले की हैं। तो भी सदानन्द को जैसे याद हैं, वैसे ही नवाबगंज के उन लोगों को भी याद हैं, जो आज भी जिन्दा हैं। उन्हें याद है, बाल-बच्चों की रोटी जुटाना जब दूभर हो गया, तो एक दिन कपिल पायरापोड़ा एकाएक नवाबगंज से कहां गायब हो गया, किसीको पता नहीं चला। कपिल के चाचा ने कुछ दिनों तक उसके बाल-बच्चों की देख-भाल की। उसके बाद एक दिन सबने देखा, गांव के उस सार्वजनिक स्थान में जो बरगद का पेड़ था, कपिल पायरापोड़ा का धड़ उससे झूल रहा था। गाय-गोरू बांधने की एक डोरी गले से लगाकर वह किसी समय वहां झूल पड़ा था, किसीने देखा नहीं।

उसके बाद थाना-पुलिस, दरोगा, कोर्ट-कचहरी, काफी कुछ हंगामा हुआ। आखिर उस घटना की लहर एक दिन ठंडी भी पड़ गई। लेकिन यह घटना सदानन्द के मन से नहीं मिटी।

यह सब छोटी-छोटी घटनाएं थीं। पर छोटी-मोटी घटनाएं ही सदानन्द के मन में जम-जमकर पहाड़ हो उठने लगीं। प्रकाश मामा पूछता, "हां रे सदा, तू इतना सोचा क्या करता है?"

सदानन्द कुछ बड़ा हो गया था। कहता, "अच्छा मामा, तुम्हें यह सब अच्छा लगता है?"

सुनकर मामा तो अवाक्। उसे तो महज मौज-मजे से मतलब था। वह तो सिर्फ खाना-पीना और चहल-पहल में दिन बिताना जानता था। अच्छा खाओ, अच्छा पियो, दोनों हाथों रुपया बटोरो और फिर दोनों हाथों वह रुपया उड़ाओ। भानजे की बात सुनकर पूछा, "क्या अच्छा लगता है?"

सदानन्द ने कहा, "यही सब, जो तुम रात-दिन करते रहते हो?"

"मैं रात-दिन क्या करता रहता हूं?"

"यही कि आराम से खाते हो, खर्राटे भरकर सोते हो, फिर सांझ को उठकर यह गांव, वह गांव करते फिरते हो और फिर रात में आकर सो जाते हो।"

प्रकाश मामा ने कहा, "अरे, मैं जो करता हूं, वही तो सभी करते हैं। क्यों, इसमें बुराई क्या है? मैं किसीकी चोरी भी नहीं करता, बटमारी भी नहीं करता। मेरे बाप-दादा, चौदह पुश्त यही करते आए हैं और मैं भी यही करूंगा। और, तू भी जब बड़ा होगा, तो तू भी यही करेगा। यही तो होता है…"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन मुझे तो यह सब करना अच्छा नहीं लगता है मामा! कपिल पायरापोड़ा को तुम पहचानते थे?"

"कपिल को? उस शैतान को? उसे नहीं पहचानता भला? कम्बख्त परले सिरे का अहमक था। अंत में इसीलिए बेमौत मरना पड़ा। जैसी करनी, वैसी भरनी।"

सदानन्द ने कहा, "देखो मामा, आज सभी लोग उसकी बात भूल गए। मेरे मां-बाबूजी, किसीको शायद याद नहीं है। शायद हो कि मेरे दादाजी

को भी उसकी बात याद नहीं है। बरवारी-थान पर फांसी लगाकर उसने जो आत्महत्या की, यह सबने देखा। देखकर सभी सिहर उठे। मगर आज अब किसीको भी वह बात याद नहीं है। जानते हो..."

प्रकाश मामा हो-हो करके हंस उठा। बोला, "तू तो बिलकुल पागल लगता है रे! भला इतनी बातें याद रखने से आदमी का काम चल सकता है! दुनिया में एक दिन तो सबको मरना है। सबके बाप मरेंगे, दादा मरेंगे, मां मरेगी। शुरू-शुरू लोग इसके लिए एक दिन रोएंगे। लेकिन उसके बाद? उसके बाद रोते-पीटते रहने से दुनिया चलेगी भला! मेरे तो मां-बाप मरे, तो मैं खूब रोया था। मगर अब रोता हूं? उसके लिए मुझे कभी रोते देखा है? तूने तो मुझे अवाक् कर दिया, यार!"

सदानन्द ने कहा, "मगर मैं कुछ भी भूल क्यों नहीं सकता हूं मामा? मुझे क्यों सारा कुछ याद रह जाता है? कपिल पायरापोड़ा की बात तो मुझे हर वक्त याद आती है। रोज रात में लेटे-लेटे सोचता हूं, दिन में स्कूल में पढ़ते-पढ़ते सोचा करता हूं, खाते-खाते सोचता हूं..."

भानजे की बात सुनकर प्रकाश मामा को डर लग गया। बोला, "यह लो, चौपट..."

सदानन्द ने कहा, "क्यों, मैंने किया क्या?"

"देख रहा हूं, यह तेरा दिमाग खराब होने का लक्षण है। यह कुछ अच्छी बात तो नहीं। डाक्टर से दिखलाना होगा।"

सदानन्द ने कहा, "लेकिन उसने तो कोई कसूर नहीं किया था मामा! दादाजी ने तो उसे नाहक ही मारा। बेवजह उन्होंने बंशी ढाली से उसका अपमान कराया। उसने तो कुछ भी नहीं किया..."

सब कुछ सोच-विचारकर प्रकाश मामा मानो एक निष्कर्ष पर पहुंचा था। बोला, "न, लगता है, अब जीजाजी को तेरे ब्याह के लिए कहना होगा।"

"ब्याह? ब्याह मैं नहीं करूंगा मामा!"

"हाय राम! अपने दादा का तू अकेला पोता है, बाप की आंखों का तारा, इकलौता बेटा। ब्याह नहीं करेगा? दिमाग खराब हो गया है तेरा? पता है, तेरे जैसा लड़का मिले तो लड़कियों के बाप लोक लेंगे?"

सदानन्द को यह सब अच्छा नहीं लगता। तीसरे पहर जब वह पैदल स्कूल से लौटता, तो जाड़ों में कभी-कभी लौटते हुए अंधेरा हो जाता। उस समय उसे लगता, कौन तो उसके पीछे-पीछे आ रहा है—सूखे पत्ते पर पांव पड़ने से जैसे मर्मर होता है, वैसी ही आवाज करता हुआ कोई उसके पीछे-पीछे आ रहा है। बहुत बार लगा, गांव का ही कोई खेत-खलिहान से आ रहा है। या किसी घर की बहू नदी से पानी भरकर लौट रही है। मगर नहीं, बहुत बार रास्ते के आस-पास, आगे-पीछे, दूर-पास—कोई नहीं होता, मगर कौन तो मानो उसके पीछे-पीछे आता है।

एक दिन आखिर उसने पकड़ लिया था। वह आदमी आते-जाते बिलकुल उसके बिलकुल बदन पर ही आ रहा मानो। सदानन्द चौंककर चीख उठा,

?"

"हां !"

यह 'हां' शब्द कोई बोला या नहीं, वह समझ नहीं सका। हो सकता है, कि भीतर का आतंक ही शब्द होकर बाहर निकल पड़ा हो। किन्तु एक
। एक ही पल में उसकी आंखों के सामने से वह गायब हो गया। लेकिन
के गायब होने के उस छोटे-से ही क्षण में उसने जो देखा, उससे उसे लगा,
ह और कोई नहीं, कपिल पायरापोड़ा है।

यह वाकया उसने प्रकाश मामा से जो कहा, तो उसने ज़रा भी देर नहीं
की। वह फौरन जीजाजी के पास चंडीमंडप में जा पहुंचा। बोला, "जीजाजी,
दा का ब्याह कर देना होगा।"

"ब्याह !" सुनकर जीजाजी पहले तो अवाक् रह गए थे। दीदी का भी वही हाल। ब्याह तो खैर उसका करना ही होगा, तो क्या अभी ही? इतनी जल्दी?

प्रकाश ने कहा, "ब्याह नहीं कर देने से आपका लड़का संन्यासी बनकर जंगल की खाक छानेगा, तब मजा मालूम होगा..."

मगर प्रकाश की बात पर पहले किसीने कान नहीं दिया। गरीब की बात पर पहले कोई कान देता भी नहीं। इसीलिए कहावत है कि गरीब की बात जब बासी होती है, तब लोग उसको महत्त्व देते हैं। अंत में जब स्वयं बड़े मालिक ने यह बात उठाई, तो सबका ध्यान गया। उस समय बड़े मालिक के दोनों ही पांव झूल पड़े थे। बिलकुल पंगु हो गए थे। संदूक के पास पड़े-पड़े ही रोजमर्रे का काम-काज चलाया करते थे। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि आंखें बंद करने से पहले वह पोते के बेटे का मुंह देख जाएं। वह यह देख जाना चाहते थे कि उनकी वंश-धारा अक्षय रही।

यह खबर मामा बाबू के कानों पहुंची तो वह उछल पड़ा। दीदी के पैसों से वह बैठा-बैठा खाता है और उसके बदले वह थोड़ा-सा उपकार भी नहीं कर सकेगा? दीदी के उपकार का एक मौका पाकर वह मानो जी गया। बोला, "कोई परवा नहीं। मुझे सिर्फ यह कह दो कि कैसी लड़की चाहिए?"

"बड़े मालिक का हुक्म है, लड़की परकटी परी होनी चाहिए। परकटी परी यानी देखने-सुनने, बोलने-चालने में परी-सी हो—सिर्फ इसके वे पर नहीं होंगे, जो परियों के होते हैं।"

"और?"

"और, परी की तरह उड़ने से नहीं चलेगा।"

प्रकाश ने कहा, "पर ही नहीं होंगे, तो उड़ेगी कैसे? और यदि उड़ना भी चाहे, तो न हो तो तुम पैरों में जंजीर डाल देना।"

दीदी हंसने लगी। बोली, "आजकल की लड़कियां क्या जंजीर मानेंगी
भैया! शायद हो कि सास-ससुर को ही न लगावें। वह तो कुछ हम लोगों का
जमाना नहीं। मेरी शादी तो दस साल की उम्र में हुई थी। उस समय मे

कमर में कपड़ा खुल जाता था। सास गिरह बांध देती थीं, तो लाज-शर्म बचती थी।"

प्रकाश ने कहा, "तो दस साल की लड़की ला देता हूं—तुम जैसा हुक्म करोगी, वैसा ही होगा···"

दीदी ने कहा, "तो वही कर भैया, नहीं तो बड़े मालिक कब हैं, कब नहीं हैं। जरा जल्दी ही कर तू।"

अंत तक मनपसंद लड़की ही मिली। उम्र भी कम और देखने में भी परकटी परी। उम्र थोड़ी और भी कम होती तो और अच्छा होता। पर ठीक तुम्हारे हुक्म के मुताबिक ही लड़की कहां पाऊं? फिर तो कुम्हार को बुलाकर गढ़ने की फरमाइश करनी पड़ेगी। कृष्णनगर के पास ही घर है। बाप पंडित व्यक्ति हैं। शास्त्रों के जानकार। पति और पत्नी, और संतान कहने को यही एक लड़की। कुल मिलाकर अच्छा-खासा घर है। नकद कुछ नहीं दे सकूंगा। लड़की पसंद हो तो कलाई पर लाल धागा बांधकर ले जाइए। उसके बाद लड़की की तकदीर और ईश्वर की इच्छा।

यही है नयनतारा। इस कहानी के मुजरिम सदानन्द चौधरी की स्त्री। हमारी नायिका।

प्रकाश राय इस नई दुल्हिन नयनतारा को लेकर इसी रास्ते से एक दिन नवाबगंज आया था। नवाबगंज के जमींदार नरनारायण चौधरी के यहां जाने के लिए इस बरवारी-थान हाट होकर ही जाना पड़ता है। इसी रास्ते से एक दिन नयनतारा चौधरी परिवार की बहू होकर आई थी, और फिर उसी बहू के वेश में ही इसी रास्ते से चली गई थी। इसी रास्ते से एक दिन उस युग के एक सामंती परिवार में चरम समृद्धि का उदय हुआ था और फिर नयनतारा के साथ ही साथ इसी रास्ते से उस समृद्धि का सदा के लिए अस्त भी हो गया था। चिरकाल के उदय-अस्त का यही वह शाश्वत पथ है—वहीं, रेल-बाजार से नवाबगंज के बरवारी-थान की हाट तक। इस बार उस घटना के कितने दिनों के बाद प्रकाश राय फिर नवाबगंज में प्रकट हुआ। मुबारकपुर में बस से उतरा, फिर पैदल। मुबारकपुर अब वह पहले का मुबारकपुर नहीं। मुबारकपुर ही क्यों, वह नवाबगंज भी नहीं। नवाबगंज का वह मकान भी अब चौधरियों का नहीं। नरनारायण, हरनारायण, चौधरी परिवार की गृहिणी—प्रकाश राय की दीदी, वह सब भी कोई नहीं है। रेल-बाजार के घाट के आढ़तिये प्राणकृष्ण साह ने एक दिन पानी के दाम में उतने बड़े दुमंजिले मकान को खरीद लिया। लेकिन प्राणकृष्ण साह भी उस मकान को नहीं रख सका। ब्राह्मण की जायदाद, खास करके उनके रहने के मकान को नहीं खरीदना चाहिए। पानी के मोल मिले, तो भी नहीं। परन्तु साह बाबू ने किसीकी एक नहीं सुनी। सोचा, बड़ा लाभ किया। लेकिन अब? वही प्राणकृष्ण साह एक दिन हार्ट फेल से बेमौत मर गया। उसके बाद से चौधरियों का मकान भुतहा मकान होकर 'सं-सां' कर रहा है। दिन को भी लोग उधर जाने में डरते हैं। कहते हैं, उस घर पर ब्रह्मदैत्य का अभिशाप है, उधर मत जाना···

बगल की दूकान से कौन तो चिल्ला उठा, "महाशय जी, कहां से पधार रहे हैं?"

सूटकेस लिए प्रकाश राय उस तरफ गया। बोला, "मैं भागलपुर से आ रहा हूं। यहां एक काम से आया हूं..."

"यहां किसके यहां जाएंगे?"

प्रकाश राय ने कहा, "किसीके यहां नहीं जाऊंगा। मैं सदानन्द की तलाश में आया हूं—सदानन्द चौधरी।"

सदानन्द का नाम लेते ही दूकान के आसपास जो लोग थे, वह सब करीब आ गए। कहां का आदमी है यह! परिचय क्या है। सदानन्द चौधरी को ढूंढ़ रहा है, यह कोई जो-सो आदमी तो नहीं है।

चौधरी जी के चले जाने के बाद से किसीने कभी इस बात की खोज भी नहीं की कि सदानन्द जिन्दा है या नहीं, उसे दाने मयस्सर हो रहे हैं या नहीं!

"तो आप इतने दिनों के बाद सदा की खोज क्यों कर रहे हैं?"

"मैं पूछने आया हूं, वह कहां है, आप लोगों को मालूम है या नहीं, मुझे उसका पता बता सकेंगे कि नहीं। उसकी सख्त जरूरत है मुझे..."

परेश मौलिक अब तक हुक्का पीने में मशगूल थे। उन्होंने अब जुबान खोली। बोले, "आपका घर?"

प्रकाश ने कहा, "भागलपुर। मैं सदानन्द का मामा हूं।"

"प्रकाश मामा? साला बाबू! अरे साहब, वही कहिए। अब तक क्यों नहीं बताया? बैठिए-बैठिए। मगर आपकी शक्ल-सूरत कैसी हो गई है? बाल पक गए। ओह, कितने दिनों के बाद भेंट हुई। खैर! चौधरी बाबू कैसे हैं?"

चौधरी बाबू माने हरनारायण चौधरी! प्रकाश ने बताया, "जीजाजी पिछले हफ्ते हमें छोड़ गए!"

उनके मरने की खबर सुनकर सभी मानो स्तंभित हो गए। बोले, "वे गुजर गए?"

परेश मौलिक ने हरनारायण चौधरी की कचहरी में भी कुछ दिनों तक काम किया था। समाचार सुनकर वह सबसे ज्यादा चौंके। बोले, "हूं, गुजर गए? हुआ क्या था उन्हें?"

प्रकाश राय ने कहा, "खास कुछ नहीं हुआ था। अच्छे ही थे। कई दिनों से यह देख रहा था कि वह बाहर नहीं निकलते थे। एक दिन कमरे का दरवाजा खोला, तो देखा कि वह मरे पड़े हैं। हम लोगों को पता भी नहीं चला..."

नये आदमी को देखकर इतने में और भी कुछ लोग आकर जमा हो गए थे। हरनारायण चौधरी के मरने का समाचार सुनकर बहुतों ने दीर्घ-निःश्वास छोड़ा। बहुतों ने उनको देखा है। जिन्होंने देखा नहीं, उन्होंने नाम सुना है चौधरी परिवार की कहानी सुनी है। उन्हीं हरनारायण चौधरी की इ मार्मिक परिणति को सुनकर सबके ही मुंह से अनजानते ही एक 'अहा' निक पड़ा। ऐसा ही होना है जी। जितना भी बड़ा आदमी क्यों न हो, सबका अ

आखिर वही मौत। इस मौत से किसीको छुटकारा नहीं। यह पुरानी बात ही जैसे सबको नये सिरे से याद हो आई।

प्रकाश राय ने कहा, "खैर, जो होने का था, सो तो हो चुका। अभी मैं सदा को खोजने के लिए आया हूं। बता सकते हैं आप लोग, वह कहां जाने से मिलेगा? कलकत्ता गया था। वहां भी लोग उसका पता नहीं बता सके। इसीलिए नवाबगंज आया हूं। अब यह नहीं समझ पा रहा हूं कि यहां से कहां जाने पर उसको पा सकूंगा।"

परमेश मौलिक ने कहा, "सदा क्या अब जिन्दा है? मुझे तो यकीन नहीं। अंतिम दिनों में उसकी हालत बड़ी बदतर हो गई थी। महज एक दिन वह गांव में आया था, उसके भी बहुत दिन हो गए···"

"क्यों?"

निताई हालदार बगल में ही खड़ा सुन रहा था। उससे रहा नहीं गया। बोला, "कैसे अच्छा रहता? आप लोगों ने क्या उसकी खोज-खबर ली थी? अपना बाप ही जिसे नहीं देखता था, वह अच्छा कैसे रहे? कोई उसे खाने-पहनने भी देता था? अब उसका बाप चल बसा तो सम्पत्ति के लोभ से उसकी खोज-खबर लेने के लिए आए हैं आप लोग। लेकिन उस समय आप कहां थे?"

परमेश मौलिक ने भी यही कहा, "हां साला बाबू, अंतिम दिनों में सदा के दिन बड़े कष्ट के बीते। उतने बड़े खानदान का लड़का और उस बेचारे की यह दशा। उस समय गांव में एक यात्रा-पार्टी आई हुई थी। उसीके पीछे-पीछे वह चला गया···"

इतनी देर के बाद प्रकाश राय को जैसे एक किरण मिली। बोला, "यात्रा-पार्टी के साथ? उसके साथ कहां गया?"

"यह क्या खाक देखा हम लोगों ने। यात्रा-पार्टी क्या कहीं एक ही जगह बैठी रहती है साला बाबू? वे लोग तो आज यहां, कल वहां घूमते रहते हैं। आज हुगली में है तो कल ही आसाम की ओर चल दिया।"

"फिर भी, पार्टी का कहीं दफ्तर तो होगा। उस पार्टी के नाम का पता चले, फिर तो उसके प्रधान कार्यालय में जाकर ढूंढ़ सकता हूं···"

परमेश मौलिक ने कहा, "कितनी यात्रा-पार्टियां तो आती हैं। वह जिस पार्टी के साथ गया, उसका नाम तो याद नहीं आ रहा है।"

जो लोग आस-पास खड़े थे, उनकी ओर देखकर बोले, "भई, तुम लोगों में से कोई पार्टी का नाम जानते हो?"

निताई हालदार वहीं था। वह अपने को रोक नहीं सका। बोला, "मगर इतने दिनों से आप लोग कहां थे साला बाबू? इतने दिनों में तो आप लोग एक दिन को भी उसकी खोज करने नहीं आए। अब चौधरी बाबू चल बसे तो उनके अगाध रुपयों के वारिस की तलाश हो रही है। हम लोग सब समझ रहे हैं···"

यह सुनकर प्रकाश राय कैसा तो पिचक-सा गया।

निताई हालदार फिर भी नहीं रुका। कहने लगा, "चौधरी बाबू के लाखों

रुपये हैं, वह सब तो सदानन्द को ही मिलेगा। जभी उसके लिए इतनी हमदर्दी छलकी पड़ रही है, है न? इसीलिए अब उसकी खोज हो रही है। यह सोचा है कि पगले भानजे को सामने खड़ा करके सारी दौलत अपने पेट में भरेंगे। सो इरादा आप लोगों का बड़ा भला है साला बाबू। लेकिन एक बात आपसे कह देता हूं, सदानन्द का जो चाहे हो, आप लोगों का भी लेकिन कुछ भला न होगा। ये रुपये आप भोग नहीं सकेंगे। क्योंकि अभी भी आसमान में चांद-सूरज उगता है—यह मत भूल जाइए कि अभी भी सिर के ऊपर भगवान नाम के कोई एक हैं…"

परमेश मौलिक ने निताई हालदार को रोक दिया। बोले, "निताई तू चुप रह…"

निताई सदा का मुंहफट है। बोला, "क्यों, चुप क्यों रहूं चाचा जी? मैं क्या कुछ गलत कह रहा हूं? यहां तो गांव के और भी दस जने हैं। सदानन्द को किसने नहीं देखा है? सबको पता है कि वह अपने सगों से किस कदर लांछित हुआ है। अपने बाप ने जब उसे घर से निकाल दिया, लड़के को एक मुट्ठी भात भी जीने के लिए नहीं दिया, उस समय इस मामा ने तो आकर उसे अपने घर में पनाह नहीं दी। जब तक दीदी रही, जब तक दीदी रुपये देती रही, तब तक खातिर की मत पूछो। साला बाबू बिलकुल घर के आदमी। इधर दीदी चल बसी कि इनकी चुटिया के भी दर्शन नदारद!"

प्रकाश को ये बातें अच्छी नहीं लगीं। वह सूटकेस लेकर उठ खड़ा हुआ। बोला, "तो मैं चलूं…"

निताई ने कहा, "हम लोगों की बातें अच्छी नहीं लग रही हैं न, इसीलिए चले जा रहे हैं। कड़वी बात अच्छी ही किसे लगती है, कहिए?"

प्रकाश कुलबुलाकर कहने लगा, "नहीं, मतलब, मैं तो सदानन्द को ही खोजने के लिए यहां आया था, लेकिन वह जब यहां नहीं है, तो और ही कहीं कोशिश कर देखूं!"

निताई ने कहा, "हां, और कहीं ढूंढ़कर उसे निकालने की कोशिश कीजिए, खोजकर उसे अपने घर ले जाइए, वहां उसे दामाद के जतन से रख-कर अच्छी तरह से माथे पर हाथ फेरिए—किसी कागज पर उससे सही बनवा लीजिए। उसके बाद उसे मार-झाड़ मारकर निकाल बाहर कीजिए। किसी-को कानों-कान भी खबर न होगी और जीजाजी के लाखों की संपत्ति आप लोगों के हाथ लग जाएगी।"

गांव के लोगों ने उस दिन जो बातें कहीं, उनमें से एक भी झूठी न थी। सबको मालूम था कि हरनारायण चौधरी को अपने ससुर का भी बहुत रुपया मिला था। नवाबगंज की सारी जायदाद बेचकर जो कुछ भी मिला था, सब लेकर वह भागलपुर चले गए थे। सदानन्द के दादाजी, मां—सब उस समय मर चुके थे। नयनतारा भी ससुराल छोड़कर अपने मैके कृष्णनगर चली गई थी। सारा मकान आजकल श्मशान हो गया था। चौधरी बाबू उस समय नवाबगंज के इस मकान में अकेले ही रहते थे। और सदानन्द कहां रहता था,

क्या पता ? उसकी खोज कोई नहीं रखता था।

वह परमेश मौलिक जहां बैठे हैं, इसी बरवारी-थान के चौतरे पर सदानन्द ने अनेक दिन, अनेक रातें गुजारीं।

निताई हालदार पूछता, "छोटे बाबू, आप घर नहीं जाएंगे ? रात तो काफी हो चुकी।"

हरनारायण चौधरी उस समय उतने बड़े मकान में अकेले ही रहते थे। नवाबगंज के बरवारी-थान से वह मकान दिखाई पड़ता था। सारे मकान में बेशुमार कमरे। चार महल का मकान। दक्खिन की तरफ वह तालाब। घर से बिलकुल सटा हुआ। तालाब से निकलते ही बांध पर कतार से धान-चावल-दाल की मोरियां बंधी। तालाब और उन मोरियों के बीच काफी लंबी-सी जगह में साग-सब्जी की खेती। लौकी, कोंहड़ा, करैला का मचान। कुछ पपीते के पेड़, बैंगन की क्यारी। जिन दिनों चौधरी परिवार भरा-पूरा था, उन दिनों वहीं पर घर की स्त्रियों की साड़ियां कतार से सुखाई जाती थीं। धूप जाने के बाद तीसरे पहर गौरी बुआ उन्हें उठा ले जाती। और जिस-जिस की साड़ी होती, उसके-उसके कमरे में करीने से रख देती। रात होने पर उस जगह में जाया नहीं जा सकता। डर लगता। लेकिन उसके पास ही गोहाल या गुहाल था। रात में बहुत बार सदानन्द उसी तालाब के बंधे हुए घाट पर चुपचाप बैठा रहता। उसे लगता, तालाब के पानी से कौन लोग तो उठकर उसकी तरफ आ रहे हैं। शक्ल आदमी जैसी, मगर मानो ठीक आदमी नहीं।

पास आते ही सदानन्द को डर लग जाता। चीख पड़ता, "कौन हो तुम लोग ? तुम लोग कौन हो ?"

वह सब हंसते। कहते, "हमें तुम लोग नहीं पहचान सकोगे। नहीं पहचानोगे…"

सदानन्द पूछता, "लेकिन तुम लोग यहां किसलिए आए हो ? घर के अंदर जाओगे क्या ?"

वह सब और भी हंस उठते। कहते, "हम सभी जगह जा सकते हैं…"

"लेकिन तुम लोग यहां किसलिए आए हो ?"

"देखने।"

"क्या देखने ?"

"देखने आए हैं कि तुम लोग कैसे हो। देखने आए हैं कि नवाबगंज के सब लोग कैसे हैं।"

"तुम लोगों का घर कहां है ?"

"हम लोगों का घर कभी यहीं नवाबगंज में ही था। लेकिन अब हम लोगों का कोई घर नहीं। अब हम लोगों का घर हर जगह है। अब हम लोग सब जगह जा सकते हैं।"

"तो क्या तुम लोग भूत हो ?"

वे लोग सदानन्द की बात सुनकर हंस उठते। कहते, "डर लग रहा है, क्यों ? डरो मत। हम लोग रोज ही यहां आते हैं और रोज ही आया करेंगे।

हम लोगों को कोई रोक नहीं सकता। पहले तो यहां आ नहीं सकते थे। कभी हम लोग चौधरी बाबू की कचहरी में आकर उनके सामने हाथ जोड़े बैठे रहते थे। लगान माफ करने की विनती करते थे। पहले हम कालीगंज के जमींदार बाबू की प्रजा थे, बाद में चौधरी बाबू की प्रजा हो गए। सूखे के समय हम लोग लगान नहीं दे सके। जिस साल आंधी से हम लोगों का घर गिर गया था, घर बनाने के लिए हम लोगों ने चौधरी बाबू की बंसवारी से बांस काटे थे। उसके लिए हम लोगों पर फौजदारी की नालिश दायर की गई थी।"

"उसके बाद?"

"उसके बाद हम लोगों की जमीन खास हो गई। हम लोगों का घर-द्वार उजड़ गया। इधर, इसे देखो—इसके गले में यह किस चीज का दाग है?"

"किस चीज का दाग?"

उस अंधेरे में ही सदानन्द ने पैनी नजर से उस आदमी के गले के पास गौर किया। धुंधली छाया। फिर भी लगा, वहां की छाया जैसे और भी गाढ़ी है, और भी गहरी हो उठी है।

"इसने गले में रस्सी लगाकर आत्महत्या की थी।"

"गले में रस्सी लगाकर?" सदानन्द चौंक उठा।

"हां, बरबारी-थान में जो बरगद है न, रस्सी लगाकर उसीकी डाल से झूल गया था।"

"नाम क्या है इसका?"

"कपिल पायरापोड़ा।"

उस नाम के कान में जाते ही एक चीख के साथ सदानन्द वहीं ईंट-बंधी सीढ़ी पर बेहोश हो गया। लेकिन किसीको इसका पता नहीं चला। सांझ को जब हरिहर बाबू पढ़ाने के लिए आए, तो उसकी खोज होने लगी। नन्हे बाबू नहीं हैं। सदानन्द को खोजो। हरिहर बाबू रोज तीन कोस की दूरी साइकिल से तै करके उसे पढ़ाने आते हैं। सभी इस बात को जानते थे। घर में तमाम उसकी खोज होने लगी। बड़ा अनमना लड़का है। ख्याली किस्म का। बहुत बार स्कूल से लौटते हुए ही किसीके घर चला जाता और कोल्हू पर चढ़कर बैठ जाता। फिर तो उसे घर की, भूख की याद ही नहीं रहती। उस दिन उसे तमाम खोजा गया। चौधरी बाबू चंडीमंडप में रैयतों से बातें कर रहे थे। उन्होंने कहा, "कहां, मैंने तो नहीं देखा है। वह मेरे पास तो आया ही नहीं। स्कूल से तो वह लौट आया था न? गौरी बुआ ने उसे अपने हाथों मूढ़ी, बताशा और संदेश खाने को दिया है।" "तो? कहां जाएगा और?" दीनू भी हाट के पास देख आया। वहां भी नहीं। प्रकाश मामा दीदी के पास आया था। बाहर कहीं घूम रहा था। अंदर आया तो उसे मालूम हुआ, सदा का कहीं पता नहीं चल रहा है। वह फिर बाहर की ओर दौड़ा। आखि जाएगा कहां वह? उड़ तो नहीं सकता। दीदी से कहा, "कुछ रुपये दो···

दीदी ने पूछा, "रुपये का क्या होगा रे ?"

प्रकाश ने कहा, "कहां-वहां जाना होगा। हाथ में रुपया रख लेना ठीक है, समझीं ? सब समय हाथ में कुछ रुपये रख देना, देख लेना, सब ठीक हो जाएगा।"

रुपया लेकर प्रकाश राय निकला। लेकिन सदानन्द को वास्तव में ढूंढ़कर निकाला गोरी बुआ ने। वह गोंयठा लाने के लिए मुहाल की ओर जा रही थी। चांदनी में एकाएक उसकी नजर पड़ी, घाट की सीढ़ी पर कौन तो चित पड़ा है और कराह रहा है। उसे कैसा तो संदेह-सा हुआ। वह बोली, "कौन है रे ? यहां कौन सोया हुआ है ? कौन है तू ?"

कोई जवाब नहीं। धीरे-धीरे वह करीब गई तो देखा, सदानन्द है। उसे उस हालत में देखकर वह वहां खड़ी नहीं रही। भागी-भागी घर गई। सुनते ही सब उधर दौड़े। चंडीमंडप से चौधरी बाबू भी आए। जो रैयत वहां बैठे थे, वे लोग भी आए। डाक्टर-वैद आए। जब उसे होश आया, तो पूछा गया, "तुझे क्या हुआ था ? शाम के वक्त वहां किसलिए गया था ? डर लगा था ?"

"हां !"

"किसने डराया था ?"

सदानन्द ने कहा, "कपिल पायरापोड़ा था।"

सदानन्द के बचपन की घटनाएं हैं ये। प्रकाश मामा जब सदानन्द के लिए लड़की देखने के लिए कृष्णनगर गए थे, तो यही सब चर्चा आई थी। समधी जी सीधे-सादे आदमी। नवाबगंज के चौधरी परिवार के इकलौते लड़के से उनकी बिटिया का ब्याह होगा, यह सुनकर वह बहुत ही खुश हुए थे। जीवन-भर स्कूल में लड़कों को संस्कृत सिखाते रहे। धातुरूप किसे कहते हैं, जानते हैं। व्याकरण किसे कहते हैं और किसे अलंकार—यह भी मालूम है। खाने-पहनने की जैसे कोई चिंता नहीं थी, वैसे ही कोई अभाव भी नहीं था। यह कहा करते थे, "अभाव कहो, तो अभाव; वरना मुझे कोई अभाव नहीं। मैं अगर कुछ चाहूं नहीं, तो मुझे अभाव किस बात का ? मेरे तो बस एक लड़की ही है—नयनतारा। नयनतारा को जो भी देखेगा, वही पसंद कर लेगा। नयनतारा के ब्याह के लिए हमें चिंता नहीं करनी होगी।"

स्त्री ने कहा, "सो जो हो, मगर ब्याह की चेष्टा तो करनी होगी..."

ये कालीकांत भट्टाचार्य पंडित व्यक्ति थे, व्याकरण तीर्थ। कहते, "चेष्टा करनेवाला मैं कौन होता हूं, यह तो कहो ? जो इस सारे विश्व-ब्रह्मांड के मालिक हैं, उनकी जो इच्छा है, वही होगी।"

प्रकाश मामा जब यह रिश्ता लेकर गया था, तो कालीकांत भट्टाचार्य ने उनको भी यही कहा था। कहा था, "मैं कौन हूं, कहिए। और आप ही कौन हैं ? हम कोई भी कुछ नहीं हैं। निमित्त मात्र हैं हम। नयनतारा की मां मुझे

ताकीद करती रहती हैं। कहती हैं, 'बेटी के ब्याह के लिए तुम्हें कोई चिंता ही नहीं है।' मैं कहता हूं, 'बेटी के ब्याह के बारे में सोचनेवाला मैं कौन होता हूं ? यह तो वही सोच रहे हैं, जिन्होंने उसे मेरे घर भेजा है।' और देख लीजिए, कहां थे आप और कहां था मैं—एकाएक आप नयनतारा के सम्बन्ध के लिए आ पहुंचे—और, ऐसा लड़का पाना तो मेरे लिए सौभाग्य की बात है प्रकाश बाबू···" फिर ज़रा रुककर बोले, "आप लड़के के कौन होते हैं ?"

"जी, मामा।"

"आप हरनारायण चौधरी जी के अपने साले हैं ?"

"जी नहीं। मैं चौधरी जी की स्त्री के मामा का लड़का हूं। यानी ममेरा भाई। लेकिन सच पूछिए को सहोदर भाई जैसा ही हूं। चौधरी जी के ससुर कीर्तिपद मुखर्जी के कोई लड़का नहीं था, लिहाजा मैं उन्हींके यहां उनके अपने लड़के जैसा ही पला। इतनी घनिष्ठता इसीलिए है। दीदी ने मुझसे कहा था, बेटे सदानन्द के लिए उन्हें परकटी परी जैसी एक लड़की चाहिए। सो मैंने बहुत-बहुत खोजा। सौ के करीब लड़कियां देखीं। मेरे जीजाजी को तो रुपयों की कोई मांग नहीं है, रुपया उन्हें बहुत है, इसलिए उनकी एक ही आंतरिक इच्छा है, उनकी पतोहू जिसमें परकटी-परी जैसी हो, बस···"

कालीकांत जी ने पूछा, "तो मेरी लड़की आपको कैसी लगी ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "कहा तो, परकटी परी-सी।"

"आपको पसन्द आई ?"

प्रकाश मामा ने कहा, "आपकी लड़की जिसे पसंद नहीं आएगी, वह या तो अंधा है या फिर झूठा।"

कालीकांत भट्टाचार्य की आंखें फटकर जैसे आंसू उमड़ पड़ने को आया। क्या करें, कुछ समझ नहीं पाकर बोले, "आप और भी दो-एक मलाई-मिठाई लीजिए समधी जी!"

"दीजिए। खाने के मामले में मैं कभी ना नहीं करता। ज़रा सम्बन्ध हो जाने दीजिए, फिर मैं देखता हूं कि आप मुझे कितनी मलाई-मिठाई खिला सकते हैं···"

बोलकर प्रकाश जितना हंसने लगा, कालीकांत जी भी उतना ही हंसने लगे। तुरन्त और भी मलाई-मिठाई आई। और भी बातें हुईं, और भी हंसी छूटी। गप-शप और हंसी से प्रकाश मामा ने पहले ही दिन बेटी के बाप के मन को गला दिया। वहां से उठकर सीधे स्टेशन, गाड़ी पर सवार होकर एकबारगी अपने रेल-बाजार में उतरा। बरवारी-थान की हाट के पास पहुंचा, तो लोगों ने घेरा, "क्यों साला बाबू, कहां से आ रहे हैं ?"

साला बाबू ने कहा, "हां, सुन ही लो भैया, कह ही रखूं, अगले अगहन में सदा का ब्याह है, अभी-अभी मैं लड़की पसंद कर आया। तुम सभी जाना, सबको न्योता दे रखता हूं···"

सुनकर सब अवाक् रह गए। सदानन्द का ब्याह। चौधरी बाबू के

सौतेले बेटे का ब्याह !

सबको न्योता दिया जाएगा। जाना ही पड़ेगा, वहां !

कहां ब्याह होगा, कब किस तारीख को ब्याह होगा—इसका कोई ठिकाना नहीं, सिर्फ लड़की देख ली और ब्याह हो गया। ब्याह क्या इतनी आसानी से होता है? और फिर जिसका ब्याह है, चौधरी बाबू का वह लड़का ही तो खुद कहता है कि मैं ब्याह नहीं करूंगा। राह-घाट में कितने ही लोगों ने सदानन्द को देखा है। नदी में नहाते वक्त भी बहुतों ने उससे पूछा है, "क्यों रे सदा, कल तू कहां था? सभी तुझे ढूंढ़ने में परेशान हो रहे थे? कहां गया था?"

सदानन्द ने कहा, "कालीगंज।"

"कालीगंज? कालीगंज किसलिए?"

"यों ही, घूमने के लिए।"

घूमने के लिए कालीगंज गया था, यह सुनकर सबको ताज्जुब हुआ। सदानन्द को घूमने की और कोई जगह नहीं मिली, घूमने कहां गया, तो कालीगंज! उससे तो नवाबगंज-घाट में निताई हालदार की दूकान के सामने ताश खेलने आता। या फिर क्लब के लड़के 'नल-दमयंती' नाटक खेल रहे हैं, उसीका रिहर्सल देखता। सो नहीं, अकेले-अकेले खेत-खलिहान में घूमता रहता है।

एक ने कहा, "चौधरी बाबू से कहेंगे, अब तेरी शादी कर दें।"

सदानन्द ने कहा, "मैं शादी नहीं करूंगा।"

"शादी नहीं करेगा, तो इतनी जगह-जायदाद, इतने रुपये-पैसे आखिर खाएगा कौन?"

"मेरे दादाजी खाएंगे, मेरे पिताजी खाएंगे।"

"लेकिन जब तेरे दादाजी नहीं रहेंगे, मां-बाप कोई नहीं रहेंगे, जब तू भी नहीं रहेगा—तब कौन खाएगा?"

सदानन्द ने कहा, "फिर तुम लोग किसलिए हो? तुम लोग खाना।"

"अरे, हम लोग? हम लोग खाएंगे? हम सबकी क्या वैसी किस्मत है। वैसी किस्मत होती, तब तो हम लोग बड़े आदमी के ही यहां पैदा होते।"

लोग हंसा करते। चौधरी बाबू के बेटे की करतूतों पर सभी हंसते। कहते, "अजी, बचपन में सब ऐसा ही कहते हैं। फिर देख लेना, जब बड़ा होगा, ब्याह होगा, गिरस्ती होगी, तो अपने बाप-दादे की तरह बकाया मालगुजारी के लिए हम लोगों पर नालिश ठोंकेगा। ऐसा बहुत देखा है जी, बहुत देखा है।"

लेकिन धीरे-धीरे सदानन्द बड़ा हुआ, जिसे बालिग होना कहते हैं, वही हुआ। स्कूल से पास करके कालेज गया, लेकिन तो भी वही, वैसा ही। जैसा तब था, वैसा ही अब भी। सो, उसी सदा का अब ब्याह है। नवाबगंज-घाट में बदस्तूर चहल-पहल मच गई। यह जैसे हरनारायण चौधरी के यहां का नहीं, नवाबगंज के सभी के घर का ब्याह हो। सारे गांव के लोग कमर कसकर

चर्चा में जुट पड़े। कहां से मिठाई आ रही है, किस ग्वाले के यहां दही के लिए कहा गया है, किस कुम्हार के यहां से वर्तन-भांड़े आएंगे, शहर से गोरों की कौन-सी वैंड-पार्टी आ रही है, यह सब खवर हर जवान पर फिरने लगी। साला वावू का गर्म मिज़ाज़ देखकर तो अवाक् रह जाना पड़ा। लड़की पसंद करने से लेकर नमक-केले का पत्ता तक भी मानो उसीकी ज़िम्मेदारी है। नरनारायण चौधरी ने दुतल्ले पर से हुक्म दे दिया और छुट्टी। पोते का व्याह होगा, उस व्याह को वह अपनी आंखों देख जा सकेंगे, उनके लिए इससे वड़ी खुशी की वात और कुछ नहीं। उनका लड़का हरनारायण स्वयं जाकर हीरे का मुकुट देकर लड़की को आशीर्वाद कर आया है। उधर से कालीकांत भट्टाचार्य भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार सोने के वटन का एक सेट देकर लड़के को आशीर्वाद कर गए हैं। अपनी औकात से हजार गुना ज्यादा सम्पन्न परिवार में रिश्ता कर रहे हैं, उनके लिए यह वहुत वड़े आनन्द की घटना है। दोनों पक्ष खुश। और दोनों पक्ष के वीच योगसूत्र की तरह प्रकाश मामा एक वार कृष्णनगर तो एक वार नवावगंज कर रहा है। स्त्री, वेटा-वेटी, सवको यहीं ले आया है। नरनारायण चौधरी के समधी कीर्तिपद मुखर्जी अस्वस्थ होते हुए भी सुलतानपुर से आ गए हैं। लेकिन सच पूछिए, तो सव कुछ की ज़िम्मेदारी मानो अकेले साला वावू की ही है। एक वार भंडार में जाकर हाजिर होता, तो एक वार दादी के पास। कहता, "सौ पांचेक रुपये और दो तो दीदी!"

रुपया देते हुए दीदी सिर्फ़ पूछती है, "पांच सौ रुपये और लेकर क्या होगा! अपने जीजाजी से ही मांग लेता।"

रुपयों को जेव में भरते हुए प्रकाश कहता, "इस वक्त जीजाजी को कहां ढूंढ़ता फिरूं। और, मुझे ही उतना समय कहां है, ? अंत में पाई-पाई का हिसाव दे देने से तो होगा न?"

और वह जैसे हनहनाता हुआ आया था, वैसे ही हठात् कहां गायव हो गया। नहाने-खाने की भी फुर्सत नहीं है उसे। नरनारायण चौधरी एक-एक वार पूछते, "कैलास उधर का काम-काज तो सव ठीक चल रहा है न?"

कैलास गुमाश्ता कहता, "जी हुजूर! प्रकाश मामा हैं, सव कर रहे हैं···"

नरनारायण चौधरी पहचान नहीं पाए। पूछा, "प्रकाश मामा? यह फिर कौन है?"

"जी, अपनी वहूरानी के भाई।"

"वहूरानी का भाई माने? हरनारायण का साला?"

"जी हां।"

"मगर मेरे समधी जी को तो कोई लड़का नहीं था। साला कहां से आया?"

"जी, वहूरानी के ममेरे भाई। अपने समधी जी के यहां ही पले हैं—वचपन में ही इनके मां-वाप मर गए थे न!"

"ओ"—कहकर वह चुप हो गए। यह वात उन्होंने सुनी वहुत वार है,

अंतिम दिनों में बहुतेरी बातें भूल जाते थे वह।
ब्याह की चहल-पहल जब बढ़ गई, चौधरी-महल में भीड़-भाड़ हुई तो
वयालों के कानों शंख की आवाज़ गई। सारे लोग दौड़े आए। उबटन
तत्त्व आया—उबटन का। शंख फूंको, शंख। उबटन का तत्त्व लेकर बहुत से
ोग आए। ये सब सवेरे आठ बजे के पहले ही आए। पुरोहित जी ने पत्रा
नकर समय बता दिया था। उसी समय के अंदर लड़के को उबटन नहीं
गाया जाएगा तो उधर लड़की को भी उबटन नहीं लगाया जाएगा। इधर
उबटन का समय सवेरे आठ बजे, उसी हिसाब से उधर लड़की का नौ बजे।
आखिर हिन्दू का ब्याह ठहरा। इसमें ज़रा भी इधर-उधर होने की गुंजाइश
नहीं। हुआ नहीं कि वंश का अमंगल होगा। वर-वधू का अमंगल होगा।
अमंगल होगा। चौधरी वंश का, अमंगल होगा व्याकरणतीर्थ कालीकांत जी
के वंश का भी।"

कृष्णनगर से नवाबगंज। बीच में राणाघाट में ट्रेन बदलने की ज़रूरत पड़ती
है। वक्त भी बहुत लग जाता है। उसके बाद रेल-बाज़ार से यहां तक आना।
उबटन का तत्त्व लेकर जो लोग आए थे, वह सब जब लौटकर कृष्णनगर
पहुंचे तो तीसरा पहर बीत चला था। कालीकांत जी सामने के रास्ते की ओर
निहारते हुए अकबका रहे थे। अंदर की स्त्रियों को भी चिंता थी। नवाबगंज
से लोग आ रहे हैं, उनकी ज़बानी बहुत कुछ सुनने को मिलेगा।

"क्यों जी विपिन, उबटन की रस्म हो गई? समधी जी ने कैसी खातिर
की?"

विपिन का मुखड़ा कैसा तो गंभीर-सा था।

"क्यों, कुछ बोल नहीं रहे हो?"

विपिन ने कहा, "पंडितजी, आदर-जतन तो खूब मिला, हम सबने खूब
पेट भरकर खाया, पर..."

कुछ कहते-कहते मानो विपिन रुक गया।

पंडित जी समझ नहीं सके। बोले, "पर क्या..."

"जी उबटन की रस्म नहीं हुई।"

"उबटन की रस्म नहीं हुई माने? इधर नयनतारा को तो सवेरे नौ ही
बजे उबटन लगाया गया। उधर आठ बजे का समय था, उसी हिसाब से इधर
हम लोगों ने लड़की को नौ बजे उबटन लगा दिया। ऐसा ही तो तै था ..."

विपिन ने रुक-रुककर कहा, "जी दुल्हा बाबू खोजे नहीं मिले..."

"खोजे नहीं मिले? मतलब?"

"विपिन ने कहा, "वह पिछली ही रात कहीं चल दिए थे, मिल नहीं रहे
थे?"

"आखिर? आखिरकार हुआ क्या, यह बताओ! आखिरकार वह मिले?"

"जी नहीं, नहीं मिले। हम कब तक इंतज़ार करते? लौट आए।"

यह खबर कानों में पहुंचते ही कालीकांत जी की स्त्री भी बाहर निकल
आईं। बोलीं, "कहते क्या हो? उबटन की रस्म नहीं हुई? इधर नयनतारा को

उबटन लगा दिया गया। तो क्या, दुल्हा नहीं आएगा ?"
उन्होंने विपिन की ओर ताका।

भीतर के एक कमरे में नयनतारा उस समय चुप बैठी थी। यह बात उसके कानों भी पहुंची। खबर कानों में पहुंचते ही सारा शरीर अवश-सा हो आया। दुल्हा नहीं आएगा।

लेकिन नहीं, पंडित कालीकांत भट्टाचार्य के पूर्वजों का शायद बड़ा पुण्य-बल था, इसीलिए उनकी बेटी के ब्याह में कोई बाधा नहीं पड़ी। या कि विपर्यय सामयिक भाव से नहीं घटा, शायद हो कि अदूर भविष्यत् के लिए मुलतवी रहा। जीवन में दुर्योग जब आता है, तो बहरहाल उसके आने के ढंग से बहुत बार लगता है कि वह शायद अचानक ही आया। लेकिन जब आंधी आती है, तो उसका लक्षण बहुत पहले से ही दिखाई पड़ता है। घर के छप्पर में जब आग लगती है, तो उस आग का उद्भव जो कितना पहले हुआ होता है किसीके तंबाखू पीने की वजह से—इसका पता हमें नहीं होता।

कालीकांत जी चैन की सांस लेकर जी गए। एकबारगी आखिरी ट्रेन जो थी, उसीसे दुल्हा आया। विपिन दौड़कर पंडित जी को खबर दे गया। पंडितजी ने अंदर खबर भिजवाई। उत्सव के घर में उस समय दबी रुलाई-सी छूट रही थी? खुश-खबरी जो मिली, तो वही मायूस खुशी से गम्-गम्कर उठा। कौन तो बोल उठी, "शंख फूंक, अरे, शंख फूंक। उलूध्वनि कर!"

हां, कालीकांत जी के यहां दुल्हा आया, नयनतारा का दुल्हा आया।

स्टेशन के प्लेटफार्म पर प्रकाश मामा सदानन्द को पहरा-सा देते हुए ला रहे थे। भानजा फिर कहीं भाग न जाए। बगल में हरनारायण चौधरी। दुल्हे के पिता।

प्रकाश मामा ने कहा, "आप कुछ फिक्र मत कीजिए जीजाजी, मैं सदा पर निगाह रखे हुए हूं..."

प्लेटफार्म पर कुछ लोगों ने दुल्हे को देखने के लिए भीड़ लगा रखी थी। प्रकाश मामा उन लोगों की ओर देखकर बिगड़े। बोले, "आप लोग क्या देख रहे हैं साहब? दुल्हा कभी देखा नहीं है क्या? हमें जरा रास्ता दीजिए, जाने दीजिए, हटिए जरा..."

लेकिन सदानन्द को उस समय और ही चिन्ता थी। प्रकाश मामा ने उसकी ओर देखकर कहा, "अरे, तू कुछ सोच मत। ब्याह करने में डर कैसा? मैं तो हूं। देख भी तो, ब्याह किसने नहीं किया है। ब्याह मैंने किया है, तेरे बाबूजी ने किया है, तेरे दादाजी ने किया है और कभी तेरे दादाजी के पिताजी ने भी ब्याह किया था। ब्याह करने में डरने की कोई बात ह[illegible] नहीं। तू मेरी ही मिसाल ले न, मैंने तो ब्याह किया है एक बार, मग[illegible] अगर जरूरत हो तो और भी दस बार ब्याह करने की हिम्मत रखता हूं

मैं क्या किसीकी परवाह करता हूं ?"

उस दिन सदानन्द प्रकाश मामा की बात पर मन-ही-मन हंसा था। प्रकाश मामा भी तो आदमी ही है। आदमी छोड़कर कोई उसे जानवर नहीं कहेगा। आदमी जैसे दो हाथ, पांव, आंख, कान। आदमी जैसी ही मुंह की बोली। दुनिया में ऐसे को सब आदमी ही समझते हैं। परन्तु प्रकाश मामा क्या वास्तव में आदमी है। उसने जानें कितनी बार सदानन्द को सिगरेट पिलाई है, बीड़ी पिलाई है, तम्बाकू पिलाया है। यात्रा-थियेटर दिखाने के लिए कितनी दूर-दूर के गांवों में ले गया है। उसके बाद दूसरे गांव में रात बिताकर सवेरे घर ले आया है। घर लौटने से पहले भानजे को खबरदार कर दिया है। कहा, "खबरदार, किसीसे यह सब कहना नहीं…"

सदानन्द उस समय छोटा था। यह सब कुछ समझता नहीं था। पूछता, "क्या सब ?"

प्रकाश मामा कहता, "यही कि रात किसके यहां बिताई ?"

सदानन्द पूछता, "क्यों ? कहा ही तो क्या हुआ ?"

प्रकाश मामा डांटता। कहता, "धत्तेरे, बुद्धू ! किसी औरत के यहां रात बिताने से किसीको कहना नहीं चाहिए।"

"क्यों ? औरत के यहां रात बिताने में दोष क्या है ? वह औरत कौन है ?"

प्रकाश मामा कहता, "दुर, तू सचमुच ही एक कपोरसंख है। देखा नहीं, वह एक बाजारू औरत है।"

"बाजारू औरत क्या होती है ?"

प्रकाश मामा ऊब उठता। कहता, "हुंह, तुझको लेकर तो बड़ी मुश्किल में पड़ा मैं। इतने बड़े लड़के को यह भी समझाना पड़ेगा कि बाजारू औरत किसे कहते हैं ? देखा नहीं, उस दईमारी के क्या ठाट हैं ?"

"ठाट माने ?"

प्रकाश मामा झुंझला उठता, "नः। तुझे मैं आदमी नहीं बना पाया। तू बड़ा होने पर क्या जो करेगा, मैं समझ नहीं पाता ! अन्त तक कोई करतूत न कर बैठ कहीं। बाबूजी के मरने के बाद जब तू लाखों रुपये का मालिक होगा, लगता है, उस समय लोग तुझे ठग लेंगे…"

छुटपन में सदानन्द प्रकाश मामा की बातों से बहुत कुछ जान लेता था। वह यह जानता कि उसके बहुत रुपया है। उसके दादा और बाप के मरने पर वह लाखों लाख रुपये का मालिक होगा। और सिर्फ उसके बाप के बहुत रुपया है, इतना ही नहीं, उसके नाना जी के भी बहुत रुपया है। नानाजी के मरने पर वह सारा रुपया भी अकेले सदानन्द को ही मिलेगा। ये सारी बातें उसने तब सुनीं, जब उसकी उम्र पन्द्रह या सोलह वर्ष की थी। प्रकाश मामा उस समय उसे राणाघाट के एक घर में ले गया था। सारी रात मामा के साथ यात्रा देखी। यात्रा खत्म हुई तो आधी रात जा चुकी थी। घड़ी में